श्रीपुरुषोत्तमग्रन्थावली ५

द्रव्यशुद्धिदीपिका
भक्तिमार्गीयापराधनिरूपणविवृतिः
उत्सवप्रतानः

श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट, मांडवी-कच्छ

श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट, मांडवी–कच्छ

सेमिनार:

१. शब्दखण्डीया विद्वत्परिचर्चा, गांधीनगर
२. कार्यकारणभावविचार, वडोदरा–गुजरात
३. प्रत्यक्षप्रमाण सङ्गोष्ठी, पुणे
४. अन्यख्यातिवादीया विद्वत्सङ्गोष्ठी, पुणे
५. अन्धकारवाद विद्वत्परिचर्चा, पुणे
६. वार्तापरिचर्चा, हालोल–गुजरात
७. अधिकारपरिचर्चा, हालोल–गुजरात
८. साधनाप्रणाली, मुम्बई
९. सेवा–समर्पण, मुम्बई
१०.कथायां वा/गुणगान साधना, मुम्बई
११.शरणागति, मुम्बई
१२.पुष्टिभक्तिसाधनामें प्रतिबन्ध, मुम्बई
१३.जघन्याधिकार, मुम्बई
१४.पुष्टिफलमीमांसा, मुम्बई
१५.World Philosophy Conference, Delhi (Cosponsored with Indian Philosophical Congress)
१६.International Conference on World Peace, Ahmedabad (Cosponsored with Uni. of Gujarat)

आचार्यवंशजोंकेलिये अध्ययनसत्र:

१. तर्कामृतम् – न्यायसिद्धान्तमुक्तावली
२. वेदान्तसार

ग्रन्थप्रकाशन :

साम्प्रदायिक परीक्षाकी पाठ्यपुस्तकें:

१. प्रवेशिका, लेखक: गो.शरद् (गुजराती)	१०
२. प्रवेशिका, लेखक: गो.शरद् (हिन्दी)	नि:शुल्क
३. प्रवेशिका, लेखक: गो.शरद् (अंग्रेजी)	नि:शुल्क
४. पुष्टिप्रवेश–१, लेखक: गो.शरद् (गुजराती)	१०
५. पुष्टिप्रवेश–२, लेखक: गो.शरद् (गुजराती)	१०
६. पुष्टिप्रवेश–१–२, लेखक: गो.शरद् (हिन्दी)	१०
७. पुष्टिपथ, लेखक: गो.शरद् (गुजराती)	२०
८. पुष्टिपथ, लेखक: गो.शरद् (हिन्दी)	२०
९. प्रमेयरत्नसंग्रह, लेखक: गो.शरद् (गुजराती)	२०
१०. Manual of the Devotional Path of Pushti, गो.शरद्	६५

साम्प्रदायिक विचारगोष्ठी

श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट द्वारा समायोजित साम्प्रदायिक विचारगोष्ठीमें प्रस्तुत हुवे
विभिन्न शोधपत्र तथा उनपर हुई विशद चर्चा का संग्रह

११. वार्तापरिचर्चा	१५
१२. साधनाप्रणाली संगोष्ठी	५०
१३. अधिकारपरिचर्चा	१००
१४. पुष्टिभक्तिमें कथासाधना संगोष्ठी	५०
१५. शरणागति विचारगोष्ठी	५०
१६. सेवा–समर्पण विचारगोष्ठी	५०

१७. शरणागति विचारगोष्ठी एक पूरक प्रश्नोत्तरी(गुजराती) नि:शुल्क
१८. पुष्टिभक्ति तथा प्रपत्तिमें प्रतिबन्ध १००
१९. जघन्याधिकार ८०
२०. पुष्टिफलमीमांसा १००

तत्त्वदर्शन विषयक राष्ट्रीय सेमिनार

श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट द्वारा समायोजित तत्त्वदर्शन विषयक राष्ट्रीय सेमिनारमें प्रस्तुत हुवे विभिन्न शोधपत्र तथा चर्चा का संग्रह (संस्कृत-हिन्दी-अंग्रेजी)

२१. शब्दखण्डीया विद्वत्परिचर्चा २००
२२. अन्यख्यातिवादीया विद्वत्सङ्गोष्ठी १५०
२३. कार्यकारणभावविद्वत्सङ्गोष्ठी २००
२४. प्रत्यक्षप्रमाण विद्वत्सङ्गोष्ठी १५०
२५. अन्धकारवादीया विद्वत्सङ्गोष्ठी २००
२६. वाल्लभवेदान्त निबन्धसंग्रह, लेखक : गो. श्रीश्याम मनोहरजी नि:शुल्क

नित्यस्तोत्रपाठ:

२७. पुष्टिपाठावली (हिन्दी) १०
२८. पुष्टिपाठावली (गुजराती) १०
२९. पुरुषोत्तमसहस्रनाम-त्रिविधलीलानामावली(गुर्जरभाषानुवाद) २०

सन्दर्भग्रन्थ:

३०. पुष्टिविधानम् पादानुक्रमणिका १०
३१. Summary of Shuddhadvaita Vangmaya, लेखक: गो.शरद १५
३२. अमृत वचनावली (गुजराती) नि:शुल्क
३३. अमृत वचनावली (हिन्दी) नि:शुल्क
३४. पुष्टिअस्मिता संवर्धन शिविर, राष्ट्रीय संमेलन, भरूच २५

अध्ययनोपयोगी ग्रन्थ:

३५. पुष्टिविधानम्-२(व्याकरणम्)श्रीवल्लभाचार्य-श्रीगोपीनाथजी-श्रीगुसांईजी विरचित २६ ग्रन्थोंका पदच्छेद-अन्वय- शब्दपरिचय-वृत्तिपरिचय १००
३६. पुष्टिविधानम्-३ (व्रजभाषा)श्रीवल्लभाचार्य-श्रीगोपीनाथजी-श्रीगुसांईजी विरचित २६ ग्रन्थोंका शब्दार्थ-श्लोकार्थ-विवेचन-पादानुक्रमणिका १५०
३७. तत्त्वार्थदीपनिबन्धान्तर्गत शास्त्रार्थप्रकरणम्, (व्रजभाषाटीका) साधारण/राजसंस्करण ५०/७०
३८. तत्त्वार्थदीपनिबन्धान्तर्गत सर्वनिर्णयप्रकरणम् (व्रजभाषाटीका) साधारण/राजसंस्करण ८०/१००
३९. श्रीभागवतमहापुराण, चार खण्डमें (गुर्जरभाषानुवाद) ४००
४०. विवेकत्रयम्, प्रपञ्च-जीव-मूलरूप (संस्कृत) १०
४१. गृहसेवा और व्रजलीला(व्रजभाषा)व्याख्यात: गो.श्रीश्याम मनोहरजी नि:शुल्क
४२. गृहसेवा अने व्रजलीला(गुजराती)व्याख्यात: गो.श्रीश्याम मनोहरजी अप्राप्य
४३. पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद, व्याख्यात: गो.श्रीश्याम मनोहरजी(गुजराती) अप्राप्य
४४. श्रीगोपीनाथप्रभुचरण, जीवनचरित्र-ग्रन्थ-हस्ताक्षर (गुज.-हिन्दी) २५

४५. श्रीकृष्णचरित्र(दशमस्कन्ध गुर्जरभाषा-भावानुवाद)अनुवादक: गो.वा.श्रीनानुलाल गांधी ८०

४६. श्रीमद्भगवद्गीता, गुर्जरभाषानुवाद, अनुवादक : पूर्ववत्.

श्लोकार्थ-विवेचन-पादानुक्रमणिका. गीतातात्पर्य-न्यासादेशविवरण गुजराती अनुवाद सहित ५०

४७. रसदृष्टिनी तरफेणमां(गुजराती), लेखक : गो.श्रीश्याम मनोहरजी निःशुल्क

४८. सिद्धान्तनुं आचमन, प्रश्नोत्तर (गुज.) उत्तरदाता: गो.श्रीश्याम मनोहरजी निःशुल्क

४९. जिन श्रीवल्लभरूप न जान्यो (गुजराती)

गो.श्रीश्याम मनोहरजी लिखित श्रीवल्लभ महाप्रभुस्तोत्राणि ग्रन्थकी विस्तृत हिन्दी भूमिकाका गुर्जरभाषानुवाद तथा सौंदर्यपद्य, सर्वोत्तमस्तोत्र, वल्लभाष्टक, स्फुरत्कृष्णप्रेमामृत, श्रीहरिरायचरण रचित श्रीवल्लभस्तोत्र, पंचश्लोकी, शिक्षाश्लोकी आदि ग्रन्थोंकी टीकाओंका गुजराती अनुवाद. ७०

५०. सेवाकौमुदी(हिन्दी), विषय : नवधाभक्ति, लेखक : श्रीलालूभट्टजी,
व्याख्याता : गो.श्रीश्याम मनोहरजी अप्राप्य

५१. ब्रह्मवाद (हिन्दी) लेखक : गो.श्रीश्याम मनोहरजी निःशुल्क

५२. भक्तिवर्धिनी(गुज.), व्याख्याता : गो.श्रीश्याम मनोहरजी निःशुल्क

५३. सेवा(हिन्दी) (ऋतु-उत्सव-मनोरथ) व्याख्याता : गो.श्रीश्याम मनोहरजी निःशुल्क

५४. सेवा(गुज.) (ऋतु-उत्सव-मनोरथ) व्याख्याता : गो.श्रीश्याम मनोहरजी निःशुल्क

५५. षोडशग्रन्थगत उपदेशो अने तेमनी २८ वार्ताओ, लेखक : श्रीभूपेन्द्र भाटीया ४०

५६. षोडशग्रन्थगत उपदेशो अने तेमनी ६४ वार्ताओ, लेखक : श्रीभूपेन्द्र भाटीया ४०

५७. कृष्णाश्रय, श्रीकल्याणरायजी विरचित संस्कृत टीकानो गुजराती अनुवाद ०७

इतिहास

५८. आधुनिक न्यायप्रणाली अने पुष्टिमार्गीय साधनाप्रणालीनो आपसी टकराव(गुज.),
लेखक : गो.श्रीश्याम मनोहरजी निःशुल्क

५९. आधुनिक न्यायप्रणाली और पुष्टिमार्गीय साधनाप्रणालीका आपसी टकराव(हिन्दी.),
लेखक : गो.श्रीश्याम मनोहरजी निःशुल्क

चित्र

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य निःशुल्क

श्रीगोपीनाथप्रभुचरण निःशुल्क

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य-श्रीगोपीनाथप्रभुचरण-श्रीविट्ठलनाथप्रभुचरण निःशुल्क

गोशाला

जीर्णोद्धार : तृतीय लालजी श्रीबालकृष्णजीके बैठकजी, गाम : विंजाण-कच्छ

हस्तलिखित ग्रन्थोंका संग्रह-संरक्षण; पुस्तकालय

शुद्धाद्वैत पुष्टिभक्तिमार्गीय वाङ्मय :

शुद्धाद्वैत पुष्टिभक्तिमार्गके आधारभूत संस्कृत-व्रज-गुजराती आदि भाषामें लिखित मूल गद्य-पद्य ग्रन्थसाहित्य, उनका अनुवाद एवं उनके ऊपर लिखित विवेचन आदिका (साम्प्रदायिक

शब्दकोश, साम्प्रदायिक वचनानुक्रमणिका, भगवद्गीतापादानुक्रमणिका आदि सहित अध्ययनोपयोगी साहित्यका) बृहत् संग्रह. डाउनलोड् एवं मार्गदर्शन केलिये लिंक :
http://www.pushtimarg.net/pushti/pushti-vangmay.html

वर्तमानमें निम्नलिखित ग्रन्थ शुद्धाद्वैत पुष्टिभक्तिमार्गीय वाङ्मय :में उपलब्ध हैं :

षोडशग्रन्थ (सभी संस्कृत टीका, हिन्दी ग्रन्थपरिचय, गुजराती अनुवाद सहित)
तत्त्वार्थदीपनिबन्ध
–शास्त्रार्थप्रकरण (टिप्पणी–आवरणभङ्ग–योजना–सत्स्नेहभाजन, अनु.= गुज.–व्रज)
–सर्वनिर्णयप्रकरण (संस्कृत टीका = टिप्पणी–आवरणभङ्ग, अनु. =व्रजभाषा)
–भागवतार्थप्रकरण (सभी संस्कृत टीकाएं)
ब्रह्मसूत्राणुभाष्य **शिक्षापद्यानि** (सभी संस्कृत टीकाएं)
मधुराष्टकम् (सभी संस्कृत टीकाएं) **परिवृढाष्टकम्** (सभी संस्कृत टीकाएं)
पुरुषोत्तमनामसहस्रम् (सभी संस्कृत टीकाएं) **त्रिविधनामावली** (सभी संस्कृत टीकाएं)
सुबोधिनी (स्कन्ध १ तथा २ संस्कृत) **सेवाश्लोका**
विद्वन्मण्डनम् (मूल तथा गुजराती अनुवाद) **सौन्दर्यपद्य** (व्रजभाषा टीका)
साधनदीपिका (मूल तथा व्रजभाषा तथा गुजराती अनुवाद)
पुरुषोत्तमप्रतिष्ठाप्रकार(मूल–संस्कृतटीका–हिन्दी अनुवाद)
श्रीभागवतपुराण (स्कन्ध १–७, १०,११ मूल तथा हिन्दी–गुजराती अनुवाद)
श्रीहरिरायवाङ्मुक्तावली(५५ ग्रन्थ, मूल तथा गुजराती अनुवाद)
द्रव्यशुद्धि (मूल तथा गुजराती–व्रजभाषा अनुवाद)
८४ वैष्णववार्ता (मूल–भावप्रकाश, व्रजभाषा)
२५२ वैष्णववार्ता (मूल–भावप्रकाश, व्रजभाषा) **४१ शिक्षापत्र** (मूल तथा व्रजभाषा टीका)
प्रस्थानरत्नाकर **अवतारवादावली खंड २, ३** **वादावली**
भगवद्गीतामृततरंगिणी **वल्लभाष्टकम्** **सर्वोत्तमस्तोत्रम्**

श्रीवल्लभाचार्य विद्यापीठ : शीघ्र ही कार्यरत होने जा रही यह विद्यापीठ अध्ययनोपयोगी ग्रन्थालय, अध्ययनकक्ष, निवास, भोजन, अध्यापक आदि अत्यावश्यक सुविधाओंसे सुसज्ज होगी. http://www.vallabhacharyavidyapeeth.org/

पुष्टिस्वाध्याय : सप्ताहके प्रायः सभी दिन आबाल–वृद्ध सभी पुष्टिमार्गीओंकेलिये सम्प्रदायके मूल ग्रन्थोंका अध्यापन विद्वान् आचार्यवंशजों द्वारा तीन माध्यमोंसे होता है: १.टेलिफोनिक कोन्फरन्स्, २.इंटर्नेट् द्वारा लाईव् ऑडियो तथा ३. इंटर्नेट् द्वारा लाईव् वीडीयो कोन्फरन्स्. विशेष जानकारीकेलिये फोनसम्पर्क योगेन्द्रभाई: (+91) 9323733796 पिनाकीनभाई:(+91)9726444515. नीरजभाई(यु.एस्.ए.): +7325424165. ईमेलसम्पर्क: pushtiswadhyay@gmail.com.

गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजीद्वारा सम्पादित-पुनर्मुद्रित

शुद्धाद्वैत पुष्टिभक्ति सम्प्रदायके
मूल संस्कृत ग्रन्थ

१. सव्याख्यषोडशग्रन्थ [संयुक्तप्रकाशन, दुर्लभ]

खंड १. श्रीयमुनाष्टकम् से सिद्धान्तरहस्यम्(१-५)

खंड २. नवरत्नम् से भक्तिवर्धिनी(६-११)

खंड ३. जलभेदः से सेवाफलम्(१२-१६)

२. सव्याख्यषड्ग्रन्थाः(श्रीपुरुषोत्तमनामसहस्रम्, त्रिविधनामावली, प्रेमामतम्, श्रीपरिवृढाष्टकम्, मधुराष्टकम्, शिक्षाश्लोकी) [संयुक्तप्रकाशन, दुलर्भ]

३. तत्त्वार्थदीपनिबन्धः

खंड १. शास्त्रार्थ-सर्वनिर्णयप्रकरण

खंड २. भागवतार्थप्रकरण स्कन्ध १-५

खंड ३. भागवतार्थप्रकरण स्कन्ध ६-१२

४. ब्रह्मसूत्राणुभाष्यम् : प्रकाश-रश्मि व्याख्या सहित

खंड १. प्रथमाध्याय [नाथद्वारा टेम्पलबोर्ड, अतिदुर्लभ]

खंड २. प्रथमाध्याय [नाथद्वारा टेम्पलबोर्ड, अतिदुर्लभ]

खंड ३. द्वितीयाध्याय

खंड ४. तृतीयाध्याय

खंड ५. चतुर्थाध्याय

५. श्रीमद्भागवतसुबोधिनी

खंड १. प्रथम-द्वितीयस्कन्ध

खंड ४. जन्मप्रकरण

खंड ५. तामसप्रमाणप्रकरण

खंड ६. तामसप्रमेय-साधनप्रकरण

खंड ७. तामसफलप्रकरण

खंड ८. राजसप्रमाण-प्रमेयप्रकरण

खंड ९. राजससाधन-फलप्रकरण

६. श्रीपुरुषोत्तमग्रन्तावली

खंड-१. वेदान्ताधिकरणमाला-भावप्रकाशिका

खंड-२. प्रस्थानरत्नाकर

खंड-३. अवतारवादावली-२ (भेदाभेदवाद, सृष्टिभेदवाद, आविर्भावतिरोभाववाद, ख्यातिवाद, प्रतिबिम्बवाद, अन्धकारवाद.)

खंड-४. अवदारवादावली-३ (ब्राह्मणत्वादिदेवतावादः, जीवव्यापकत्वखण्डनवाद,जीवप्रतिबिम्बत्व-खण्डनवादः, भागवतस्वरूपविषयकशंकानिरासवादः, उपदेशादिविषकशंका-निरासवादः, भगवत्प्रतिकृतिपूजनवादः, ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणवादः, तुलसीमालाधारणवादः, शंखचक्रधारणवादः, भक्तिरसत्ववादः, भक्त्युत्कर्षवादः, नामफलादिप्रकारवादः, जयश्रीकृष्णोच्चारणवादः, स्ववृत्तिवाद:, वस्त्रादिसेवावादः, मूर्तिपूजनवादः, भागवतपाठादेःशंकानिरासवादः.

खंड-५. द्रव्यशुद्धिदीपिका, भक्तिमार्गीयापराधनिरूपणविवृतिः, उत्सवप्रतानः

७. विविधविवरणोपेत पत्रावलम्बनम्

९. विद्वन्मण्डनम्

१०. श्रीबालकृष्णग्रन्थावली

१२. पुष्टिविधानम्[गुजराती, व्रज तथा संस्कृत संस्करण]

१३. श्रीवल्लभमहाप्रभुस्तोत्राणि

१४. श्रीपुरुषोत्तमप्रतिष्ठाप्रकारः

१५. वादावली (ब्रह्मवादप्रमुखानाम् अनेकवादानां संकलनरूपा) ब्रह्मवादः, वादकथा, विग्रहवादः, प्रपञ्चवादः, प्रपञ्चसंसारभेदवादः, ब्रह्मजीवतदैक्यस्वरूपनिरूपणम्, विरुद्धधर्माश्रयत्वनिरूपणम्, आत्मवादः, प्रश्नोत्तरसाहस्रीपर्यालोचनम्, प्रश्नोत्तरसाहस्रीचर्चितप्रकृत्यधिकरणसमालोचनम्, केवलाद्वैत-वादाभिमताविद्यास्वरूपविमर्शः, अक्षरपुरुषोत्तमद्वैतनिरासवादः.

क्रमांक १- २, ४/१- ४/२ तथा ६/५ को छोड कर सभी ग्रन्थ श्रीवल्लविद्यापीठ-श्रीविट्ठलेश्वर-प्रभुचरण आ.हो.ट्रस्ट (कोल्हापुर) द्वारा प्रकाशित.

गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजीकी हिन्दी-गुजराती पुस्तकें

-वाल्लभवेदान्त निबन्धसंग्रह
-भगवत्सेवानो सिद्धान्तशुद्ध प्रकार: एक प्रश्नोत्तरी[गुज.]
-पुरुषोत्तमयोग[गुज.-हिन्दी]
-धर्म-अर्थ-काम-मोक्षकी पुष्टिमार्गीय विवेचना[हिन्दी-गुज]
-श्रीवल्लभाचार्यके दर्शनका यथार्थ स्वरूप
-सिद्धान्तनुं आचमन : प्रश्नोत्तरी[गुज.]
-नवरत्नोपदेशका मानसविश्लेषण[गुजराती-हिन्दी]
-साकारब्रह्मवाद(तत्त्वचिंतन भक्ति संस्कृति विमर्श)
-शरणागतिविचारगोष्ठी एक पूरक प्रश्नोत्तरी[गुज.]
-तत्त्वार्थदीपनिबन्ध : शास्त्रार्थप्रकरणोपक्रम[गुज.]
-सेवा (ऋतु-उत्सव-मनोरथ)[गुजराती-हिन्दी]
-रसदृष्टिनी तरफेणमां[हिन्दी-गुजराती]
-विशोधनिका[चार खंड]
-श्रीयमुनाष्टकम्
-गृहसेवा और व्रजलीला[गुज.-हिन्दी]
-नवरत्नम्[गुजराती-हिन्दी]
-सिद्धान्तसूक्ति[गुज.]
-पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद[गुज.]
-विवेक
-वार्तान्की सैद्धान्तिक संगति
-भक्तियोग
-सेवा और व्रजलीला[गुजराती-हिन्दी]

संपर्क : गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी, व्रजकमल, ६३ स्वस्तिक सोसाय्टी, ४था रास्ता, जुहु स्कीम, विलेपार्ले(पश्चिम), मुम्बई. फोन : (०२२) २६१४४३२६

।। श्रीकृष्णाय नमः ।।

प्रकाशकीय

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्योपदिष्ट पुष्टिमार्गीय साधनामें सेवासाधनाका स्थान अनन्य है. भगवत्सेवा पुष्टिभक्तोंकेलिये यद्यपि स्वतन्त्रपुरुषार्थरूपा—फलरूपा होती है तथापि सेवाकर्ताकी अवस्था किंवा कक्षा के भेदसे उसकी धर्मरूपता भी स्वीकार्य है ही. अतएव महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरण लिखते हैं : ‘‘**पुष्टिमार्गे हरेः दास्यं धर्मः**’’. शास्त्रोंमें जिस तरहसे धर्मके षडङ्ग : देश–काल–द्रव्य–कर्ता–मन्त्र–कर्म का गम्भीर विचार हुवा है उसी तरह पुष्टिभक्तिमार्गमें भी धर्मस्थानी कृष्णसेवाके देश–कालादि षडङ्गोंके सिद्धान्ताभिमत स्वरूपका निरूपण प्रमुखतया : षोडशग्रन्थ, शिक्षाश्लोकाः, पञ्चश्लोकी, तत्त्वार्थदीपनिबन्धके सर्वनिर्णयप्रकरणान्तर्गत साधनप्रकरण आदि ग्रन्थोमें महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरणोंने किया है. जबकि नित्यसेवाकी विधिका निरूपण श्रीवल्लभाचार्यचरणोंके ज्येष्ठात्मज श्रीगोपीनाथप्रभुचरणोंने अपने ‘साधनदीपिका’ नामक ग्रन्थमें किया है. धर्माङ्गभूत मन्त्रका जहां तक प्रश्न है तो पुष्टिभक्तिमार्गीय भगवत्सेवामें सम्प्रदायके मूलाचार्य एवं उनके कृपापात्र भगवदीयों के भक्तिभावात्मक वचन ही मन्त्रस्थानी माने जाते हैं. इनका निरूपण श्रीगोपीनाथप्रभुचरण विरचित ‘सेवाश्लोकाः’ आदि ग्रन्थोंमें तथा बहुप्रचलित कीर्तन ग्रन्थोंमें उपलब्ध होता है.

यहां यह अवधेय है कि श्रौत–स्मार्त धर्मोंमें कर्ता प्रमुखतः वर्णाश्रमी होता है. कर्ताको नित्य–नैमित्तिक–काम्यके भेदसे जो कर्म करणीय होते हैं तदनुसार उनके काल–देश–द्रव्य–मन्त्रका निर्णय किया जाता है. कर्ममार्गमें कर्मका प्राधान्य होता है अतः देवता कर्मके अङ्ग–द्रव्य माने जाते हैं. कर्ममार्गके विपरीत भक्तिमार्गमें कर्मकी तुलनामें आराध्य देवका प्राधान्य होता है.

भक्तिमार्गकी दृष्टिसे भक्ति–सेवासाधनाके मुख्य घटक : [१]सेव्य, [२]सेवा और [३]सेवक होते हैं. इनमेंसे प्रथम अर्थात् [१]सेव्य तो क्षराक्षरातीत पुरुषोत्तम स्वयं श्रीकृष्ण क्योंकि नित्य अपरिच्छिन्न होते हैं, अतः देश–कालातीत हैं. अतएव ऐसे सेव्यकी [२]सेवा भी देश–कालके शास्त्रीय नियमोंसे बंधी हुयी न हो कर, भक्तिभावसे भक्त जहां–जब श्रीकृष्णकी सेवा करता है तब–वहां श्रीकृष्ण उसके ऊपर अनुग्रह करके उसकी सेवाको स्वीकारते हैं. महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरणोंने श्रीकृष्णकी सर्वदा–सर्वत्र भजनीयताके इस सिद्धान्तको ‘चतुःश्लोकी’ ग्रन्थमें ‘‘**<u>सर्वदा</u> सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः, स्वस्य अयमेव धर्मो हि न अन्यः <u>क्वापि कदाचन</u>**’’ इन शब्दोंमें घोषित किया है.

[३]सेवक–जीव, क्योंकि, भगवदंश होते हैं अतः जीवस्वरूपके विचारसे तो जीवमात्रका स्वधर्म भगवत्सेवा ही होता है. तथापि भगवान्‌की भिन्न–भिन्न जीवोंको भिन्न–भिन्न फलोंका दान करनेकी इच्छाके कारण भगवान् जीवोंका वरण पुष्टि–मर्यादा–प्रवाह भेदसे भिन्न–भिन्न मार्गोंकेलिये करते हैं. तदनुसार भगवान्, क्योंकि, पुष्टिमार्गीय फल केवल पुष्टिजीवोंको ही प्रदान करते हैं अतः केवल पुष्टिजीव ही पुष्टिभक्तिमार्गमें अधिकृत माने गये हैं.

जीवचेतना, क्योंकि, **''एवं पञ्चविधं लिङ्गं त्रिवृत् षोडशविस्तृतम्, एष चेतनया युक्तो 'जीव' इत्यभिधीयते''**(भाग.पुरा.४।२९।७४) वचनानुसार प्राण–अन्तःकरण–इन्द्रिय–तन्मात्रादिसे युक्त होती है. अतः ऐसी मिश्र अवस्थामें अध्यस्त चेतनाकेलिये शुद्ध 'स्व'का निर्धारण कर पाना दुष्कर हो जाता है. इसी कारण स्वधर्मका निर्धारण भी जटिल बन जाता है. 'स्व' यद्यपि आत्माका वाचक होता है. तथापि देहादिमें फंसा हुवा जीव अपने आपको देहादि समझने लगता है. ऐसेमें, देहाध्यासादिके बने रहने पर भी, भगवत्सेवाके आत्मधर्मरूप होनेके केवल शास्त्रीय ज्ञानके आधारपर, पुष्टिमार्गीकेलिये देहधर्मकी उपेक्षा निरे पाषण्डमें पर्यवसित होगी. अतएव महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरण श्रीभागवतके तृतीयस्कन्धकी **''स्वधर्माचरणं शक्त्या विधर्माच्च निवर्तनम्''** कारिकाकी सुबोधिनी विवृतिमें पुष्टिमार्गीय सेवाकर्ताकेलिए स्ववर्णाश्रमधर्मके पालनकी आवश्यकता पर भार देते हुवे लिखते हैं कि :

> **''मनुष्यको स्वधर्मका आचरण करना चाहिये. 'स्वधर्म' अर्थात् देहधर्मका आचरण. अपने–अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार शास्त्र हमें जिन कर्तव्योंके पालनका आदेश करता है उनका यथाशक्ति पालन करना चाहिये. शास्त्र भी कहता है : ''जितना किया जा सके उतना करो''. स्ववर्णाश्रमधर्मका पालन करनेमें समर्थ होते हुवे भी उनका अल्प अथवा अधूरा पालन नहीं करना चाहिये. ...जहां तक देहादिकोंमें आत्माका अध्यास है तब तक तो वर्णाश्रमधर्म ही स्वधर्म होते हैं, भगवद्धर्मादि भी विधर्म या परधर्म कहे जायेंगे. परन्तु जब मनुष्य अपने आपको ''मैं देहादि सङ्घातसे भिन्न जीव हूं'' ऐसा मानने लगे तब तो भगवद्दास्य ही स्वधर्म होता है, अन्य वर्णाश्रमादि धर्म परधर्म बन जाते हैं''.***

इन वचनोंका निष्कृष्ट तात्पर्य समझाते हुवे महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरणोंके ज्येष्ठ पुत्र श्रीगोपीनाथप्रभुचरण 'साधनदीपिका' ग्रन्थमें लिखते हैं कि :

> **''दहेधारीकेलिये कर्मोंका निःशेष त्याग कर पाना सम्भव नहीं है. जब कर्म करने ही पड रहे हैं तो स्वधर्मका ही पालन करना चाहिये. ऐसा न करने पर स्वधर्मत्याग और स्वच्छन्दाचरण का दुगना अपराध होगा. अतः विधर्माचरणसे बचते हुवे भक्तिशास्त्रके अनुकूल रह कर यथाशक्ति स्वधर्मका आचरण करना चाहिये''**.(साधनदीपिका श्लो.१५–१७)

इस खंडमें प्रकाशित किये जा रहे गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमचरण विरचित १.द्रव्यशुद्धिदीपिका, २.भक्तिमार्गीयापराधनिरूपणविवृति तथा ३.उत्सवप्रतान —इन तीन

---

*''**स्वधर्माणां** देहधर्माणां वर्णाश्रमाधिकारसिद्धानाम् आचरणं यथाशक्त्या कर्तव्यम्, न तु शक्तावपि सङ्कोचः. शास्त्रमपि ''यच्छक्नुयात् तत् कुर्यात्'' इति. ...यावद् (विपर्यायाभ्यासदार्ढ्येन आत्मतया भातः[प्रकाश])देहो अयं तावद् वर्णाश्रमधर्माएव स्वधर्माः, भगवद्धर्मादयोऽपि विधर्माः परधर्मा वा. यदा पुनः आत्मानं जीवं मन्यते, सङ्घातव्यतिरिक्तं, तदा दास्यं स्वधर्मः. अन्ये वर्णाश्रमादयोऽपि परधर्माः''. (भाग.सुबोधिनी ३।२८।२)

ग्रन्थोंकी भूमिकाके रूपमें उल्लिखित निरूपणकी प्रासङ्गिकता यह है : धर्मकी सिद्धिकेलिये उसके देश-कालादि षडङ्गोंका शास्त्रशुद्ध होना आवश्यक होता है. पुष्टिभक्तिमार्गमें, क्योंकि, भगवत्सेवाको धर्मस्थानी माना गया है इसलिये और पुष्टिमार्गीय सेवाकर्ताको यावद्देहाभिमान स्ववर्णाश्रमधर्मोंका पालन करना आवश्यक होता है अतः देहाभिमानी वर्णाश्रमी सेवाकर्ताके विचारसे सेवानुकूल **देश** और **द्रव्य** इन दो धर्माङ्गोंकी शुद्धिका शास्त्रीय निरूपण 'द्रव्यशुद्धिदीपिका' ग्रन्थमें किया गया है जब कि धर्माङ्ग **काल**के सेवानुकूल स्वरूपका शास्त्रीय विचार 'उत्सवप्रतान' ग्रन्थमें किया गया है. और 'भक्तिमार्गीयापराधनिरूपणविवृति' ग्रन्थमें धर्माङ्गभूत **कर्ता**द्वारा भक्तिमार्गका अनुसरण करते समय सम्भावित अपराधोंका और उनके निवारणके उपायका निरूपण किया गया है.

यहां यह अवधेय है कि धर्मशास्त्रमें देश-काल-द्रव्य-मन्त्र-कर्मके एक नहीं, अनेक अनुकल्प-विकल्प कर्ताको दिखलाये गये हैं. आवश्यकता, परन्तु, यह है कि कर्ता शुद्ध हो. सिंदूरसे भरी मांग हो, गलेमें मंगलसूत्र हो, हाथोंमें पूजाकी थाली हो, चहेरा घूंघटसे ढंका हुवा हो पर ऐसी स्त्री यदि स्वैरिणी हो तो! जब स्वयं कर्ता ही अशुद्ध/अनधिकारी हो तब उत्तमोत्तम काल-देश-द्रव्य-मन्त्र-कर्म भी आडंबर मात्र रह जाते हैं. अतएव महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य 'सिद्धान्तमुक्तावली' ग्रन्थके उपसंहारमें लिखते हैं कि **''गङ्गाके तट पर निवास करनेवाला यदि गङ्गाके प्रति भक्तिभावसे रहित है तो वह अपने दुष्ट आचरणके कारण पापका भागी बनता है. उसी तरह भक्तिभावसे रहित मनुष्य यदि भगवान्-भगवत्स्थान-भक्तके निकट रहता है तो, वहां रहना ही उसके अधःपतनका कारण बन सकता है''**(सिद्धान्तमुक्तावली २०). भक्तिमार्गमें, इसलिये, अपने भजनीयके प्रति निरुपाधिक-निष्काम-शुद्ध प्रेमभावका होना सर्वथा आवश्यक है. आत्मनिवेदित होकर, स्वगृहमें व्रजाधिप श्रीकृष्णको पधराकर, उनको ही अपना सर्वस्व मानकर, निवेदित स्वसर्वस्वका उनकेलिये विनियोग करते हुवे प्रेमसे स्वयं उनकी सेवा करना यह पुष्टिभक्तिमार्गीय सेवासाधनाका सैद्धान्तिक स्वरूप है. 'सिद्धान्तरहस्य' ग्रन्थोक्त, अपने सभी खान-पान-यज्ञ-श्राद्ध-दानादि लौकिक-वैदिक कार्यमात्रका स्वसेव्यको समर्पण करना और स्वसेव्यकी सेवामें समर्पित न हों ऐसे घर-धनादि वस्तु मात्र तथा जगना-स्नान-खान-पानादि व्यवहार मात्रका त्याग करना —इन भगवदाज्ञाओंका पालन स्वगृहमें विराजमान प्रभुकी सेवामें स्वतनुवित्तके विनियोगके बिना असम्भव ही नहीं अकल्पनीय है. विडम्बना यह है कि आज अधिकांश उपदेशक अपने सेव्य और उनकी सेवा को पैसे कमाने साधन बना बैठे हैं. पुष्टिभक्तिमार्गके नामपर चलनेवाली उनकी हवेलियां, जो कभी गुरुघर होती थीं, पर आज सार्वजनिक मन्दिरमें परिवर्तित की जा चुकी हैं, उनमें में भक्तिके नामपर सेवा, दर्शन, मनोरथ, प्रसाद, तुलसी-चरणामृत, दीक्षा, कीर्तन, कथा ... सब कुछ बिकता है. इन सबके निमित्त पैसे मांगकर पुष्टिमार्गके अधिकांश आचार्य(!) अपनी आजीविका चलाते हैं. शास्त्रमें स्पष्ट लिख है कि भगवत्सेवाके द्वारा आजीविका चलानेवाला 'देवलक' चंडालके जितना अपवित्र बन जाता है! कहना आवश्यक नहीं है कि ऐसी स्थितिमें पुष्टिमार्गके अधिकांश गुरुओंकी स्थिति ''इतो

भ्राष्टः ततो भ्रष्टः'' जैसी हो चुकी है. सेवा–कथाको धंधा बनानेके कारण भक्तिमार्गसे तो भ्रष्ट हो ही गये, देवलकताके कारण चंडाल जितने अपवित्र हो जानेके कारण शास्त्रीय भी समस्त अधिकारोंसे भ्रष्ट हुवे. दूसरी ओर अधिकांश अनुयायी दुकान नुमा इन हवेलियोंमें सेवा–दर्शन–मनोरथके स्पोन्सर(प्रायोजक) बन कर और देवद्रव्यके पातित्यकारक प्रसादको खाकर अपने आपको कृतकृत्य मानते हैं. इन अपराधोंके कारण इनकी भी स्थिति उनके गुरुओंकी ही तरह ''इतो भ्रष्टः ततो भ्रष्टः'' जान पड़ती है. गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमचरण लिखते हैं कि **''धन देकर सेवा करवाने पर धनदाता अहंकारी बनता है, उसका चित्त कभी भी भगवत्प्रवण नहीं बन सकता है. ...जिस तरह दक्षिणा देकर याग करवाने पर यागका फल दक्षिणा देनेवालेको मिलता है ऐसा, किन्तु, भक्तिमार्गमें सम्भव नहीं है. क्योंकि कर्ममार्गमें तो धन देकर यज्ञादि कर्म करवाना शास्त्रविहित है. परन्तु ऐसा करनेकी आज्ञा भक्तिमार्गमें भगवानने दी नहीं है अतः ऐसा नहीं करना चाहिये, पर भगवानने जैसा करनेकी आज्ञा दी है उसी तरह करना चाहीये. ऐसा करने पर ही साधनरूपा तनुवित्तजा सेवा साध्यरूपा मानसीसेवा बनकर व्रजभक्तोंकी तरह फलित होगी''** (सिद्धान्तमुक्तावली–विवृतिप्रकाश २). इससे स्पष्ट है कि किसीको पैसे देकर उससे सेवा–मनोरथ करवाना न केवल भगवदाज्ञाका तिरस्कार करना है अपितु भक्तिसे विपरीत परिणामका जनक होनेसे भक्तिमार्गसे भ्रष्ट करनेवाला भी होता है. विशेषमें देवद्रव्यका प्रसाद खानेके कारण महापतित होनेसे ये शास्त्रीय अधिकारसे भी भ्रष्ट होते हैं. गुरु–शिष्य दोनों उभयतो भ्रष्ट सिद्ध हो रहे हैं फिर भी महामोह कैसा है कि कोई तो जगद्गुरु बननेकी रेसमें खड़ा है तो कोई $२५०१ और $१५०१ डॉलर् देकर अपना नाम ८४–२५२ वैष्णवोंकी सूचिमें लिखवानेमें लगे हैं. यह देखकर अनायास ही ''उभावप्यश्रुतग्रन्थौ उभावपि जडात्मकौ, अहो मोहस्य माहात्म्यं तत्रैकः शिष्यातांगतः!'' उक्तिका स्मरण हो आता है.

इस तरह हम देख सकते हैं कि एक ओर तो वर्णाश्रमधर्म इनको धर्मबहिष्कृत मानता है तो दूसरी ओर भक्तिमार्ग इनको अनधिकारी मानता है. उभयतः पाशकी इस स्थितिमें, प्रमुखतः वर्णाश्रमी भक्तिमार्गीको उद्देश्य बनाकर लिखे गये द्रव्यशुद्धिदीपिका भक्तिमार्गीयापराध–निरूपणविवृति तथा उत्सवप्रतान इन तीनों ग्रन्थको पृष्ठभूमिमें रखकर विचार किया जाये तो, कुछ यक्षप्रश्न खड़े होते हैं जिनपर विचार करना आजकी स्थितिमें परमावश्यक लगता है. यथा,

–जो गुरु अपने सेव्यकी सेवाके द्वारा अपनी वृत्ति चलाते हैं वे देवलकताके कारण सदा ही चण्डालवत् अपवित्र हो चुके होनेसे उनको 'द्रव्यशुद्धि' ग्रन्थोक्त शुद्धिके प्रकारोमेंसे ब्राह्मणाधिकारक शुद्धिके प्रकारको अपनाना चाहिये या फिर अपने आपको चाण्डालवत् अपवित्र मानकर 'द्रव्यशुद्धि'का अविषय मान लेना चाहिये?

–देवलकताके कारण ब्राह्मणत्वसे हाथ धो बैठने पर और स्वधर्मरूपा भगवद्भक्तिको पैसे कमानेका साधन बनानेके कारण भक्तिमार्गसे भी बहिष्कृत हो जाने पर जो अब गुरु ही नहीं रह गये हैं उनके प्रति भेदबुद्धि रखना अपराध है या देवबुद्धि रखना अपराध है?

–जो अपने मूलाचार्यका द्रोही हो ऐसे गुरुका आदर न करना अपराध है या उसका अपमान–

निन्दा न करना अपराध है?

–देवलक गुरुका स्पर्श, गृहवास आदि होने पर शिष्यको अपनी तथा गृहादिकी शुद्धि कैसे करनी?

–दूसरेके पाससे द्रव्यादि लेकर सेवा करना भगवदाज्ञासे विरुद्ध है. ऐसी सेवा जब स्वयं भगवान् ही स्वीकार नहीं करते हैं तब पुष्टिमार्गीय सेवाके नाम पर सम्प्रदायमें सर्वत्र आज जिनको अभूतपूर्व बढावा दिया जा रहा है वो भोग–राग–शृंगार क्या भस्महोमतुल्य नहीं कहे जायेंगे?

इस प्रास्ताविकके साथ सम्पादकीय उत्तरदायित्वको निभाते हुवे इतना निरूपण करना शेष रहता है कि इस ग्रन्थमें गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमचरण विरचित

१. द्रव्यशुद्धिदीपिका

२. भक्तिमार्गीयापराधनिरूपणविवृति

३. उत्सवप्रतान

—इन तीन ग्रन्थोंका प्रकाशन किया जा रहा है.

१. द्रव्यशुद्धिदीपिका :

भारतमार्तण्ड श्रीगट्टूलालजीके संग्रहसे प्राप्त हस्तलिखित प्रतिके आधारपर इस ग्रन्थका प्रकाशन वि.सं.१९५५ में श्रीगोवर्धनदास लक्ष्मीदास, यदुवंशीय पुस्तकालय, मुम्बई द्वारा व्रज तथा गुर्जर भाषानुवाद सहित हुवा था. इसके पुनः प्रकाशनके अवसर पर, पाठभेदके निर्धारणार्थ, इस पुस्तकके साथ इस ग्रन्थकी [१]मांडवी ग्रन्थागार तथा [२]भुवनेश्वरी पीठ, गोंडल से प्राप्त अन्य दो प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकोंका मिलान किया गया है.

अनुवादोंके सम्बन्धमें यह ध्यातव्य है कि दोनों अनुवाद भिन्न–भिन्न विद्वानों द्वारा किये गये हैं. शास्त्रवचनोंके अर्थोंमें दोनोंके बीच अनेक स्थानों पर भिन्न मत दिखलाई देते हैं. कहीं गुर्जर तो कहीं व्रज भाषानुवाद उपयुक्त प्रतीत होता है. सुज्ञ अध्येताओंको तो स्वकर्तव्य निर्धारणार्थ मूलपर ही निर्भर रहना चाहिये.

इस ग्रन्थमें कब–कहां–क्यों–कैसे स्नान करना, रात्रिके समय जन्म–मरण–रजोदर्शन होने पर कालका निर्धारण कैसे करना, रजस्वला सम्बन्धी शुद्धि, स्पर्शदोष कब मानना कब नहीं मानना, भगवत्सेवा तथा पितृकर्म विषयक शुद्धि, वस्त्र–पात्र–शय्या–धान्य–सिद्धान्न–घृतपायस–उदक–जलाशय–भूमि–गृह–रथ्या आदिकी शुद्धि, प्रकीर्ण विषयोंकी शुद्धि तथा आत्माकी शुद्धि जैसे विषयोंपर शास्त्रीय विचार हुवा है.

२. भक्तिमार्गीयापराधनिरूपणविवृति

इस ग्रन्थका प्रकाशन इदम्प्रथमतया किया जा रहा है. इसका प्रकाशन समादरणीय

गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी(किशनगढ–पार्ला) से प्राप्त [१]श्रीगट्टुलालजी संग्रह–मुम्बईकी हस्तलिखित पुस्तक तथा [२]मांडवी ग्रन्थागार एवं [३]भुवनेश्वरी पीठ–गोंडल से प्राप्त हस्तलिखित पुस्तकोंकी सहायतासे किया गया है.

इस ग्रन्थमें भक्तिमार्गमें अपराधः किसे माना जाता है उसकी परिभाषा देते हुवे ग्रन्थकारने उपक्रममें पाप और अपराधके बीच भेद समझाया है. आगे वराहपुराण तथा नारदपञ्चरात्र में निरूपित ३२ अपराध तथा हरिवल्लभसुधोदयोक्त ६६ अपराधों का निरूपण करनेके पश्चात् श्रीमत्प्रभुचरणोक्त भक्तिमार्गीय ३२ अपराधों पर विवेचन किया है. ग्रन्थोपसंहारमें स्वसिद्धान्ताभिमत अपराधनिवृत्त्युपायका निरूपण किया गया है. वर्तमान सन्दर्भमें श्रीमत्प्रभुचरणोक्त **''सेवायां लोकानुकूल्यम्**[१]**, स्वमार्गीय–सेव्यभगवद्रूपे भेदबुद्धिः**[१५]**, अनधिकारिणि मार्गरहस्यप्रकाशः**[२३]**, सेवाभिमानः**[३०]**''** आदि अपराध विशेषरूपसे चिन्तनकी अपेक्षा रखते है.

३. उत्सवप्रतान

इस ग्रन्थका सर्वप्रथम प्रकाशन वि.सं.२००५में श्रीबालकृष्णशुद्धाद्वैतमहासभा, सुरत द्वारा प्रकाशित 'उत्सवनिर्णयग्रन्थसमुच्चय' पुस्तकमें हिन्दी भाषानुवादके साथ हुवा था. इसके पुनः प्रकाशनमें पाठभेदोंका निर्धारण [१]मांडवी ग्रन्थागार तथा [२]भुवनेश्वरी पीठ–गोंडल से प्राप्त हस्तलिखित पुस्तकोंकी सहायतासे किया गया है. हिन्दी भाषानुवाद श्रीजगन्नाथ शास्त्रीने किया है जिसे यहां यथावत् प्रकाशित किया गया है.

इस ग्रन्थमें गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमचरणोंने वर्षभरमें आते शास्त्रीय तथा भक्तिमार्गीय उत्सवोंके समयका निर्णय दिया है.

ग्रन्थका अवलोकन करने पर यह प्रतीत होता है कि साम्प्रदायिक टिप्पणी–पञ्चाङ्ग तैयार करनेवाले लोग आज जिन ज्योतिष सिद्धान्तोंको आधार बनाकर पञ्चाङ्ग तैयार कर रहे हैं वे सिद्धान्त सम्प्रदायमें सर्वांशमें मान्य नहीं हैं.

अन्तमें, ग्रन्थाध्यापन प्रवचन लेखन सम्पादन आदि कार्योंमें अतीव व्यस्त होते हुवे भी समादरणीय गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी(किशनगढ–पार्ला)ने इस ग्रन्थकी मुद्रणार्थ तैयार की गयी प्रतिका अवलोकन कर आवश्यक उपयोगी निर्देश दिये यह सर्वथा अविस्मरणीय है. ग्रन्थकी मुद्रणव्यवस्थाका भार श्रीप्रवीणभाई तथा श्रीपीयूषभाई (राजकोट)ने उठा लिया और सौ.ख्यातिने ग्रन्थका सचित्र आवरण तैयार कर दिया यह भी स्मरणीय है. सर्वान्तमें द्रव्यशुद्धिदीपिका और उत्सवप्रतान ग्रन्थोंके पूर्व प्रकाशकों तथा अनुवादकों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुवे.

श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट द्वारा

गोस्वामी शरद्

अनुक्रमणिका

द्रव्यशुद्धिदीपिका

।।श्रीकृष्णाय नमः।।

गोस्वामीश्रीपुरुषोत्तमचरणविरचिता

।। द्रव्यशुद्धिदीपिका ।।

नत्वा श्रीवल्लभाचार्यान् हरिसेवोपकारिका।।
बाह्याऽथाऽभ्यन्तरी द्रव्य-शुद्धिरत्र विचार्यते।।१।।
निबन्धेषु विविच्योक्ताऽप्यधुना बुद्धिदोषतः।।
यतो न भासते सम्यक् तत एष समुद्यमः।।२।।

१. अथ स्नानाचमननिमित्तविचारः.

तत्र तावत् प्रायश्चित्तमिताक्षरायां याज्ञवल्क्यः

''उदक्याशुचिभिः स्नायात् संस्पृष्टस्तैरुपस्पृशेत्,
अब्लिङ्गानि जपेच्चैव गायत्रीं मनसा सकृत्''

(याज्ञ.स्मृ.प्रायश्चि.१।३०)

इति आह. तत्र विज्ञानेश्वरः उदक्या रजस्वला अशुचयः शव-चाण्डाल-पतित-सूतिका-शावाशौचिनः एतैः संस्पृष्टः स्नायात्. तैः पुनः उदक्याशुचि-संस्पृष्टादिभिः संस्पृष्टः उपस्पृशेद् आचामेत्. आचम्य च अब्लिङ्गानि **''आपोहिष्ठा''** इत्येवमादीनि त्रीणि मन्त्रवाक्यानि जपेत्. त्रिष्वपि बहुवचनस्य चारितार्थ्यात्. तथा गायत्रीं च मनसा सकृद् जपेत्. ननु उदक्यादिसंस्पृष्टः स्नायाद् इति एकवचननिर्दिष्टस्य कथं तैः इति बहुवचनेन परामर्शः? सत्यम्, एवं किन्तु अत्र उदक्यादिसंस्पृष्टव्यतिरिक्त-स्नानार्हमात्रस्पर्शेऽपि आचमनमात्रविधानार्थं तैः इति बहुवचनमिति अविरोधः इति व्याख्यातवान् तेन रजस्वला-शव-शावाशौचि-चाण्डाल-पतितसूतिकानां स्पर्शे सचैलं स्नानम्.

अपरार्के तु मनुवाक्ये

''दिवाकीर्तिम् उदक्यां च पतितं सूतिकां तथा,
शवं तत्स्पृष्टिनं चैव स्पृष्टः स्नानेन शुद्ध्यति'' (मनु.स्मृ.५।८५)

इति शवस्पृशः स्पर्शेऽपि सचैलं स्नानम् उक्तम्. मर्यादासिन्धौ तु व्याख्यातम्. दिवाकीर्तिः अत्र चाण्डालः, अत्यन्ताशुचिसाहचर्यात्. पतितो महापातकी. सूतिका प्रसवे सति अप्राप्तशुद्धिकाला. स्पृष्टं स्पर्शः, तस्य स्पृष्टं तत्स्पृष्टं, तद् अस्य अस्ति इति तत्स्पृष्टी.

अत्र 'तत्'पदेन दिवाकीर्तिप्रभृतय: पञ्चाऽपि परामृश्यन्ते इति. अपरार्केऽपि एवम्. तेन पञ्चस्पृशामपि स्पर्शे स्नानम्. यद्यपि अत्र स्नानमात्रम् उक्तं तथापि सचैलं स्नानं सर्वसम्मतम्.

''**श्वानं श्वपाकं प्रेतधूमं देवद्रव्योपजीविनं ग्रामयाजकं सोमविक्रयिणं चितिं चितिकाष्ठं मद्यं मद्यभाण्डं सस्नेहं मानुषास्थि शवस्पृशं महापातकिनं शवं स्पृष्ट्वा सचैलम् अभोऽवगाह्योत्तीर्य अग्निम् उपस्पृश्य गायत्र्यष्टशतं जपेत्, घृतं प्राश्य स्नात्वा त्रिराचामेत्**'' (च्यवन. ।)

इति च्यवनवचनात्. तेन रजस्वला-शव-चाण्डाल-पतित-सूतिका-तत्स्पर्शि-शावाशौचि-तत्स्पर्शिस्पर्शे सचैलं स्नानम्. तद्व्यतिरिक्तस्नानार्हस्पर्शे तु आचमनम् इति सिद्ध्यति. ते च स्नानार्हा विज्ञानेश्वरेण सङ्गृहीता अग्रे वाच्या:.

साम्प्रतं तु रजस्वलादिस्पर्शविषये अन्यो विशेषः उच्यते. मर्यादासिन्धौ पराशर:

''**उदक्यास्पर्शने स्नायाद् अंशुकेनाङ्गतोऽपि वा,**
स्याच्चतसृष्वपि स्नानं तुल्या: सर्वा रजस्वला:''

उद्ध.१ (वृ.परा.स्मृ.८।३१५)

इति तुल्या इति स्पर्शदोषजनने सर्वास्तुल्या इति अर्थ:. तथा

''**वस्त्रसंस्पर्शने तस्य सचैलाङ्गावगाहनम्,**
अङ्गस्पर्शनवत् तस्य वदन्ति द्विजसत्तमा:'' (वृ.परा.स्मृ.८।३१३)

इति च.

२. अथ वस्त्राद्यन्तरितस्पर्शे बुद्धिपूर्वकस्पर्शे च स्नानादिविचार:.

पृथ्वीचन्द्रोदये तु

''**वस्त्राद्यन्तरितस्पर्शे साक्षात्स्पर्शोऽभिधीयते,**
साक्षात्स्पर्शे तु यत्प्रोक्तं तद्वस्त्राद्यन्तरेऽपि च''

इति प्रचेतोवचनमपि उक्तम्. पराशरवाक्ये तु

''**स्नानं स्पृष्टेन येन स्यात् काष्ठाद्यैर्यदि तं स्पृशेत्,**
नावारोहणवत् स्पर्शं तत्रोपस्पर्शनात् शुचि:'' (वृ.परा.स्मृ.८।३११)

इति उक्तम्. तेन इदं सिध्यति. मनूक्तानां दिवाकीर्त्यादीनां पञ्चानां वस्त्राद्यन्तरितस्पर्शे स्नानम्. शावाशौचिनां तु तत्र अनुक्तत्वात् तदशुचित्वस्य प्रत्यहं क्षीयमाणत्वाच्च काष्ठादिना बुद्धिपूर्वकं तत्स्पर्शेऽपि न स्नानं किन्तु आचमनादेव शुद्धिः

इति. एवं च पूर्वोक्तयाज्ञवल्क्यवाक्यमपि सङ्गतं भवति इति. चेतनव्यवधानस्पर्शे तु विशेषः संवर्तेन उक्तः

''तत्स्पृष्टिनं स्पृशेद् यस्तु स्नानं तस्य विधीयते,

ऊर्ध्वम् आचमनं प्रोक्तं द्रव्याणां प्रोक्षणं तथा''[उद्ध.२](संव.स्मृ. १८४)

इति. तेन उदक्यादिस्पर्शे द्वयोः स्नानं, तृतीयस्य आचमनम्. एवं द्रव्येष्वपि तत्स्पृष्टस्पृष्टयोः द्वयोः क्षालनं तृतीयस्य प्रोक्षणम् इति सिध्यति. 'तथा' इति अतिदेशस्य आचमनोत्तरम् उक्तत्वेन प्रोक्षणस्य तत्समानदेशिकतया द्वयोत्तरमेव तत्र प्राप्तेः. इदं च अबुद्धिपूर्वकस्पर्शे द्रष्टव्यम्. गौतमेन

''पतितचाण्डालोदक्याशवस्पृष्टि–तत्स्पृष्ट्युपस्पर्शने सचैलम् उदकोपस्पर्शनात् शुद्ध्येत्'' [उद्ध.३](गौत्त.स्मृ.१४)

इत्यादिना तृतीयस्य स्नानस्य उक्तत्वात्. तथा

''उपस्पृश्याशुचिस्पृष्टं तृतीयं चाऽपि मानवः,

हस्तौ पादौ च तोयेन प्रक्षाल्याऽऽचम्य शुद्ध्यति''(देव.स्मृ.१।९)

इति मर्यादासिन्धौ देवलवाक्याच्च त्रयाणां स्नानस्य चतुर्थे आचमनस्य च बुद्धिपूर्वकस्पर्शविषयत्वेन सर्वेषु निबन्धेषु अङ्गीकारात्. तेन बुद्धिपूर्वकस्पर्शे त्रयाणां स्नानं चतुर्थस्य आचमनम्. यद्यपि अत्र प्रथमस्य अबुद्धिपूर्वे द्वितीयादीनां तत्पूर्वे, प्रथमस्य बुद्धिपूर्वे द्वितीयादीनां बुद्धिपूर्वे स्पर्शे विशेषः कुत्राऽपि न उक्तः तथाऽपि बुद्धेरेव दोषप्रयोजकत्वकल्पनात् तादृशस्थले आतृतीयस्नानम् इति प्रतिभाति. अयमेव न्यायो द्रव्येष्वपि. चतुर्थानन्तरम् अशुद्ध्यनुवृत्त्यभावाद् इति. इतः स्वल्पो वाचनिकस्तु द्रव्यशुद्धिप्रकारो अमेध्यादिस्पृष्टपात्रविचारे वक्ष्यते. स्पर्शानन्तरं स्नाने तु मर्यादासिन्धौ विशेष उक्तः.

३. अथ शीतोष्णोदकस्नानविचारः.

अस्पृश्यस्पर्शनादौ स्नानं तीर्थादिषु शीतोदकेन कार्यम्. **''अस्पृश्यस्पर्शने चैव न स्नायाद् उष्णवारिणा''** (वृ.मनुस्मृ.   ) इति वृद्धमनुवचनात्. तीर्थाभावे तु उष्णोदकेनाऽपि कार्यम्.

''नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रियाङ्गं मलकर्षणम्,

तीर्थाभावे तु कर्तव्यम् उष्णोदक–परोदकैः'' (शंखस्मृ.८।१)

इति शङ्खवचनात्. अत्र ''निमित्तानन्तरं नैमित्तिकं कार्यम्'' इति न्यायात् निश्यस्पृश्यस्पर्शे निश्येव स्नायात्.

४. अथ रात्रौ स्नानविचार:.

तथा आह यम:

''चण्डालै: श्वपचै: स्पृष्टे निशि स्नानं विधीयते,
न वसेच् चेद् अयं रात्रौ निशि स्नानेन शुद्ध्यति,
अथ तत्र वसेद् रात्रिम् अज्ञानाद् अविचक्षण:,
तदा तस्य तु तत्पापं शतधा परिवर्तते'' [उद्ध.४] (लघुयम.स्मृ.६४,६५)

इति. अत्र 'चण्डाला'दिपदं रजस्वलादीनामपि उपलक्षणम्. अत्र विशेषम् आह पराशर:

''अस्तङ्गते यदा सूर्ये चण्डालं पतितं स्त्रियं,
सूतिकां स्पृशतश्चैव कथं शुद्धिर्विधीयते,
जातवेद: सुवर्णं च सोममार्गं तथैव च,
ब्राह्मणानुमतेनैव स्नात्वा दृष्ट्वा च शुद्ध्यति'', [उद्ध.५] (परा.स्मृ.७।११,१२)
आचान्तमनुगर्ते वा निशि स्नानं न विद्यते,
स्नानमाचमनं प्रोक्तं दिवोद्धृतजलेन तु''

इति. सोममार्गम्=आकाशं दृष्ट्वा इति अन्वय:. अनुगर्ते जलाशये. रात्रौ जलाशये स्नानम् आचमनं च नास्ति किन्तु दिवोद्धृतजलेन रात्रौ स्नानमाचमनं च कार्यम् इति अर्थ:. अन्योऽपि विशेषो देवलेन उक्त:

''दिवोद्धृतैर्जलै: स्नानं निशि कुर्याद् निमित्तत:,
प्रक्षिप्य च सुवर्णं तु सन्निधाप्य च पावकम्'' (देव.स्मृ.५)

इति. एतदपि उद्धृतोदकस्नानं शवस्पृष्टव्यतिरिक्तविषयम्. तथा आह वृद्धशातातप:

''अनस्तमित आदित्ये सङ्गृहीतं तु यज्जलम्,
तेन सर्वात्मना शुद्धि: शवस्पृष्टं तु वर्जयेत्''

इति. रात्रौ शव-तत्स्पृष्टयो: स्पर्शे मज्जनेनैव शुद्धि:. इतरास्पृश्यस्पर्शेतु उद्धृतोदकस्नानेन इति अर्थ:. उद्धृतजलाभावे तु मरीचिः आह

''दिवाहृतं तु यत् तोयं गृहे यदि न विद्यते,
प्रज्वाल्याग्निं तत: स्नायाद् नदीपुष्करिणीषु च'' (मारी.स्मृ.)

इति. अग्न्यभावे विशेषम् आह अत्रि:

''रात्रौ स्नानं यदि भवेत् पश्यन् अग्निं समाचरेत्,
स्वर्णांगुलिकरो विप्रो वह्निना वा विनाचरेत्'' (अत्रिस्मृ.) इति.

५. अथ रात्रौ नद्यादिजले स्नानविचार:.

रात्रौ नद्यादिस्नाने प्रकारविशेषम् आह कात्यायन:

‘‘न विशेद् वारि न स्नानं न रात्रौ जलम् उद्धरेत्,
अन्यत्र धाम्न इत्येव तत्रस्थे स्नानमिष्यते’’ (कात्या.)

इति. अन्यत्र इति अस्य पूर्वेण सम्बन्ध:. धाम्न इति.

‘‘धाम्नो–धाम्नो राजन्नितो वरुण नो मुञ्च,
यदापो अघ्न्या(अघ्रिया) इति वरुणेति,
शपामहे (या) ततो वरुण मुञ्च’’

इति तैत्तिरीयशाखाद्युक्तं मन्त्रं पठित्वा स्थानस्थितएव जले स्नायाद् इति अर्थ:. जलस्य रात्रौ उद्धरणे तु बौधायन:

‘‘अस्तमित आदित्य उदकं गृहणीयान्न गृहणीयाद् इति मीमांस्यते, न गृहणीयाद् इति एक आहुः ब्रह्मवादिनो गृहणीयाद् इति अपरे यावदुदकं गृहणीयात् तावत् प्राणानायच्छेद् अग्निर्ह वा उदकं गृहणाति इति’’. (बौधा.)

इदं (इदं सर्वं) मर्यादासिन्धुस्थं प्रमेयम् उक्तम्. तेन अस्पृश्यस्पर्शे दिवा जाते दिवैव तीर्थादौ शीताम्भोवगाहनम्. तीर्थाद्यभावे तु उष्णोदकेन परोदकेन वा स्नानम्. निशि जातेतु तीर्थे गत्वा अग्निं प्रज्वाल्य ‘‘धाम्न...’’ इत्यादिमन्त्रं पठित्वा ततो अवगाहनम्. तदभावे दिवोद्धृतेन उष्णोदकेन परोदकेन वा तत्रापि अग्निं पश्यता सुवर्णं प्रक्षिप्य स्नानं कार्यम्. अग्न्यभावे सुवर्णांगुलिकरेण, तदभावे तु रात्रावपि उद्धृत्य यथालाभं पूर्वोक्तप्रकारं कृत्वा स्नायात् तत: प्राणान् आयच्छेत्. सर्वाभावे तु हरिं स्मृत्वा यथाकथंचिदपि स्नायात्. नतु रात्रौ तथैव तिष्ठेद् इति. शव–तत्स्पृष्टस्पर्शने तु मज्जनेनैव शुद्धि:. अत्रापि मज्जनार्हजलाभावे हरिस्मरणपूर्वकं स्नानम् इति प्रतिभाति, तथैव स्थितेः अनुचितत्वाद् इति. सूर्योदयोत्तरं पुन: स्नायाद् इति च.

६. अथ रात्रौ जन्ममृतिरज:सु कालविभागादिविचार:.

मिताक्षरायां कश्यप:

‘‘उदिते तु यदा सूर्ये नारीणां दृश्यते रज:,
जननं वा विपत्तिर्वा यस्याहस्तस्य शर्वरी,
अर्धरात्रावधि: काल: सूतकादौ विधीयते,
रात्रिं कुर्यात् त्रिभागां तु द्वौ भागौ पूर्वएव तु,

उत्तरोंऽशः प्रभातेन युज्यते मृतसूतके,
रात्रावेव समुत्पन्ने मृते रजसि सूतके,
पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन् नाभ्युदितो रविः''

(दाल्भ्यस्मृ.१४५,१४७,१४४)

इति. अत्र आचारतो व्यवस्था इति उक्तम्. अत्र यस्य इति अनेन वारो ग्राह्यो न तिथिः इति बोध्यम्. नोचेद् उदित इत्यादिकथनवैय्यर्थ्यापत्तेः. तेन म्लेच्छवद् रात्रिम् आरभ्य गणना वारिता. शुद्धिमयूखे तु तत्रापि त्रिभागपक्षमेव आद्रियन्ते शिष्टा इति एतावद् अधिकम् उक्तम्.

७. अथ चतुर्थदिनादौ रजस्वलाशुद्धिविचारः.

रजस्वलाविषये तु मिताक्षरायां स्मृत्यन्तरे

''शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेऽह्नि स्नानेन स्त्री रजस्वला,
दैवे कर्मणि पित्र्ये च पञ्चमेऽहनि शुद्ध्यति'' (शंख.स्मृ.१६।१७)

इति. पञ्चमेऽहनीति रजोनिवृत्त्युपलक्षणम्. **''रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला''** (मनु.स्मृ.५।६६) इति मनुवाक्यात् साध्वीति दैवपित्र्यकर्मार्हा इति व्याख्यानात्. तेन अनुपरतेऽपि रजसि चतुर्थे अह्नि स्नानेन स्पर्शादिषु शुद्ध्यति. दैवपित्र्यकर्मविषये तु चतुर्थे अह्नि स्नातापि रजोरहितैव योज्या इति अर्थः इति उक्तम्. इदमेव च युक्तम्. **''चतुर्थेऽहनि संशुद्धा भवति व्यावहारिकी''** (मिता.३।२०) इति तत्रैव वृद्धमनुना सर्वव्यवहारेषु शुद्धेः उक्तत्वात् परम्परितेषु दैवादिकार्येषु अदोषात्. तेन अन्नसंज्ञारहित-शाकपिष्टादिस्पर्शेऽपि अदोषः, साक्षात्पाकादिक्रियायां तु दोष इति सिद्ध्यति. एवं सति शुद्ध्युत्तरं रजो अनुपरमे पाकाद्युपकरणसम्पादनदशायां यदा परिहितवसने रजःसंसर्गो दृश्येत तदा अङ्गादि संशोध्य वस्त्रान्तरं परिधाय तत्करणे दोषो न भवति इति सिद्ध्यति.

८. अथ उपरमोत्तरं पुनारजोदर्शनविचारः.

तत्र आह अत्रिः

''रजस्वला यदि स्नाता पुनरेव रजस्वला,
अष्टादशदिनाद् अर्वाग् अशुचित्वं न विद्यते,
एकोनविंशतेरर्वाग् एकाहः स्यात् ततो द्व्यहम्,
विंशप्रभृत्युत्तरेषु त्रिरात्रम् अशुचिर् भवेत्'' (मिता.३।२०)

इति. अर्थस्तु, रजोदर्शनम् आरभ्य पुनः सप्तदशदिनाभ्यन्तरे रजोदर्शने अशुचित्वं नास्ति. अष्टादशेतु एकाहाद्, ऊनविंशे द्व्यहाद्, विंशतिप्रभृतिषु त्र्यहात् शुद्धिः इति. यत्तु "**चतुर्दशदिनाद् अर्वाग् अशुचित्वं न विद्यते**" इति स्मृत्यन्तरं तत्र तु स्नानप्रभृतित्वम् अभिप्रेतम् इति अविरोधः. अयं च अशुचित्वप्रतिषेधो यस्या विंशतिदिनोत्तरमेव प्रायशो रजोदर्शनं तद्विषयः. यस्याः पुनः प्रागेव अष्टादशदिनाद् प्राचुर्येण तद्दर्शनं तस्यास्तु प्रागपि अष्टादश(शे)भ्यः त्रिरात्रम् इति विज्ञानेश्वरः. एवं च यदि प्रथमदिनएव रजो यस्या दृष्टं न द्वितीयादिषु तदापि उक्तकश्यपवाक्ये दर्शनस्यैव निमित्तत्वेन उक्तत्वात्. वसिष्ठेन च रजस्वला त्रिरात्रम् अशुचिः भवति इति उक्त्वा अनञ्जनादिविधानकथनात् चतुर्थे अह्न्येव शुद्धिः न तु प्राग् इत्यपि बोध्यम्. अज्ञाते तु रजसि निर्णयसिन्धौ पराशरमाधवीये प्रजापतिः

"**अविज्ञाते मले सा तु मलवद् वसना यदि,**
कृतं गृहेषु दुष्टं स्यात् शुद्धिस्तस्याः त्रिरात्रतः" (प्रजा.स्मृ.)

इति उक्तवान्. तेन एतन्मते मलसत्तैव अशुचित्वापादिका. कर्मतत्त्व–प्रकाशिकाख्ये कृष्णभट्टीये धर्मप्रवृतौ च "ज्ञानाद् अशुचिरिष्यते" इति चतुर्थपादः पठितः. तथा यमोऽपि

"**व्यसनात् कार्यकरणात् निद्राविस्मरणाद् अपि,**
रजःस्त्रावम् अविज्ञाता सा शुचिः सर्वकर्मसु,
ज्ञानाद् ऊर्ध्वं यदि स्पृष्टा शोधयेत् कर्मसाधनम्,
मृण्मयानि परित्यज्य स्नेहानपि विलापयेत्,
तक्षणं दारुश्रृङ्गास्थ्नां कांस्यं वा भस्मभिः शतैः,
गृहं विलेपयेत् मृद्भिः गोमयेन च वारिणा,
धान्यानां चैव सर्वेषां प्रोक्षणात् शुद्धिरिष्यते,
ज्ञाताज्ञातेषु दोषेषु अनुक्तेष्वशुभेषु च,
पुण्याहवाचनं कुर्याद् विप्राणाम् अनुशासनाद्" (यम.स्मृ.) इति.

तथा

"**असन्दिग्धे परिज्ञाते त्वार्तवे शुद्धिकारणम्,**
सन्दिग्धमात्रे स्नानं स्याद् इत्युवाच प्रजापतिः" ( )

इति च उक्तम्. तेन एतन्मते ज्ञानमेव अशुचित्वापादकम्. स्मृत्यर्थसारे तु अज्ञाते रजःस्त्रावे चतुर्षु दिनेषु ज्ञाते तु रजःस्त्रावादिकम् अशुचित्वम्. जननादौ तु ज्ञानादिकम् अशुचित्वम्. सर्वथा अज्ञातं चेत् शुचित्वमेव. एवं सर्वं पापनिमित्तं स्वसत्तादिपापापादकम् इति उक्तम्. स्वसत्तादीति स्वसत्ताम् आरभ्य. तथा च अयम् अर्थः. रजःप्रभृतीनां

स्वसत्ताम् आरभ्य पापजनकत्वात् तदारम्भकालम् अनुमाय तदारभ्य स्पर्शदोषो अनुसन्धेयः. आरम्भकालानुमानाशक्तौ तु शुचित्वमेव इति. अत्र यद्यपि पूर्वावधिकाल–सन्देहे पञ्चमदिवसादौ तज्ज्ञाने च निर्णयो न उक्तः तथापि ''**सन्दिग्धमात्रे स्नानं स्यात्**'' इति वाक्यात् सन्दिग्धया स्नातव्यम्. तद्वस्त्रादीनां साक्षात्स्पृष्टानां क्षालनं गोमूत्र–स्वर्णजलादिभिः ''**अपवित्रः पवित्रो वा**'' इत्यादि मन्त्रपूर्वकम् अन्येषाम् अभ्युक्षणं कार्यम्. यत्र च बहुस्त्रीके गृहे दुष्टवस्त्रादिना मलमात्रज्ञानं न मलिनायाः तदापि दिनगणनादिभिः या मालिन्ये सन्दिग्धा तया तथा कार्यम्. तत्रापि सन्देहे तु सर्वाभिः पुण्याहवाचनं तादृशस्थले सर्वत्र ज्ञाताज्ञातेष्विति पूर्वोक्तवाक्यात् हरिस्मरणादिपूर्वकं प्रोक्षणादिकं च सर्वत्र. तदतिरेकेण अन्यस्य शोधकतमस्य अभावात्. सन्धितपर्पटयोस्तु त्यागएव. ''**उदक्यास्पृष्टसन्धुष्टं पर्यायान्नं च वर्जयेत्**'' (याज्ञ.स्मृ.१।१६८) इति याज्ञवल्क्यवाक्ये पक्वान्नत्यागकथनाद् एतयोश्च अन्नसंज्ञासत्त्वाद् इति तु मम प्रतिभाति.

९. अथ रजस्वलायाः अशुच्यन्तरस्पर्शे रजस्वलयोः परस्परस्पर्शे च विचारः.

तत्र अपरार्के बहूनि वचनानि सन्तीति तेषाम् अर्थएव उच्यते. उदक्या–सूतिकयोः शवचण्डालकर्मके स्पर्शे त्रिरात्रोपवासः. चण्डाल–श्वपचकर्तृकेऽपि तथा पञ्चगव्याशनं च अधिकं शातातपेन उक्तं, कश्यपेनतु शुद्ध्युत्तरं तथाकरणम् उक्तम्. तद्रात्र्यनन्तरं त्वजाघ्रातकरणमपि उक्तम्. बृहस्पतिना तु पतित–श्वपाककर्तृके स्पर्शे प्रथमदिने जाते त्र्यहः, द्वितीये द्व्यहः, तृतीये एकाहः, अग्रे नक्तं कार्यं परन्तु शुद्ध्यनन्तरम् इति उक्तम्. अत्र अशक्तौ वृद्धशातातपेन तदारभ्य स्नानावध्युपवासः स्नानोत्तरं तु कालेन शुद्धिः इति उक्तम्. अत्रापि अशक्तौ तु पराशरेण अहोरात्रोपवासः, पञ्चगव्याशनं, ततः शक्त्या स्वर्णदानं, ब्राह्मणभोजनं च उक्तम्.

रजस्वलयोः परस्परस्पर्शे तु सगोत्रयोः स्नानमात्रम्. असगोत्रयोरपि सवर्णयोः स्पर्शे एकरात्रम् उपवासः. क्षत्रिया स्पर्शे ब्राह्मण्याः त्रिरात्रम्. वैश्या स्पर्शे पञ्चरात्रम्. शूद्रा स्पर्शे षड्रात्रम् इति वृद्धवसिष्ठेन उक्तम्. रजस्वला चेद् मूत्राद्युत्सृजन्ती स्पृशेत् तदा उत्सृजन्ती अहोरात्रम् उपवसेत्. भुञ्जानां चेत् तदा भुञ्जाना त्रिरात्रं जलं पिबेत्. रजस्वलां चेत् श्व–जम्बुक–खरप्रभृतयः स्पृशेयुः सा वा तान् स्पृशेत् तदा स्नात्वा सज्योतिः उपवसेत् पञ्चगव्यं च अश्नीयाद् इत्यादिकं तत्र बहु उक्तम्.

१०. अथ रजस्वलास्नानादिविचारः.

रजस्वलायाः स्नानदिवसे तैलादिमलिनं वसनादिकं च यथावत् शोधनीयम्. तद्

आह कृष्णभट्टीये पराशर:

''रजस्वला त्रिरात्रान्ते मलं प्रक्षाल्य सङ्गवे,
दन्तानां धावनं कृत्वा मृत्तिकाषष्टिभि: पृथक्,
शौचं कृत्वा ततो देहं क्षाल्य गोमयवारिणा,
स्नायात् सचैलं नाऽगारे तडागादिजलाश्रये''(परा.स्मृ.   ) इति.

अत्र मलप्रक्षालनस्य गोमयेन स्नेहमालिन्यक्षालनस्य च उक्त्या तल्लाभ:.

अत्रिरपि

''रजस्वला चतुर्थेऽह्नि मृत्तिकाषष्टिभि: पृथक्,
शौचं कृत्वा यथान्यायं दन्तानां धावनं तथा,
कृत्वा तु सङ्गवे तीरे सचैलं स्नानमाचरेत्,
भस्मगोमयमृद्भिश्च सर्वैरन्यतमेन वा,
स्नात्वांशुकं परिच्छाद्य गन्धपुष्पैरलंकृता,
आचम्य पुष्पैरादित्यम् अर्चयित्वा यथोचितम्,
ऐन्द्रं वरं प्रभो मह्यम् इदानीं दातुमर्हसि,
इत्युक्त्वार्थैन्द्रभावेन प्रार्थयेत्तु स्वकं पतिम्,
ऋतुस्नाता तु या नारी यं स्नेहाद् नरमीक्षते,
तादृशं जनयेत् पुत्रं पतिमेव निरीक्षयेत्'' (अत्रिस्मृ.   ) इति.

स्मृत्यर्थसारेतु एवं सङ्गवे स्नानमात्रम् उक्तं गृहे वा तडागादौ वा इति तु न विचारितम्. षष्टिमृत्तिकादिभि: शौचं ब्राह्मण्या:, क्षत्रादिस्त्रीणां पादपादन्यूनमृत्तिकादिभि:, विधवाया द्विगुणाभि: शौचम् इति उक्तम्. अन्येषु तु प्राचीनार्वाचीननिबन्धेषु चतुर्थे अह्नि स्नानमात्रं वदन्ति नतु तत्प्रकारं कालं वा देशं वा. शिष्टाचारस्तु सूर्योदयोत्तरं चतुर्थे अह्नि पूर्वोक्तप्रकारेण गृहेऽपि दृश्यते. व्यासस्मृतौ द्वितीयाध्याये

''स्नायात् सा तु त्रिरात्रान्ते सचैला उदिते रवौ,
विलोक्य भर्तृवदनं शुद्धा भवति धर्मत:''   (व्यासस्मृ.२।४०)

इति वाक्यात्. तेन स्मृत्याचाराभ्याम् एषा देशकालव्यवस्था उचितैव, तडागादीनाम् असार्वत्रिकत्वादपि. वस्तुतस्तु देशकालकथनम् असहायविषयम्. न हि एकाकिन्या गृहे अतिशुद्धतया स्नातुं शक्यते न वा दुष्टे अस्मिन् कलौ सलज्जया तरुण्या बहि: तथा कर्तुं शक्यते इति. एवं गृहे स्नाने रजस्वलास्पृष्टार्द्रभूमिर्गृहं च यथावच्छोध्यमेव. **''व्यसनात् कार्यकरणात्''** इति पूर्वोक्तयमवाक्येषु ज्ञानोत्तरं कर्मसाधनशोधनस्य गृहविलेपनस्य च उक्तत्वाद् इति. तत्स्पृष्टं जलं च त्याज्यमेव.

''अक्षुब्धानामपां नास्ति प्रसृतानां च दूषणम्,

स्तोकानामुद्धतानां च कल्मषैर्दूषणं भवेत्'' [उद्ध.६](देव.स्मृ.१।९।४)

इति मर्यादासिन्धौ देवलवाक्यात्. किं बहुना

''अत्राक्षुब्धतडागादि–नदीवाप्य: सरांसि च,

कश्मलाऽशुचिसंस्पर्शे तीर्थत: परिवर्जयेत्'' [उद्ध.७](देव.स्मृ.१।९।५)

इति अमेध्ययुक्तदेशस्थानां त्यागस्य तेनैव उक्तत्वाच्च चण्डालाद्यशुचिस्पर्श इति पाठान्तरस्य उक्तत्वाच्च कैमुतिकादेव उद्धृतजलत्यागप्राप्तेः इति. तेन रजस्वला–स्पृष्टार्द्रभूसंस्काराभावः तत्स्पृष्टजलत्यागाभावश्च अनाचारएव गुर्जराणाम्. तथा तृतीय–दिवसे मलापकर्षस्नानं सारस्वतद्विजक्षत्रियादिस्त्रीणां यो मध्यदेशे सोऽपि अनाचारएव. एवं रजस्वलावदेव शवस्पृग्भिश्च शिरोवस्त्रप्रभृति शोध्यमेव. यद्यपि मृत्तिकासङ्ख्या न तत्र शास्त्रोक्ता तथापि स्मृत्यन्तरे सकृद् मृत्तिकाभस्मस्नानस्य उक्तत्वात् तथाशिष्टाचाराच्च तदपि आवश्यकम्, बृहदाशौचत्वाच्च. अतः तत्स्पृष्टजलादिकं च त्याज्यमेव. रजस्वलादीनाम् आतुरत्वे तु यम: पराशरश्च

''आतुरे स्नानम् उत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुर:,

स्पृष्ट्वा–स्पृष्ट्वा तु तं स्नायात् तत: शुद्ध्येत् स आतुर:''

[उद्ध.८](परा.स्मृ.७।२०)

इति आहतु:. उशनाश्च

''ज्वराभिभूता या नारी रजसा च परिप्लुता,

कथं तस्या भवेत् शौचं शुद्धि: स्यात् शौचकर्मणि,

चतुर्थेऽहनि सम्प्राप्ते स्पृशेद् अन्या तु तां स्त्रियम्,

सा सचैलाऽवगाह्याप: स्नात्वा–स्नात्वा पुन: स्पृशेत्,

दशद्वादशकृत्वो वा आचामेच्च पुन:–पुन:,

अन्त्ये च वाससां त्यागः तत: शुद्धा भवेत्तु सा,

दद्यात् शक्त्या ततो दानं पुण्याहेन विशुद्ध्यति'' इति.

(याज्ञ.मिता.३।२०)

रजोदिवसेषु मध्ये ग्रहणापाते तु निर्णयसिन्धौ स्नानम् उक्तम्.

''न सूतकादिदोषोऽस्ति ग्रहे होमजपादिषु,

ग्रस्ते स्नायाद् उदक्यापि तीर्थाद् उद्धृत्य वारिणा'' (निर्ण.सि.   )

इति भार्गवार्चनदीपिकायां सूर्योदयनिबन्धवचनात्.

''स्नाने नैमित्तिके प्राप्ते नारी यदि रजस्वला,

पात्रान्तरिततोयेन स्नानं कृत्वा व्रतं चरेत्'' (परा.स्मृ.   )

इति पराशरवचनाच्च. त्रिदिनमध्यएव ग्रहणनिमित्तकं स्नानं कृत्वा अनञ्जनादिरूपं रजस्वलाव्रतं निर्वाहयेद् इति अर्थ:. एवं ग्रहणनिमित्तके स्नाने प्राप्ते यदि चन्द्रादेः ग्रस्तस्य मुच्यमानदशायाम् उदयः तदा **''ग्रस्यमाने भवेत् स्नानम्''** इति उक्तस्य निमित्तस्य अभावेऽपि **''दृष्ट्वा स्नायाद्''** इति वाक्यान्तरोक्ताद् निमित्तात् स्नानम्. यदि च तावद् न अवकाशः तदा मुख्यस्य दानकालस्य सत्त्वाद् मार्जनपूर्वकं दानमेव कृत्वा मुक्तिस्नानं कार्यम् इति प्रतिभाति. बालादीनां रजस्वलादिस्पर्शे तु शुद्धिमयूखे हरिहरभाष्ये शातातप:

''शिशोरभ्युक्षणं कार्यं बालस्याचमनं स्मृतम्,
रजस्वलादिसंस्पर्शे स्नातव्यं च कुमारकै:,
प्राक् चूडाकरणाद् बाल: प्रागन्नप्राशनाच्छिशु:,
कुमारक: स विज्ञेयो यावन्मौंजीनिबन्धनम्'' (दाल्भ्यस्मृ.१२९)

इति. रजस्वलादिदृष्टान्ने तु शातातप:

''जीवाभिशस्तपतितै: सूतिकोदक्यनास्तिकै:,
दृष्टं वा स्याद् यदन्नं तु तस्य निष्कृतिरुच्यते,
अभ्युक्ष्य किञ्चिद् उद्धृत्य तद्भुञ्जीताविशङ्कित:,
भस्मना वापि संस्पृश्य संस्पृशेद् उल्मुकेन वा,
सुवर्णरजताभ्यां वा भोज्यं ध्रातमजेन वा'' (शाता.स्मृ.)

इति. एतेन जलादेः न अशुद्धिः इति प्रतिभाति. एवम् अत्यन्ताशुचिविषये विचारितम्.

११. अत: परम् एतद्व्यतिरिक्तस्नानादियोग्यनिमित्तविचार:.

तत्र पराशर:

''दु:स्वप्ने मैथुने वान्ते विरिक्ते क्षुरकर्मणि,
चितिपूयश्मशानास्थ्नां स्पर्शने स्नानमाचरेत्'' उद्ध.९(परा.स्मृ.१२।१)

इति. अत्र मैथुनिन: स्नानं ऋतुकालविषयं कालविशेषविषयं च **''अनृतौ तु यदा गच्छेत् शौचं मूत्रपुरीषवत्''** (बृह.स्मृ.) इति बृहस्पतिवचनात्.

''अष्टम्यां च चतुर्दश्यां दिवा पर्वणि मैथुनम्,
कृत्वा सचैलं स्नात्वा तु वारुणीभिश्च मार्जयेत्''

(वृ.हारि.स्मृ.९।३१५)

इति मिताक्षरापरार्कयो: स्मृत्यन्तराच्च. मर्यादासिन्धौ तु सद्यो भुक्तान्नवमने स्नानाभाव:.

''अश्नन् भुक्त्वार्द्रपाणिर्वा वान्तो न स्नानमाचरेत्,

अन्यदा वमने स्नायात् तथा शोकाश्रुपातयो:'' (आप.)

इति आपस्तम्बवचनाद् इति उक्तम्. शोकाश्रुपातयोः इति शोके तत्कृते अश्रुपाते च इति अर्थ:. तथा विरिक्तस्य दशकृत्वो विरेके स्नानम् इति गोविन्दराज:. हरीतक्यादिभक्षणेन व्याधिना वा अष्टसङ्ख्यात ऊर्ध्वं विरेके स्नानम् इति मेधातिथि:. **''मैथुने दु:स्वप्ने वमनविरेकयो:''** (विष्णु.स्मृ.)इति विष्णुवाक्याद् मिलितमेव एतन्निमित्तम् इति उदीच्या इति मतत्रयम् अधिकम् उक्तम्. पूयस्पर्शे स्नानम्. तदनधिकृताकारणस्पर्शे वेदितव्यम्. **''पूयं चाकारणादन्य: स्पृष्ट्वा स्नात्वैव शुद्ध्यति''** (लिङ्गपुरा. । ।) इति लिङ्गपुराणाद् इति च विशेष उक्त:. अस्थिस्पर्शे तु मनुना विशेषः उक्त:

''नारं स्पृष्ट्वास्थि सस्नेहं स्नात्वा विप्रो विशुद्ध्यति,

आचम्यैव तु नि:स्नेहं गामालभ्यार्कमीक्ष्य चेत्'' (मनुस्मृ.५।८७)

इति. सस्नेहम् इति मांसमज्जादिसन्दिग्धम्. यत्तु ब्राह्मे

''मानुषास्थि तु संस्पृश्य स्निग्धं नि:स्निग्धमेव वा,

स्नायाद् गां संस्पृशेत् सूर्यं पश्येद् विष्णुम् अनुस्मरेत्''(ब्रह्म.पुरा.)

इति नि:स्निग्धस्पर्शेऽपि स्नानम् उक्तम् तत् कामत: स्पर्शविषयमिति अविरोध:. अन्यच्च यम आह

''अजीर्णेऽभ्युदिते वान्ते तथाभ्यस्तमिते रवौ,

दु:स्वप्ने दुर्जनस्पर्शे स्नानमात्रं विधीयते'' (यम.स्मृ.)

इति. अत्र अजीर्णापगमे स्नानं देवार्चादौ अधिकारित्वप्रतिपादनार्थम् इति मर्यादासिन्धौ. तथा सूर्योदयास्तमयव्यापिनी निद्रा अभ्युदिताभ्यस्तमितपदाभ्याम् उच्यते इति अपरार्के उक्तम्. कश्यपस्तु

''उदयास्तमययो: स्कन्दित्वाऽक्षिस्पन्दने कर्णाक्रोशने चित्यारोहणे पूयसंस्पर्शने च सचैलं स्नात्वा पुनर्मन इति जपेत्. महाव्याहृतिभि: सप्ताज्याहुतीर्जुहुयात्'' (कश्य.स्मृ.)

इति विशेषम् आह. स्मृत्यन्तरे

''चितिं च चितिकाष्ठं च पूयं चण्डालमेव च,

स्पृष्ट्वा देवलकं चैव सवासा जलमाविशेत्'' (बृह.परा.स्मृ.८।२७२),

''देवार्चनपरो यस्तु वित्तार्थी वत्सरत्रयम्,

स वै देवलको नाम हव्यकव्येषु गर्हित:''.

मिताक्षरायां ब्रह्माण्डपुराणे

''शैवान् पाशुपतान् स्पृष्ट्वा लोकायतिकनास्तिकान्,
विकर्मस्थान् द्विजान् शूद्रान् सवासा जलमाविशेत्'' (ब्रह्मा.पुरा.).

अपरार्के तु 'बौद्धान्' इति पाठः. तथा तत्रैव स्मृत्यन्तरम्

''नग्नान् पाशुपतान् बौद्धान् कालान् कौलान् दिशश्चरान्,
एतान् दृष्ट्वा रविं पश्येत् स्पृष्ट्वा स्नानं समाचरेत्''

मर्यादासिन्धौ हारीतः

''बौद्धान् पाशुपतान् जैनान् लोकायतिककापिलान्,
विकर्मस्थान् द्विजान् शूद्रान् सवासा जलमाविशेत्,
कापालिकांस्तु संस्पृश्य प्राणायामोऽधिको मतः''(हारि.स्मृ.)

इति आह हारीतः. अत्र पाशुपता वेदबाह्या विवक्षिता इति व्याख्यातम्. अपरार्के तु अङ्गिरसा श्वपाकच्छायाधिरोहणे स्नानं घृतप्राशनं च उक्तम्. अन्येऽपि बहवः तत्र उक्ता

''प्रत्यहं नित्यकर्माकर्ता पक्षानन्तरम् अस्पृश्यतां याति. ज्ञातिबाह्यकृतश्च पुल्कस-म्लेच्छ-भिल्ल-पारसीकादयः साविका नारी श्वपाल उन्मत्तः शूद्रोच्छिष्टं उच्छिष्टः शूद्रः श्वविड्वराहोष्ट्र-खर-वृक-गोमायुवानर-काक-कुक्कुट-गृध्रोलूकाः, [पा.भे.१]**'भासावायस-वानर-मार्जार-खरोष्ट्र-श्वविड्-वराहाणाममेध्यम्''**(आङ्गि.स्मृ.).

सदाचारचन्द्रोदये तु मयूरामेध्यमपि उक्तम्.

''चिताप्रदेशोद्भववृक्षः, नीली-नीलीविकाराः, चण्डाल-पतितच्छाया, शिवनिर्माल्यं, भक्षवर्जं पञ्चनखः, शवः, परकीयवसाविष्ठार्तवमूत्र-रेतो-मज्जाशोणितानि''

इति. एतेषां स्पर्शे सचैलं स्नानम्. एवं च अत्र निषिद्धेतर-पक्षिपक्षाणाम् अनुक्त्वा तेषां वायूड्डायितानां स्पर्शे न कश्चिद् दोषः इति प्रतिभाति. अत्र च येषां स्नानम् उक्तं तेषाम् अस्नातानां स्पर्शे तु स्प्रष्टुः आचमनमात्रम्.

अथ अत्र विशेषो मर्यादासिन्धौ. तत्र शातातपः

''रजकश्चर्मकृच्चैव व्याधजालोपजीविनौ,
चैलनिर्णेजकश्चैव नटः शैलूषकस्तथा,
मुखे भगस्तथा श्वा च वनिता सर्ववर्णगा,
चक्री ध्वजी वध्यघाती ग्राम्यकुक्कुटसूकरौ,
एभिर्यदङ्गं स्पृष्टं स्यात् शिरोवर्जं द्विजातिषु,

तोयेन क्षालनं कृत्वा आचान्तः शुचितामियात्''(शता.स्मृ.   ).

अत्र रजको वस्त्ररञ्जनकर्ता. शैलूषो नाटकाद्यभिनेता. मुखे भगो मुखयोनिः इति ख्यातः. शिरोवर्जम् इति अत्र शिरःपदम् ऊर्ध्वांगोपलक्षकम् इति केचित्. आपस्तम्बस्तु एतान् प्रक्रम्य विशेषम् आह ''**एतैः स्पृष्टस्तु उच्छिष्ट एकरात्रं पयः पिबेत्**''(आप.स्मृ.   ). ''**एतैरुच्छिष्टैस्त्रिरात्रं घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति**''(   ) इति.

बृहत्पराशरः

''**म्लेच्छालूनासनस्पर्शे क्षेत्रे वा यदि वा गृहे,**

उपस्पृशन् शिरः प्रोक्ष्य संशुद्धो जायते नरः''[उद्ध.१०](वृ.परा.स्मृ.८।३१२)

शङ्खः.

''**उच्छिष्टं मानवं स्पृष्ट्वा भोज्यं वापि तथाविधम्,**

तथैव हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्याचम्य शुद्ध्यति''   (शङ्खस्मृ.   ).

तथाविधम् इति उच्छिष्टम्. **तथैव** इति आचमनविधिना. तथा

''**यदम्भः शौचनिर्मुक्तं क्षितिं प्राप्य विनश्यति,**

प्रक्षाल्याशुचिलिप्तं च तत्स्पृष्ट्वाऽऽचम्य शुद्ध्यति''

इति. शौचजलासिक्तक्षितिमशुचिलिप्तं च स्पृष्ट्वा प्रक्षालनाद् आचमनाच्च शुद्ध्यति इति अर्थः. यमः

''**सकर्दमं तु वर्षासु प्रविश्य ग्रामसङ्करम्,**

जङ्घानां मृत्तिकास्तिस्रः पद्भ्यां च द्विगुणाः स्मृताः''(यमस्मृ.   )

इति. ग्रामसङ्करो ग्रामावकरः. अन्यान्यपि निमित्तानि स्मृत्यन्तराद् अवगन्तव्यानि. यथा

''**स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्योपसर्पणे,**

आचान्तः पुनराचामेद् वस्त्रं विपरिधाय च''   (परा.स्मृ.१२।१७)

इत्यादि.

''**कृतेष्वाचमनं कार्यं पितृकार्येषु सर्वदा,**

अधोवायुसमुत्सर्गे आक्रन्दे क्रोधने क्षुते,

मार्जारमूषकस्पर्शे प्रहासे ष्ठीवनेऽनृते''

इत्यादि च कृष्णभट्टीये.

१२. अथ स्पर्शे दोषाभावविचारः.

मर्यादासिन्धौ बृहस्पतिः

''तीर्थे विवाहे यात्रायां सङ्ग्रामे देशविप्लवे,
नगरग्रामदाहे च स्पृष्टास्पृष्टिर्न दुष्यति,
आपद्यपि हि कष्टायां रुग्भये पीडने तथा,
मातापित्रोर्गुरोश्चैव निदेशे वर्तनात् तथा'' (बृह.स्मृ.)

इति. **निदेशे** आज्ञायाम्. तथा च गुर्वाद्याज्ञयापि तदभावः इति अर्थः. शातातपः

''गोकुले कन्दुशालायां तैलयन्त्रेक्षुयन्त्रयोः,
अमीमांस्यानि शौचानि स्त्रीषु राजकुलेषु च'' (शाता.स्मृ.)

इति. अत्रिस्मृतौ तु **''स्त्रीणां च व्याधितस्य च''** इति चतुर्थपादः पठितः. पृथ्वीचन्द्रोदये पराशरः

''विवाहोत्सवयज्ञेषु सङ्ग्रामे जनसङ्कुले,
पलायने वनेऽरण्ये स्पृष्टास्पृष्टिर्न दुष्यति'' [उद्ध.११](वृ.परा.स्मृ.८।३०६)

इति. षट्त्रिंशन्मतेऽपि

''देवयात्राविवाहेषु यज्ञेषु विततेषु च,
उत्सवेषु च सर्वेषु स्पृष्टास्पृष्टिर्न दुष्यति'' [उद्ध.१२](अत्रिस्मृ.२४७).

स्मृत्यन्तरे

''देवालयसमीपस्थान् देवयात्रासमागतान्,
चण्डालपतितादींश्च स्पृष्ट्वा न स्नानमाचरेत्''
''अन्यथा यदि शङ्केत देवताद्रोहमाचरेत्''

इत्यपि तत्रैव.

स्पृष्टास्पृष्टिस्वरूपं च स्मृत्यर्थसारे उक्तम्

''प्राप्यकारीन्द्रियं स्पृष्टम् अस्पृष्टम् इतरेन्द्रियम्,
तयोस्तु विषयं प्राहुः स्पृष्टास्पृष्ट्यभिधानतः''

इति. अत्र च प्राप्यकारीन्द्रियं त्वगिन्द्रियम् इतरेन्द्रियं नयनादिकं तद्विषये स्पृष्टास्पृष्टिः तत्र दोषाभावः इति केचिद् इति पृथ्वीचन्द्रः. तथाच उक्तस्थलेषु तत्कर्मके तत्कर्तृके च स्पर्शादौ न दोषः इति अर्थः.

१३. अथ भगवत्सेवायां दैवपित्र्यकर्मसु स्नानादिना शुद्धस्य के वा अशुचित्वहेतवः कथं च ततः शुद्धिः इति विचार्यते.

तत्र ये पूर्वं स्नानार्हा उक्ताः तत्स्पर्शे तु स्नानम् असन्दिग्धमेव. ये पुनः

आचमनार्हाः तेषामपि स्पर्शे स्नानमेव. सदाचारचन्द्रोदये

''श्वकाकोष्ट्रखरोलूक-सूकरग्रामपक्षिणः,
दीपं शूर्पं तथा शय्यां पादत्राणं च मार्जनीम्,
स्नानान्ते यः स्पृशेद् एतान् पुनः स्नानेन शुद्ध्यति''

इति. बृहस्पतिना अन्येषां ग्रामपक्षिप्रभृतीनाम् आचमनप्रयोजकस्पर्शानामपि स्पर्शे स्नानबोधनात् तत्समानकक्षाणाम् अन्येषामपि स्पर्शे स्नानस्य [१]सक्तुहोमे अञ्जलि-व्याकोशत्ववद् औचित्यबलादेव प्राप्तेः. इदं च नाभेः ऊर्ध्वं स्पर्शे.

''नाभेरूर्ध्वं करौ मुक्त्वा यदङ्गं स्पृशते खगः,
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत शेषं प्रक्षालनात् शुचिः''

इति वाक्याद् इति सदाचारचन्द्रोदये. ममतु अन्यदपि प्रतिभाति. दीपादीनाम् अस्पृश्यत्वं लौकिकानामेव.

''अजारजः खररजः तथा सम्मार्जनीरजः,
दीपमञ्चकयोश्छाया हन्ति पुण्यं पुराकृतम्''

इति स्मृत्यन्तरे.

''शूर्पवातनखाग्राम्बु-स्नानवस्त्राङ्गमार्जनम्,
मार्जनीरेणुकेशाम्बु हन्ति पुण्यं पुराकृतम्'' [उद्ध.१४](अत्रिसं.३१६)

इति अत्रिस्मृतौ च तादृशामेव पुण्यहन्तृत्वोक्तेः, नतु वैदिकोपयुक्तानामपि स्पर्शे. अतएव देवत्वेन दानार्थम् उपस्थापितानामपि स्पर्शे स्नानाभावो युज्यते, अन्यथा [२]तस्य दुष्टत्वापत्तेः. श्राद्धादौ दीपदानस्य कार्तिकादिषु भगवद्दीपप्रबोधनस्य शूर्पार्पित-सौभाग्यद्रव्यस्पर्शस्य शय्यायां विष्णुमूर्तिस्थापनस्य गुरुपादुकादिस्पर्शस्य भगवन्मन्दिर-मार्जनादेश्च स्नानोत्तरम् अकर्तव्यत्वापत्तेश्च तेषां पुण्यजनकत्वापत्तेश्च. [३]अत्र वचनानि दानखण्डे सदाचारचन्द्रोदय-विष्णुभक्तिचन्द्रोदय-हरिवल्लभसुधोदय-प्रभृतिषु च द्रष्टव्यानि.

गुरुपादुकादीनां पूज्यत्वं च **''त्वत्पादुके ह्यविरतं परि ये चरन्ति''** (भाग.पुरा.१०।७२।४) इति श्रीभागवते भगवत्पादुकापरिचरणानुवादात्. भगवता कृष्णावतारे उद्धवाय रामावतारे भरताय च स्वपादुकादानाच्च सिद्धे तत्परिचरणे

''यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ,
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः'' (श्वेता.उप.६।२३)

इति श्वेताश्वतरश्रुत्या देववद् गुरुभक्तेरपि कर्तव्यत्वात् सिद्धम्. अतः तदुपानह

ऊर्ध्वाङ्गस्पर्शेऽपि अदोषः. तथा नृसिंहपुराणे दूतान् प्रति यमवाक्ये

''सम्मार्जनं च यो दूता गोमयेनोपलेपनम्,

करोति भवने विष्णोस्तस्य त्याज्यं कुलत्रयम्'' (नृसिं.पुरा.)

इति सम्मार्जनफलकथनाद् भगवन्मन्दिरसम्मार्जनरजसोऽपि पुण्यत्वे कुतः तत्सम्मार्जनीस्पर्शे दोषः? न च उपलेपनमेव सम्मार्जनम् इति शङ्क्यम्, श्रीभागवते **''सम्मार्जनोपलेपाभ्याम्''**(भाग.पुरा.११।११।३९) इति भगवद्वाक्यस्य द्विजवचन-विरोधापत्तेः. अतो लौकिकानामेव तेषां स्पर्शे स्नानं नतु शास्त्रीयाणाम् इति निश्चयः. किञ्च, स्नानोत्तरं नाभेः अधो उपानत्स्पर्शे यत्र दोषाभावः तत्र तीर्थादौ स्नात्वा उपानत्परिधानेन गृहागमने पादमात्रस्पर्शे दोषाभावो अर्थादेव सिद्धः. दूराद् आगमने मध्ये मार्गमध्ये उच्छिष्टादीनां पतितानां संसर्गस्य अशक्यपरिहारत्वेन अन्ततो गत्वा ''पादौ शुची ब्राह्मणस्य'' इति वाक्यं शरणीकरणीयम्. गृहे आगत्य पादशौचं च कार्यमेव. तथा सति अध्वगता अनेकदुःस्पर्शापेक्षया एकस्य उपानत्स्पर्शस्य अल्पत्वादपि तथा. केचित्तु **''पादुके खञ्जतो मेध्ये उत्तमाङ्गे ह्युपानहौ''** इति वचनमपि आहुः. तद्यपि समूलं तदा 'उत्तमाङ्ग'पदस्य उपानदुपरिभागबोधकत्वं ज्ञेयम्. स्नानोत्तरं गृहाद्यागमने उपानहावपि मूत्राद्युत्सर्गे अपरिहिते एवं साम्प्रदायिकशिष्टाचाराद्धार्ये(?). **''मूत्रं पुरीषं नो कुर्यात् सोपानत्कः कदाचन''** इति सदाचारचन्द्रोदये स्मृत्यन्तरे निषेधाद् इदानीं च सर्वदेशेषु तदानीं तत्परिधानदर्शनेन तदशुचित्वस्य स्फुटत्वाद् इति. शिष्टास्तु उपानत्स्पर्शमपि गुल्फाद् अधएव अदुष्टम् अङ्गीकुर्वन्ति. कलौ शिष्टाचारस्य स्मृत्यपेक्षयापि अधिकत्वात् तथैव उचितं नतु तदुपर्यपि इति. एवं च चार्मस्नेहविशेष-सन्धित-काष्ठपेटिकादिष्वपि सन्धायकस्नेहस्य शुष्कीभावे उपरि तदभावात् क्वचित् लेशेन सत्त्वेऽपि तद्बुद्ध्यभावाच्च तादृशपेटिकास्पर्शेऽपि न तत्कृतम् अशुचित्वं पुरुषस्य भोज्य-व्यतिरिक्तवस्तुनश्च इति बोध्यम्. भोज्यस्य तु तद् भवत्येव. यमेन ''कोशगतास्तथापः'' इति दृतिगतायां त्याज्यत्वकथनाद् न्यायसाम्येन भोज्यवस्तूनामपि तथात्वस्य युक्त्वात्, शिष्टानां तथैव आचाराद् इति. अन्यच्च मर्यादासिन्धौ देवलः

''ततः शरीरस्रोतोभ्यो मलनिःस्पन्द-निःस्रवात्,

अन्नादीनां प्रवेशाच्च स्याद् अशुद्धिर्विशेषतः,

पतिताशुच्यमेध्यानां स्पर्शनाच्चाशुचिर्भवेत्,

सुप्ताद् वस्त्रविपर्यासात् कृताद् अध्वपरिश्रमात्,

उक्त्वा च वचनं शुक्तम् अनृतं क्रूरमेव च,

द्रप्साविद्धां तनुं लक्ष्य दृष्ट्वाचम्य शुचिर्भवेत्,

प्रलेपस्नेहगन्धानाम् अशुद्धौ व्यपकर्षणात्,

शौचलक्षणमित्याहुः मृदपोगोमयादिभिः,
लेपे स्नेहे च गन्धे च व्यपकृष्टे सुदूरतः,
पश्चाद् आचमनं चापि शौचार्थं वक्ष्यते विधिः''

(देव.स्मृ.९।शरीरशुद्धिः)

इति. अत्र विवक्षितं शरीरच्छिद्रनिर्गतं मलं द्वादशधा मनु–विष्णुभ्याम् उक्तम्.

''वसा शुक्रमसृङ् मज्जा मूत्रं विट् कर्णविण्नखाः,
श्लेष्माश्रुदूषिकास्वेदा द्वादशैते नृणां मलाः'' (मनु.स्मृ.५।१३५) इति.

वसा हृन्मेदः. 'शुक्र'पदं रजसोऽपि उपलक्षकम्. 'असृक्'पदं पूय–स्नायु–मांसादेः. 'कर्णविट्' कर्णमलम्. तद् अस्य मलस्य ष्ठीवनादेरपि उपलक्षणम्. 'नख'पदं केशलोमादेः. 'स्वेद'पदं गात्रमलानाम्. एतेषां 'निःस्पन्दम्' ईषद् निःसरणम्. 'निःस्रवो' भूयो निःसरणम्. अन्नादीनाम् इत्यादिपदं जलदुग्धौषधादीनामपि सङ्ग्राहकम्. तथा च एतेभ्यो अशुचिः भवति, कर्मकाले विशेषतो भवति इति अर्थः. अत्र निःस्पन्दस्यैव अशुद्धापादकत्वे [४]निःस्रवस्य अर्थादेव अशुद्धिहेतुत्वप्राप्तेः तदुक्तिवैयर्थ्यापत्तिः स्यादिति [५]तद्वारणाय पूर्वोक्तमलेषु पूर्वषट्कस्य निःस्पन्देऽपि विशेषतो अशुद्धिः उत्तरषट्कस्य तु निःस्रवएव विशेषतो अशुद्धिः इति व्याख्येयम्. एवं च यद् बौधायनेन पूर्ववन् मलान् अभिधाय उक्तम्

''आददीत मृदोपश्च षट्सु पूर्वेषु शुद्धये,
उत्तरेषु च षट्स्वद्भिः केवलाभिर् विशुद्ध्यति''(देव.समृ.९।शरीरशुद्धिः)

इति. तदपि सङ्गतं भवति इति. इयं च शुद्धिः तदङ्गस्य. सापि स्वकीयमलस्पर्शे, परकीयतत्स्पर्शे स्नानस्य पूर्वम् उक्तत्वाद् इति. तेन कर्मकाले पूर्वषट्कनिःस्पन्देऽपि स्नानम्. उत्तरषट्कस्य तु निःस्रव इति सिद्ध्यति. मनुनातु द्वादशानामपि निर्गमे मृद्वार्युपादानम् उक्तम्. तद् दैवपित्र्यकर्मकाले तद्योग्यत्वार्थम् इति गोविन्दराजः इति कुल्लूकभट्टीये. मर्यादासिन्धौतु उत्तरषट्कस्य जलमात्रेण गन्धलेपक्षयाभावः इति उक्तम्. उभयमपि कालभेदेन युक्तमेव. पतिताशुच्यमेध्यानाम् इति अत्र पतितानि यानि अशुच्यमेध्यानि इति अर्थः. अत्र 'अशुचि'पदेन औपाधिकाशौचद्रव्यम् उच्छिष्टादिकम्. अमेध्यं च स्वभावाद् अशुचिः इति भेदो बोध्यः. तत्र अमेध्यं तु देवलेन गणितम्

''मानुषास्थि शवं विष्ठा रेतो मूत्रार्तवे वसा,
मेदोऽसृक्दूषिका श्लेष्मा मज्जा चामेध्यमुच्यते''(देव.स्मृ.९।अमेध्यत्वम्)

इति. एतेषां स्पर्शने अशुद्धिः स्फुटैव. अत्र अन्यत्र च मलेषु स्तन्यस्य अगणनात् तस्य निःस्पन्दादिना न अशुद्धिः. नच **''स्त्रियःक्षीरं द्विजः पीत्वा''** इति स्मृत्यन्तरे पुनः

संस्कारादिस्मरणात् सर्वदा अशुचित्वं शङ्क्यम्, तस्य पानएव तथात्वात्. अन्यथा ''**हस्ते दत्तानि चान्नानि प्रत्यक्षं लवणं तथा,**(व्याघ्र.स्मृ.३४८) **मृत्तिकाभक्षणं चैव गोमांसाशनवत् स्मृतम्**(?)'' इति वाक्योक्तानामपि स्पर्शे [६]तथात्वापत्तेः इति. सुप्तेतु अशुद्धिः दक्षेण उक्ता—

''अत्यन्तमलिन: कायो नवच्छिद्रसमन्वित:,
स्रवत्येव दिवारात्रौ प्रात: स्नानं विशोधनम्,
क्लिद्यन्ति हि प्रसुप्तस्य इन्द्रियाणि क्षरन्ति च,
अङ्गानि समतां गच्छन्त्युत्तमान्यधमै: सह'' (दक्षस्मृ.२।७)

इति. अत्र प्रसुप्तस्य इति कथनाद् आसीनप्रचलायिते लालास्वेदाद्यभावेन तथा न दोषः इति आचमनमात्रम्. लालादिस्रावेतु आसिनप्रचलायितेऽपि स्नानमेव. यद्यपि दक्षेण प्रात:स्नानं प्रक्रम्य सुप्तदोषः उक्तः तथापि दूषकताबीजस्य स्वापान्तरेऽपि तुल्यत्वात् प्रस्वापमात्रे [७]ज्ञेय:. वस्त्रविपर्यासे क्षुतादौ [८]वा आचमनमात्रम्, अल्पदोषत्वात्. अतएव सदाचारचन्द्रोदये पराशर:

''क्षुते निष्ठीवने सुप्ते परिधानेऽश्रुपातने,
कर्मस्थ एषु नाचामेद् दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत्'' [उद्ध.१५](परा.स्मृ.१२।१८)

इति आहु:. सुप्ते इति आसीनप्रचलायिते बोध्यम्, युक्तेः उक्तत्वात्. इदं च श्रोत्राचमनम् आचमनाशक्तौ बोध्यम्. सदाचारचन्द्रोदये

''कुर्याद् आचमनं स्पर्शं गोपृष्ठस्यार्कदर्शनम्,
कुर्वीतालभनं वापि दक्षिणश्रवणस्य च,...
अविद्यमाने पूर्वस्मिन् उत्तरप्राप्तिरिष्यते'' (मार्क.पुरा.३१।७१,७२)

इति मार्कण्डेयपुराणात्. श्रोत्राचमनप्राशस्त्यं याज्ञवल्क्ये आह

''गङ्गा च दक्षिणे कर्णे नासिकायां हुताशन:,
उभयो: स्पर्शने चैव तत्क्षणादेव शुद्ध्यति'' (याज्ञ.स्मृ.) इति.

मुखजा: स्वल्पतमा बिन्दवस्तु वस्त्रादौ पतिता: शुद्धाएव न तु देहे. तद् आह गौतम: ''**न मुख्या विप्रुष उच्छिष्टं कुर्वन्ति न चेद् अङ्गे निपतन्ति**'' (व.१।३७) इति. ''उक्त्वा च वचनं शुक्तम्'' इत्यत्र 'शुक्त'पदेन परुषम् अश्लीलं च उच्यते. ''शुक्ताम्ले परुषे अपूते'' इति विश्वकोशात्. द्रप्साविद्धाम् इति घनीभूतश्लेष्मादिलिप्ताम्. शौचार्थं वक्ष्यते विधिः इति. सर्वशरीरशुद्ध्यर्थम् आचमनस्य प्रकारो वक्ष्यते इति अर्थ:. यथा

''स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्योपसर्पणे,
आचान्त: पुनराचामेद् वस्त्रं विपरिधाय च'' (परा.स्मृ.१२।१७)

इत्यादि. शेषं स्पष्टम्.

अन्यच्च छन्दोगपरिशिष्टे

‘‘पित्र्यमन्त्रानुद्रवणे आत्मालम्भे अवेक्षणे,
अधोवायुसमुत्सर्गे प्रहासेऽनृतभाषणे,
मार्जारमूषकस्पर्शे आक्रुष्टे क्रोधसम्भवे,
निमित्तेषु च सर्वेषु कर्म कुर्वंस्त्वप:स्पृशेत्’’[उद्ध.१६]

(कात्या.स्मृ.२।१३,१४)

इति. अनुद्रवणम् उच्चारणम्. आत्मालम्भो हृदयस्पर्श:. तस्यैव अवेक्षणं च. शेषं स्फुटम्.

भगवत्सेवायान्तु अधोवायुसमुत्सर्गे स्नानमेव.

आगमे च

‘‘अश्लीलभाषणं चैव अधोवायुविमोक्षणम्’’ (   )इति.

वाराहपुराणे च

‘‘स्पृशन् माम् अग्रतो पूतिवातकं च प्रमुञ्चति,
वायुं पुरीषसंयुक्तं स पिबेत्तु न संशय:,
मक्षिका पञ्च वर्षाणि सप्त वर्षाणि मूषक:,
श्वा चैव त्रीणि वर्षाणि नव वर्षाणि कच्छप:’’

[उद्ध.१७](वरा.पुरा.१३२।१,२)

इति अपराधेषु गणनात्, तत्फलस्य कथनात्. अजीर्णे स्नानस्य उक्तत्वेन अधोवायुसमुत्सर्गस्य च अजीर्णतएव प्रायो भवनाच्च स्नानस्यैव भगवत्सेवायाम् औचित्याद् इति. मार्जारस्पर्शे तु यत् स्नानं तत् मार्जारकर्मकस्पर्शविषयम्

‘‘भास–वायस–मार्जार–खरोष्ट्रांश्च श्वसूकरान्,
अमेध्यानि च संस्पृश्य सवासा जलमाविशेत्’’ (आङ्गि.स्मृ.   )

इति अङ्गिरसो वाक्ये संस्पर्शकर्मतायाएव उक्त्वात्. अन्यथा मार्जारकर्तृक–स्पर्शस्यापि दूषकत्वाङ्गीकारे **‘‘मार्जारश्चैव दर्वी च मारुतश्च सदा शुचि:’’** इति वाक्यविरोधापत्ते:. यद्वा, भाण्डादिस्पर्शे शुद्धि: शरीरस्पर्शे स्नानम् इति. दाक्षिणात्य–निबन्धेषुतु भोजने पूजादिकर्मणि पुच्छे बिडालस्पर्शे स्नानम्, अन्यदा तु शुचित्वम्.

‘‘**पुच्छे बिडालकं स्पृष्ट्वा स्नात्वा विप्रो विशुद्ध्यति, भोजने कर्मकाले च विधिरेषः सनातनः**’’ इति रत्नावलीनिबन्धोदाहृत–स्मृतिवचनाद् इति उक्तम्. एवं च अस्नातादीनां वस्त्राद्यन्तरितस्पर्शेऽपि वस्त्राद्यन्तरिस्पर्श इति पूर्वोक्तप्रचेतोवाक्यात् स्नानमेव. काष्ठाद्यन्तरितस्पर्शेतु आचमनं समाचारात्. तथैव अविकपट्टदुकूलाद्यन्तरित–स्पर्शेऽपि.

१४. अथ वस्त्रादिविषये [१]शुद्धिविचारः.

तत्र अहतस्य वस्त्रस्य प्रोक्षणात् शुद्धिः. अहतानां प्रोक्षणम् इति एके ‘‘**अहतं यन्त्रनिर्मुक्तम्**’’ इति अपरार्के वायुपुराणात्. इदं च मङ्गलएव शस्तम् इति पृथ्वीचन्द्रोदये

‘‘**अहतं यन्त्रनिर्मुक्तं वासः प्रोक्तं स्वयम्भुवा,**
शस्तं तन्माङ्गलिक्येषु तावत् कालं न सर्वदा’’ (   )

इति भृगु–सत्यतपसोः वाक्याद् उक्तम्. अतो यद् अहतं वासः तत् सर्वकर्मसु शुद्धम्. तल्लक्षणं तु पृथ्वीचन्द्रोदये पुलस्त्य–शातातपौ सदाचारचन्द्रोदये कात्यायनश्च आह

‘‘**ईषद्धौतं नवं श्वेतं सदशं यन् न धारितम्,**
अहतं तद् विजानीयात् पावनं सर्वकर्मसु’’ (कात्या.स्मृ.   )

इति. **ईषद्धौतम्** इति वारैकं रजकेन निर्णिक्तम् ईषद्धौतं केवलजलमात्र–प्रक्षालितम् इति पृथ्वीचन्द्रः. तथा सदाचारचन्द्रोदये

‘‘**अष्टहस्तं नवं श्वेतं सदशं यन्न धारितम्,**
अहतं तद् विजानीयात् सर्वकर्मसु पावनम्’’ (   )इति च.

अत्र एवं मम प्रतिभाति.

आचारतिलके

‘‘**शुक्रशोणितसंछर्दिश्लेष्ममूत्रपुरीषकम्,**
स्निग्धदुर्गंधिजीर्णानि नव दोषाश्च वाससि’’ (   )

इति कथनाद् एतद्दोषराहित्यमेव नवत्वम्. अन्यथा ‘‘यन्न धारितम्’’ इति अस्य वैयर्थ्यापत्तेः. श्वेतम् इति अनिषिद्धवर्णान्तरस्यापि उपलक्षकम्

‘‘**सवस्त्रोपस्करैर्युक्ता शय्या रक्तांशुकानि च,**
पुष्पाणि चैव शुद्ध्यन्ति प्रोक्षितानि न संशयः’’ (बृ.परा.स्मृ.   )

इति मर्यादसिन्धौ बृहत्पराशरवाक्यात्. द्वितीयवाक्ये ‘अष्टहस्तम्’ इति ‘‘**अहतं वासः परिधत्ते**’’ इति श्रुत्यादिषु अहतस्य [२]परिधानत्वबोधनात् तदर्हत्वबोधकं न तु

लक्षणस्यापि घटकम्. तथा सति अधारितम् ईषद्धौतं ''अधारितं नवम्'' अधारितं श्वेतम् अधारितं सदशम् इति चतुर्विधम् अहतं भवति. ततश्च तत्तत्कर्मणि तस्य–तस्य पवित्रत्वं सुखेनैव सम्भवति. यथा ईषद्धौतस्य तस्य यज्ञादिकर्मणि. नवस्य प्रावरणादौ उज्ज्वलस्य चित्रकौसुम्भादेः सुवासिनी–राधादामोदरार्थकदानादिषु. सदशस्य गुर्जराणां परिणयकाले कन्यापरिधानादिषु. नवमपि अक्षालितं तु न भगवदुपयोगि. वाराहपुराणे

''नीलीरञ्जितवस्त्रं यो मर्त्यो मह्यं निवेदयेत्,

नवमक्षालितं चैव रौरवे नरके वसेत्'' (वारा.पुरा. ।)

इति निन्दनात्. ततश्च नीलीरञ्जिताक्षालितव्यतिरिक्तानां सर्ववर्णानां नवीनानां वस्त्राणां तथा मनुष्यानुपभुक्तानां धौतानां चित्राणां रक्तानां च निर्मलानां वस्त्राणां प्रोक्षणादेव शुद्ध्या भगवत्कर्मणि तेषां स्पर्शो न दोषावहः. किञ्च मर्यादासिन्धौ मेध्यस्य चातुर्विध्यं देवलेन उक्तं व्याख्यातं च

''शुचि पूतं स्वयं शुद्धं पवित्रं चेति केवलम्,

मेध्यं चतुर्विधं लोके प्रजानां मनुरब्रवीत्,

नवं वा निर्मलं वापि शुचीति द्रव्यमुच्यते,

शुद्धं पवित्रं पूतं च शुद्धम् इत्यभिधीयते,

स्वयमेव हि यद् द्रव्यं केवलं मेध्यतां गतम्,

स्थावरं जङ्गमं वापि स्वयंशुद्धमिति स्मृतम्,

अन्यद्रव्यैरदूष्यं यत् स्वयमन्यांश्च शोधयेत्,

हव्यकव्येषु यत्पूज्यं तत्पवित्रमिति स्मृतम्'' (देव.स्मृ.९।१–४)

इति. अत्र प्रथमश्लोके केवलम् इत्यस्य अमेध्यलेपहीनम् इति अर्थः. द्वितीयश्लोके शुचिसंज्ञं लक्षयति ''नवम्...'' इत्यादि. तत्र नवम् इति अचिरजातम्. तदपि उपभोगात् प्रागेव वर्जितम् इति वक्ष्यमाणत्वात्. निर्मलम् इति अनवमपि यत् मलशून्यम्. अग्रिमार्धे [३]तस्यैव संज्ञान्तरम् आह. तत्र आद्यः 'शुद्ध'शब्दः स्वयंशुद्धपरः. द्वितीयस्तु शुचिपर्यायः. एवं च शुचिद्रव्यमेव पुनः पूतादिसंज्ञायोगि नवत्वनिर्मलत्वसद्भावात्. संज्ञाभेदस्तु वक्ष्यमाणतत्तदुपाधियोगार्थम्. शुचीनि उदाहरति

''अथ सर्वाणि धान्यानि [४]द्रव्याण्याभरणानि च,

अवर्ज्यावर्ज्यज्ञातानि शुचीन्येतानि केवलम्'' [उद्ध.१८](देव.स्मृ.९।५)

इति. अत्र अत्यन्तम् अवर्ज्यम् अवर्ज्यावर्ज्यं तद् यथा स्यात् तथा ज्ञातानि अवर्ज्यावर्ज्यज्ञातानि केवलम् इति अमेध्यलेपवर्ज्यम्. पूतसंज्ञं लक्षयति

''वर्जिते निर्मले द्रव्ये शुचिसंज्ञा प्रवर्तते,

तस्मिन्नेव हि कर्मण्ये पूतसंज्ञा पुनर्भवेत्''[उद्ध.१९] (देव.स्मृ.९।६)

इति. वर्जिते उपभोगशून्ये नवे निर्मले वा द्रव्ये कर्मार्थं कृतप्रोक्षणादिसंस्कारे पूतसंज्ञा भवति इति अर्थः. पूतसंज्ञोपाधिं दर्शयति

''तद्यच्छुद्धं न कर्मण्यं शुचीत्याहुर्द्विजातयः,

निर्मलं संस्कृतं द्रव्यं क्रियार्थं पूतमुच्यते'' [उद्ध.२०] (देव.स्मृ.९।७)

इति. एतेन शुचेरेव द्रव्यस्य क्रत्वर्थसंस्कारयोगः पूतसंज्ञोपाधिः इति अर्थः. स्वयंशुद्धं लक्षयति स्वयमेव हि इत्यादि. यद्द्रव्यं गृहादिकम् अमेध्यलेपहीनम् अशुचिस्पर्शमात्रदूषितं सत् स्वयमेव पुरुषव्यापारं विनैव वायुरश्मिमात्रेणैव शुद्धतां याति तत् स्वयंशुद्धम् इति उच्यते इति अर्थः. तदेव उदाहरति

''वसतिश्चमसो यानं वाहनं साधनानि च,

क्षुरो नौरासनं चेति स्वयंशुद्धमिति स्मृतम्'' (देव.स्मृ.९।८)

इति. वसतिः गृहम्. चमसो होतृचमसादि. यानं रथादि. वाहनं हयादि. साधनं खड्गादि. शेषं स्फुटम्. तथा

''पशवश्च स्वयंशुद्धा योषितश्चानृतौ तथा,

ब्रह्महत्यादि नारीणां ऋतुकाले हि संस्पृशेत्,

आकराश्च स्वयंशुद्धा द्रव्याणामिति निश्चयः,

क्रीतं च व्यवहारिभ्यां पण्यं शुद्धमिति स्मृतम्,

अदृष्टं वाक्प्रशस्तं च स्वयंशुद्धं च केवलम्,

त्रीण्येतानि विशुद्धानि भगवान् मनुरब्रवीत्''

[उद्ध.२१] (देव.स्मृ.९।१०,१२,८)

इति. एतानि इति अदृष्टादीनि. विशुद्धानि इति शुद्ध्यन्तरानपेक्षाणि. पवित्रं लक्षयति अन्यद्रव्यैः इत्यादि. अनेन शुचिनएव अन्यादूष्यत्वम् अन्यशोधकत्वं वा पवित्रसंज्ञोपाधिः इति उक्तम्. तदेव उदाहरति

''अजाश्वं मुखतो मेध्यं गावो मेध्यास्तु पृष्ठतः,

पुष्पितास्तरवो मेध्या ब्राह्मणाश्चैव सर्वदा'' (देव.स्मृ. ९।१४)

''भस्म क्षौद्रं सुवर्णं च सदर्भाः कुतपास्तिलाः,

अपामार्गशिरीषार्काः पद्ममामलकं मणिः,

माल्यानि सर्षपा दूर्वाः सदा भद्राः प्रियङ्गवः,

अक्षताः सिकता लोहा हरिद्राश्चन्दनं यवाः,

पालाशखदिराश्वत्थ-तुलसीधातकीवटाः,

एतान्याहुः पवित्राणि ब्रह्मज्ञा हव्यकव्ययोः,

पौष्टिकानि मलघ्नानि शोधनानि च देहिनाम्,
तेष्वापो गोशकृन्–मृच्च पवित्राणि विशेषतः,
सर्वाशुचिविशुद्ध्यर्थं सर्वेषां सर्वतः सदा''

[उद्ध.२२](देव.स्मृ. ९।२१–२४)

इति. अतो नवत्वनिर्मलत्वाभ्यां शुचेः वस्त्रादिपदार्थस्य शंखोदकप्रोक्षणादिना संस्कारेण पूतत्वादपि [५]तथेति न तत्र स्पर्शदोषः. यत्तु कर्मठा ऊषादिना चैलनिर्णेजकधौतानां पुनः प्रक्षालनेऽपि शोधकद्रव्यदोषाद् दुष्टत्वं मन्यन्ते तत्तु तैत्तिरीयश्रुतौ सदृग्यावृत्कामनया विहितस्य दाक्षायणयज्ञस्य कर्तारं प्रत्येव नतु अन्यान् प्रति. श्रुतौ

''तस्यैतद् व्रतं नानृतं वदेत् न मांसम् अश्नीयात् न स्त्रियम् उपेयात् नास्य पल्यूलनेन वासः पल्यूलयेयुरेतद्धि देवाः सर्वं न कुर्वन्ति''

इति तं प्रत्येव विधानात्. अतः तत्सहपठित–व्रतान्तरसाहित्यएव युक्तम् इति. किञ्च, एकादशस्कन्धे

''द्रव्यस्य शुद्ध्यशुद्धी च द्रव्येण वचनेन च,
संस्कारेणाथ कालेन महत्त्वाल्पतयाऽथवा,
शक्त्याऽशक्त्याऽथवा बुद्ध्या समृद्ध्या च यदात्मने,
अघं कुर्वन्ति हि यथा देशावस्थानुसारतः''

(भाग.पुरा.११।२१।१०,११)

इति भगवद्वाक्यात्. श्रीधरीये च

''देशं कालं तथात्मानं द्रव्यं द्रव्यप्रयोजनम्,
उपपत्तिम् अवस्थां च ज्ञात्वा शुद्धिं प्रकल्पयेत्''

[उद्ध.२३](बौधा.स्मृ.५।५५)

इति बौधायनीयवाक्याच्च. स्वशक्तिसमृद्ध्यादिकं द्रव्यस्वरूपं द्रव्यप्रयोज–नादिकं च आलोच्य द्रव्याशौचस्य कल्पनीयत्वाद् अनुशासनादपि तदालोच्य तादृशस्पर्शे दोषाभावः. तेन वितानप्रतिसीरादीनां नवीनकरणाशक्त्यापि [६]तथा इति बोध्यम्. भगवद्–वाक्यार्थस्तु द्रव्यस्य पात्रवस्त्रादेः शुद्ध्यशुद्धी. द्रव्येण तोयादिना शुद्धिः. मूत्रादिनातु अशुद्धिः. वचनेन शुद्धम् अशुद्धं वा इति सन्देहे ''इदं शुद्धम् अस्ति'' इत्यादिरूपेण ब्राह्मणवचनेन शुद्धिः, 'न' इत्यादिरूपेण अशुद्धिः. संस्कारेण प्रोक्षणादिना पुष्पादिशुद्धिः, अवघ्राणादिनातु अशुद्धिः.

अथ कालेन, दशाहादिना नवोदकादेः शुद्धिः, विपरीतेन अशुद्धिः. तदुक्तम्

''काले मेघोदकं ग्राह्यं वर्ज्यं तु त्र्यहमेव हि,
अकाले दशरात्रं स्यात् ततः शुद्धिर्विधीयते''

इति. तथा, अन्नादेः अपर्युषितस्य शुद्धिः विपरीतस्य अशुद्धिः. महत्त्वाल्पतया यथा अन्त्यजाद्युपहतानां तडागाद्युदकानां महत्त्वाल्पत्वाभ्यां शुद्ध्यशुद्धी. शक्त्याशक्त्या सूर्योपरागादौ सूतकादौ च अन्नादेः शक्तान् प्रति अशुद्धिः अशक्तान् प्रति तु शुद्धिः. बुद्ध्या पुत्रजन्मादेः दशाहाद् बहिः ज्ञानेन शुद्धिः, अन्तर्ज्ञानेन अशुद्धिः. समृद्ध्या जीर्णमलवद्वस्त्रादेः समृद्धान् प्रति अशुद्धिः, दरिद्रं प्रति शुद्धिः. तत्रापि विशेषम् आह ''...यदात्मने'' इत्यादि. एते द्रव्यवचनादयो द्रव्यानादयो द्रव्याशुद्धिद्वारा आत्मने यद् अघं कुर्वन्ति तद् देशावस्थानुसारतएव यथावत् कुर्वन्ति नतु सर्वतः. तथाहि, निर्भयदेशएव स्नानादिना शुद्धिं कुर्वन्ति, नतु चोराद्याकुले. तथा रोगादिरहित–युवाद्यवस्थायामेव अघं कुर्वन्ति, नतु बाल्यादि रोगाद्यवस्थायां च इति बौधायनवाक्यं स्फुटार्थम्. तथा सति यद्ब्राह्मेऽपि उक्तम् ''**प्रत्यहं क्षालयेद् वस्त्रं दैवे पित्र्ये च कर्मणि**'' (ब्रह्म.पुरा.)इति. यच्च लैङ्गे ''**देवकार्योपयोग्यानां प्रत्यहं शोचमिष्यते**'' (लिङ्गपुरा.)इति तदपि वर्षादिव्यतिरिक्तकालएव इति बोध्यम्. वर्षादौ तु दिनान्तरे क्षालितानां कर्मार्हत्वाय प्रोक्षणमेव शुद्ध्युपायः. सएव च भगवते महाराजोपचारेण पूजाकरणेऽपि बोध्यः. कालकृतदोषस्य [७]तेनापि परिहाराद् इति. तथा, अस्नातेन काष्ठादिभिः धौतवस्त्रस्य आनयनेऽपि न दोषः. उपाकर्तव्यपशोः स्पर्शस्थले तदन्वारम्भणे यजमानमृत्युः अनन्वारम्भणे स्वर्गलोकाद् हानिः इति दोषौ प्रदर्श्य वपाश्रपणीभ्याम् अन्वारभते तद् नैव अन्वारब्धं नैव अनन्वारब्धम् इति उभयदोषोपशमार्थं श्रावितस्य स्पर्शन्यायस्य अत्रापि स्पर्शदोषाभावाय अङ्गीकारे बाधकाभावात्. केचित्तु

''आविकं पट्टकूलं च कृष्णाजिनमथापि वा,
एभिः प्रवेष्टितं वस्त्रं प्रोक्षणादेव शुद्ध्यति''

इति वचनमपि पठन्ति. न च ''वस्त्राद्यन्तरितस्पर्शे'' इति प्रचेतोवचनविरोधः. [८]तस्य अस्पृश्यस्पर्शविषयत्वेन विषयभेदात्. किञ्च, अपरार्के स्मृत्यन्तरेण मर्यादसिन्धौ देवलेन अमेध्यस्य चातुर्विध्यम् उक्तम्

''दूषितं वर्जितं दुष्टं कश्मलं चैव लिङ्गिनाम्,
चतुर्विधममेध्यं च सर्वं व्याख्यास्यते पुनः,
शुच्यप्यशुचिसंस्पृष्टं द्रव्यं दूषितमुच्यते,
अभक्ष्यभोज्यपेयानि वर्जितानि प्रचक्षते,
[९]**व्यङ्गः पतितचाण्डालौ ग्राम्यकुक्कुटसूकरौ,**

श्वा च नित्यं विवर्ज्याः स्युः षडेते कर्मतः समाः,
सव्रणः सूतकी सूती मत्तोन्मत्तरजस्वलाः,
मृतबन्धुरशुद्धश्च वर्ज्या एते स्वकालतः,
स्वेदाश्रुबिन्दवः फेनो निरस्तं नखलोम च,
आर्द्रं चर्मासृगित्येतद् दुष्टमाहुर्मनीषिणः,
मानुषास्थि वसा विष्ठा रेतोमूत्रार्तवानि च,
कुणपं पूयमित्येतत् कश्मलं समुदाहृतम्'' इति.

उद्ध.२४(देव.स्मृ.९।२९-३४)

''दूषितैः प्रोक्षणेनापि शुद्धिरुक्ता विधानतः,
दृष्टैर्मार्जनसंस्कारैः कश्मलैः सर्वथा त्यजेत्'' उद्ध.२५(देव.स्मृ.९।३५)

इति च. अत्र लिङ्गिनाम् इति दण्डादिलिङ्गधारिणाम्. अभक्ष्य इति अत्र नञः त्रिष्वपि सम्बन्धः. व्यङ्गो जन्मतएव अङ्गहीनः. त्यक्तः इति पाठे ज्ञातिबाह्यः. नित्यं विवर्ज्या इति सर्वदैव अस्पृश्याः. उन्मत्तः इति चित्तविक्षेपवान्. दूषितैः दुष्टैः इति अत्र दूषितस्य इति शेषः. कश्मलैः इति अत्र दूषितम् इति शेषः. स्फुटम् अन्यत्. एवं सति अस्नातस्य [१०]एतेषु अनन्तर्भावादपि अदोषः. किञ्च, आश्वलायनस्मृतौ

''परिधाने सितं शस्तं वासः प्रावरणे तथा,
पट्टकूलं यथालाभं ब्राह्मणस्य विधीयते,
आविकं त्रसरं चैव परिधाने परित्यजेत्,
शस्तं प्रावरणे प्रोक्तं स्पर्शदोषो नहि द्वयोः,
भोजनं च मलोत्सर्गं कुरुते त्रसरावृतः,
प्रक्षाल्य त्रसरं शुद्धं [११]दुकूलं सर्वदा शुचिः'' (आश्व.स्मृ.१।२८-३०)

इति कथनात्.

''रेतःस्पृष्टं शवस्पृष्टं स्पृष्टं मूत्रपुरीषयोः,
रजस्वलाभिः संस्पृष्टम् आविकं तु सदा शुचिः'' (आङ्गि.स्मृ.४५)

इति आविकस्य अङ्गिरसा कश्मलस्पर्शेपि अदुष्टत्वकथनाच्च तद्वेष्टितस्य कुतो दोषसंसर्गः? तस्माद् न अयम् आचारो दुष्टः इति निश्चयः. मूत्राद्युपघाते तु वस्त्रं दुष्यत्येव. तदाह अपरार्के यमः

''यदि मूत्रपुरीषाभ्यां रेतसा रुधिरेण वा,
चैलं समुपहन्येत अद्भिः प्रक्षालयेत्तु तत्,
यद्यम्भसा न शुद्ध्येत्तु वस्त्रं चोपहतं दृढम्,

छेदनं तस्य दाहो वा यन्मात्रमुपहन्यते'' ( )

इति. मद्याद्युपघातेऽपि एवम्. उच्छिष्टोपघाते तु क्षालनम् अर्थादेव सिद्धम्.

यानि तु

''सोषैरुदकगोमूत्रैः शुद्ध्यत्याविककौशिकम्,
सश्रीफलैः अंशुपट्टं सारिष्टैः कुतपं तथा,
सगौरसर्षपैः क्षौमम्'' (याज्ञ.स्मृ.१।१८६)

इत्यादीनि याज्ञवल्क्यवाक्यानि तानितु अधुना न आद्रियन्ते. किन्तु आविकादीनि वस्त्राणि तत्तन्निर्णेजकैः अवशोद्ध्यन्ते तदपि युक्तम्. एकादशस्कन्धे

''अमेध्यलिप्तं यद् येन गन्धलेपं व्यपोहति,
भजते प्रकृतिं तस्य तच्छौचं तावदिष्यते'' (भाग.पुरा.११।२१।१३)

इति भगवता फलतौल्यस्यैव आदरणात्. अतः तद्धावनोत्तरं प्रोक्षणादिकरणं सम्यगेव इति. किञ्च अङ्गिराः **''शौचं** [१२]**महार्घरोमाणां वाय्वग्न्यर्केन्दुरश्मिभिः''** (अङ्गि.स्मृ.) इत्यपि उक्तम्. एवमेव रज्ज्वादीनां वस्त्रवच्छुद्धिः. तथाह व्यासः

''वस्त्रं मृदम्भसा शुद्ध्येद् रज्जु वै दलमेव च,
रज्ज्वादिकं चातिदुष्टं त्याज्यं तन्मात्रमेव च'' (व्यासस्मृ.)

इति. या लोके 'निवार' इति उच्यते सापि रज्जुभेदएव तत्कार्यकरणाद् इति ज्ञेयम्.

१५. अथ पात्रादिशुद्धिविचारः.

तत्र याज्ञवल्क्यः

''सौवर्णराजताब्जानाम् ऊर्ध्वपात्रग्रहाश्मनाम्,
शाकं रज्जुः मूलफलं वासो विदलचर्मणाम्,
पात्राणां चमसानां च वारिणा शुद्धिरिष्यते'' (याज्ञ.स्मृ.१।१८२)

इति. सौवर्णं सुवर्णस्य विकारः, राजतं रजतस्य. अब्जं मुक्ताशङ्ख शुक्त्यादि. ऊर्ध्वपात्रं [१]महावीरादि–ग्रहादिसाहचर्यात्. ग्रहाः षोडशिप्रभृतयः. अश्म दृषदादि. शाकं वास्तुकादि. रज्जुः बल्वजादिनिर्मिता बन्धनोद्धरणादिसाधनभूता. मूलम् आर्द्रकादि. फलम् आम्रादि. वासो वस्त्रम्. विदलं वेण्वादि. चर्म अजादीनाम्. विदलचर्मणोः ग्रहणं तद्विकाराणां छत्रवरत्रादीनाम् उपलक्षणार्थम् इति विज्ञानेश्वरः. पात्राणि अन्यानि लौकिकान्यपि. चमसा होतृचमसादयः. एतेषां सौवर्णादीनां लेपरहितानाम्

उच्छिष्टस्पर्शमात्रे वारिणा प्रक्षालनेन शुद्धिः इति विज्ञानेश्वरः. तेन उच्छिष्टस्पर्शाभावे प्रक्षालनाभावः इति तदाशयः. इयं शुद्धिः लौकिक-वैदिकसाधारणी, मध्ये शाकादि-निवेशात्. तेन पाकाद्यर्थान्नादिसम्भाराभृतानां[पा.भे.२] पात्राणां शाकादीनां च पर्युषितत्व-निवृत्त्यर्थमपि इदं क्षालनविधानं कैमुतिकादपि आयातीति तत्तु मम प्रतिभाति. सम्भारभूतान्तु प्रोक्षणादेव शुद्धिः, धान्यादीनां प्रोक्षणस्य वक्ष्यमाणत्वाद् इति. सलेपानां शुद्ध्यन्तरम् आह ''**चरु-स्रुक्-स्रुवसस्नेह-पात्राण्युष्णेन वारिणा**'' इति. एतानि लेपसहितानि उष्णेन वारिणा शुद्ध्यन्ति इति विज्ञानेश्वरः. अनुच्छिष्टत्वेऽपि ईषल्लेपवताम् एषां शुद्धिः. प्रथमतएव चर्वादिलेपबोधनाय 'चरु'पदोपादानाद् लेपराहित्ये औष्ण्यस्य अप्रयोजनकत्वापत्तेश्च

''**निर्लेपं काञ्चनं भाण्डम् अद्भिरेव विशुद्ध्यति,**
अब्जमश्ममयं चैव राजतं चानुपस्कृतम्'' (मनु.स्मृ.५।११२)

इति मनुवाक्ये केवलानामेव उक्तत्वाद् इति तु मम प्रतिभाति. अपरार्केऽपि एवम्. उक्ते मनुवाक्ये 'अनुपस्कृतम्' इति अस्य अखातपूरितम् इति अर्थं विज्ञानेश्वरः आह. मेधातिथिस्तु अत्यन्तानुपहतम् इति अर्थम् आह. अपरार्कस्तु ताम्रादिना यद् न संसृष्टम् इति आह. मर्यादासिन्धौ तु ''**उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु**'' (पा.सू.६।१।१३९) इति पाणिनिना वैकृते सुटो अनुशासनात् चित्ररेखादिरूप-विकाररहितम् इति अर्थः उक्तः. इदमेव युक्तं रेखादिगर्तेषु लेपस्य केवलवारिणा अनपनयाद् इति. निर्णयामृतेऽपि एवम् उक्तम्. बहुलिप्तानां तु मनुः आह

''**तैजसानां मणीनां तु सर्वस्याश्ममयस्य च,**
भस्मनाद्भिर्मृदा चैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः'' (मनु.स्मृ. ५।१११)

इति. तैजसानाम् इति धातुमात्रजन्यानाम्.

''**हेमं ताम्रं च रजतं कांस्यायस्त्रपुसीसकाः,**
एते च तैजसाः प्रोक्ता धातवस्तैजसोद्भवाः''

इति वाक्यात् तानि बोध्यानि. अत्र 'कांस्य'पदं पित्तलस्यापि उपलक्षकम्, ब्रह्माण्डे ''**कांस्यायस्ताम्ररीत्यानि**'' (बृह्मा.पुरा.)इति रैत्यानां धातुपात्रेषु उल्लेखात्. त्रपु तु व(ब?)ङ्गम्. जसतं तु तस्यैव भेदः सीसस्य वा इति बोध्यम्. मृद्भस्मनोः एककार्यत्वाद् विकल्पः. आपस्तु समुच्चीयन्ते इति विज्ञानेश्वरो मर्यादासिन्धुश्च.

ममतु अन्य प्रतिभाति. ब्रह्मवैवर्ते

''**नित्यं नूतनभाण्डेन कर्तव्यः पाक एव च,**
अथवा पक्षपर्यन्तं ततस्त्याज्यं मनीषिभिः,

स्थानं तु संस्कृतं कृत्वा पाकं निर्वर्त्य पूजकः'' (ब्र.वै.पुरा.   )

इति भगवता श्रीनन्दं प्रति वैष्णवब्राह्मणधर्मेषु प्रत्यहं पाकभाण्डत्यागकथनाद् मृण्मयव्यतिरिक्तानां भाण्डानां च प्रत्यहं हातुमश् अक्यत्वात् तेषां भाण्डानां वह्नि–ज्वालोत्थ–मषीनिवारणमेव नूतनीकरणं पक्षान्तरस्य उक्तत्वात् च इति तादृशशिष्टाचाराद् अगवम्यते. तन्मषीनिवृत्तिश्च भस्मना न भवति मृदा च भवतीति तत्र मृद्ग्रहणम्. कांस्यपात्रलेपस्तु भस्मना निवर्तते इति तत्र भस्मग्रहणम् इत्येवं विभागः इति. इयं च निर्लेपेषल्लिप्तातिलिप्तानां शुद्धिः उच्छिष्टस्पर्शेऽपि तुल्यैव इति सर्वेषां सम्मतम्. तत्र ऊर्ध्वाधोभेदेन उच्छिष्टद्वैविध्याद् ऊर्ध्वोच्छिष्टपुरुषस्पर्शे यथोक्ता शुद्धिः यदङ्गम् उच्छिष्टं तेन स्पर्शे मृदादिकम् आदेयम्. तथैव अधोच्छिष्टपुरुषहस्ते स्पर्शेऽपि तदङ्गस्पर्शेतु अमेध्यलिप्तस्य या शुद्धिः सा कार्या इति मम भाति. चार्मेषु विशेषो याज्ञिकदेवकृते स्मृतिसारे उक्तः

''गोमूत्रवारिणा शूर्पं धूपेन स्नेहकूपिकाः,
चर्मणा सद्यः शुद्धिः स्याद् गोमूत्रैर्गोरसर्षपैः''

इति. यत्तु पुनः अन्यद् उक्तम्

''त्र्यहं भस्म च मृद्वारि त्रिफला च दिनत्रयम्,
कषायाः सप्तरात्रं स्याद् एतच्चर्मविशोधनम्,
भस्मनः पलमेकं तु द्विगुणं मृद एव च,
कषायास्त्रिगुणाः प्रोक्ताः त्रिगुणा त्रिफला भवेत्,
आम्रो जम्बूस्तथा धात्री प्लक्षश्चैव चतुर्थकः,
अश्वत्थोदुम्बरवटाः कषायाः सप्त कीर्तिताः''

एतद् अल्पोपघातविषयम्.

१६. अथोच्छिष्टस्पृष्टपात्रशुद्धिविचारः.

तत्र शङ्ख आह

''ब्रह्मक्षत्रविशां चैव सकृत्सम्मार्जनात् शुचिः,
चतुर्थेन तु यद्भुक्तं चतुर्भिस्तत्र मार्जनम्,
अग्नौ प्रक्षिप्य गृह्णीयाद् हस्तौ प्रक्षाल्य यत्नतः,
गोशृंगेण तु संस्पृष्टं तत्पात्रं शुचितामियात्''

(शंख.स्मृ.१ आचाराध्याय।५ शुचिद्रव्याणि)

इति. इदं च कांस्यव्यतिरिक्ततैजसविषयम्, कांस्यस्य अधिकशुद्धेः अग्रे वक्ष्यमाणत्वात्. मर्यादासिन्धौ तु पात्रान्तरे शङ्खे न विशेषः उक्तः

''सिद्धार्थकानां कल्केन दन्तशृंगमयस्य च,

गोवालैः फलपात्राणाम् अस्थ्नां स्यात् शृंगवत् तथा''

(शंख.स्मृ.१६।१०)

इति. इदं च अल्पोपघाते. अधिकोपघातेतु शृंगाणां वायुपुराणे अवलेखन–विधानाद् इति उक्तम्. किञ्च, मनुस्तु

''अग्नेश्चापां च संयोगाद् हेमरूप्यं च निर्बभौ,

तस्मात् तयोश्च संयोगाद् निर्णेको गुणवत्तरः'' (मनुस्मृ.५।११३)

इति आह. अर्थस्तु, **''अग्निर्वै वरुणानीरकामयत''** इति अर्थवादे हेमरूप्ययोः जलाग्निसंयोगजन्यत्वोक्तेः तयोः स्वकारणेन शोधनम् अत्युत्तमम् इति. किञ्च,

''ताम्रा यः कांस्यरैत्यानां त्रपुणः सीसकस्य च,

शौचं यथार्हं कर्तव्यं क्षाराम्लोदकवारिभिः'' (मनुस्मृ.५।११४).

हारीतस्तु

''अद्भिः काञ्चनशङ्ख शुक्तीनां तद्गुणवर्जनं स्नेह–वैवर्ण्योपहतानां यवगोधूमकलायमाषमसूरमुद्गगोमयः चूर्णैः धावनम्. अम्ललवणाभ्यां ताम्राणाम्. भस्मना कांस्यानाम्. शाणतैलघर्षणैः कार्ष्णायसानाम्. सिकतावघर्षणैः शैलानाम्. शिलावघर्षणमार्जनैः मणिमयानाम्. निर्लेखनैः दारुमयानाम्. पुनः पाकेन मार्तिकानाम्. गोमूत्रगोमयबिल्वैः वैदलानां गोवालरज्ज्वा सोदकया फलपात्राणां कमण्डलूनां यतिपात्राणां च इति विबर्भाज''. (   )

अत्र तद्गुणवर्जनम् इति तद्गन्धाद्यपकर्षणम्. स्नेहवैवर्ण्योपहतानाम् इति उच्छिष्टादिस्नेहनविवर्णं यथा भवति तथा उपहतानाम्. यवादिचूर्णानि तु तुल्यार्थत्वाद् विकल्प्यन्ते. उदकं तु सर्वैः शोधनद्रव्यैः समुच्चीयते. शाणां लोहतैक्ष्ण्यसाधनम्. तच्च क्षुरछुरिकाद्यायुधशोधनाय नतु कटाहादिशोधनाय इति तदर्थं सिकताघर्षणं बोध्यम्. शिलावघर्षणमार्जनं स्वर्णकारादिभिः पाषाणविशेषे घर्षणेन उज्ज्वलीकरणम्. कांस्ये इतोऽपि विशेषम् आहुः पराशर–शातातपापस्तम्बाः

''गवाघ्रातानि कांस्यानि शूद्रोच्छिष्टानि यानि च,

शुद्ध्यन्ति दशभिः क्षारैः श्वकाकोपहतानि च'' (परा.स्मृ.७।२४)

इति. **''दशकृत्वो मार्जनात् शुद्ध्यन्ति''** इति निर्णयामृतापरार्कौ. शङ्खस्तु तोऽपि विशेषम् आह

''सूतिकोच्छिष्टभाण्डस्य सुराद्युपहतस्य च,

त्रिःसप्तमार्जनात् शुद्धिः न तु कांस्यस्य तापनम्''(शंखस्मृ.१।५)

इति. कांस्यभिन्नानां तैजसानां सूतिकोच्छिष्टादिके स्वल्पोपघाते यवचूर्णादिभिः एकविंशतिवारं मार्जनादेव शुद्धिः. ''**नतु कांस्यस्य तापनम्**'' इत्यनेन अर्थात् कांस्यव्यतिरिक्तानां तापनं कार्यम् इति गम्यते इति अपरार्कः. निर्णयामृतेतु यवादीनां शोधकानां सप्तसङ्ख्याकत्वाद् एकैकेन त्रिवारं शोधनात् तैजसान्तरस्य शुद्धिः नतु कांस्यस्य, तस्य तु मार्जनतापनाच्च इति उक्तम्. तत्र अपरार्कोक्तमेव युक्तम्, स्मृत्यन्तरे सुरादिलेपे तापस्य उक्तत्वात्, तदपेक्षया उच्छिष्टस्य अल्पत्वाद् इति अपरार्क–निर्णयामृतयोः आदित्यपुराणे

''**सुवर्णरूप्यशङ्खाश्म–शुक्तिरत्नमयानि च,**
कांस्यायस्ताम्ररैत्यानि त्रपुसीसमयानि च,
निर्लेपानि विशुद्ध्यन्ति केवलेन जलेन तु,
शूद्रोच्छिष्टानि शोध्यानि त्रिधा क्षाराम्लवारिभिः''(आदि.पुरा.)

इति. अत्र क्षारादिद्रव्यत्रित्वात्रिधात्वम्. मार्जनं यथार्हं चतुष्कृत्वो दशकृत्वश्च वचनान्तरवशाद् इति उक्तम्. मर्यादासिन्धौ तु ब्रह्मपुराणे इति उक्त्वा क्षाराम्लवारिभिः इत्यन्तम् अभिधाय

''**सूतिकाशवविण्मूत्र–रजस्वलाहतानि च,**
प्रक्षेप्तव्यानि तान्यग्नौ यच्च यावत् सहेदपि'' (ब्रह्मपुरा.)

इति अधिकम् उक्तम्. यच्च यावद् इति प्रागुक्तक्षालनोत्तरं यत् पात्रं यावत्कालम् अग्निसंयोगं सहते यावताग्निप्रक्षेपेण न नश्यति तावत् कुर्याद् इति सर्वैरेव व्याख्यातं च. तेन अयं निष्कर्षः. त्रैवर्णकोच्छिष्टं निर्लेपं भाण्डं मार्तिकम् उच्छिष्टपुरुषस्पृष्टं प्रोक्षणेन शुद्ध्यति. सलेपन्तु अवचूडनात्. अवचूडनं नाम अग्निसंयोगः

''**अलेपं मृण्मयं भाण्डं भाण्डसञ्चयमेव च,**
प्रोक्षणादेव शुध्येत्तु सलेपं ह्यग्निचूडनात्'' (बृ.परा.स्मृ.८।३३४)

इति बृहत्पराशरवाक्यात्. उच्छिष्टकरादिस्पर्शे तु तस्य अवचूडनं दाहश्च यथायथं मृण्मयानां पात्राणाम् उच्छिष्टसमारब्धानाम् अवचूडनम् उच्छिष्टसलेपोपहतानां पुनर्दहनम् इति बौधायनवचनात्. पुनर्दहनं नाम पुनः पाकः. सच रूपरसगन्ध–स्पर्शपरावृत्तिफलको अग्निसंयोगः. दार्वादीनान्तु उच्छिष्टपुरुषस्पर्शे दोषाभावः प्रोक्षणं वा. सलेपानां तु तक्षणं उच्छिष्टसलेपपाण्यादिस्पृष्टानां च ''**तक्षणं दारुशृंगाणाम्**'' (याज्ञ.स्मृ. १।१८५) इति याज्ञवल्क्यवाक्यात्. तथैव वैदलानां व्यजनादीनां प्रक्षालनात्. गोमूत्रगोमयबिल्वैः घर्षणपूर्वकं जलप्रक्षालनाच्च. एवमेव चर्मणां चैलवद्वक्ष्यमाणरीत्या च पूर्वोक्तयाज्ञवल्क्यहारीतयोः वाक्यात्.

अत्र यद्यपि काचपात्राणां कागदपात्राणां च शुद्धिः कुत्रापि न विचारिता तथापि विष्णुधर्मोत्तरे द्वितीयकाण्डीयद्रव्यशुद्ध्यध्याये काचभाण्डशुद्धिः उक्ता **''शुद्धिश्च काचभाण्डानां केवलेन तदाम्भसा''** (वि.धर्मो.पुरा. ।) इति. कागदीयस्य तु तत्रापि न उक्ता. तत्र चीनीयानां केचन काचविशेषत्वं, केचन मार्तिकत्वं, केचन कपर्दजन्यत्वं लोकाः वदन्ति. तत्र कापर्दकत्वे अब्जत्वम्. तथा सति वारिणा शुद्धिः अल्पोपघाते. मध्यमात्यन्तोपघातयोस्तु त्यागएव. अस्थिजन्यत्वेन तक्षणशोध्यत्वात् तक्षणस्य च तत्र अशक्यत्वाद् इति. मार्तिकत्वे काचत्वे च वारिणा अवचूडनेन सहनार्हदाहेन च इति. परन्तु चीनीयानि पात्राणि शिष्टा न गृह्णते, तदुत्पत्तिप्रकारस्य कदर्यत्वाद् इति. तदुत्पत्तिप्रकारस्तु वैद्यग्रन्थे अर्कप्रकाशाख्ये रावणेन उक्तः

''अथ वक्ष्ये तु जीर्णास्थिमृत्तिकाकरणं प्रिये,
शिलाजतुस्थले कुर्याद् दीर्घं गर्तं मनोहरम्,
निक्षिपेत् तत्र तान् अस्थिसञ्चयान् द्विचतुष्पदाम्,
सर्जिक्षारं महाक्षारं मृत्क्षारं लवणानि च,
गन्धकोष्णजलं क्षेप्यं नानामूत्राणि तत्र च,
एवं कृत्वा मासषट्कं दद्यात्पाषाणमृत्तिकाम्,
कङ्कास्यूर्ध्वं तदूर्ध्वं तु कुर्याद् वह्निष्टिकां शुभाम्,
त्रिवर्षाज्जायते सर्वम् एकीभूतं दृषत्समम्,
ततो निष्कास्य तच्चूर्णं कृत्वा पात्राणि निर्ममेत्'' (अर्कप्रकाश)इति.

कागदीयानां तु यथायोग्यं प्रोक्षणक्षालनशोषणैः शाणत्वात्. मिताक्षरायां क्षौमवच्छाणशुद्धेः उक्तत्वाद् इति तु मम प्रतिभाति. अन्येषाम् अतैजसानामपि पूर्वोक्तयाज्ञवल्क्यहारीतादिवाक्येभ्यो ज्ञेया. निर्लेपं कांस्यभिन्नं तैजसं तु त्रैवर्णिकैः उच्छिष्टैः अनुच्छिष्टाङ्गेन स्पृष्टं न दुष्यति. उच्छिष्टहस्तादिस्पृष्टं तु सकृत् सम्मार्जनात्. त्रैवर्णिक-सूतिका-रजस्वलाभ्यां स्पर्शेन उपहतन्तु एकविंशतिकृत्वः सम्मार्जनात्. तदुच्छिष्टोपघाते तु सह्याग्नितापोत्तरं पूर्वोक्तरीत्या सम्मार्जनात्. एवमेव रजस्वलोपघातेऽपि. उच्छिष्टशूद्रस्पर्शे तु क्षालनात्. तदुच्छिष्टं तु चतुर्भिश्चतुष्कृत्वः सम्मार्जनसह्यदाहात् तदुत्तरं गोशृङ्गस्पर्शाच्च. गवाघ्रातेऽपि एवम्. कांस्यं तु त्रैवर्णिकस्पृष्टं क्षालनात्. उच्छिष्टाङ्गस्पृष्टं तु सकृत् सम्मार्जनात्. शूद्रोच्छिष्टं क्षारैः दशकृत्वो मार्जनाद् अवचूडनाच्च. ''यावत् सहेद्''इति वाक्यात्. गवाघ्रातेऽपि एवम्. शूद्रीसूतिकयोस्तु उच्छिष्टं कांस्यं त्याज्यं. तथा अङ्गिरास्तु

''गण्डूषं पादशौचं च यः कुर्यात् कांस्यभाजने,

षण्मासं भुवि निःक्षिप्य पुनराकारमादिशेत्'' [उद्ध.२६](अङ्गि.स्मृ.४१)

इति आह. अत्र 'कांस्य'पदं पित्तलस्यापि उपलक्षकम् इति भाति.

१७. अथामेध्यस्पृष्टशुद्धिविचारः.

तत्र अमेध्यं देवलेन उक्तम्

''मानुषास्थि शवं विष्ठा रेतो मूत्रार्तवं वसा,

मेदोऽश्रु दूषिका श्लेष्मा मद्यं चामेध्यमुच्यते'' (देव.स्मृ.१।९।२८)

इति. अत्र शवादिकं पश्वादीनां मूषकपल्लीपर्यन्तानां बोध्यम्. ततः स्वल्पानां कीटेषु पातात्. विष्ठामूत्रे मार्जारपर्यन्तानां बोध्ये. आखुपुरीषस्य अन्ने पतितस्य दर्शने तावद्ग्रासमात्रोद्धरणकथनेन अतिदूषकत्वाभावाद् इति. मद्यं तु द्वादशविधमपि. तच्च पुलस्त्येन उक्तम्

''पानसं द्राक्षमाधूकं खार्जूरं तालमैक्षवम्,

मधूत्थं सैरमारिष्टं मैरेयं नारिकेलजम्,

समानानि विजानीयात् मद्यान्येकादशैव तु,

द्वादशं तु सुरा मद्यं सर्वेषामधमं स्मृतम्'' (पुल.)

इति. तत्र तैजसानां मूत्राद्युपघाते शुद्धिः अपरार्कनिर्णयामृते च बौधायनेन उक्ता. तैजसानां मूत्रपुरीषशुक्रासृक्कुणपमद्यैः अत्यन्तवासितानाम् आवर्तनम्. अल्पसंसर्गे तु परिलेखनम्. स्पर्शमात्रोपघाते तु त्रिःसप्तकृत्वो भस्मना परिमार्जनम्. अतैजसानाम् एवंभूतानाम् उत्सर्गः इति. आवर्तनम् अग्निसंयोगेन द्रवीकरणम्. परिलेखनं शस्त्रेण अभितो अवयवनिस्तक्षणम्. परिमार्जने तु हारीतोक्तो विशेषोऽपि द्रष्टव्यः. शातातपस्तु

''सुवर्णं रजतं ताम्रं त्रपु कृष्णायसं तथा,

रीतिकासीसलोहानि शुद्ध्यन्त्यश्मप्रघर्षणात्''

इति आह. तथा स्मृत्यन्तरे

''भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं सुरया यन्न लिप्यते,

सुरामूत्रपुरीषैस्तु शुद्ध्यते तापलेखनैः'' (आप.स्मृ.८ । १)

''ताम्रमम्लेन शुद्ध्येत्तु न चेद् आमिषलेपितम्,

आमिषेण तु यल्लिप्तं पुनर्दाहेन शुद्ध्यति''. (बौधा.स्मृ.)

एवं बौधायनवद् विष्णुरपि आह

''विण्मूत्ररेतःशवरक्तलिप्तमावर्तनोल्लेखनतापनैर्वा,

त्रिःसप्तकृत्वः परिमार्जनाद् वा भस्मादिना शुद्धियति तैजसं हि''

(विष्णु.स्मृ.)

इति. तैजसानां रेतोविण्मूत्रासृक्कुणपादिभिः चण्डालसूतिकोदक्यापतितादिभिः चिरम् उपहतानाम् आवर्तनम्. तदल्पकालोपहतानां परिलेखनम्. ततोऽपि अल्पकालो– पहतानां प्रतापनम्. स्पर्शमात्रोपहतानाम् एकविंशतिकृत्वो भस्मादिभिः मार्जनम्. ''प्रतिमार्जनं क्षालनम्'' इति अपरार्के व्याख्यातम्. निर्णयामृते तु तैजसानां मूत्राद्युपघाते पुनः करणम्. गोमूत्रे वा सप्तरात्रं परिवासनम् इति बौधायनवचनम् उपन्यस्य लेपनिर्हरणाशक्तौ पुनःकरणम्. अन्यथा गोमूत्रवास इति व्यवस्थापितम्. तदपि युक्तम्. एवं च बिडालपल्लीप्रभृतिमूत्रादिस्पर्शे अत्यन्तोपघातादौ च अनयैव दिशोद्भाव्य शुद्धिः बोध्या. तथा झिल्लीप्रभृतिक्षुद्रजीवस्य शाकादौ पतितस्य रन्धनोत्तरं ज्ञाने पाचनस्थाल्यां तदवयवानां भूयो लेपात् तापनं पल्लीमूषकादेः एवम्भावे उल्लेखनम्. एवमेव शफरीजलौक:प्रभृतिकुणपसंसर्गेऽपि उन्नेयम्. तथैव च स्पृष्टपात्रस्यापि भोजनपात्रे तस्य अल्पस्पर्शाद् भस्मादिना मार्जनं साक्षात् स्पर्शे च अधिकमार्जनम् इति उन्नेयम्. किञ्च,

''ताम्रपात्रेतु यद्गव्यं कांस्यपात्रे च यन्मधु,
आर्द्रकं गुडसंयुक्तं सद्यो मद्यं घृतं विनेत्''

इत्यादिस्मृत्यन्तरवाक्योक्तानाम् अल्पाशुचीनां स्पर्शेऽपि मार्जनादेव शुद्धिः न त्वन्या. अतएव सदाचारचन्द्रोदये षट्त्रिंशन्मते

''होमकार्ये तथा दोहे पाके च परिवेषणे,
स्नानतर्पणदानेषु ताम्रे गव्यं न दुष्यति''

इति उक्तम्. तथैव दीपस्पृष्टमात्रेऽपि ज्ञेयम्. किञ्च, गवाघ्रातादीनां दशभिः मार्जनैः पराशरादिवाक्ये शुद्धिः उक्ता. शङ्खे न तु कृष्णशकुनिमुखावसृष्टं निर्लिखेत्. **''श्वापदमुखावसृष्टं पात्रं न प्रयुञ्जीत''** (शङ्खस्मृ.)इति उक्तम्. तत्रापि शङ्ख वाक्ये मुखपदाद् एषा शुद्धिः अङ्गान्तरस्पर्शे पूर्ववाक्योक्ता इति बोध्यम्. श्वापदश्च मार्जारभिन्नो बोध्यः, **''मार्जारश्चैव दर्वी च मारुतश्च सदा शुचिः''** ( )इति वाक्याद् इति विज्ञानेश्वरः. एतदेव युक्तम्. पात्रसंघादौ तु स्पृष्टस्यैव अशुचित्वं न इतरस्य. तदुक्तम् अपरार्के हारीतेन

''संहतानां तु पात्राणां यद्येकम् उपहन्यते,
तस्यैव शोधनं कार्यं न तु तत्स्पृष्टिनामपि''

इति. शङ्खोऽपि

''मलं संयोगजं स्वं वा [१]यस्य येनोपहन्यते,
तस्य तच्छोधनं प्रोक्तं सामान्यं द्रव्यशुद्धिकृत्'' (शंखस्मृ.१ ।५ ।१)

इति. अयं शोधनप्रकारः पूर्वोपन्यस्तहारीतोक्तविभागानुसारेण ज्ञेयः. येषां

वाचनिकी शुद्धिः न दृश्यते तादृशान्तु शुद्धिं मर्यादसिन्धौ शातातप आह

''अशुचिं संस्पृशेद् यस्तु एकएव स दुष्यति,

तं स्पृष्ट्वाऽन्यो न दुष्येत्तु सर्वद्रव्येष्वयं विधिः'' (शाता.स्मृ.)

इति. तेन इंधनादौ चीवरादिसंसर्गे तत्सम्बन्धिस्वरूपं विचार्य अशुद्धिः कल्पनीया. बिडालपुरीषादिसंसर्गे तु तस्य अमेध्यत्वात् तत्स्पृष्टस्पर्शिनामपि अशुचित्वम् तथा आचाराद् इति बोध्यम्. बौधायनस्तु, दारुमयानां पात्राणाम् उच्छिष्टसमारब्धानाम् अवलेखनम्. उच्छिष्टलेपोपहतानामेव तक्षणं मूत्रपुरीषरेतःप्रभृतिभिः उत्सर्गः इति आह. अत्र अवलेखनं [२]वस्त्रादिना घर्षणम्. तक्षणस्य पृथगुक्तत्वाद् इति. मर्यादासिन्धौ तु शवचण्डालपुरीषैरपि अल्पोपघातेऽपि घर्षणम् इति उक्तम्. केचित्तु पुरीषसंसर्गे गन्धलेपापनयनक्षम–तक्षणम्. शवादिस्पर्शे मृद्वारिभ्यां क्षालनं, श्वादिस्पर्शे बृसीपीठादीनां क्षालनमेव इति आहुः. तदापि पाकोपयोगिनां तु त्यागएव इति प्रतिभाति. शृंगदन्तास्थि–मयानामपि एवम्. मणिमयादीनां मूत्राद्युपघाते विष्णुः आह **''मणिमयम् अश्ममयम् अब्जं सप्तरात्रं महीनिखननेन''** (विष्णुस्मृ.)इति. उच्छिष्टाद्युपघाते तु कश्यपः. सिकताभिदन्तशृङ्गशंखशुक्तिमणीनाम् इति आह अपरार्के. वैदलानां [३]वेणुवेत्र–नडनिचुलादिमयानामपि दारववदेव शुद्धिः. तत्रापि वेणुवेत्रादेः वस्त्राधानी चेत् तदा प्रयोजनविचारेण गन्धलेपक्षयाधायकक्षालनादिनैव शुद्धिः. पक्कान्नादिस्थापनपात्रं चेत् तदा त्यागएव इत्यादि ऊह्यम्. मृण्मयानां तु पुनः पाकेन शुद्धिः उक्ता. सा च श्वादिस्पर्शदोषएव नतु दोषान्तरे. तदुक्तं मनुना

''मद्यैर्मूत्रपुरीषैर्वा श्लेष्मपूयाश्रुशोणितैः

संसृष्टं नैव शुद्ध्येत्तु पुनः पाकान् महीमयम्'' (मनुस्मृ.५ । १२३)

इति. मर्यादासिन्धौ तु ष्ठीवनैः पूयशोणितैः इति पाठः उभयथापि मलान्तरोपलक्षकत्वं निर्वाह्यं चण्डालादिस्पर्शे तु त्यागः.

''चण्डालैरुपसंस्पृष्टं धान्यं वस्त्रमथापि वा,

प्रक्षालनेन शुद्ध्येत्तु परित्यागे महीमयम्''

इति अपरार्के स्मृत्यन्तरात्. फलापात्राणां शुद्धिस्तु उक्तैव. कश्मलसंसर्गे तु त्यागएव. किञ्च अपरार्के ब्राह्मे मृदम्बुभिः इति प्रकृत्य

''रज्जुवल्कलपात्राणां चमसालाबुचर्मणाम्,

कृत्वा शौचं ततः शुद्धिः गोवालैर्घर्षणं पुनः'' (ब्रह्म.पुरा.) इति.

चर्मणां तु सामान्यतः कश्यप आह. तृणकाष्ठरज्जु–भूर्जशणक्षौमजतुचर्म–वेणुविदलफलपत्र–वल्कलादीनां चैलवत् शौचम्. मृद्दारुचर्मणाम् अत्यन्तोपहतानां

त्यागः. असंस्कृतायां भूमौ न्यस्तानां प्रक्षालनम्. परोक्षाहृतानाम् अभ्युक्षणम्. एवं क्षुद्रसमिधाम् असंस्कृतामेध्याद्युपहतानाम् एकपुरुषोद्धार्याणाम् इति. काच्छपवलयानां शुद्धिः चर्मशुद्ध्यैव व्याख्याता ज्ञेया. एवम् अन्येषामपि.

१८. अथ शय्यादिशुद्धिविचारः

तत्र बौधायनः.

''आसनं शयनं यानं नावः पन्थास्तृणानि च,
मारुतार्केणशुद्ध्यन्ति पक्वेष्टकचितानि च,
आत्मशय्यासनं यानं जायापत्यं कमण्डलुः,
शुचीन्यात्मन एतानि परेषामशुचीनि तु'' (बौधा.स्मृ.१।५।६२,६१).

हारीतः.

''यानशयनान्यपरिहार्याण्येके मन्यन्ते. तद् न, वर्णविशेषात् शुचिमलिनसंसर्गदर्शनात् पापसंसर्गयोगश्च.तस्मात् पृथक् शौचाः श्रेयांस'' (हारि.स्मृ.)

इति. अत्र 'मन्यन्ते' इत्यन्तं पूर्वपक्षम् उक्त्वा 'तद् न' इत्यादिना सिद्धान्तितम्. अर्थस्तु, धर्मशास्त्रे वर्णानाम् उत्तराधरभावेन विशेषदर्शनात्. किञ्च, पातकोपपातक–कृद्भिः मलिनैः तद्रहितानां शुक्लानां तुल्यशय्यादियोगेन संसर्गस्य प्रायश्चित्तनिमित्ततया अभिधानत्. अकृतैनसोऽपि मलिनसंसर्गे व्याधितसंसर्गे नीरोगस्येव पापोत्पत्तिदर्शनाच्च पृथक्शुद्ध्यादिवशेन पृथक्शौचत्वमेव श्रेयः इति. तर्हि स्वीयालाभे किं कार्यम्? इति आकांक्षायां पुनः हारीतः **''स्वानुपपत्तौ शुच्यन्तर्धाय समामनन्ति संस्पर्शे सचैलं स्नानमेवं हि आह''** (हारि.स्मृ.)इति. अर्थस्तु, स्वकीयशय्याद्यलाभे कम्बलादिना शुद्धेन तदन्तर्धाय उपयोक्तव्यम्. यतः पतितादेः शय्यादिसंस्पर्शे सचैलस्नानम् इति चैलाधिकारः इति अपरार्के व्याख्यातम्. एतेनैव आसनतूलिकादिकमपि व्याख्यातं ज्ञेयम्. किञ्च,

''शयनासनयानानि द्रव्यं च बहुसंहतम्,
चण्डालादिभिरप्येतत् स्पृष्टं सम्प्रोक्षणात् शुचिः''

इति तत्रैव स्मृत्यन्तरवाक्यम्. किञ्च, तूलिकादीनाम् उच्छिष्टादिस्पर्शे तु सर्वनिबन्धेषु देवलः

''तूलिकाम् उपधानं च पुष्परक्ताम्बरं तथा,
संशोष्यानातपे किञ्चित् करैः सम्मार्जयेत् पुनः,
पश्चाच्च वारिणाऽभ्युक्ष्य विनियुञ्जीत कर्मणि,

तान्यप्यतिमलिष्ठानि यथावत् परिशोधयेत्'' इति.

(देव.स्मृ.९।तैजसादिद्रव्यशुद्धिः)

बृहत्पराशरस्तु

''सवस्त्रोपस्करैः युक्ता शय्या रक्तांशुकानि च,

पुष्पाणि चैव शुद्ध्यन्ति प्रोक्षितानि न संशयः'' (बृ.परा.स्मृ.)

इति आह.

१९. अथ धान्यादिशुद्धि विचारः.

तत्र मनुः

''अद्भिस्तु प्रोक्षणं शौचं बहूनां धान्यवाससाम्,

प्रक्षालनेन त्वल्पानाम् अद्भिः शौचं विधीयते'' (मनुस्मृ.५ । ११८)

याज्ञवल्क्योऽपि

''प्रोक्षणं संहतानां च बहूनां धान्यवाससाम्'' (याज्ञ.स्मृ.१।१८४)

इति. अत्र बहुत्वं धान्यानां न स्वरूपकृतम् किन्तु बहुत्वेन अनेकपुरुषोद्धार्यत्वं लक्ष्यते इति अपरार्कः. युक्तं च एतत्. अन्यथा कणत्रयेण मुष्टिमात्रेण वा बहुत्वापत्तेः विशेषणवैयर्थ्यं स्याद् इति. सएव सम्मतिमपि आह बौधायनस्य. संहतानां काष्ठादीनां प्रक्षाल्यावशोषणं चण्डालादिस्पर्शे पुरुषवाह्याद् अर्वाक्. ऊर्ध्वन्तु अनेकपुरुषोद्धार्ये दारुशिले भूमिसमे इति.

लौगाक्षिश्च

''चाण्डालादिपरामृष्टं प्रोक्षणाद् बहु शुद्ध्यति

अल्पं प्रक्षालयेद्धान्यं तण्डुलं तु परित्यजेत्'' (लौगा.स्मृ.)

इति. तण्डुलम् इति वितुषं धान्यमात्रम्. त्यागस्तु अल्पविषयः शुद्ध्यन्तरस्य वक्ष्यमाणत्वात्. तद् आह बौधायनः

''व्रीहयः प्रोक्षणाद् अद्भिः शाकमूलफलानि च

तन्मात्रस्यापहाराद् वा निस्तुषीकरणेन वा'' (बौधा.स्मृ.)

इति. चण्डालादिस्पर्शे अनेकपुरुषोद्धार्याणां व्रीहीणां प्रोक्षणं मूत्रादिसंसर्गे तन्मात्रम् अपहारः. अशुचिपांस्वादिद्रव्यसंयोगे निस्तुषीकरणम् इति अर्थः.

कश्यपस्तु

''प्रोक्षणपर्यग्निकरणावगाहनैः व्रीहियवगोधूमानां विमर्शन–

प्रोक्षणैः फलीकृतानां निघर्षणदलनप्रोक्षणैः शमीधान्यानाम्''

(कश्य.स्मृ.)

इति आह. अर्थस्तु, अनेकपुरुषोद्धार्याणां व्रीह्यादीनां त्रयाणां यथाक्रमं प्रोक्षणादिभिः शुद्धिः. पर्यग्निकरणन्तु उल्मुकस्य सर्वतो भ्रामणम्. अवगाहनं क्षालनम्. फलीकृतानां व्रीह्यादितण्डुलानाम् अल्पत्वे विमर्शनेन शुद्धिः अनेकपुरुषोद्धार्यत्वे प्रोक्षणेन. खण्डनेन उज्ज्वलीकरणम्. कराभ्यां घर्षणं विमर्शनम्. शमीधान्यानां कोशीधान्यानां मुद्गादीनां एकपुरुषोद्धार्याणां निघर्षणेन ततो अल्पानां दलनेन अनेकपुरुषोद्धार्याणां तु प्रोक्षणेन इति. अत्र 'निघर्षण'पदेन पूर्वोक्तं विमर्शनमेव उच्यते. अल्पत्वे तु त्यागः इति उक्तम्. आदित्यपुराणे तु

''गृहदाहे समुत्पन्ने विपन्ने पशुमानुषे,
अभोज्यस्तद्गतो व्रीहिः धातुद्रव्यस्य सङ्ग्रहः,
मृण्मयेनावरुद्धानाम् अधो भुवि च तिष्ठताम्,
यवमाषतिलादीनाम् अदोषं मनुरब्रवीत्,
ततः संक्रममाणेऽग्नौ स्थाने स्थाने च दह्यते,
न च प्राणिवधो यत्र केवलं गृहदीपनम्,
तत्र द्रव्याणि सर्वाणि गृह्णीयाद् अविचारयन्'' (आदि.पुरा.)

इति उक्तम्. तदेतद् अपरार्कस्थं प्रमेयम्.

मिताक्षरायां तु विज्ञानेश्वरः. बहुत्वं स्पृष्टापेक्षया यदा धान्यानि वस्त्रादीनि वा राशीकृतानि तत्र चाण्डालादिस्पृष्टानि अल्पानि बहूनि अस्पृष्टानि. तत्र स्पृष्टानां वाससां क्षालनात्. अस्पृष्टानां प्रोक्षणात्. धान्यानां तावन्मात्रोद्धरणोत्तरं प्रोक्षणात्. स्पृष्टानां बहुत्वे तु धान्यवाससां क्षालनादेव. समत्वे तु प्रोक्षणादेव. इयत् स्पृष्टम् इयद् अस्पृष्टम् इति अविवेके तु क्षालनादेव. अनेकपुरुषोद्धार्यत्वे स्पृष्टानामपि प्रोक्षणादेव इति आह. एतेनैव परम्परास्पर्शोऽपि व्याख्यातप्रायएव. मर्यादसिन्धौ तु द्रोणाधिकानां बहुत्वम् उक्त्वा देशं कालम् इति बौधायनवाक्यात्. देशकालद्यपेक्षया बहुत्वं केचिद् आहुः. यथा दुर्गतस्य दुर्भिक्षे कुड्वपरिमितमपि इति उक्तम्. इदमेव च युक्तम्, पूर्वोक्तैकादशस्थ-भगवद्वाक्यात्. एवं वाससामपि बहुत्वम् अनेकपुरुषोद्धार्यत्वेन त्रिभ्योऽधिकत्वेन च पूर्वोक्तरीत्या उन्नेयम्. नागदेवीये तु सङ्ग्रहकारः.

''सुश्वेतान्यथ चित्राणि कौसुम्भानि यथाक्रमम्,
विंशत्येकादशत्रीणि बहूनीति स्मृतान्यथ''

इति आह. संहतत्वं तु उक्तशुद्धिद्रव्यारब्धावयवित्वम् इति विज्ञानेश्वरः. मर्यादासिन्धौ तु संहतत्वं नाम अनेकेषां शय्यादीनां स्यूतत्वं यद्वा संहतत्वं कठिनत्वम्. तेन शीतघृतगुडामिक्षादिकं संहतम्. यद्वा

''शयनासनयानानि रोमबद्धानि यानि तु,
वस्त्राण्येतानि सर्वाणि संहतानि प्रचक्षते''

उद्ध.२७(देव.स्मृ.९।तैजसदिशुद्धिः)

इति अङ्गिरोभिहितानि संहतानि इति उक्तम्. रोमबद्धानि कम्बलादीनि इति च तत्र उक्तम्. पूर्वोक्तभगवद्वाक्योक्तरीत्या तस्य-तस्य तथा युक्तत्वात् सर्वम् एतद् उपपन्नम्. जलव्यतिरिक्तानां द्रवाणां तु प्लावनात् शुद्धिः. **''प्लावो द्रवस्यतु''** इति याज्ञवल्क्यवाक्यात्. तत्र प्लावो नाम समानजातीयेन द्रव्येण भाण्डस्य अपूरणं यावता निःसरति इति विज्ञानेश्वरः. पात्रस्थे घृतादौ तावत्समानजातीयम् अन्यदासिच्यते यावत्पूर्णे पात्रे किञ्चिन्मात्रं बहिर्निःसरति इति अर्थः. अमेध्यसंस्पृष्टद्रव्यस्पृष्टस्यापि एषैव शुद्धिः इत्यपि सएव आह. एतदेव उत्पवनम् इति आहुः **''द्रवाणां चैव सर्वेषां शुद्धिरुत्पवनं स्मृतम्''** (मनुस्मृ.५।११५) इति मनुवाक्यात्. उत्पवनं च अत्र वस्त्रान्तरिते पात्रे प्रक्षेपः. अन्यथा कीटाद्यपनयनस्य असम्भवाद् इति विज्ञानेश्वरः. इदं च केशकीटमक्षिकान्वित इति बोद्धव्यम्. कुलूकभट्टीये तु प्रादेशपरिमाणकुशपत्रद्वयाग्राभ्यां ''पवमानः सुवर्जन'' इत्याद्यनुवाकेन उत्पवनं स्पृष्टस्य अंशस्य अपनयनं वा उत्पवनम् इति उक्तम्. एतच्च प्रस्थपरिमाणे. अल्पस्यतु त्यागएव. एतच्च श्वकाकाद्युपघाते. वर्णापसदभाण्डस्पर्शे तु भाण्डान्तरे तदासिच्य यावता तद्बहिः निःसरति तादृशप्लावं विधाय शेषम् उत्सृजन्ति शिष्टाः. मधूदके पयः तद्विकाराश्च पात्रात् पात्रान्तरनयने शुद्धा इति बौधायनस्मरणात्. शूद्रभाण्डस्थितानामपि एषैव शुद्धिः. वर्णापसदहस्तात् प्राप्तानां तु पात्रात् पात्रान्तरनयनं पुनः पवनं च कार्यम्. अभ्यवहार्याणां घृतेन अभिधारितानां पुनः पवनम् एवं स्नेहानां स्नेहवद्रसानाम् इति शंखस्मरणात्. शाकादीनां तु दूषितत्यागे शेषस्य आप्लावनात् शुद्धिः. तदुक्तं मर्यादसिन्धौ ब्राह्मे

''सस्यानि व्रीहयश्चैव शाकमूलफलानि च,
त्यक्त्वाथ दूषितं भागं प्लाव्यान्यन्यजलेन च''(ब्राह्म.पुरा.   ) इति.

म्लेच्छादिभाण्डस्थितौ तु बृहत्पराशरः

''आममांसं घृतं क्षौद्रं स्नेहश्च फलसम्भवाः,
म्लेच्छभाण्डस्थिता ह्येते निष्क्रान्ताः शुचयः स्मृताः'' इति.

(बृ.परा.स्मृ.८।३३०)

तथा

''आभीरभाण्डसंस्थानि पयोदधिघृतानि च,
तावत्पूतं हि तद्भाण्डं यावत् तत्र नितिष्ठति,
पूतानि सर्वपण्यानि कारुहस्तस्थितानि च'' (बृ.परा.स्मृ.८।३३०)

इति. अत्र म्लेच्छभाण्डस्थितानां चतुर्णां शुद्धिम् उक्त्वा अग्रिमवाक्ये पयोदध्नोः आभीरभाण्डस्थयोरेव शुद्धिकथनात् म्लेच्छजातीयाभीरभाण्डस्थयोः पयोदध्नोः अग्राह्यत्वं बोधितम्. उचितं च एतत्, ''**न नीचो यवनात् परः**'' इति वाक्यात्. सर्वपण्यानां पूतत्वकथनेन शाकफलादीनां ततोऽपि ग्राह्यत्वं च बोध्यते. आम्रादिफलानां बहुदिनैः भोगाय ततो गृहीत्वा सञ्चेष्यमाणानामपि प्रोक्षणमात्रेण शुद्धिः क्षालयित्वा स्थापने पूयीभावात्. इदं च शुद्धिकल्पनम् उपपत्तिप्रयोजनयोः बलात् ज्ञातव्यम्. कारुहस्तस्थितानि इत्यनेन रजकतन्तुवायादिसंसर्गकृताया अशुद्धेः अपवादः. तेन अवरजातीयानामपि कारुणां शिल्पिक्रियया द्रव्यम् उत्पादयतां संस्कुर्वतां वा प्रसक्तं प्रत्यवायहेतुत्वं निवार्यते. तथा सति रजकसेकादिभिः संस्कृतानां वस्त्रादीनां [१]कुविन्दशूर्पकारादिभिश्च उत्पाद्यमानानां द्रव्याणां शुचित्वमेव इति वाक्यतात्पर्यम्. ततश्च येन अन्नादिद्रव्येण शिल्पिस्पृष्टेन विना द्रव्योत्पत्तिसंस्कारौ न भगवतः तदपि शुद्धत्येव. यथा वस्त्रोत्पत्तौ खलिः. अतएव शंखः ''**कारुहस्तः शुचिः तथा आकरव्याणि प्रोक्षितानि**'' [उद्ध.२८](शंखस्मृ.१।५।प्रोक्षणेन शुद्धिः) इति. आकरो द्रव्योत्पत्तिस्थानं तद्द्रव्याणि च आकरद्रव्याणि. पैठीनसिः विशेषम् आह ''**आकराः शुचयः सर्वे वर्जयित्वा सुराकरम्**'' (बौधा.स्मृ.१।५।५८) इति एतद् अपरार्कमतम्. विज्ञानेश्वरस्तु कारूणां सूतकादिसम्भवेऽपि तत्साध्ये कर्मणि तद्धहस्तस्य शुचित्वम्. तथाच स्मृत्यन्तरम्

''**कारवः शिल्पिनो वैद्या दासीदासास्तथैव च,**
राजानो राजभृत्याश्च सद्यः शौचाः प्रकीर्तिताः''

इति आह उभयमपि इदं युक्तम्.

२०. अथ सिद्धान्नशुद्धिविचारः.

तत्र अपरार्के सदाचारचन्द्रोदये च यमः

''**मक्षिकाकीटमन्ने तु पतितं यदि दृश्यते,**
मूषकस्य पुरीषं वा क्षुतं यच्चावधूनितम्,
भस्मना स्पृष्टमशनीयाद् अभ्युक्ष्य सलिलेन वा''. (यमस्मृ.   )

तथा

''**अवक्षुतं केशपतङ्गकीटैरुदक्यया वा पतितैश्च दृष्टम्,**
अलातभस्माम्बुहिरण्यतोयैः संस्पृष्टमन्नं मनुराह भोज्यम्'' (   )

इति. अत्र अवधूनितं नाम यदुपरि वस्त्रावधूननं कृतम्. अवक्षुतं नाम यदुपरि क्षवथुः कृतः. अत्र 'मक्षिका'पदेन नीलमक्षिका उच्यते. बौधायनेन हविर्दोषेषु नीलमक्षिका

शातिकामत्कुणाश्चैलशिरसोर्यूतिका इति अभिधानाद् इति अपरार्कः. अतएव सदाचार–चन्द्रोदये वाक्यान्तरे मक्षिकादीनाम् अदुष्टत्वम् उक्तम्

''मक्षिकादंशमशका घुणाः सूक्ष्माः पिपीलिकाः,
आमिषामेध्यसौरी च नैते कीटा विपत्तयः''

इति उक्तम्. आमिषामेध्यसौरीशटितमांसोद्भवः कीटः. विपत्तयः इति दोषाय न भवेयुः इति व्याख्यातं च. पूर्वस्मिन् वाक्ये कीटो अमेध्यसर्पी इति अपरार्कः. बौधायनश्च केशकीटनखरोमाखुपुरीषाणि अन्ने दृष्ट्वा तन्मात्रम् अन्नं परित्यज्य अद्भिः सम्प्रोक्ष्य भस्मना संस्पृश्य प्रशस्तवचसा तु गृह्णीयात्. **''भूर्भुवः सुवः''** इति उपरिष्टाद् ध्यात्वा पुनरेव भुञ्जीत इति आह. सदाचारचन्द्रोदये तु त्वक्केशेति पाठयुक्तम् ईदृगेव याज्ञवल्क्य–वाक्यम्.

यत्तु गौतमः **''नित्यमभोजं केशकीटावसन्नम्''** (गौत्त.स्मृ.१७) इति आह तत् केशादियुक्त–पाकविषयम् इति निर्णयामृते मिताक्षरायां च. इदमेव युक्तम्. अन्यथा वाक्यान्तरविरोधापत्तेः इति. गोघ्रातेऽपि अन्ने पूर्वोक्तैव व्यवस्था

''गोघ्रातेऽन्ने तथा केश–मक्षिकाकीटदूषिते,
सलिलं भस्म मृद्वापि प्रक्षेप्तव्यं विशुद्धये'' (याज्ञ.स्मृ.१।१८९)

इति मार्कण्डेयपुराणाद् याज्ञवल्क्योक्तेश्च. श्वकाकाद्युपघाते तु पराशरः

''शृतं द्रोणाधिकं चान्नं श्वकाकैरुपघातितम्,
अत्याज्यं तस्य शुद्ध्यर्थं ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत्,
कर्तव्यं वचनं तेषाम् अन्नसंस्कारकर्मणि,
श्वकाकाद्यवलीढं तु त्यक्त्वा लालासमन्वितम्,
गायत्र्यष्टसहस्रेण मन्त्रपूतेन वारिणा,
भोज्यं तत्प्रोक्षितं विप्रैः पर्यग्निकृतमेव च''(परा.स्मृ.) इति.

जमदग्निश्च

''शृतान्नं द्रोणमात्रं स्यात् स्वकाकादिप्यघातितं,
केशकीटावशन्नं च तदप्येवं विशुद्ध्यति,
क्रीतस्यापि विनिर्दिष्टम् एवमेव मनीषिभिः,
न द्विःपक्वं पर्युषितं शुक्ताद्येवं कदाचन'' (जम.स्मृ.)

इति. द्रोणः षट्पञ्चाशदधिकं पलशतद्वयम्. अष्टसहस्रेण इति अष्टाधिक–सहस्रेण. केशकीटावसन्नं तु केशकीटकसहपक्वं बोध्यम्. तेन बहुपाके गौतमोक्ता अभोज्यता निवार्यते. अपरार्क–मर्यादसिन्धु–हेमाद्रिषु यम–मनू

''देवद्रोण्यां विवाहेषु यज्ञेषु प्रकृतेषु च,

काकैः श्वभिश्च यत् स्पृष्टं तदन्नं न विवर्जयेत्,
तन्मात्रम् अन्नम् उद्धृत्य शेषं संस्कारमर्हति,
घनानां प्रोक्षणाच्छुद्धिः द्रवाणामपि तापनात्,
संस्पर्शनाद् भवेत् शुद्धिः अपामग्नेः घृतस्य च,
च्छागेन मुखसंस्पृष्टं शुचि त्वेवं विनिर्दिशेत्'' उद्ध.२८(वशि.स्मृ.१८)

इति. ''**देवद्रोणी देवयात्रा**'' इति अपरार्कः. देवतानैवेद्यार्थं यत्र बह्वन्नं पच्यते सा देवद्रोणीति मर्यादसिन्धुः. एतच्च बह्वन्नप्रदर्शनार्थम्. प्रकृतेषु इति उत्सवेषु इत्यपि सएव (मर्यादसिन्धुः) व्याचख्यौ.

२१. [1]अथ घृतपायसादीनां शुद्धिविचारः.

शातातपः

''घृतं च पायसं क्षीरं तथैवेक्षुरसो गुडः,
शूद्रभाण्डस्थितं तक्रं तथा मधु न दुष्यति''

(शंखस्मृ.१।५।अशुद्ध्यपवादः)

इति. पायसं पयोविकारो नतु पयसि सिद्ध ओदनः. ''विकारार्थे च तद्धितः'' इति कल्पतरुरत्नाकरपारिजातशुद्धिप्रदीपाः. एतदपि आधारदोषाभावे, तद्दोषेतु पात्रान्तरनयनम्,

''आधारदोषे तु नयेत् पात्रात् पात्रान्तरं द्रव्यम्,
घृतं च पायसं क्षीरं तथैवेक्षुरसो गुडः'' (शंखस्मृ.१।५।अशुद्ध्यपवादः)

इति शङ्खवाक्यात्. तथा भक्ष्याभक्ष्यप्रकरणे

''सन्धिन्यनिर्दशाऽवत्सागोपयः परिवर्जयेत्,
औष्ट्रमैकशफं स्त्रैणम् आरण्यकमथाविकम्'' (याज्ञ.स्मृ.१।१७०)

इति याज्ञवल्क्येन सामान्यतः एतद् दुग्धं निषिद्धम्. तथापि हारीतेन

''सन्धिनी वृषस्यन्ती तस्याः पयो न पिबेत्, ऋतुमद्भावात्. न हतवत्सायाः शोकाभिभूतत्वात्. न दुग्धाया विना वत्सात्. यथा अश्नतो अन्नम् आच्छिद्यात्मनाश्नीयाद् एवं तत्. न नवसूतायाः सरजस्त्वात्. सप्तरात्राद् इति एके दशरात्राद् इति अपरे मासेन अथ पीयूषं भवति इति धर्मविदः''

इति [2]हेतुपूर्वकम् उक्तम्. [3]तच्च श्राद्धहेमाद्रावेव व्याख्यातम्. 'वृषस्यन्ती'पदाद् निवृत्तमैथुनेच्छायाः पयो न निषिद्धम् इति गम्यते. हतवत्सा मृतवत्सा. तत्र शोकाभिभूतत्वाद् इति हेतुः. तेन विस्मृतवत्सशोकायाः पयसि न निषेधः. वत्सादिविना

इति जीवन्तमेव वत्सम् अन्यतो निधाय क्षीरलोभेन दुग्धायाः पयो न पिबेत्. तत्र दृष्टान्तः यथा अश्नतो भुञ्जानाद् अन्नं हठाद् गृहीत्वा स्वयम् अश्नीयाद् एवं तद् इति. न नवप्रसूतायाः, तत्र हेतुः सरजस्त्वाद् इति. तत्र सप्तरात्रादयः त्रयः पक्षाः. एतेषु पक्षेषु यथा रजोनिवृत्तेः व्यवस्था द्रष्टव्या इति. तेन यदा सप्तरात्रादावपि रजोनिवृत्तिनिश्चयः तदा पयःपाने न धर्महानिः इति तेन सन्धिन्याः पयो द्वितीयदिवसे शुद्धं मृतवत्सायास्तु पिण्याकभक्षणादिना विस्मृतवत्सशोकतया तन्मृतकानाघ्राणे शुद्धम्. नवसूतायास्तु निर्देशत्वे प्रायः इदानीं शुद्धिम् अङ्गीकुर्वन्ति नतु सप्तरात्रोत्तरम्. तदुत्तरं रजःसंसर्गपर्यन्तम् अशुद्धं नतु मासपूर्तिपर्यन्तम्. विनावत्ससन्दोहस्तु यावद् वत्सः तदाकांक्षते अन्यत् तृणादिकं चरित्वा न तृप्यति. तदुत्तरं वत्साय स्थापनेन तत्स्वत्वं निवार्य दोग्धव्यं तत्पयः शुद्धम् इति सिद्ध्यति. तथा स्यन्दिनीं यमसूं सन्धिनीम् इति गौतमस्मरणात् तत्पयोऽपि अशुद्धम्. तत्र हेतुं तु न केऽपि लिखन्ति. तथा स्यन्दिनीदुग्धस्य ग्रहणे दुग्धस्रवणेन स्तनानां रिक्ततया तत्पीडाप्रसङ्गः. यमसुवश्च ग्रहणे वत्सयोः बुभुक्षायाः अपूर्त्या तद्दुग्धस्य परस्वत्वं दोषः इति मम प्रतिभाति. दुग्धनिषेधतद्विकाराणामपि अशुद्धत्वम् इति मिताक्षरायाम्. गोमूत्रगोमययोः अनिषेध इति यद्यपि तत्र उक्तं तथापि यत्र रजस्त्वं सम्भाव्यते तत्रतु निषेधः इति मम प्रतिभाति. ब्रह्मपुराणे ''**द्राक्षेक्षूणां रसः शुद्धः सद्यस्तु प्रथमेऽहनि**'' इति तथा. यतौ च ब्रह्मचारिणि गतं भैक्षमपि तेषां शुचि. तदाह अपरार्के मनुः ''**ब्रह्मचारिगतं भैक्षं नित्यं मेध्यम् इति स्थितिः**'' (मनुस्मृ.५।१२९) इति. ब्रह्मचारीति विहितभिक्षोपलक्षकम्. भैक्षं भिक्षासमूहः. विहितभिक्षाधिकारिणोऽपि मनुनैव उक्ताः

''सान्तानिकं वक्ष्यमाणम् अध्वगं सर्ववेदसम्,
गुर्वर्थमातृपित्रर्थ–स्वाध्यायार्थोपतापिनः,
नवैतान् स्नातकान् विद्याद् ब्राह्मणान् धर्मभैक्षकान्''

(मनुस्मृ.११।१,२)

इति. सान्तानिकः सन्तानप्रयोजनः. सर्ववेदसो दत्तसर्वस्वः. उपतापी रोगी. अन्ये प्रसिद्धाः. तथाच तेषां भैक्षं न दुष्यति इति अर्थः. यावतोपघातेन रथ्योपसर्पणादिना भैक्षं न सिद्ध्यति [४]तन्मात्रस्य अपवादो अयम्. अतएव तदतिरिक्तोपघाते शुद्धिम् आह वसिष्ठः

''प्रचरन्नभ्यवहार्येषु उच्छिष्टं यदि संस्पृशेत्,
भूमौ निधाय तद्द्रव्यम् आचान्तः प्रचरेत् पुनः'' (वशि.स्मृ.३।४२)

इति. यस्य उपघातस्य आचमनात् शुद्धिः तद् इह 'उच्छिष्ट'शब्देन उच्यते. अभ्यवहार्यशब्दाच्च न भैक्षमात्रविषयम् एतत् किन्तु परिवेषणादिविषयमपि. यत्तु मनुना उक्तम्

''उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टो द्रव्यहस्त: कथञ्चन,
अनिधायैव तद्द्रव्यम् आचान्त: शुचितामियात्''

(मनुस्मृ. ५।१४३)

इति तद् वस्त्राद्यपरविषयम्. किञ्च ब्राह्मे

''उच्छिष्टेन तु शूद्रेण संस्पृष्ट: परिवेषक:,
द्रव्यहस्तश्च यत्किंचिद् दद्यात् तत्तु न भक्षयेत्'' (ब्रह्म.पुरा.)

तेन उच्छिष्टशूद्रातिरिक्तस्पर्शे दोषो नास्ति इति [५]तदाशय: इति अपरार्कस्थं प्रमेयम् उक्तम्. सदाचारचन्द्रोदये तु वासिष्ठं मानवं च वाक्यम् उपन्यस्य उक्तम्.

''यदि द्रव्यम् अङ्गधारणयोग्यं तदा अङ्गे निधाय आचामेत्. यदि तदयोग्यं तदा तत्स्पृष्ट्वा आचामेत्. यद्वा आचमनार्होच्छिष्ट–स्पृष्ट: अभ्यवहार्येतरद्रव्यं भूमौ अनिधाय आचम्य शुचिः भवति. अभ्यवहार्यद्रव्यं तु भूमौ निधाय आचम्य अभ्युक्ष्य गृह्णीयाद्'' (वशि.स्मृ.)

इति. एवं च अत्र पूर्वोक्तवचनद्वयेऽपि उच्छिष्टकर्मकोच्छिष्टकर्तृकस्पर्शदोष: पुरुषस्यैव तस्यैव शुद्धिविधानात्. नतु [६]तत्सम्बन्धेन द्रव्यस्यापि दुष्टत्वम्. पुन: प्रचारस्य अनिधानस्य च उक्तत्वाद् द्रव्यत्यागस्य अनुक्तत्वाच्च इति ग्रन्थद्वयस्यापि तात्पर्यम्. तेन अभ्यवहार्यस्य गृहान्तर–देशान्तर–प्रेषणेऽपि साक्षात्स्पर्शो न भवेत् चेद् अदोषएव, अमेध्याशुचिप्रभृतिस्पर्शे तु त्यागएव इति शिष्टाचारात् प्रतिभाति. विष्णुपुराणे **''सम्प्रोक्ष्य विद्वान् गृह्णीयात् शूद्रान्नं गृहमागतम्''** (विष्णु.पुरा.)इति गृहागमनलिङ्गाच्च. तेन अमेध्याशुचिस्पर्शएव त्यागो नतु अन्यथा इति निश्चय:. अन्यच्च सदाचारचन्द्रोदये, तत्र अङ्गिरा:

''अरण्येऽनुदके रात्रौ चौरव्याघ्राकुले पथि,
कृत्वा मूत्रं पुरीषं च द्रव्यहस्तो न दुष्यति''. (अङ्गि.स्मृ.)

अत्र 'द्रव्य'पदम् अन्नस्यापि सङ्ग्राहकम्.

''शौचं तु कुर्यात् प्रथमं पादौ प्रक्षालयेत् तत:,
उपस्पृश्य तदभ्युक्ष्य गृहीतं शुचितामियात्'' ( )इति स्मृते:.

हलायुधे हारीत:

''कृत्वा मूत्रपुरीषं च द्रव्यहस्त: कथञ्चन,
भूमावन्नं प्रतिष्ठाप्य कृत्वा शौचं यथाविधि,
तत्संयोगात् तु पक्वान्नम् उपस्पृश्य तत: शुचिः''

[उद्ध.२१](आप.स्मृ.९।३४,३५)

इति. पक्वान्नं घृतपक्वं पुरुषसंयोगाद् यथा [७]तद् अशुचिभूतं तथा तत्संयोगात् शुच्यपि इति अर्थः. ''**प्रक्षाल्य पादौ निक्षिप्य आचम्याभ्युक्षणं पुनः, पुष्पादीनां तृणादीनां प्रोक्षणं हविषां तथा**'' इति. **निक्षिप्य** इति द्रव्यं भूमौ निधाय.

मार्कण्डेयस्तु शौचमपि अनिधायैव कार्यम् इति आह.

''**पक्वान्नेन गृहीतेन मूत्रोच्चारं करोति यः,**
अनिधायैव तद्द्रव्यम् अङ्के कृत्वा समाश्रितम्,
शौचं कृत्वा यथान्यायम् उपस्पृश्य यथाविधि,
अन्नम् अभ्युक्षयेच्चैव उद्धृत्यार्कस्य दर्शयेत्,
त्यक्त्वा ग्रासमथैतस्मात् शेषं शुद्धिम् अवाप्नुयात्'' (मार्क.स्मृ.)

इति च तत्र उपन्यस्तम्. एवं च मूत्रोच्चारादावपि यत्र दोषाभावः तत्र कुतस्तराम् उच्छिष्टस्पर्शे. किञ्च पक्वान्नं घृपक्वम् इति यद् व्याख्यातं तदपि युक्तमेव. राहुदर्शने ''**शृतमन्नं च वर्जयेद्**'' इति. निषेधसत्वेऽपि

''**आरनालं पयस्तक्रं दधि स्नेहाज्यपाचितम्,**
मरिकस्थोदकं चैव न दुष्येद् राहुसूतके''

इति घृतपक्वस्यैव अदुष्टत्वकथनेन अन्यत्रापि तस्यैव अदुष्टताया युक्तत्वाद् इति [८]वायुपुराणे[पा.भे.३] चातुर्मास्यमाहात्म्ये.

किञ्च अपरार्के आपस्तम्बः

''**अप्रयतोपहृतम् अन्नम् अप्रयतं नतु अभोज्यम् अप्रयते नतु शूद्रेण उपहतम् अभोज्यं यस्मिंश्च अन्ने केशः स्याद् अन्यद्वा अमेध्यैः अवमृष्टं कीटो वा अमेध्यसेवी मूषकलङ्गं[पा.भे.४] वा पदोपहतं सिचा वा शुना वा अपात्रेण वा दृष्टं सिचा वा उपहतं दास्या वा नक्तम् आहृतम्. भुञ्जानं वा यत्र शूद्र उपस्पृशेद् अनर्हद्भिः वा समानपंक्तौ भुञ्जानेषु वा यत्र अनुत्थाय उच्छिष्टं प्रयच्छेद् आचामेद् वा. कुत्सयित्वा यत्र अन्नं दद्युः मनुष्यैः अवघ्रातम् अन्यैर्वा अमेध्यैः**'' (आप.स्मृ.)

इति. अप्रयतं नतु अभोज्यम् इति. तथा च आग्न्यधिश्रयण-प्रोक्षण-हिरण्यस्पर्श-च्छागमुखस्पर्शान्यतमेन प्रयतं कृत्वा भोज्यम्. अशुचिना शूद्रेण स्पृष्टन्तु अभोज्यम्. मूषकलङ्गम्[पा.भे.५] इति तत्पुरीषं पुच्छादिकं वा सिचेति वस्त्रेण उपहतं दृष्टम् इति

अन्वयः. अनर्हद्भिः वा इति उपस्पृष्टम् इति अध्याहारः. स्फुटम् अन्यत्. अत्र अप्रयतशूद्रस्पर्शे अभोज्यत्वस्य उक्तत्वात् प्रयतशूद्रस्पृष्टपक्वान्नस्य भोज्यत्वानुज्ञा यद्यपि लभ्यते तथापि शिष्टा भगवत्प्रसादस्यैव तादृशस्य भोज्यत्वम् आद्रियन्ते न इतरस्य इति प्रसादव्यतिरिक्तं न भोज्यं, कलौ शिष्टाचारस्य स्मृत्यपेक्षया प्राबल्याद् इति.

२२. अथ घृतपाचितादीनां भक्ष्याभक्ष्यविचारः.

''घृतपक्वं तैलपक्वं मिष्टान्नं शूद्रसंस्कृतम्,
अभक्ष्यं ब्राह्मणानां च शूद्रभ्रष्टं त्रिपीटकम्'' (बृ.वै.पुरा.)

इति ब्रह्मवैवर्ते श्रीकृष्णजन्मखण्डे उक्तम्.

यत्तु सुमन्त्वङ्गिरसौ

''गौरसं चैव सक्तुंश्च तैलं पिण्याकमेव च,
अपूपान् भक्षयेत् शूद्राद् यच्चान्यत् पयसा कृतम्'' (आङ्गि.स्मृ.)

इति. पिण्याकं 'तिलकूटः' इति प्रसिद्धम्. पयसेति दुग्धेन.

हारीतः

''कन्दुपक्वं स्नेहपक्वं पायसं दधिसक्तवः,
[1]एतान्यशूद्रान्नभुजो भोज्यानि मनुरब्रवीत्'' (हारि.स्मृ.) इति.

शंखः

[2]**''अपूपाः सक्तवो धानाः तक्रं दधि घृतं मधु,**
एतत् पण्येन भोक्तव्यं भाण्डलेपो न चेद् भवेत्''

(शंखस्मृ.१।४।आह्निकप्रकरणम्)

इति तद् आपद्विषयम्. अन्यथा शूद्रान्नभोजननिषेधकवाक्ये विरोधाद् नापणीयम् अन्नमश्नीयाद् इति शङ्ख लिखितवाक्यविरोधाच्च इति अपरार्कः. सदाचार–चन्द्रोदयस्तु एतानि वचांसि लिखित्वा शूद्रगोरसाद्यपि तद्गेहाद् अन्यत्र नीत्वा भोक्तव्यम्

''घृतं तैलं तथा क्षीरं गुडं तैलेन पाचितम्,
नीत्वा नदीतटे विप्रो भुञ्जीयात् शूद्रभोजनम्'' (परा.स्मृ.११।१४)

इति पराशरोक्तेः इति आह. कश्चित्तु अलवणं स्नेहपक्वं सच्छूद्रस्य भोज्यं तेन वचसाम् अविरोधः इति आह. निर्णयामृतस्तु उक्तशङ्ख वचनात् पक्वान्नानाम् अभक्ष्यत्वम् इति आह. दिनकरोद्योते तु

''शूद्रेषु दासगोपाल–कुलमित्रार्धसीरिणाम्,
भोज्यान्नता गृहस्थस्य तीर्थयात्रातिदूरत:''

इति कलिवर्ज्येषु गणनात् कलावेव निषेध:. सोऽपि गृहस्थस्यैव न यति–ब्रह्मचारिणो:. अयं च पाकस्यैव निषेध:. ब्राह्मणादिषु शूद्रस्य पचनादिक्रिया [३]तथा इति कलिवर्ज्येषु पाकस्य च गणनाद् इति उक्तम्. तेन एतन्मते कलौ [पा.भे.६]शूद्रेण पाचितम् अन्नं गृहस्थेन ब्राह्मणादिना न भोक्तव्यम्. ब्राह्मणादिद्वारा पाचितं तु भोक्तव्यम्. ब्रह्मचार्यादिभिस्तु तेन पाचितमपि भोज्यम् इति आयाति. ममतु अन्यत् प्रतिभाति. देवलेन

''स्वदासो नापितो गोप: कुम्भकार: कृषीवल:,
ब्राह्मणैरपि भोज्यान्ना: पञ्चैते शूद्रयोनय:'' इति.

(देव.स्मृ.५[आह्निकं]।६८६)

याज्ञवल्क्येन च

''शूद्रेषु दासगोपाल–कुलमित्रार्धसीरिण:,
भोज्यन्ना नापितश्चैव यश्चात्मानं निवेदयेत्''इति.

(याज्ञ.स्मृ.१।१६६)

हारीतेन च

''कुलं मित्रं कुलपुत्रो भैक्षद: शिष्यक: सुहृत्,
भवेद् अस्य सुखं लाभे भयत्राता च यो भवेत्,
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना मनो यत्र विभाव्यते'' (हारि.स्मृ.)

इति अपरार्के अनेकेषां भोज्यान्नताकथनात्. कलिवर्ज्येषु तु दासादीनां चतुर्णामेव गणितत्वात् तदितरेषाम् उक्तानां शूद्राणां भोज्यान्नता यद्यपि प्राप्यते तथापि **''अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्ममप्याचरेद् न तु''** इति निषेधान्तरात् तत्पक्वान्नभोजनं न कार्यम्. किञ्च एतेषु वाक्येषु 'अन्न'पदात् पक्वम् अन्नमेव न भोज्यम्, पयोविकार ऐक्षवं फलादिकं तु भोज्यम् इति. अतएव मनुरपि

''नाद्याच्छूद्रस्य पक्वान्नं विद्वान् अश्नाद्धि नो द्विज:,
आददीतान्नमेवास्माद् अवृत्तावेकरात्रिकम्'' (मनुस्मृ.४।२२३)

इत्येव आह. किञ्च

''यथा जलं निर्गमनेष्वपेयं नदीगतं तत्पुनरेव पेयम्,
तथान्नपानं विधिपूर्वमागतं द्विजादिपात्रान्तरितं न दुष्यति''( )

इति अपरार्के स्मृत्यन्तरम्. सदाचारचन्द्रोदये च.

''यथा यतस्ततोऽप्याप: शुद्धिं यान्ति नदीगता:,

शूद्रात् विप्रगृहेष्वन्नं प्रविष्टं तु तथा शुचि'' इति.

स्मृत्यन्तरं तथा तत्रैव

''तावद् भवति शूद्रान्नं यावद् न स्पृशति द्विजः,

द्विजाग्र्यकरसंस्पृष्टं सर्वं तद् हविरुच्यते''

इति पराशरवाक्यं च. तेन यच्छूद्रस्य अन्नं तद् गृहे ब्राह्मणेन पाचितं ब्राह्मणेन शुचिप्रकारेण आनीय द्विजपात्रे स्थापितं चेत् तदा न दुष्यति. तथा सक्तवो धानाश्च शूद्रपक्वाअपि लोकविद्विष्टत्वाभावाद् न दुष्यन्ति. तथा अभोज्यान्नानां गृहेऽपि ततः आमं गृहीत्वा ब्राह्मणः स्वीयपात्रेण पक्त्वा भुङ्क्ते चेत् तदापि न दोषः.

सच्छूद्रलक्षणं तु सदाचारचन्दोदये बृहत्पराशरेण उक्तम्

''विशुद्धान्वयसञ्जातो निवृत्तो मद्यमांसयोः,

द्विजभक्तिर्वणिग्वृत्तिः सच्छूद्रः परिकीर्तितः'' (परा.स्मृ.६।३१३)इति.

आत्मनिवेदिगेहे स्वयंपचने तु सुतरां न दोषः. निवेदनोत्तरं तत्र तावन्मात्रे स्वत्वोत्पत्तेः इति.

२३. अथ उदकशुद्धिविचारः.

तत्र मनुः

''आपः शुद्धा भूमिगता वैतृष्ण्यं यत्र गोर्भवेत्,

अव्याप्ताश्चेद् अमेध्येन गन्धवर्णसमन्विताः'' इति.

(मनुस्मृ. ५।१२८)

एवं शिलागतमपि

''भूमिष्ठम् उदकं शुद्धं वैतृष्ण्यं यत्र गोर्भवेत्,

अव्याप्तं चेद् अमेध्येन तद्वदेव शिलागतम्'' (विष्णु.स्मृ.)

इति विष्णुवाक्यात्.

तथा नद्यादिभ्यः शुद्धपात्रोद्धृता अपि

''उद्धृता वा प्रशस्ताः स्युः शुद्धैः पात्रैर्यथाविधि,

एकरात्रोषितास्तास्तु (द्वितीयार्थे प्रथमा) **त्यजेद् आपः समुद्धृताः''** (देव.स्मृ.९)

इति पूर्वोक्तधर्मानुवृतौ देवलवाक्यात्. आपः इति विभक्तिव्यत्ययश्छान्दसः. अत्र ताः इति सर्वनाम्ना गोतृप्तिमात्रपर्याप्ता अल्पाएव परामृश्यन्ते. अतो बहूदकात्

तडागादेः उद्धृतानां रात्र्युषितानां न दोषः इति पारिजातः. एतदपि अनुषितोदकासम्भवे. अत्र पर्युषितजलवर्जनं तीर्थोदकव्यतिरिक्तविषयम्. ''**तीर्थतोयं न दुष्येत करकादिस्थितं सदा**'' इति मर्यादसिन्धौ वचनात्. एवं चरणामृतेऽपि तीर्थत्वाद् बोध्यम्. तथा अपरार्के देवलः.

''**अक्षोभ्यानामपां नास्ति प्रसृतानां च दूषणम्,**
स्तोकानाम् उद्धृतानां च कश्मलैर्दूषणं भवेत्,
अक्षोभ्यानि तडागानि नदी वाप्यः सरांसि च,
कश्मलाशुचिसंस्पर्शे तीर्थतः परिवर्जयेत्'' (देव. स्मृ. ९)

इति. अत्र अमेध्ययुक्तः प्रदेशः तीर्थम्. क्वचित् तु चाण्डालाद्यशुचिस्पृष्टः इति पाठः. तदा तीर्थम् अवतरणमार्गः. गन्धाद्ययुक्ताः शुद्धा इति अनुवृत्तौ पैठीनसिः विपर्यस्तं महोदकमपि वर्ज्यम् इति आह. उद्धृतेषु तु विशेषं यम आह.

''**प्रपामरण्ये घटगं च कूपे द्रोण्यां जलं कोशगतास्तथापः,**
ऋतेऽपि शूद्रात् तदपेयमाहुः आपद्गतो भूमिगताः पिबेत्तु''

इति. प्रपा जलसत्रशाला. घटगं घटस्थं. घटकम् इति जलोद्धरणार्थं स्थापितः सर्वसाधारणो घटः. द्रोणी अश्मादिमयी सर्वार्था जलपात्री, काष्ठाम्बुवाहिनी वा. कोशो दृतिः. द्विजातिपतिकमपि अरण्यगतमपि प्रपादिगतं जलं शूद्रव्यतिरिक्तैः अपेयम्. आपदि तु शुद्धभूमौ क्षिप्तं पेयम् इति वाक्यार्थः. तादृशस्य भूगतस्यापि क्वचिद् अपवादम् आह मर्यादासिन्धौ हारीतः. भूगाः पुण्या अपो[पा.भे.७] अशुभागमनवर्जं यदि तदरण्ये गतं प्रपादि स्यादिति अरण्यप्रपादिजलं शुद्धभूगतमपि अशुभागमने सति वर्ज्यम् इति अर्थः.

२४. [१]अथ जलाशयशुद्धिविचारः.

देवलः

''**श्वशृगालखरोष्ट्रैश्च क्रव्याद्भिश्च जुगुप्सितम्,**
उद्धरेद् उदकं सर्वं पञ्च पिण्डान् मृदस्तथा'' इति.

(देव.स्मृ.९।जलशुद्धिः)

ब्राह्मे च

''**येषाम् अभक्ष्यं मांसं च तच्छरीरैर्युतं च यत्,**
वापीकूपतडागेषु जलं सर्वं हि दुष्यति'' (देव.स्मृ.९।जलशुद्धिः)

शरीरैः मृतशरीरैः.

''सकर्दमं सकुणपं तेभ्यस्तोयम् अपास्य तत्,
प्रक्षिपेत् पञ्चगव्यं च समन्त्रं सर्वशुद्धिकृत्,
अपास्य कुणपं तेभ्यो बहुतोयेभ्यएव च,
शतं षष्ट्यथवा त्रिंशत् तोयकुम्भान् समुद्धरेत्,
पञ्चगव्यं ततस्तेषु प्रक्षिपेत् मन्त्रसंयुतम्'' इति.

(देव.स्मृ.९।जलशुद्धिः)

वापी सोपानयुक्तो जलाशयविशेषः.

जमदग्निः.

''वापीकूपतडागेषु स्वल्पेषु स्थावरेषु च,
स्थूलसूक्ष्मप्राणिशवे क्लिन्ने जीर्णे च तज्जलम्,
सर्वम् उद्धृत्य सूत्खातं पञ्चगव्यं ततः क्षिपेत्,
पाषाणैरिष्टकाभिर्वा दहेत् तत्स्थानमेव तु,
सरबद्धे तु सम्प्रोक्ष्य विप्राशीर्वचनं तथा,
बहूदके तु दुष्टेऽस्मात् कलशान् षष्टिमुद्धरेत्,
सूक्ष्मास्थिप्राणिभिर्दुष्टे त्रिंशत् कुम्भांस्तथोद्धरेत्''. (जम.स्मृ.)

कूपविषये विष्णुः

''मृतपञ्चनखात् कूपाद् अत्यन्तोपहतात् तथा,
अपः समुद्धरेत् सर्वाः शेषं शस्त्रेण शोधयेत्'' (विष्णुस्मृ.)

शस्त्रेण कुद्दालादिना.

''वह्निप्रज्वालनं कृत्वा कूपे पक्वेष्टकाचिते,
पञ्चगव्यं न्यसेत् पश्चात् नवतोयसमुद्भवे,
जलाशये तथाल्पेषु स्थावरेषु वसुन्धरे,
कूपवत् कथिता शुद्धिः महत्सु च न दूषणम्''.

स्थावरेषु प्रवाहहीनेषु. वसुन्धरे वसुन्धरायाम् इति अर्थः. क्वचित्तु 'महीतले' इति पाठः.

आपस्तम्बः

''उपानच्छ्लेष्मविण्मूत्र–स्त्रीरजोऽमेध्यमेव च,

एभिश्च दूषिते कूपे कुम्भानां षष्टिमुद्धरेत्'' (आप.स्मृ)

बृहस्पतिः

''अस्थिचर्मविनिर्मुक्तैः दूषितैः श्वखरादिभिः,
उद्धृत्य तज्जलं सर्वं शोधनं परिमार्जनम्,
वापीकूपतडागेषु दूषितेषु विशोधनम्,
घटानां शतमुद्धृत्य पञ्चगव्यं ततः क्षिपेत्'' [उद्ध.२९] (अत्रिस्मृ.२२७,२६).

परिमार्जनम् अपद्रव्यनिरसनम्. **अस्थिचर्मविनिर्मुक्तैः** चिरवासेन विशीर्णैः इति अर्थः. अत्र इयं व्यवस्था. सर्वजलोद्धरणं तु स्वल्पतोये. एकस्मिन्नेव उपघाते यल्लघुगुरुशोधनं [२]तद् दूष्याऽनल्पत्वाल्पत्वापेक्षया [पा.भे.८] दूषकलघुत्वगुरुत्वापेक्षया च. अत्यन्तमहत्सु च उपघाते तदुपघातकयुक्तदेशातिरिक्तदेशे दोषाभावएव. कुम्भानां तु स्वल्पमध्याधिकोद्धरणं तदपि तोयतारतम्यापेक्षया इति. तेन बहुजले कूपे यदि मूषकादिसूक्ष्मप्राणिशवस्य जलदौर्गन्ध्यादिना सन्देहः तदा उक्तजमदग्निवाक्यात् त्रिंशदादिकुम्भजलोद्धरणात् पूर्वं तेन जलेन स्नानसन्ध्यादिकरणेऽपि निश्चयात्मक-ज्ञानाभावाद् न पापापत्तिः. ज्ञानोत्तरं तु उद्धरणकुम्भस्य मार्तिकत्वे त्यागो धातवीयत्वे अग्निज्वालादिसंस्पर्शो अम्लादिभिः मार्जनं च इति मे भाति.

अथ बृहस्पतिः.

''उच्छिष्टं मलिनं क्लिन्नं यच्च विष्ठानुलेपितम्,
अद्भिः शुद्ध्यति तत्सर्वम् अपां शुद्धिः कथं भवेत्,
सूर्येन्दुरश्मिपातेन मारुतस्पर्शनेन च,
गवां मूत्रपुरीषेण शुद्ध्यन्त्याप इति स्थितिः''. (बृह.स्मृ.)

यमः

''अजा गावो महिष्यश्च ब्राह्मण्यश्च प्रसूतिकाः,
दशरात्रेण शुद्ध्यन्ति भूमिष्ठं च नवोदकम्''

(देव.स्मृ.९।तैजसादिद्रव्यशुद्धिः).

अत्र 'भूमिष्ठ'पदम् अन्तरिक्षजलव्यावृत्त्यर्थम्.

बृहत्पराशरः

''वन्दत्यपां पवित्रत्वं दिवार्करश्मिवायुभिः,
मुनयो धर्मवेत्तारो रात्रौ चन्द्रांशुमारुतैः'' (वृ.परा.स्मृ.८।२६३) इति.

म्लेच्छादिखातजलविषये आपस्तम्बः

''म्लेच्छादीनां जलं पीत्वा पुष्करिण्यां ह्रदेऽपि वा,
जानुदघ्नं शुचि ज्ञेयम् अधस्ताद् अशुचि स्मृतम्,
तत्तोयं यः पिबेद् विप्रः कामतोऽकामतोऽपि वा,
अकामाद् नक्तभोजी स्याद् अहोरात्रं तु कामतः'' (आप.स्मृ.)

इति मर्यादसिन्धूक्ता उदकशुद्धिः.

२५. अथ भूशुद्धिविचारः.

तत्र मर्यादासिन्धौ अपरार्के च देवलः

''पञ्चधा वा चतुर्धा वा भूरमेध्या विशुद्ध्यति,
दुष्टा द्विधा त्रिधा वापि शुद्ध्यते मलिनैकधा''

(देव.स्मृ.९।भूमिशुद्धिः).

अशुद्धा भूमिः अमेध्य-दुष्ट-मलिनभेदेन त्रिधा. तत्र अमेध्यां तच्छुद्धिं च आह सएव

''प्रसूते गर्भिणी यत्र म्रियते यत्र मानुषः,
चण्डालैरुषितं यत्र-यत्र विन्यस्यते शवः,
विण्मूत्रोपहतं यत्र कुणपो यत्र दृश्यते,
एवं कश्मलभूयिष्ठा भूरमेध्येति लक्ष्यते,
दहनं खननं भूमेरुपलेपनवापने,
पर्जन्यवर्षणं चेति शौचं पञ्चविधं स्मृतम्'' इति.

(देव.स्मृ.९।भूमिशुद्धिः)

अपरार्के तु 'वापन'स्थाने 'धावनं' पठितम्. दहनं तृणकाष्ठादिप्रक्षेपेण ज्वालनम्. खननं तक्षणं शस्त्रादिना उल्लेखनं वा. उपलेपनं गोमूत्रभस्मगोमयादिना. वापनं मृदन्तरेण पूरणम्. एतन्मध्ये पञ्चभिः चतुर्भिः वा अमेध्या भूः शुद्धा भवति. दुष्टां मलिनां च सएव आह

''कृमिकीटपदक्षेपैः दूषिता यत्र मेदिनी,
द्रप्सापकर्षणोच्छिष्टैः घातैर्वा दुष्टतां व्रजेत्,
नखदन्ततनूजत्वक्-तुषपांसुरजोमलैः,
भस्मपङ्कतृणैर्वापि सम्पन्ना मलिना भवेत्'' इति.

अपरार्के मिताक्षरायां च

''श्वसूकरखरोष्ट्राद्यैः संस्पृष्टा दुष्टतां व्रजेत्,

अङ्गारतुषकेशास्थि–भस्माद्यैः मलिना भवेत्''

इति पाठः. पूर्वपाठे 'द्रप्सा'पदेन घनीभूतः श्लेष्मा उच्यते. तत्र दुष्टाया दहनादित्रयेण द्वयेन वा शुद्धिः. अत्र अपरार्के विकल्पो व्यवस्थापितः. तत्र श्मशानभुवः पञ्चभिः शुद्धिः. तदन्यस्या अमेध्याया वर्षणवर्जितैः चतुर्भिः. चिरकालं दुष्टाया दहन–खननोपलेपनैः त्रिभिः. अचिरकालं दुष्टाया उल्लेखनदाहाभ्याम्. चिरं मलिनाया उल्लेखनेनैव इति. विज्ञानेश्वरस्तु मार्जनानुलेपनयोः सर्वत्र समुच्चयम् आह. एवम्, अचिरं मलिनाया उपलेपनेन धावनेन वर्षणेन वा इति बोध्यम्.

यमस्तु

''खननात् पूरणाद् दाहाद् अभिवर्षणलेपनात्,

गोभिराक्रमणात् कालाद् भूमिः शुद्ध्यति सप्तधा''(यम.स्मृ.   )

इति आह. याज्ञवल्क्योऽपि

''भूशुद्धिः मार्जनाद् दाहात् कालाद् गोक्रमणात् तथा,

सेकाद् उल्लेखनात् लेपाद् गृहं मार्जनलेपनात्'' इति.

(याज्ञ.स्मृ.१।१८८)

मनुस्तु

''सम्मार्जनेनाञ्जनेन सेकेनोल्लेखनेन च,

गवां च परिवासेन भूमिः शुद्ध्यति पञ्चभिः'' (मनुस्मृ.५।१२४).

सम्मार्जनम् अवकारापनयनम्. अञ्जनं गोमयोपलेपनम्. सेको जलेन प्रक्षालनं वर्षणं वा. उल्लेखनं कश्मलापनयनहेतुः तक्षणम्. गवां परिवास एकाहमात्रं गोष्ठीकरणम्. अत्र सेकगोवासयोः निर्लेपविषयत्वम् अन्येषाम् अमेध्यालिप्तविषयत्वम् इति मर्यादासिन्धुः. मेधातिथिस्तु, मूत्रपरीषादिलेपे उल्लेखन–मार्जने. सेको नदीपुलिन–वनादिषु. आवपनन्तु अस्थ्याद्युद्धृत्य मृदन्तरप्रक्षेपः. श्मशानादिभुवस्तु सर्वं कर्तव्यम् इति आह. बौधायनस्तु अत्र विशेषम् आह. घनाया भूमेः उपघाते उपलेपनम्. सुषिरायाः कर्षणम्. क्लिन्नाया अमेध्यम् आहृत्य प्रच्छादनम्. ऊर्ध्वं शवोपघाते भित्तितक्षणम्. सूर्यरश्मिप्रवेशो अग्निज्वालाभिमर्शनम्. चतुर्भिः शोध्यते भूमिः गोभिराक्रमणात् खननाद् दहनाद् अभिवर्षणात् पञ्चमाच्च उपलेपनात् षष्ठात् कालाद् इति. घना निबिडावयवा. सुषिरा सच्छिद्रा. क्लिन्ना अमेध्यार्द्रा. अत्र घनाया इत्यादौ सर्वत्र उपघातः इति अस्य सम्बन्धः. अमेध्यम् आहृत्य इति. अमेध्यम् उद्धृत्य शुद्धमृदादिना प्रदेशपूरणम्. कालो अत्र लेपादिक्षयहेतुः तस्मात् यमः

''अरथ्या वसुधा मेध्या ग्राममध्ये क्वचित्–क्वचित्,

सर्वत्र वसुधा मेध्या यत्र लेपो न दृश्यते'' (यमस्मृ.) इति.

ब्राह्मे तु

''ग्रामाद् दण्डशतं त्यक्त्वा नगराच्च चतुर्गुणम्,
भूमिः सर्वत्र शुद्धा स्याद् यत्र लेपो न दृश्यते'' (ब्रह्म.)

इति विशेषः उक्तः.

भविष्यपुराणे

''वापयेद् यत्र नीली तु तावती त्वशुचिर्मही,
प्रमाणं द्वादशाब्दानि तत ऊर्ध्वं शुचिर् भवेत्'' (भवि.पुरा.)इति.

यमः

''ब्राह्मणावसथे भूमिर् देवागारे तथैव च,
मेध्या चैव सदा मन्ये गवां गोष्ठे तथैव च'' (यम.स्मृ.)

इति. सदा इति गोमयाद्युपलेपाभावेऽपि इति अर्थः. एतच्च अनुपहत–भूमिविषयम्. बौधायनः **''अनेकपुरुषोद्धार्ये दारुशिले भूमिसमे इष्टकाश्च सङ्कीर्णीभूता''** (बौधा.स्मृ.)इति. भूमिसमे इति भूशुद्धिसमानशुद्धिः. सङ्कीर्णभूता इति सुधादिना मिथः सम्बद्धाः. प्रतिलोमजबद्धाअपि न अशुद्धा इति मर्यादासिन्धुः. एतेषां चण्डालादिस्पर्शे भूशुद्धिवदेव शुद्धिः कार्या इति अपरार्कः.

२६. अथ गृहशुद्धिविचारः.

तत्र मर्यादासिन्धौ मनुः **''मार्जनोपाञ्जनैर्वेश्म''** इति अत्र शुद्ध्यति इति अनुषङ्गः. मार्जनं मार्जन्या मृत्तृणकाष्ठाद्यपनयनं, गृहस्य धूमान्धकाराद्यपनयनं च. उपाञ्जनं सुधागोमयादिभिः भूमिभित्तिविलेपनम्. एतच्च शवचाण्डालादिभिः भित्तिस्पर्शे व्यापिनि द्रष्टव्यम्. अव्याप्तौ तु तावन्मात्रमपि. याज्ञवल्क्येन तु भूशुद्धिम् उपक्रम्य तत्रैव तस्मिन्नेव श्लोके **''गृहं मार्जनलेपनाद्''** इति पुनः मार्जनं लेपनं च उक्तं तद् गृहस्य प्रत्यहं मार्जनलेपनप्राप्त्यर्थं वेदितव्यम्.

शवदूषिते तु संवर्तः

''गृहशुद्धिं प्रवक्ष्यामि अन्तःस्थशवदूषिते,
प्रोत्सृज्य मृण्मयं भाण्डं सिद्धिम् अन्नं तथैव च,
गृहादपास्य तत्सर्वं गोमयेनोपलेपयेत्,

गोमयेनोपलिप्याथ छागेनाक्रामयेद् बुधः,
ब्राह्मणैः मन्त्रपूतैश्च हिरण्यकुशवारिणा,
सर्वम् अभ्युक्षयेद् वेश्म ततः शुद्ध्यत्यसंशयम्'' इति.

अन्त्यादीनां गृहमरणे बृहद्यमः

''**श्वशूद्रपतितेऽन्त्ये च मृते मासचतुष्टयम्,**
अत्यन्ते वर्जयेद् गेहम् इत्येवं मनुरब्रवीत्''

इति. **अन्त्यो** म्लेच्छः. **अत्यन्तः** चण्डालः इति मर्यादासिन्धुः. सएव

''**द्विजस्य मरणे वेश्म संशुद्ध्येत्तु दिनत्रयात्,**
दिनैकेन बहिर्भूमिर् अग्निप्रोक्षणलेपनैः''

इति. अत्र यथोक्तशोधनानन्तरमपि मन्त्रप्रोक्षणं कार्यं प्रागुक्तसंवर्तोक्तेः. चण्डालादेः गृहे वासे लघुपराशरः

''**अविज्ञातस्तु चण्डालो निवसेद् यस्य वेश्मनि,**
विज्ञाते चोपसन्नस्य द्विजाः कुर्युरनुग्रहम्''   (परा.स्मृ.६।३२)

इति उपक्रम्य

''**आकारे तु भवेच्छुद्धिरारकूटे सकांस्यके,**
जलशौचं तु वस्त्राणां परित्यागस्तु मृण्मये,   (३७)
कुसुम्भगुडकार्पास–लवणं दधिसर्पिषी,
द्वारि कृत्वा तु धान्यानि गृहे दद्याद् हुताशनम्,   (३८)
ज्वालास्पृष्टं तु तत्सर्वं शुचि तन् मनुरब्रवीत्,(?)
रजकी चर्मकारी च लुब्धकी वेणुपुष्कसी,
चातुर्वर्ण्यगृहेष्वेवम् अज्ञाता यदि तिष्ठति,   (४१)
ज्ञात्वा तु निष्कृतिं कुर्यात् पूर्वोक्तस्यार्धमेव च,
गृहदाहं न कुर्वीत शेषं सर्वं तु कारयेत्,   (४२)
गृहस्याभ्यन्तरं गच्छेत् चाण्डालो यस्य कस्यचित्,
तस्माद् गेहाद् विनिःसृत्य भाण्डान्यपि च वर्जयेत्,(४३)
रसपूर्णं तु यद् भाण्डं न त्यजेत्तु कदाचन,
गोमयोदकलेपेन प्रोक्षयेत् तद्गृहं तथा''   (परा.स्मृ.६।३७–४४)

इति. उपसन्नस्य इति प्रायश्चित्तार्थं कृतपर्षदुपस्थानस्य. आकार इति द्रवीकृत्य पुनराकारकारणम्[पा.भे.९]. आरकूट इति. पित्तले हुताशनदानस्यैव व्याख्यानं ज्वालास्पृष्टं कृत्वा इति. इयं शुद्धिः चातुर्वर्ण्यस्य तुल्या, अग्रिमश्लोके तथावक्ष्यमाणत्वात्. निष्कृतिस्तु

प्रायश्चित्तप्रकरणाभावाद् इह न लिख्यते. स्मृतिं दृष्ट्वा ज्ञेया. रसाश्च गुडलवणादयो नतु दधिपयस्तक्रादय:. तेषां त्याज्यत्वात्. तद् आह च्यवन:

''चाण्डालसङ्करे स्वभवनदहनं पावनम्. सर्वमृद्भाण्ड–
भेदनम्. दारवाणां तु तक्षणं, शंखशुक्तिरजतचैलानाम् अद्भि:
प्रक्षालनम्. कांस्यताम्राणाम् आकारे शुद्धि:. सौवीरपयोदधि–
तक्राणां परित्याग:. शेषरसद्रव्यरक्षणम्'' इति.

मरीचिरपि

''गृहेष्वजातिसंवेशे शुद्धि: स्याद् उपलेपनात्,
संवासो यदि जायेत दाहतापैर्विनिर्दिशेत्'' (मरी.स्मृ.   ) इति.
''धान्यानि सर्वबीजानि गुडादिरस एव च,
कुसुम्भकार्पासमथो शुद्ध्येद् वार्यग्निशोधनात्''

इति. अजातिश्चाण्डालादि:. संवेश: प्रवेश:, शयनम् इति केचित्. संवासः चिरकालावस्थानम्. वार्यग्निशोधनं वारिणाभ्युक्षणम् अग्निना पर्यग्निकरणम् इति अपरार्क:. एवञ्च गृहे देवालयादौ वा यदि दुष्टै: पश्वादिः मार्यते उष्यते वा तदा कश्मलभूशुद्धिं पञ्चविधां चतुर्विधां वा विधाय पावमानीप्रभृतिभिः हिरण्यकुशवारिणा गोमूत्रादिभिश्च प्रोक्ष्य यथाशक्तिब्राह्मणभोजनं चाण्डालसंवासे पराशरोक्तं त्रिंशद्गावो वृषं च एकं तेभ्यो दत्वा पुनर्वासं देवायतनं च कुर्याद् इति प्रतिभाति.

२७. अथ रथ्यादिशुद्धिविचार:.

पराशर:

''रथ्याकर्दमतोयानि नाव पन्थास्तृणानि च,
मारुतार्केण शुद्ध्यन्ति निशि चन्द्रर्क्षमारुतै:''(बृ.परा.स्मृ.८।३३९)इति.

याज्ञवल्क्यः

''रथ्याकर्दमतोयानि स्पृष्टान्यन्त्यश्ववायसै:,
मारुतेनैव शुद्ध्यन्ति पक्वेष्टकचितानि च'' (याज्ञ.स्मृ.१।१९७)

इति. अत्र बहुवचनं तद्गतगोमयशर्करादिप्राप्त्यर्थम्. पक्वेष्टकचितानि धवलगृहादीनि चण्डालादिस्पृष्टानि मारुतेनैव शुद्ध्यन्तीति कथनं पूर्वविहितस्य संहतप्रोक्षणस्य निवृत्त्यर्थम्. तृणकाष्ठपर्णमयानां तु प्रोक्षणमेव इति विज्ञानेश्वर:. एवं च **''अरथ्या वसुधा मेध्या''** इति पूर्वोक्तयमवाक्यस्य भोजनादौ रथ्याया अमेध्यता–बोधकत्वात् न विरोध:.

२८. अथ प्रकीर्णशुद्धिविचार:.

तत्र मर्यादासिन्धौ शंख:

''नारीणां चैव वत्सानां शकुनीनां शुनां मुखम्,

रतौ प्रस्रवणे वृक्षे मृगयायां सदा शुचिः'' (शंखस्मृ.१।शुद्धिप्रकरणम्)

इति. अत्र सर्वत्र लालासंसर्गकृतदोषापवादः. तत्रापि वत्सस्थले **''गावो मेध्या मुखादृते''** इत्यस्यापि अपवाद:. 'वत्स'पदं बालस्य उपलक्षणार्थम्. **''बालैरनुपरिक्रान्तं नित्यं मेध्यमिति स्थिति:''** इति वचनाद् इति विज्ञानेश्वर:. **शकुनि:** काकादि-विड्भुगतिरिक्तः इति मेधातिथि:. मन-विष्णू :

''नित्यं शुद्धः कारुहस्त: पण्यं यच्च प्रसारितम्,

ब्रह्मचारिगतं भैक्षम् आकरा: सर्वएव हि''

इति. अत्र हस्तो अमेध्यानुपहतो ज्ञेय:. प्रसारितम् इति नानाक्रेतृसंस्पर्शोपघात-दोषनिरासार्थम्. एतेन गृहस्य व्यावृत्ति:. शेषं प्रागेव व्याख्यातम्.

बौधायन:

''अदुष्टा संततं धारा वातोद्भूताश्च रेणव:'' (देव.स्मृ.९।११) इति.

यम:

''गौरश्वोविप्रुषश्छाया मक्षिका: शलभा: शुका:,

अजो हस्ती रणे छत्रं रश्मयश्चन्द्रसूर्ययो:,

भूमिरग्नी रजो वायुरापो दधि घृतं पय:,

सर्वाण्येतानि शुद्धानि स्पर्शे मेध्यानि सर्वश:'' (यमस्मृ.)

इति. यतः एतानि सर्वदा शुद्धानि ततो अशुचिस्पर्शेऽपि मेध्यानि इति अर्थ:. अत्र गोप्रभृतीनां स्पर्शे शुचित्वेऽपि याज्ञवल्क्येन **''अजाश्वं मुखतो मेध्यं न गौर् न नरजा मला:''** (याज्ञ.स्मृ.१।१९४) इति विशेषकथनात् तयोः मुखं विशेषेण शुद्धम् इति पात्रादीनां तत्स्पर्शेन शुद्धौ उपयुज्यते. विप्रुषां शुचित्वं नखाग्रादिच्युतव्यतिरिक्तविषयम्. लिङ्गपुराणे

''नखाग्रकेशनिर्धूत-स्नानवस्त्रदशोदकम्,

अश्रीकरम् अपुण्यं च अशुद्धं संस्पृशेद् यद्यदि'' (लिङ्गपुरा.)

इति तत्स्पर्शे दोषकथनाद् इति मर्यादसिन्धु:. विप्रुषः सूक्ष्मा जलकणाः तासां शुचिजलप्रभवानामपि चण्डालाद्यङ्गसङ्गिनां वायुना नीयमानानाम् अशुचित्वशङ्कायां [पा.भे.१०]शुचित्वे विधिः अयम् इति अपरार्क:. यत्तु याज्ञवल्क्य: **''मुखजा विप्रुषो मेध्याः तथाऽऽचमनबिन्दव:''** (याज्ञ.स्मृ.१।१९५) इति प्राह तत्र विशेष:.

''न मुख्या विप्रुष उच्छिष्टं कुर्वन्ति न चेद् अङ्गे निपतन्ति''

इति वसिष्ठवाक्यात्.

''स्पृशन्ति बिन्दवः पादौ य आचामयतः परान्,
भौमिकैस्ते समा ज्ञेया न तैरप्रयतो भवेत्'' (मनु.स्मृ.५।१४२)

इति मनुवाक्याच्च बोध्यः. एवं च अङ्गवद् भगवद्भोगसामग्र्यादौ तत्तत्पातेऽपि अशुचित्वं बोध्यम्. सर्वत्र जगन्नाथादिमहास्थलेषु पाकादिसेवाकर्तृणां मुखप्रावरणबन्धन-शिष्टाचाराद् इति.

छायायाः शुचित्वं चाण्डालादिच्छायाव्यतिरिक्तविषयम्.

''चाण्डालपतित-च्छायां स्पृष्ट्वा स्नानं समाचरेत्''

इति स्मृत्यन्तरे.

''यदि छायां श्वपाकस्य ब्राह्मणो ह्यधिरोहति,
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति''

इति अङ्गिरो वाक्ये.

''दीपमञ्चकयोश्छाया बोधिच्छाया तथा निशि,
तथा नीचजनच्छाया हन्ति पुण्यं पुराकृतम्''

इति स्मृत्यन्तरे च तासां दुष्टत्वकथनात्. एवं च वितानशिबिरादिच्छायासु दोषाभावात् तत्र भोजनादिकरणे दोषाभावः.

यत्तु, **''चण्डालपतितच्छाया स्पर्शे दुष्टा तु नो भवेत्''** इति ब्राह्मं तत्तु अकामतः स्पर्शविषयं चतुर्युगादिपरिमाणाधिकच्छायाविषयं च इति न विरोधः. अग्निश्चण्डाल-शवाग्न्यादिव्यतिरिक्तः. एवं भूमिरापो दध्यादि च. रजोपि अजादिव्यतिरिक्तम्. तद् आह शातातपः

''रेणवः शुचयः सर्वे वायुना समुदीरिताः,
अन्यत्र रासभाजाविश्वसमूहनिवाससाम्'' (शाता.स्मृ.)

इति. समूहनी सम्मार्जनी. एतच्च रेण्वन्तरस्यापि उपलक्षणम्.

''श्वकाकोष्ट्रखरोलूक-सूकरग्राम्यपक्षिणाम्,
अजाविरेणुसंस्पर्शाद् आयुर्लक्ष्मीश्च हीयते''

इति मिताक्षरायां स्मृत्यन्तरात्. तत्स्पर्शे सम्मार्जनं कार्यम् इति विज्ञानेश्वरः. पवित्रास्तु रेणवो मर्यादासिन्धौ गारुडे उक्ताः

''गजाश्वरथधान्यानां गवां चैव रजः शुभम्''.

तथा

''गवां रजो धान्यरजः पुत्रस्याङ्गभवं रजः,

एतद्रजो महाशस्तं महापातकनाशनम्''

इति. धूमोऽपि शुद्धः. ''**धूमाग्निरजांसि वाय्वीरितानि शुद्धानि**'' इति अपरार्के शंखवाक्यात्. मक्षिकाग्रहणम् अवर्जनीयस्पर्शानां दंशमशकपिपीलिकादीनाम् उपलक्षणार्थम् इति अपरार्कः. वायुस्तु वहन् शुद्धो न तु वस्त्रदशादिजन्यः

''**शिग्वातः शूर्पवातश्च वातः पाण्योर्मुखस्य च,**
सुकृतानि हरन्त्येते संस्पृष्टाः पुरुषस्य च'' (लिङ्गपुरा.)

इति मर्यादासिन्धौ लैङ्गात्.

शिग्वस्त्रदशा, बृहस्पतिः

''**द्राक्षेक्षुयन्त्राकरकारुहस्ता गोदोहनी यत्र विनिःसृतानि,**
बालैरथ स्त्रीभिरनुष्ठितानि प्रत्यक्षदृष्टानि शुचीनि तानि''

(बृह.स्मृ.)

इति. स्वल्पोपहतियुक्तैः बालैः स्त्रीभिश्च यानि कृतानि तानि अशुचिभिः कृतानि इति प्रत्यक्षतो दृष्टान्यपि शुद्धानि इति व्याख्यातं मर्यादसिन्धौ.

देवलः

''**गोशकृच्छुद्धदेशस्थं श्मशानादुद्धृतं शिवम्,**
अग्राम्या मृद्भवेत् शुद्धा शुक्रविण्मूत्रवर्जिता'' (देव.स्मृ.९।१९)

इति मर्यादासिन्धुप्रभृतिषु अन्यान्यपि स्त्र्यादिशुद्धिबोधकवाक्यानि बहूनि सन्ति तानि अनुपयुक्तत्वाद् न लिख्यन्ते. इति प्रकीर्णशुद्धिः.

२९. अथ आत्मशुद्धिविचारः.

सा च क्षेत्रज्ञस्य ईश्वरज्ञानाद् इति याज्ञवल्क्येन.

''**ज्ञानं तपोऽग्निराहारोमृण्मनोवार्युपाञ्जनम्,**
वायुः कर्मार्ककालौ च शुद्धेः कर्तॄणि देहिनाम्'' इति

(मनुस्मृ.५ । १०५)

मनुना च श्रवणमननादिरूपज्ञानेन उक्ता. तथापि भगवता एकादशस्कन्धस्य एकविंशे ''**मत्स्मृत्या चाऽऽत्मनः शौचं शुद्धः कर्माचरेद् बुधः**'' (भाग.पुरा.११।२१।१४) इति कथनात्.

तृतीयस्कन्धेऽपि

''**यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद् यत्प्रह्वणाद् यत्स्मरणादपि क्वचित्,**

श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते कुतः पुनस्ते भगवन्नुदर्शनात्''

(भाग.पुरा.३।३३।६) इति.

द्वादशस्कन्धेऽपि

''विद्यातपःप्राणनिरोधमैत्री–तीर्थाभिषेकव्रतदानजाप्यैः,

नात्यन्तशुद्धिं लभतेन्तरात्मा यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते''

(भाग.पुरा.१२।३।४८)इति.

षष्ठस्कन्धेऽपि श्रीशुकैः सर्वपापानां निःशेषनिवारकतया भक्तिरेव उक्ता

''केचित् केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः,

अघं धुन्वन्ति कार्त्स्न्येन नीहारमिव भास्करः,

न तथा ह्यघवान् राजन् पूयेत तपआदिभिः,

यथा कृष्णार्पितप्राणः तत्पूरुषनिषेवया'' (भाग.पुरा.६।१।१६)

इति कथनाच्च आत्मशोधने भक्तिरेव दृढः उपायः. न च ज्ञानेन अस्या विकल्पः इति शङ्क्यम्. तत्त्वावमर्शनस्य प्रायश्चित्तत्वकथने **''वेणुगुल्ममिवाऽनलः''** (भाग.पुरा.६।१।१४) इति दृष्टान्ते[पा.भे.११] किञ्चित्कालोत्तरं पुनःप्रोहसूचनाद् भक्तौ च **''नीहारमिव भास्करः''** इति दृष्टान्तेन निःशेषपाप–नाशसूचनात्. ज्ञानोत्तरं भक्तेः कथनेन तत्पोषणाय अजामिलोपाख्यानोपन्यासेन तत्र च शैवस्य अगस्त्यस्य सम्मतिप्रदर्शनेन ज्ञानापेक्षयापि भक्तेरेव आधिक्यस्य भगवद्भक्तान् प्रति साधितत्वाच्च. किञ्च, लिङ्गशरीरस्यापि शुद्धिः आहारशुद्ध्या तच्छुद्धिश्च ज्ञानोपयोगिनी. **''आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः''** (छान्दो.उप. ७।२६।२) इति छान्दोग्यश्रुतेः. सत्त्वञ्च अन्तःकरणम्. तथा **''अन्नमयं हि सौम्य मनः, आपो मयः प्राणः तेजोमयी वाग्''** (छान्दो.उप.६।५।४) इत्यपि छान्दोग्ये मनःप्राणवाचाम् आहारपरिणामत्वं तत्पोषितत्वं च अभिप्रेतम्. आहारशुद्धिश्च स्ववर्णाश्रमवृत्त्या सम्पादितान्नेन. तस्य च सिद्धस्य भगवत्समर्पणानन्तरं प्रसादतया तद्भोजनेन. तदुक्तं हरिवल्लभसुधोदयनिबन्धे ब्रह्माण्डे

''पादोदकं पिबेद् नित्यं तन्निवेदितमग्रतः,

अद्याद् आत्मविशुद्ध्यर्थं सर्वकामाप्तये तथा'' इति.

पाद्मेपि

''मुकुन्दाशनशेषं तु यो हि भुङ्क्ते दिने–दिने,

सिक्थे–सिक्थे भवेत् पुण्यं चान्द्रायणशताधिकम्,

भुक्त्वान्यदेवनैवेद्यं द्विजश्चान्द्रायणं चरेत्,

भुक्त्वा केशवनैवेद्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते''

इति. अतो ज्ञानपक्षेऽपि तस्य स्वरूपोपकाराय स्मरणादिरूपा भक्तिः अवश्यम् अपेक्षिता इति सुकरा इति च सैव आत्मशोधनार्थं सेवोपयोगाय च कर्तव्या इति दिक्.

इति श्रीवल्लभाचार्यचरणाब्जप्रसादतः।
नानानिबन्धानालोक्य द्वेधा शुद्धिः स्फुटीकृता ।।

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणाम्बुजदासदासेन
पीताम्बरात्मजेन पुरुषोत्तमेन स्फुटीकृता द्रव्यशुद्धिः[पा.भे.१२] सम्पूर्णा
।। श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।।

(मुद्रितपुस्तके लिखिताः पाठभेदाः टिप्पण्यश्च)

१३.

१.यथा सक्तुहोमे अञ्जलिव्याकोशस्य औचित्यबलात् प्राप्तिः तथा. २.स्नानाङ्गीकारे दानार्थम् उपस्थापितस्य. ३.अत्र च इत्यपि पाठः. ४.निःस्रवोक्तिवैयर्थ्यापत्तिः. ५.वैयर्थ्यापत्तिवारणाय. ६.तद्वदशुचित्वापत्तेः. ७.सुप्तदोषः ८.चा.पा. ९.चकारोऽन्यपुस्तके नाऽस्ति.

१४.

१.क्वचित् शुद्धिपदं न दृश्यते ('शुद्धि'पदं ख-च पुस्तकेपि नास्ति). २.तस्याहतस्यार्थत्वबोधकं योग्यत्वबोधकम्. ३.शुचेः. ४.वस्त्रादीनि. ५.भगवतकर्मार्हत्वे. ६.दोषाभावः. ७.प्रोक्षणादिना. ८.वचनस्य. ९.त्यक्त इति पाठान्तरमपराके. १०.इति हेतोः अस्नातेन काष्ठादिभिः धौतवस्त्रस्य अपनयने अदोषः इति सम्बन्धः. ११.षटाम्बरविशेषम्. क्षौमं दुकूलं स्याद्वे तु निवीतं प्रावृतं त्रिष्वित्यमरः. १२.सहस्र.

१७.

१.पात्रस्य साधनेन गच्छति. २.शास्त्रादिनेति पाठः. ३.पनस इति भाषायाम्.

१९.

१. तन्तुवायः कुविन्दः स्याद् इति अमरः

२१.

१.अथेत्यारभ्य विचारपदपर्यन्तमन्यपुस्तके नास्ति. २.हारीतेन. ३.हारीतोक्तम्. ४.तावत्रथ्योपसर्पणादिदोषस्य. ५.ब्राह्मवाक्याशयः. ६.द्रव्यधारकपुरुषसम्बन्धेन. ७.पक्वान्नं कृतोपस्पर्शनपुरुषसंयोगात्. ८.एतदारभ्य माहात्म्यपदपर्यन्तमन्यपुस्तके नाऽस्ति.

२२.

१.ब्राह्मणादेः. २.अपूपाः दुग्धालोडिताः. ३.निषिद्धा.

२४.

१.जलाशयशुद्धिमाह इत्यन्यपु (ख–च पुस्तकेपि तथा), २.द्रव्यानल्पेति पाठः

उद्धृतवचनेषु पाठभेदाः

१. ''उदक्यास्पर्शने स्नानम् अंशुकेनान्तरापि वा,
तत्स्पृष्टेऽपि भवेत् स्नानं तुल्याः सर्वा रजस्वलाः'' (वृ.परा.स्मृ.८।३१५)

२. ''त्स्पृष्टेन संस्पृशेद् यस्तु ....'' (संव.स्मृ. १८४)

३. ''पतितचण्डालसूतिकोदक्याशवस्पृष्टि–तत्स्पृष्ट्युपस्पर्शने
सचैलोदकोपस्पर्शनात् शुद्ध्येत्''(गौत्त.स्मृ.१४)

४. ''चण्डालश्वपचैः स्पृष्टे ..., न वसेत् तत्र रात्रौ तु सद्यः स्नानेन शुद्धयति,
अथ वसेद् यदा रात्रावज्ञानाद् अविचक्षणः...''(लघुयम.स्मृ.६४,६५)

५. ''अस्तङ्गते यदा सूर्ये चाण्डालं पतितं स्त्रियम्, ...जातवेदं सुवर्णं च सोममार्गं विलोक्य च,
ब्राह्मणानुगतश्चैव स्नानं कृत्वा विशुद्धयति''(परा.स्मृ.७।११,१२)

६. ''अक्षुब्धानामपां नास्ति प्रभूतानां च दूषणम्, ..., ''(देव.स्मृ.१।९।४)

७. ''अक्षोभ्याणि तडागानि–नदीवापीसरांसि च,
कश्मलाशुचियुक्तानि तीर्थतः परिवर्जयेत्''(देव.स्मृ.१।९।५)

८. ''आतुरे ..., स्नात्वा–स्नात्वा स्पृशेद् एनं ततः शुद्ध्येत् स आतुरः''(परा.स्मृ.७।२०)

९. ''दुःस्वप्नं यदि पश्येत्तु वान्ते वा क्षुरकर्मणि,
मैथुने प्रेतधूमे च स्नानमेव विधीयते''(परा.स्मृ.१२।१)

१०. ''म्लेच्छलूताशनास्पर्शे क्षेत्रे वा यदि वा स्थले,
उपस्पृशेत् शिरः प्रोक्ष्य संशुद्धो जायते द्विजः''(वृ.परा.स्मृ.८।३१२)

११. ''विवाहोत्सवयज्ञेषु सङ्ग्रामे जलसम्प्लवे,
पलायने तथाऽरण्ये स्पर्शदोषो न विद्यते'' (वृ.परा.स्मृ.८।३०६)

१२. ''देवयात्राविवाहेषु यज्ञप्रकरणेषु च ...स्पृष्टास्पृष्टं न विद्यते''(अत्रिस्मृ.२४७)

१४. ''शूर्पवातनखाग्राम्बु–स्नानवस्त्रपदोदकं,
मार्जनीरेणुकेशाम्बु हन्ति पुण्यं दिवाकृतम्'' (अत्रिसं.३१६)

१५. ''क्षुते निष्ठीविते चैव दन्तोच्छिष्टे तथानृते,
पतितानाञ्च सम्भाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत्'' (परा.स्मृ.१२।१८)

१६. ''पित्र्यमन्त्रानुद्रवणे आत्मालम्भे अधमेक्षणे, ..., मार्जारमशकस्पर्शे ...,
निमित्तेष्वेषु सर्वेषु कर्म कुर्वन्नपः स्पृशेत्''(कात्या.स्मृ.२।१३,१४)

१७. ''स्पृश्यमानोऽथ मां भूमि वातकर्म प्रमुञ्चति, पुरीषसदृशं वायुं वायुपीडितमानसः,
मक्षिका पञ्च वर्षाणि त्रयो वर्षाणि मूषकः,
श्वा चैव त्रीणि वर्षाणि कूर्मो वै जायते नव'' (वरा.पुरा.१३२।१,२)

१८. ''अथ सर्वाणि ...,अवर्ज्यभक्ष्यभोज्यानि ...''(देव.स्मृ.५)

१९. ''वर्जिते निखिलद्रव्येऽशुचिसंज्ञा प्रवर्तते,

तस्मिन्नेवेह कर्मण्ये पूतसंज्ञा प्रवर्तते'' (देव.स्मृ.९।६)

२०. ''तस्माच्छुद्धं तु कर्मण्यं ... क्रियार्हं पूतमुच्यते''(देव.स्मृ.९।७)

२१. ''शिशवश्च ...,ब्रह्महत्या हि ..., आकरा हि ...निर्णयः,...''(देव.स्मृ.९।१०,१२,८)

२२. ''अक्षताः रोचना लाजा हरिद्रा चन्दनं यवाः'''(देव.स्मृ.९।२२)

२३. ''कालं देशं तथात्मानं द्रव्यं द्रव्यप्रयोजनम्, उपपत्तिम् अवस्थां च विज्ञाय
शौचं शौचज्ञः कुशलो धर्मेप्सुः समाचरेत्'' (बौधा.स्मृ.५।५५)

२४. ''दूषितं वर्जितं दुष्टं कश्मलं चेति लिङ्गतः, (२९) त्यक्तः पतितचाण्डालौ
ग्राम्यसूकरकुक्कुटौ,(३१) मृतबन्धुरशुद्धश्च वर्ज्यान्यष्टौ स्वकालतः,(३२)
आर्द्र चर्मासृगित्येतद् दुष्टमाहुः द्विजातयः(३३) मानुषास्थि शवं विष्ठा
रेतो मूत्रार्तवानि च,(३४) (देव.स्मृ.९।२९-३४)

२५. ''दूषिते प्रोक्षणेनापि शुद्धिस्तूक्ता विधानतः,
दृष्ये मार्जनसंस्कारैः कश्मले सर्वथा भवेत्'' (देव.स्मृ.९।३५)

२६. ''गण्डूषं पादशौचं च यः कुर्यात् कांस्यभाजने, भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन
शुद्ध्यति, ...भूमौ निःक्षिप्य षण्मासम् अत्यन्तोपहतं शुचिः'' (अङ्गि.स्मृ.४१)

२७. ''शयनासनयानादि देहबन्धानि यानि तु, ...प्रचक्षते'' (देव.स्मृ.९।तैजसादिशुद्धिः)

२८. ''देवद्रोण्यां ..., काकैः श्वभिश्च संस्पृष्टम् अन्नं तन्न विसर्जयेत्, तस्मात् तदन्नम् उद्धृत्य
..., द्रवाणां प्लावनेनैव घनानां क्षरणेन तु, पाकेन मुखसंस्पृष्यं शुचिरेव हि तद् भवेत्''
(वशि.स्मृ.१८)

२९. ''कृत्वा मूत्रं पुरीषं च द्रव्यहस्तः कथं शुचिः, भूमावन्नं ...यथार्थतः,
उत्संगे गृह्य पक्वान्नम् ...'' (आप.स्मृ.९।३४,३५)

३०. ''अस्थिचर्मावसिक्तेषु खरस्वानादिदूषिते, उद्धरेद् उदकं सर्वं शोधनं परिमार्जनम्,
वापीकूपतडागानां दूषितानां च शोधनम्,
उद्धरेत् षट्शतं पूर्णं पञ्चगव्येन शुद्ध्यति''(अत्रिस्मृ.२२७,२६).

देव.स्मृ. = देवलस्मृतिः. (१)''देवल स्मृति : रीकन्स्ट्रक्शन् एन्ड क्रिटिकल् स्टडि'' डॉ. मुकुन्द लालजी वाडेकर, आरिएन्टल् इन्स्टिट्यूट, म.स.युनि., वडोदरा. प्र.वर्ष : १९९६. (२) 'स्मृतिसन्दर्भ' खंड-३ में प्रकाशित. प्रकाशक नाग पब्लिशर्स्, दिल्ली. प्र.वर्ष : १९८८

शंखस्मृ. = शङ्ख-लिखितस्मृतिः. (१) सम्पादक : डॉ. अम्बालाल ठाकर, प्रकाशक : भारतीय कला प्रकाशन, दिल्ली. प्र.वर्ष २००३.(२) 'स्मृतिसन्दर्भ' खंड-३ में प्रकाशित. प्रकाशक नाग पब्लिशर्स्, दिल्ली. प्र.वर्ष : १९८८

नवीनपाठभेदावली

११/१. ''भाषायांभिरगुदालहरो(/टो)रा इति मध्यदेशे भासस्य नाम'' इति ख-च पुस्तके अधिकम् उपलभ्यते.

१५/२. 'सम्भारभृतानाम्' इति च पाठः.

२१/३. 'वाराहपुराणे' इति ख-च पाठः.

२१/४. 'लांङ्गम्' इति ख-च पाठः.

२१/५. 'लाङ्गम्' इति ख-च पाठः.

२२/६. ‘शूद्रकृतपाकम्’ इति घ पाठः.
२३/७. ‘आपो’ इति ख–च पाठः.
२४/८. ‘द्रव्यानल्प..’ इति च पाठः.
२६/९. ‘कारणे’ इति ख–च पाठः.
२८/१०. ‘शुचित्वविधिः’ इति ख–च पाठः.
२८/११. ‘दृष्टान्तेन’ इति ख–च पाठः.
२९/१२. ‘द्रव्यशुद्धिदीपिका’ इति ख–च पाठः.

।। श्रीकृष्णाय नमः ।।

श्रीपुरुषोत्तमचरणविरचिता

भक्तिमार्गीयापराधनिरूपणविवृतिः

श्रीविट्ठलेश्वरं नत्वाऽपराधानां निरूपकम् ।
विचार्यन्तेऽपराधस् तद्वाग्विचारप्रसङ्गतः ।।

'अप'पूर्वकाद् 'राध'धातोः संसिद्ध्यर्थकाद् भावे 'घञि' कृते 'अपराधः' इति भवति. तथाच अपकर्षजनकं साधनम् अपराधः. अपकर्षश्च भगवतो अरुच्युत्पादकत्वम्. तदुक्तं वाराहपुराणे (वरा.पुरा.अध्याय ११६)भगवता वाराहेण पृथ्वीं प्रति

''**प्रथमं च अपराधानि न रोचन्ते मम प्रिये**''.

(वराहपुराण ११६।५)

अत्र 'मम' इति पृथिव्याः सम्बोधनम्. तथाच भगवदरुचिविषयो अर्थो अपराधः. 'मम प्रिये' इति 'प्रिय'शब्दस्य सप्तम्यन्तत्वपक्षेतु पूर्वं भगवत्प्रियेऽपि जीवे यदुत्पत्या भगवतो अरुचिः उत्पद्यते सो अपराधः इति. एतदपि प्रायश्चित्तसूत्रे ''**मम विप्रियकारकः**'' इति अपराधिविशेषणेन ''**नच अहं योगम् इच्छामि क्रुद्धस्य च यशस्विनि**'' इति वाक्येन च सूचयिष्यते. तेच अपराधाः पूर्वं विधिकर्माध्यायम् उक्त्वा, ततः सुखदुःखाध्यायं च उक्त्वा, ततो विधिकर्मशेषत्वेन द्वात्रिंशद् उद्दिष्टाः. ततः प्रायश्चित्तसूत्रे

''**एवं मे परमं गुह्यं यदीश हृदि वर्तते।**
तव भक्तसुखार्थाय तत्त्वं मे वक्तुम् अर्हसि।।
देव पूर्वापराधास्तु द्वात्रिंशत् परिकीर्तिताः।
एवं कृत्वापराधानि मनुजा अल्पचेतसः।।
कर्मणा केन शुद्ध्यन्ति अपराधस्य कारिणः।
तन् ममाचक्ष्व तत्त्वेन मम प्रीत्या च माधव।।''(वरा.पुरा.१२९।४-६)

इति धरिणीप्रश्ने तावदध्यायेषु विमृष्टाः. ततो अन्येऽपि रामतीर्थयात्रोत्तरं त्रयस्त्रिंशद् उक्ताः. संक्षेपेण तत्प्रायश्चित्तं च उक्तम्. तत्र प्रथमतः पूर्वोक्ताः प्रदर्श्यन्ते.

प्रथमञ्च ''**अपराधानि न रोचन्ते**'' इति प्रतिज्ञाय ''**भुक्त्वा तु परकीयान्नं तत्परः तन्निवर्तितः**''(वरा.पुरा.११६।५) अत्र उत्तरार्धं पतितम्, अग्रे सर्वत्र स्वोपसर्पणादेः अपराधगणनायाः च दर्शनात्, तेन तत्कृत्वा उपसर्पणं प्रथमो अपराधः, नतु परान्नभोजनमात्रपरत्वं, तस्य पापत्वात्. नच अविशिष्टे पातकत्वे कः तयोः भेदः इति शङ्क्यम्. नाशकभेदेन भेदात्. पापानि हि नामोच्चारणेन नाश्यन्ते, नतु अपराधाः, नाममाहात्म्यबोधकेषु ''**कृते पापे अनुतापस्तु यस्य पुंसः प्रजायते, प्रायश्चित्तन्तु तस्य एकं हरिसंस्मरणं परम्**'' इत्यादिवाक्येषु 'पापाद्या'दिपदानामेव 'नाश्य'वाचकत्वेन दर्शनात्, 'अपराध'पदस्य तथात्वेन अदर्शनात् च. नच इदम् अप्रयोजकं, पापापराधयोः भेदाभावे भक्त्या पापनिवृत्तिबोधकवाक्यस्य अपराध-प्रायश्चित्तबोधकवाक्यानां च इतरेतर-विरोधापरिहारप्रसङ्गात्. ''**केचित् केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणा, अघं धुन्वन्ति कार्त्स्न्येन नीहारमिव भास्करः**'' (भाग.पुरा.६।१।१५) इति वाक्यस्य ''**स चतुर्थो अपराधस्तु मम भक्तिपरायणे**'' ममचिन्तकः इति अपराधवाक्यानां च एकविधपुरुषविषयत्वदर्शनात्. एतेषां शब्दानां भूसम्बोधनपक्षेऽपि अग्रिमग्रन्थे अपराधप्रायश्चित्तप्रश्ने ''**तव भक्तसुखार्थाय तत्त्वं मे वक्तुम् अर्हसि**'' (वरा.पुरा.१२९।४) इति पृथिवीवाक्येन तथा निश्चयात्. एकादशस्कन्धीये योगप्रतिबन्धकनिवृत्त्यर्थे भगवद्वाक्ये ''**कांश्चिन् मम अनुध्यानेन नामसंकीर्तनात् च मे**'' (भाग.पुरा.३।२९।१८)इति केषाञ्चिदेव निवृत्तिकथनेन नामोच्चारणादिभिः सर्वाऽनिवृत्त्यवगमात् च. तस्मात् पापापराधयोः परस्परं भेदएव इति निश्चयः.

अथ अस्तु कथञ्चिद् ऐक्यं तथापि

''**स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य, त्यक्तान्य-भावस्य हरिः परेशः,**
विकर्म यच्च उत्पतितं कथञ्चिद् धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः''
(भाग.पुरा.११।५।४२)

इति एकादशीये योगेश्वरवाक्ये प्रामादिकस्यैव भगवता नाशः क्रियते इति कथनेन बुद्धिपूर्वककरणे भगवदरुचिजननेन तत्प्रायश्चित्तकृतिः[१] ततो निवृत्तिश्च पुष्टिप्रवाहमर्यादामिश्राणां भक्तानाम् आवश्यकीति ते सर्वथा न कार्याएव इति शास्त्रस्य तात्पर्यम्.

अतः परं प्रस्तुतम् अनुसरामः.

अकृत्वा दन्तकाष्ठानि यस्तु माम् उपसर्पति।

स द्वितीयो अपराधस्तु धर्मविघ्नाय वर्तते।।२।।

उपसर्पति निकटे गच्छति. अत्र निकटगमनस्य अपराधत्वं नतु दन्तकाष्ठाकरणमात्रस्य. एवम् अग्रेऽपि बोध्यम्.

गत्वा मैथुनसंयोगं यश्च मां स्पृशते नरः।
तृतीयम् अपराधं च कथयामि वसुन्धरे ।।३।।

अत्र स्पर्शस्य अपराधत्वम्. अस्नातः इति च शेषः, अन्यथा गृहस्थस्य सर्वदा अपराधित्वप्रसङ्गात्.

दृष्ट्वा तु मृतकं भद्रे यो हि माम् उपसर्पति।
स चतुर्थो अपराधस्तु मम भक्तिपरायणे।।४।।

अत्रापि अस्नातः इति शेषः.

नारीं रजस्वलां दृष्ट्वा यो मां स्पृशति निर्भयः।
स पञ्चमो अपराधस्तु विज्ञेयो मत्परायणे।।५।।

अत्रापि अस्नातः इति शेषः.

यस्तु नीलेन वस्त्रेण प्रावृतो मां प्रपद्यते।
षष्ठो अयम् अपराधस्तु विज्ञेयो मम चिन्तके।।६।।

अत्र नीलवस्त्रं पट्टभिन्नं चित्रभिन्नं च ज्ञेयम्. ''**नीलीपट्टेन दूष्यति**'' इति ''**नीलीचित्रं न दुष्यति**'' इति वाक्यान्तरात्. प्रपद्यते इति प्रकर्षो नैकट्यम्. तथाच निकटे गच्छति इति यावत्.

अकृत्वा प्रापणं यस्तु मम कर्मपरायणः।
भुंक्ते भूमेः नवान्नानि सोऽपराधस्तु सप्तमः।।७।।

अत्र भोजनक्रियायाः अपराधत्वम्.

यस्तु माम् अन्धकारेषु विना दीपं स्पृशेत् नरः।
अष्टमञ्च अपराधन्तु [२]कथयामि वसुन्धरे।।८।।

स्पष्टम्.

ममैव अर्चनकाले तु यस्तु वाक्यं प्रभाषते।
नवमञ्च अपराधन्तु न रोचामि वसुन्धरे।।९।।

स्पष्टम्.

अविधानेन संस्पृश्य यस्तु मां प्रतिपद्यते।
दशमञ्च अपराधन्तु कल्पयामि वसुन्धरे।।१०।।

अत्र संस्पर्शः आचमनम्, अग्रिमेण प्रायश्चित्तग्रन्थेन तथानिश्चयात्.

अकर्मण्यानि पुष्पाणि यस्तु माम् उपकल्पयेत्।
एकादशं चापराधं कल्पयामि वसुन्धरे।।११।।

अकर्मण्यानि पुष्पाणि तु सदाचारचन्द्रोदये विष्णुरहस्ये

''न पुष्पैः पूजयेद् देवं कुसुमैः न महीगतैः,
न विशीर्णदलैः स्पृष्टैः नाशुभैः नाविकासिभिः,
पूतिगन्धीनि अगन्धीनि अम्लगन्धीनि वर्जयेत्''.

तथा पाद्मे

''गन्धवन्ति अपवित्राणि उग्रगन्धीनि वर्जयेत्,
गन्धहीनमपि ग्राह्यं पवित्रं यत्कुशादिकम्''.

तथा गारुडे

''चतुःपथाशिवावासे स्मशानस्यापि मध्यतः,
न गन्धफलपुष्पाद्यम् आददीत अर्चने बुधः''.

विष्णुधर्मोत्तरे

''न गृहे करवीरोत्थैः कुसुमैः अर्चयेद् हरिं
पतितैर् मुकुलैर् म्लानैः श्वासैः वा जन्तुदूषितैः,
आघ्रातैर् अङ्गसंस्पृष्टैर् उषितैश्चैव न अर्चयेत्,
नार्कं नोन्मत्तकं किञ्चित् तथैव गिरिकर्णिकां,
न कण्टकारिकापुष्पम् अच्युताय निवेदयेत्,
कुटजं शाल्मलीपुष्पं शिरीषं च जनार्दने,
निवेदितं भयं शोकं निःस्वतां च प्रयच्छति,
करानीतं पटानीतम् आनीतं च अर्कपत्रके,
एरण्डपत्रेषु आनीतं तत्पुष्पं सकलं त्यजेत्''.

करानीतं वामकरानीतम्. अधोवस्त्रानीतम्. यथा उक्तं

''देवोपरि धृतं यच्च वामहस्ते च यद् धृतम्,

अधोवस्त्रधृतं यच्च तत्पुष्पं परिवर्जयेत्''.

तथा हलायुधे

''जलजानां च पुष्पाणां बिल्वपत्रस्य चैव हि,

एषां पर्युषिता शङ्का कार्या पञ्चदिनोर्द्धतः'' इति.

प्रकृतम् अनुसरामः.

अगम्यागमनं कृत्वा यो मां स्पृशति निर्भयः।

द्वादशं चापराधन्तु कल्पयामि वसुन्धरे।।१२।।

यस्तु भुञ्जीत [३]राजान्नं क्षुधार्तो अथ भयेन वा।

पच्यते नरके पृथ्वि दशवर्षसहस्रकम्।।

त्रयोदशापराधन्तु कल्पयामि वसुन्धरे।।१३।।

तत्र भगवदसमर्पितस्यैव राजान्नस्य भोजने दोषः. यथा

''राज्ञान्तु भोक्तव्यं शुद्धैः भगवतैः शुभैः, स्थापयित्वा तु मां देवि विधिदृष्टेन कर्मणा, धनधान्यसमृद्धानि दत्वा भागवतेष्वपि, शुद्धैः भागवतैः च अन्नं मम प्रापणशेषकं, भुञ्जानस्तु वरारोहे न स पापेन लिप्यते''(वरा.पुरा.१२९।१७-१९)

अत्र भागवतैः इति सहार्थे तृतीया. एवं करणाभावेतु चान्द्रायणम् एकं तप्तकृच्छ्रचतुष्कं सान्तपनं च एकं प्रायश्चित्तसूत्रे उक्तम्. अन्येषामपि तन्त्रोक्तानि तान्यपि इदानीं दुष्करत्वात् न प्रदर्श्यन्ते.

अन्तकालेऽपि मां देवि स्पृशते च कदाचन।

चतुर्दशापराधन्तु कल्पयामि वसुन्धरे।।१४।।

यस्तु कृष्णेन वस्त्रेण मम कर्माणि कारयेत्।

पञ्चदशापराधन्तु कल्पयामि वसुन्धरे।।१५।।

कृष्णम् अत्यन्तमलिनम्.

अधौतेन तु वस्त्रेण यस्तु माम् उपकल्पयेत्।
षोडशञ्च अपराधन्तु कल्पयामि वसुन्धरे।।१६।।

अधौतवस्त्रं मण्डसहितम्. तेन भक्तमण्डातिरिक्त–कदल्यादिमण्डयुक्तमपि न समर्पणीयम्. उपकल्पनं मण्डनम्. सदाचारचन्द्रोदये तु ''वायसोद्धूतवस्त्रेण'' इति पठितम्.

जालपादं भक्षयित्वा यस्तु माम् उपसर्पति।
सप्तदशापराधन्तु कल्पयामि वसुन्धरे।।१७।।

यस्तु वाराहमांसानि भक्षयित्वा प्रपद्यते।
अष्टादशापराधन्तु अनुजानीहि माधवी।।१८।।

यस्तु रक्तेन वस्त्रेण कौसुम्भेन उपगच्छति।
एकोनविंशापराधं प्रतिजानामि सुन्दरि।।१९।।

इदञ्च सुवासिनीव्यतिरिक्तविषयम् इति शिष्टाचाराद् अवगम्यते.

तथा मे दीपकं स्पृष्ट्वा यो मां स्पृशति माधवि।
विंशकञ्च अपराधानां कल्पयामि वसुन्धरे।।२०।।

स्पृशति इति हस्तं सम्यग् अप्रक्षाल्य स्पृशति. शिष्टास्तु भगवद्वस्तुमात्रस्य तथास्पर्शेऽपि दोषम् इच्छति.

स्मशानं यच्च वै गत्वा यो मामेव अभिगच्छति।
एकविंशापराधन्तु कल्पयामि वसुन्धरे।।२१।।

पिण्याकं भक्षयित्वा तु यो मामेव उपचक्रमेत्।
द्वाविंशत्यपराधन्तु कल्पयामि वसुन्धरे।।२२।।

पिण्याकः तिलखलिः. अत्रापि महाराष्ट्राणाम् आगोपालपण्डितं शाकादिषु पिण्याकनिक्षेपेण यो भोजनव्यवहारः तस्यापि[४] अपराधत्वम् उच्यते, नतु दरिद्र–पामर–व्यवहारमात्रस्य इति बोध्यम्.

यस्तु वाराहमांसानि प्रापणेन उपपादयेत्।
अपराधं त्रयोविंशं कल्पयामि वसुन्धरे।।२३।।

सुरां पीत्वापि यो मर्त्यः कदाचिद् उपसर्पति।
अपराधं चतुर्विंशं कल्पयामि वसुन्धरे।।२४।।

यः कुसुम्भजशाकं च भक्षयित्वा उपगच्छति।
पञ्चविंशापराधं च कल्पयामि वसुन्धरे।।२५।।

परप्रावरणेनैव यस्तु माम् उपसर्पति।
षड्विंशत्यपराधन्तु कल्पयामि वसुन्धरे।।२६।।

प्रावरणं वस्त्रमात्रोपलक्षकम्. अग्रे ''रक्त-पारक्य-मलिन-वस्त्रधारित्वमेव च'' इति वक्ष्यमाणत्वात्.

तैलाभ्यङ्गं जनः कृत्वा यस्तु माम् उपसर्पति।
सप्तविंशापराधन्तु कल्पयामि हि अनिन्दिते।।२७।।

अत्र तैलाभ्यङ्गोत्तरं स्नाने कृते तु न दोषः इति शिष्टाचाराद् अवगन्तव्यम्.

उपानहासहासीनो मम अर्चाय उपचक्रमेत्।
अष्टाविंशापराधन्तु कल्पयामि गुणान्विते।।२८।।

शरीरं मण्डयित्वा तु यो माम् आप्नोति माधवि।
एकोनत्रिंशापराधन्तु न स स्वर्गेषु गच्छति।।२९।।

शरीरमण्डनं च उष्णीषादिकृतं पूजाकर्मणि दोषावहं बोध्यम्, नतु निकटगमनमात्रे, शिष्टाचारे सर्वत्र तथैव दर्शनात्.

विना भेर्यादिशब्देन द्वारस्योद्घाटनं मम।
त्रिंशकञ्च अपराधानां कल्पयामि यशस्विनि।।३०।।

अत्र 'भेर्यादि'पदं वाद्यमात्रोपलक्षणम्. तेन घण्टा-शङ्खादिशब्देनापि

तद्दोषनिवृत्तिः बोध्या.

अन्नं भुक्त्वा यस्तु बहु अजीर्णेन परिप्लुतः।
उद्गारेण समायुक्तो हि अस्नातः उपगच्छति।
एकत्रिंशापराधन्तु कल्पयामि वसुन्धरे।।३१।।

मद्भक्तद्वेषणं कृत्वा यो मां स्पृशति नित्यशः।
कृत्वा तु पुष्कलं कर्म मम लोकं न गच्छति।
महापराधं बुध्येथा द्वात्रिंशम् इमम् उत्तमे।।३२।।

एवम् उद्दिष्टेषु द्वात्रिंशत्सु [१]मृतकदर्शनं [२]पूजाव्यभिचारः [३]रजोरक्तवस्त्र–युक्तोपसर्पणं, [४]गन्धमाल्यदानं विना धूपदानं, [५]सक्रोधस्पर्शः, [६]पूजाकर्मणि वातकर्म, [७]पूजाकर्मणि पुरीषोत्सर्गश्च इति सप्तापराधाः प्रायश्चित्तसूत्रेषु विमृष्टाः अत्र न दृश्यन्ते. प्राश्चित्तसूत्रे च अत्र उक्ताः अगम्यागमन–कौसुम्भ[८] वस्त्रधारणान्तकालिक–भगवत्स्पर्श–तैलाभ्यङ्गोपसर्पण–शरीरमण्डन–पूर्वकोपसर्पण–भगवद्भक्तद्वेषणपूर्वकनित्य–भगवत्स्पर्शलक्षणाः सप्त न उपलभ्यन्ते. तेन उद्देशग्रन्थ–विमर्शग्रन्थयोः परस्परविरोधेन वैरूप्यं न समाधातुं शक्यम्. अतः पुस्तकान्तरम् अवलोक्य बुद्धिमद्भिः तत्र विचारणीयम्. यथाकथञ्चिद् अस्तु परम् अपराधत्वन्तु न व्यभिचरति.

सदाचारचन्द्रोदयेतु विमर्शग्रन्थस्थाः पातकश्लोकाएव लिखिताः, प्रायश्चित्तश्लोकास्तु न उक्ताः. कश्चित् पाठभेदोऽपि तत्र अस्तीति तेऽपि प्रदर्श्यन्ते.

यस्तु भुञ्जीत राजान्नं क्षुधार्तो बुभुजे पुरा।
भुङ्क्ते तु आपद्गतश्चापि राजान्नं च वसुन्धरे।
दशवर्षसहस्राणि पच्यन्ते नरके वने।।१।।(वरा.पुरा.१२९।८,९)

दन्तकाष्ठम् अखादित्वा यस्तु माम् उपसर्पति।
सर्वं कालकृतं कर्म तेन एकेन च नश्यति।।२।।(वरा.पुरा.१३०।१)

इदञ्च दन्तकाष्ठार्हवासरएव दोषकरम्. ‘‘दन्तकाष्ठम् अखादित्वा(’’? ?‘‘)दन्तकाष्ठार्हवासरे’’ इति हलायुधोक्तेः.

गत्वा तु मैथुनं भद्रे यो अस्नातो माम् उपस्पृशेत्।

रेतः पिबति वर्षाणां सहस्राणि चतुर्दशः।।३।।(वरा.पुरा.१३१।१)

दृष्ट्वा तु मृतकं भद्रे नरं पञ्चत्वम् आगतम्।
मम शास्त्रं बहिः कृत्वा अस्माकं यः प्रपद्यते।।
पितरः तस्य सुश्रोणि तथैव च पितामहाः।
स्मशाने जम्बुका भूत्वा भक्षयन्ति शवं तथा।।४।।
(वरा.पुरा.१३१।११,१२)

नारीं रजस्वलां स्पृष्ट्वा यो मां स्पृशति निर्भयः।
रागमोहसमायुक्तः कामेन च वशीकृतः।।
वर्षाणां च सहस्रैकं रजः पिबति निर्घृणः।
अथवा जायते भूमि दरिद्रो मूर्खएव च।।५।।(वरा.पुरा.१३१।१९,२०)

स्पृष्ट्वा तु मृतकं भूमि यो मे क्षेत्रेषु तिष्ठति।
शतवर्षसहस्राणां गर्भेषु परिवर्तते।।
दशवर्षसहस्राणि चाण्डालो जायते नरः।।६।।(वरा.पुरा.१३१।२६,२७)
तिष्ठति इति अत्र स्नानम् अकृत्वा इति शेषः. परिवर्तते पुनः पुनः प्रविशति.

स्पृशन् मम अग्रतो भूमि वातकर्म प्रमुञ्चति।
वायुं पुरीषसंयुक्तं स पिबेत्तु न संशयः।।
मक्षिका पञ्चवर्षाणि सप्तवर्षाणि मूषकः।
श्वा चैव त्रीणि वर्षाणि नववर्षाणि कच्छपः।।७।।(वरा.पुरा.१३२।१,२)
भवति इति शेषः.

करोति च पुरीषं यो मम कर्म समाचरन्।
दिव्यवर्षसहस्राणि रौरवे नरके स्थितः।।
पुरीषं भक्षयेत् तत्र स्वापराधात् तु नित्यशः।।८।।(वरा.पुरा.१३३।१,२)

त्यक्त्वा तु मम शास्त्राणि वाक्यम् अन्यत् प्रभाषते।
कुर्मो भवति सुश्रोणि जातीः सप्त च सप्त च।।९।।(वरा.पुरा.१३४।१)
त्यक्त्वा अनादृत्य **प्रभाषते** प्रमाणयति, **जातीः** जन्मानि.

प्रावृतो नीलवस्त्रेण यस्तु मां प्रतिपद्यते।
शतानि पञ्चवर्षाणि कृमिः भूत्वा स तिष्ठति।।१०।।(वरा.पुरा.१३४।४)

नीलम् अत्यन्तमलिनम्.

अविधानेन वा स्पृश्य यस्तु माम् उपसर्पति।
स मूर्खः पापकर्मा वै मम विप्रियकारकः।।
तेन इदं तु वरारोहे गन्धमाल्यं सुगन्ध्यपि।
प्रापणं च न गृह्णामि मिष्टं वापि कथञ्चन।।११।।

(वरा.पुरा.१३४।७,८)

स्पृश्य आचम्य **प्रापणं** नैवेद्यम्.

व्यभिचारं च मे कृत्वा यो हि माम् उपसर्पति।
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।।
कृमिः भूत्वा यथान्यायं तिष्ठते पुरुषाधमः।।१२।।(वरा.पुरा.१३४।२७)

व्यभिचारो अत्र तत्पूजामध्ये देवान्तरपूजनम्.

यस्तु क्रोधसमायुक्तो मम कर्मपरायणः।
स्पृशेत्तु मम गात्राणि चित्तं कृत्वा चलाचलम्।।
नच अहं योगम् इच्छामि क्रुद्धस्य च यशस्विनि।
इच्छामि शान्तं दान्तं वै भूमि भागवतं शुचिम्।।
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तत् श्रुणुष्व वसुन्धरे।(वरा.पुरा.१३४।३१,३२)
योनिदोषांश्च लभते क्रुद्धो भागवतोऽशुचिः।।
मूषको अब्दशतं यावत् सर्पो वर्षशतं पुनः।
त्रिंशद्वर्षाणि मण्डूकः शृगालो जायते पुनः।।१३।।(?)

अकर्मण्येन पुष्पेण यो माम् अर्चयते नरः।
पतनं तस्य वक्ष्यामि तत् श्रुणुष्व वसुन्धरे।।
नाहं तत् प्रतिगृह्णामि नच एते च मम प्रियाः।
पतन्ति नरके घोरे रौरवे तदनन्तरम्।।१४।।(वरा.पुरा.१३४।६०-६२)

अकर्मण्यं विष्णुपूजा[६] निषिद्धम्.

रक्तवस्त्रेण संयुक्तो यस्तु माम् उपसर्पति।

रजस्वलासु नारीषु रजो यत्र प्रवर्तते।।

तेन असौ रजसा स्पृष्टः कर्मदोषेण जायते।।१५।।(वरा.पुरा.१३५।३१,३२)

रजसा इति रजस्वलायाम् आधानेन जायते इति अर्थः.

यस्तु माम् अन्धकारेऽपि विना दीपेन सुन्दरि।

स्पृशते च विना मन्त्रैः अवशो रागमोहितः।।

पतनं तस्य वक्ष्यामि तत् श्रुणुष्व वसुन्धरे।

यस्य क्लेशं समासाद्य क्लिश्यते च नराधमः।।

अन्धो भूत्वा महाभागे जन्मैकं सतु तिष्ठति।

सर्वाशी सर्वभक्षो वै मानवश्चैव जायते।।१६।।(वरा.पुरा.१३५।८-१०)

यस्तु कृष्णेन वस्त्रेण मम कर्मपरायणः।

भूमि कर्माणि कुर्वीत तस्य वै पतनं श्रुणु।।

घुणश्च पञ्चवर्षाणि काष्ठभक्षश्च जायते।।१७।।(वरा.पुरा.१३५१६,१७)

कृष्णं कज्जलाभम्.

वायसोद्धूतवस्त्रेण यो मे कर्माणि कारयेत्।

शुचिः भागवतो भूत्वा मम कर्मानुसारतः।।

सो अस्मिन् पतति संसारे वायसोच्छिष्टहारकः।।१८।।

(वरा.पुरा.१३५।२३,२४)

कारयेत् करोति इति अर्थः.

शुनोच्छिष्टन्तु यो दद्याद् मम कर्मपरायणः।

श्वाचैव सप्तवर्षाणि शशो जायेत पञ्च च।।१९।।

(वरा.पुरा.१३५।३३,३४)

दद्याद् मह्यम् इति अर्थः.

भुक्त्वा वराहमांसन्तु यस्तु माम् उपसर्पति।(वरा.पुरा.१३५।४०)

वराहो दशवर्षाणि भूत्वा वै चरते वने।।२०।। (वरा.पुरा.१३५।४१)

जालपादं भक्षयित्वा यस्तु माम् उपसर्पति।

जालपादः ततो भूत्वा वर्षाणि दशपञ्च च।।

कुम्भीरो दशवर्षाणि शतं वर्षाणि कच्छपः।।२१।।(वरा.पुरा.१३५।५२)

जालपादः शरालिः.

स्पष्ट्वा तु दीपकं सुभ्रूः यस्तु मां स्पृशते नरः।

अप्रक्षाल्यैव हस्तौ च मम कर्मपरायणः।।(?)

जायते षष्ठिवर्षाणि कुम्भीगात्रपरिप्लुतः।

चाण्डालस्य गृहे तत्र एवम् एतद् न संशयः।।२२।।(वरा.पुरा.१३६ । २)

गात्रपरिप्लुतो गलन्मदः.

स्मशानं यो नरो गत्वा अस्नात्वा माम् उपसर्पति।

जम्बूको जायते भूमि वर्षाणि नवपञ्च च।

गृध्रश्च सप्तवर्षाणि जायते खचरः तथा।।२३।।(वरा.पुरा.१३६।८,९)

पिण्याकं भक्षयित्वा तु यस्तु माम् उपसर्पति।

उलूको दश वर्षाणि बकश्चैव स मानवः।।

जायते पुरुषः तत्र मम कर्मपरायणः।।२४।।(वरा.पुरा.१३६।५२)

पिण्याकः तिलखलिः.

यो वै वराहमांसेन मम कुर्वीत प्रापणम्।

तस्माद् दोषात् प्रपद्येत संसारं च वसुन्धरे।।

यावन्मात्राणि वाराह-गात्ररोमाणि सन्ति हि।

तावद्वर्षसहस्राणि नरके पतते अशुभे।।

यावन्ति तत्र सिक्थानि भाजनेषु स्थितानि वै।

तावद्वर्षसहस्राणि सौकरीं योनिम् आप्नुयात्।।२५।।

(वरा.पुरा.१३६।५६-६१)

प्रापणं नैवेद्यम्. **सिक्थानि** मांसप्रलेहबिन्दवः.

मद्यपस्तु समासाद्य प्रविशेद् भवनं मम।

दशवर्षसहस्राणि दरिद्रो जायते पुनः।।

यस्तु भागवतो भूत्वा कामरागेण पीडितः।

दीक्षितो वा पिबेत् मद्यं प्रायश्चित्तं न तस्य वै।।२६।।

(वरा.पुरा.१३६।७०,७१)

समासाद्य गृहीत्वा पीत्वा स्पृष्ट्वा वा इति शूद्रविषयो निषेधः ‘‘प्रसक्तः प्रतिषिध्यते न अप्रसक्तः’’ इति न्यायात्.

यः पारक्येन वस्त्रेण अवधूतेन च अवनि।
प्रावारयेत् तु मां मूर्खो मम कर्मपरायणः।।
मृगो जायेत सुश्रोणि वर्षाणि त्रीणि सप्त च।।२७।।

(वरा.पुरा.१३६।८०,८१)

पारक्येन परकीयेन. **अवधूतेन** अशुचिना.

अदत्वा यो नवान्नानि मम कर्मपरायणः।
भुंक्ते भूमि नवान्नानि परदत्तानि कानिचित्।। (वरा.पुरा.१३६।८८)
पितरः तस्य न अश्नन्ति दशवर्षाणि पञ्च च।।२८।।(वरा.पुरा.१३६।९०)

अदत्वा गन्धमाल्यानि यो मे धूपं प्रयच्छति।
मृतोऽसौ जायते भूमि यातुधानो न संशयः।।२९।।(वरा.पुरा.१३६।९६)

उपानद्दृढपादस्तु मम स्थानं विशेत्तु यः।
चर्मकारस्तु जायेत स वर्षाणि त्रयोदश।।
ततो जन्मपरिभ्रष्टः शूकरो जायते नरः।।३०।।(वरा.पुरा.१३६।१०१,२)

भेरीशब्दम् अकृत्वा तु यस्तु मां प्रतिबोधयेत्।
बधिरो जायते भूमि एकं जन्म न संशयः।।३१।।(वरा.पुरा.१३६।१०६)

भेरी इति वाद्योपलक्षणम्.

प्रभूतम् अन्नं भुक्त्वा वै अजीर्णेन परिप्लुतः।
उद्गारेण समायुक्तो यस्तु माम् उपसर्पति।।
जन्मैकं तु भवेत् श्वा वै जन्म चैकं तु वानरः।।३२।।(वरा.पुरा.१३६।११०)

तथा वाराहे

''अवैष्णवस्य पक्वान्नं यो मह्यं विनिवेदयेत्।

अवैष्णवेषु पश्यत्सु मत्पूजां विदधाति यः।।

दिनान्तरितपक्वान्नं यो मह्यं विनिवेदयेत्।

भूताष्टम्योर्न कुरुते नक्तं न हरिवासरम्।।

उरुभूँ कपलाशस्थैः पुष्पैः कुर्यात् मम अर्चनम्''

इत्यादि अन्येऽपि सन्ति. न ते ग्रन्थगौरवात् लिख्यन्ते. **पक्वान्नं** सिद्धान्नम् इह.

तथा नारसिंहे नरसिंहनिर्माल्यलंघन-भग्नदिव्यरथारोहणशक्तिं शन्तनुं प्रति नारदवाक्यम्.

''अतःपरं तु निर्माल्यं न लंघय महीपते

नरसिंहस्य देवस्य तथा अन्येषां दिवौकसाम्''

इत्यपि सदाचारचन्द्रोदये उक्तम्. अत्र ''मम क्षेत्रेषु तिष्ठति'' इति श्लोके 'क्षेत्र'पदं भगवन्मन्दिरपरं नतु ग्रामादिपरम्, मथुरादिवासबोधकवाक्यस्य विरोधप्रसङ्गात्, तत्रत्यानां सर्वदापराधप्रसङ्गात् च. यत्पुनः 'शुनोच्छिष्टम्' इति उक्तं तत् ''श्वामृगग्रहणे शुचिः'' इति वाक्योक्तशुचित्वस्यापि निवारकम्, अन्यथा तत्प्रसक्त्यभावात्, अग्रे मांसप्रकरणात् च. यद् गन्धमाल्यसमर्पणात् पूर्वं धूपदानस्य अपराधत्वम् उक्तं तत् षोडशोपचारैः पूजाकरणएव, उपचाराणां क्रमस्य तत्रैव दर्शनात्, नतु भक्तिमार्गे, तत्र क्रमस्य अनुक्तत्वाद् इति. तथा भेरीघोषं विना भगवत्प्रबोधनस्य अपराधत्वम् उक्तम्. तस्यतु तादृशाढ्यं प्रत्येव तथात्वं, नतु अशक्तं प्रति. अतो घण्टादिवादनादपि तदभावः तस्य सिध्यति इति प्रागेव उक्तम्. एवं दिनान्तरित-पक्वान्नार्पणस्यापि शक्तं प्रत्येव तथात्वं बोध्यम्. भूताष्टम्योः नक्तकरणाभावस्यतु पातिव्रत्यव्रतं प्रति न अपराधत्वम्, तस्य जन्माष्टम्यादिव्रतपञ्चकस्यैव पाद्मे उक्तत्वात्. अन्ये तु त्याज्याएव. नारसिंहोक्त-निर्माल्योङ्घनस्यतु न अपराधत्वम्, तदुपक्रमोपसंहारे च 'अपराध'पदाभावात्, किन्तु पापत्वं, निषिद्धत्वात्. तत्रापि शनि-भौमादिक्षुरकर्मवद् ऐहिकदोषजनकत्वमेव नतु पातः. नारसिंहे ऐहिकानिष्टमात्रजनकत्वस्यैव उक्तत्वात्, नतु पातकत्वम्. किन्तु 'निर्माल्यं' नाम निर्गतं माल्यं नतु नैवेद्यशेषः, तत्र निर्माल्यव्यवहारस्य शास्त्रेषु अदर्शनत्. यदितु न्यायसाम्येन श्रीजगन्नाथप्रसादापचारदृष्टान्तेन वा तस्यापि अपराधत्वम् अङ्गीक्रियते तदापि भोगोत्सारणादि-सेवाकरण-व्यतिरिक्त-दशायामेव अपराधजनकम्, राजोपचारेण सेवाकरणे भोगबाहुल्येन तदुत्सारणदशायां तदुल्लंघनस्य निवारयितुम् अशक्यत्वात्.

तद्भीतिप्राचुर्ये च बहुभोगासमर्पणापत्त्या महाराजोपचारबोधक–वाक्यबाधकप्रसक्तेः च, ''शक्तौ गौणोपचारश्च'' इति उक्तस्य अपराधान्तरस्य प्रसक्तेश्च. तस्माद् अन्यदेव अपराधत्वम्. तदानीमपि तस्य अपराधत्वाङ्गीकारे तु

''यत् कीर्तनं यत् स्मरणं यद् ईक्षणं यद् वन्दनं यत् श्रवणं यद् अर्हणं
जनस्य सद्यो विधुनोति किल्बिषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः''

(भाग.पुरा.२।४।१५।)

इति द्वितीयस्कन्धवाक्ये षण्णां भक्तीनां सद्यः पापनाशकत्वेन कथनात् तदनन्तरभाविभिः तैः तन्निवृत्तिसिद्धेः च. तस्मात् तस्य प्रायिकत्वमेव इति निश्चयः. ये पुनः वराहपुराणएव निरपराधः सापराधः च पुरुषः कथं पूजाफलं प्राप्नोति इति धरिणीप्रश्ने

''कर्मणा मनसा वाचा पापरूपाश्च ये जनाः,
अपराधगृहीतास्ते विपरीतास्तु साधवः,
अज्ञानाच्च प्रमादाच्च येषां पापमथान्तरम्,
प्रायश्चित्तं दहेत् सर्वम् अपराधमलोत्थितम्''

(वराहपुरण १७७।३,४)

इति द्वाभ्यां प्रायश्चित्तानधिकारिणः तदधिकारिणश्च उक्त्वा त्रयस्त्रिंशदपराधाः उक्ताः–

भक्षणं दन्तकाष्ठस्य राजान्नस्य च भोजनम्।
मैथुनं शवसंस्पर्शं पुरीषोत्सर्गमेव च।।
श्रुतश्चैवात्यतीतानां स्पर्शनं मेहनं तथा।
अभाष्यभाषणं कोपः पिण्याकस्य च भक्षणम्।।
रक्तपारक्यमलिन–वस्त्रधारित्वनीलिजम्।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धं पतितान्नस्य भक्षणम्।।
अभक्ष्यभक्षणं चैव तन्दुलीयबिभीषणम्।
अनिवेद्य नवान्नस्य जालपादवराहयोः।।
भक्षणं देवातागारे सोपानत्कोपसर्पणम्।
तथैव देवपूजार्थम् अकर्मण्यैः मम अर्चनम्।।
अनिर्माल्यस्य वै विष्णोर् नमस्करणमेव च।
पानं सुरायाः, देवस्य विना तूर्यं प्रबोधनम्।।
वातकर्म अर्चने विष्णोः पूजा वार्णान्धकारयोः

अपराधान् त्रयस्त्रिंशत् कृत्वा विष्णुं न पश्यति।।(वरा.पुरा.१७७।५-११)

इति. अत्र दन्तकाष्ठस्य भक्षणम् अपराधत्वेन उक्तम्. तच्च निषिद्धदिने इति भाति, पूर्वं तदखादनस्य तथात्वेन उक्तत्वात्. नीलिजम् इति अत्र द्वयोः संग्रहः उत्तरद्ग्रन्थाद् भाति. ''तन्दुलीयबिभीषणम्'' इति अत्र तन्दुलीयस्य भक्षणम् इति पाठो भाति, भक्षणप्रायपाठात्. अपराधद्वयन्तु त्रुटितम्. आरम्भतो गणनेऽपि एकत्रिंशतामेव भवनेन त्रयस्त्रिंशत्संख्यायाः अपूर्तेः इति. एतदग्रे प्रायश्चित्तमपि स्वल्पम् उक्तम्.

एकरात्रं द्विरात्रं च त्रिरात्रं स्नानमेव च।
सामभिः पञ्चगव्याशी मम वस्त्राङ्कितः क्रमात्।।
नीलीरङ्गापनोदार्थं गोमयेन प्रघर्षणम्।
प्राजापत्येन शुद्ध्येत नीलीसूत्रस्य धारणे[१०]
चान्द्रायणद्वयं कुर्याद् गुरोः क्षपित उत्तमम्।[११]
चान्द्रायणं पराकं[१२] **च पतितान्नस्य भक्षणे।।**[१३]
चान्द्रायणं पराकं च प्राजापत्यं तथैव च।
गोप्रदानं च भोज्यं च अभक्ष्याभक्षणे कृते।।
कृतोपवासः पञ्चाहं पञ्चगव्येन शुद्ध्यति।
सोपानत्कश्चरेत् पादं कृछ्रस्य द्विजभोजनम्।।
पुष्पाभावे अर्चनं स्नानं देवस्यैव च कारयेत्।
अनिर्माल्यमनस्कारे स्नानं पञ्चामृतेन तु।।
सुरापाने द्विजातीनां चान्द्रायणचतुष्टयम्।
अथैवं द्वादशानां च प्राजापत्यं त्रयं चरेत्।।
ब्रह्मकूर्चेन शुद्धिः स्याद् गोप्रदानत्रयेण च।
त्रयाणाम् एकरात्रेण पञ्चामृताभिषेचनात्[१४]**।।**
मुच्यते च अपराधैस्तु तथा विष्णुस्तवान् पठ।

(वराहपुरण १७७।१२-२०)

नित्यं [१५]च एतत्प्रायश्चित्तं च उक्तम्. तत्र ''वस्त्राङ्कितः क्रमाद्'' इति रक्तपारक्यमलिनवस्त्राङ्कितः. ''चान्द्रायणं पराकं च'' इत्यादिभिः ''पञ्चगव्येन शुद्ध्यति'' इति अन्तैः अभक्ष्यभक्षणादीनां पञ्चानां प्रायश्चित्तम् उक्तम्. ''अनिर्माल्यमनस्कारे'' इति अत्र 'नमस्कारो' इति पाठो भाति. ''चिन्ताभोगो 'मनस्कार''' इति कोशात्. चिन्ताभोगः चित्तस्य तदेकप्रवणत्वं पूर्णता वा. उचितं च

एतत्. चित्तस्य भगवदनिर्माल्यभोगपरत्वे यद् अपराधत्वं द्वादशानाम् इति अत्र आदितो दश विना तूर्यम् इत्यादिद्वयं च इति द्वादशानां त्रयाणाम् इति अत्र [१६]वातकर्माणान्धकारपूजानां त्रयाणां प्रायश्चित्तम् उक्तम् इति बोध्यम्. एवं स्वल्पप्रायश्चित्ते श्रुतेऽपि मुहूर्तमात्रं विसञ्ज्ञा सती धरिणी यदि सञ्ज्ञां लब्धवती तदा पुनरपि

''अपराधे कृते देव पातकी नहि जायते,
प्रायश्चित्तातिभीरूणि दुश्चराणि नरैः सदा,
तेन वै मानसं दुःखं येन मोहः समन्वितः''(वरा.पुरा.१७७।२३)

इति स्वावस्थां दर्शयित्वा

''अस्ति कश्चिद् उपायो अत्र येन त्वं नृषु तुष्यसि,
पूजितः सफलश्चासि अपराधविशोधनात्'' (वरा.पुरा. १७७।२४)

इति प्रश्ने कृते कुब्जाम्रकं सूकरक्षेत्रं मथुरा च इति त्रयाणां प्रशंसाम् उक्त्वा, सर्वेभ्योऽपि मथुरायाम् उत्कर्षम् उक्त्वा, तत्र स्थितिः प्रायश्चित्तत्त्वेन उक्ता. ततो अग्रे व्रतजागरोपवास–पूजासहिता प्रबोधिनी मोक्षप्रदत्वेन उक्ता. तेन सैव सर्वप्रायश्चित्तत्वेन सिध्यति. एतेषाम् अपराधानां यद्यपि पूजाकर्मशेषत्वेन त्याज्यत्वं तथापि आचार्यैः निबन्धे सेवाप्रकरणे **''स्वधर्माचरणं शक्त्या विधर्माच्च निवर्तनम्, इन्द्रियाश्वविनिग्राहः सर्वथा न त्यजेत्**'' (तत्त्वा.दी.निब.२।) इति आज्ञापनात्, सप्तमस्कन्धेऽपि **''विधर्मः परधर्मश्च आभास उपमाच्छलः, अधर्मशाखाः पञ्चेमा धर्मज्ञो अधर्मवत् त्यजेत्''** (भाग.पुरा.७।१५।१२) इति कथनाच्च पूजाकर्मशेषत्वेन अत्र तत्त्याज्यत्वाभावेऽपि तत्त्यागस्य सेवाङ्गत्वात् तेषामपि त्याज्यत्वं बोध्यम्.

रामार्चनचन्द्रिकायाम् आगमे–

यानैर्वा पादुकैर्वापि गमनं भगवद्गृहे।
देवोत्सवाद्यसेवा च अप्रणामः तदग्रतः।।
उच्छिष्टे वा अथवा आशौचे भगवद्वन्दनादिकम्।
एकहस्तप्रणामस्तु तत्पुरस्तात् प्रदक्षिणम्।।
पादप्रसारणं चाग्रे तथा पर्यङ्कबन्धनम्।
शयनं भक्षणं चापि मिथ्याभाषणमेव च।।
उच्चैर्भाषा मिथो जल्पो रोदनानि च विग्रहः।
निग्रहानुग्रहौ चैव नृषु च क्रूरभाषणम्।।
कम्बलावरणं चैव परनिन्दा परस्तुतिः।
अश्लीलभाषणं चैवम् अधोवायुविमोक्षणम्।।

शक्तौ गौणोपचारस्तु अनिवेदितभक्षणम्।
तत्तत्कालोद्भवानां च फलादीनाम् अनर्पणम्।।
विनियुक्तावशिष्टस्य प्रदानं व्यञ्जनादिके।
पृष्ठीकृत्यासनं चैव परेषाम् अभिवादनम्।।
गुरौ मौनं निजस्तोत्रं देवतानिन्दनं तथा।
अपराधाः इमे विष्णोः द्वात्रिंशत् परिकीर्तिताः।।

(नारदपञ्चरात्रम् चतुर्थरात्रे एकादशे अध्याये १०-१७)

अत्र ''उच्छिष्टे वा अथवा आशौचे'' इति अत्र 'उच्छिष्ट'पदेन ऊर्ध्वोच्छिष्टादित्रयं बोध्यम्. 'आशौच'पदेन च चाण्डालादिस्पर्शजन्यम् अशुचित्वं ग्राह्यम् इति प्रतिभाति.

सदाचारचन्द्रोदये मदनपारिजाते

''शैवी वा वैष्णवी दीक्षा यस्य च अग्निपरिग्रहः,
यतिश्च ब्रह्मचारी च नाशौचं तस्य विग्रहः'' (ब्रह्मा.पुरा. ।।।)

इति ब्रह्माण्डवचनात्.

''जपो देवार्चनविधिः कार्यो दीक्षासमन्वितैः,
आशौचं नैव विद्येत सूतके मृतके तथा''.

जपो अत्र इष्टमन्त्रस्य, देवार्चनम् इष्टदेवपूजा. अस्पृश्याशौचे सोऽपि मानसः. सापि[१७] अस्पर्शवतीति शिष्टा इति व्यवस्थापनात्. तेन जननाशौचे भगवत्स्पर्शादिकं पूजां च ये[१८] कुर्वन्ति, मृताशौचे दूरतएव भगवद्दर्शनं नमस्कारं च यत् कुर्वन्ति तद् युक्तमेव. अथवा वन्दनादिपदेन पूजानिकटपरिचर्या च ग्राह्या नतु श्रवणस्मरणादिकमपि. आसुरभावप्रवेशाभावार्थं तेषां सर्वदा कर्तव्यत्वस्य **''जप्यो नारायणः सदा''** (।।।) **''स्मर्तव्यो सततं विष्णुः''** (।।।) इत्यादिभिः बोधनात्. एवं ''तत्पुरस्तात् प्रदक्षिणम्'' इति अत्रापि भगवन्मन्दिरे प्रदक्षिणास्थलाभावे आत्मप्रदक्षिणं ये[१९] केचित् कुर्वन्ति तस्य अपराधत्वं बोध्यते. पर्यङ्कबन्धनं नाम सर्वतः उत्सङ्गदेशस्य बन्धनं तेन च वस्त्रादिना योगपट्टेन हस्ताभ्यां वा भगवदग्रे पादौ सङ्कोच्य उत्सङ्गबन्धनस्य अपराधत्वं बोध्यते, अविनयापादकत्वात्. तेन प्रौढपादोपवेशनस्यापि तथात्वं भाति. मिथो जल्पस्य तु लौकिकविषयस्यैव अपराधत्वं नतु भगवद्विषयस्य. **''येऽन्योऽन्यतो भागवताः प्रसज्य सभाजयन्ते मम पौरुषाणि''** (भाग.पुरा.३।२५।३४) इत्यादिवाक्येभ्यः तस्य फलानुकूलत्वात् फलत्वात् च इति बोध्यम्. कम्बलावरणम् इति अत्र शिष्टाः भगवदावरणं

तथात्वेन मन्यन्ते, स्वयन्तु निकटपूजायां न कुर्वन्ति. शेषन्तु स्फुटम्.

एतेषां निवृत्युपायस्तु तत्रैव उक्तः.

अपराधसहस्राणि क्रियन्ते अहर्निशं मया।
दासोऽयम् इति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वर।।
इति मन्त्रं समुच्चार्य प्रणमेद् दण्डवद् भुवि।
अपराधसहस्राणि क्षमते सर्वगो हरिः।।
एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय।।

इति पाण्डवगीतावचनञ्च उक्तम्.

अथ हरिवल्लभसुधोदयस्थाः अथ नारदपञ्चरात्रोक्ताः षट्षष्टि अपराधाः–

प्रोच्यन्ते पञ्चरात्रोक्ताः श्रुता ये भगवन्मुखात्।
नारदेन ततश्च उक्ताः कुमारान् प्रति सादरम्।।
विष्णुसेवनदार्ढ्याय तथा तत्तोषणाय च।

श्रीनारद उवाच

श्रुणु ब्रह्मन् प्रवक्ष्यामि वैष्णवानां हिताय च।
श्रुता नारायणमुखाद् अपराधा मया पुरा।।
ते त्याज्या वैष्णवैः पुण्यैः विष्णुसेवनतत्परैः।
संख्याताः षष्टिषट् चैव ते प्रोच्यन्ते अधुना मया।।
अश्रद्धा वैष्णवे शास्त्रे श्रद्धायुक्ताहि अवैष्णवे।
तथा सर्वेश्वरं विष्णुं मन्यन्ते [२०]निर्जरैः समम्।।
श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नास्ति भागवतं गृहे।
शिलाधीः कृष्णश्रीमूर्तौ गुरौ ये नरबुद्धयः।।
वैष्णवे जातिधीः येषां ते अपराधपराः जनाः।
विष्णोर्वा वैष्णवानां च पादतीर्थे अम्बुबुद्धयः।।
विष्णोर्वा वैष्णवानां च शृण्वन् निन्दां च तिष्ठति।
वैष्णवे गृहमायाते सन्मानं ये न कुर्वते।।
हरेः पूजनकाले वा तां दृष्ट्वा यो न पूजयेत्।

पूजनाय कृतस्यापि परिकीर्तनम् आचरेत्।।
पूजयित्वा [२१] तु ये मानं प्रकुर्वन्ति विमोहिताः।
अवैष्णवानां संसर्गं तैः मन्त्रैः वा अर्थलोभतः।।
तेषां प्रसाददानं च जलमन्नादिभक्षणम्।
मुद्रातिलकमालाद्यैः विना स्थितिः कदाचन।।
दशमी वेधसंयुक्तं ये कुर्वन्ति हरेः व्रतम्।
श्रीमद्भागवते ये वै पुराणे तुल्यबुद्धयः।।
येषां स्वरूपभेदोऽस्ति हरेः भागवतस्य च।
न्यासं विना जपन् मन्त्रं विकलाङ्गञ्च वा पुनः।।
तथाच अर्थापरिज्ञानाद् विना ध्यानाच्च वै हरेः।
जपकाले भाषणात् च तथा पार्श्वविलोकनात्।।
पादुकोपानहैः यानैः ये गच्छन्ति हरेः गृहम्।
तिर्यक्पुण्ड्रधरा भूत्वा ये कुर्वन्ति मम अर्चनम्।।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं परित्यज्य तिर्यक्पुण्ड्रधराः च ये।
अचक्राङ्कितपक्वान्नं यश्च मह्यं निवेदयेत्।।
अवैष्णवफलं मूलं पत्रं पुष्पं तथा जलम्।
अन्नं चैव अर्पयेत् मह्यं महताम् अपराधकृत्।।
सर्वोत्तमे हरेः नाम्नि हि अर्थवादेतिबुद्धयः।
नाम्नो बलाच्च पापानि ये कुर्वन्ति विमोहिताः।।
नीलीक्षेत्रं वापयन्ति तस्या विक्रयकारकाः।
तद्रञ्जितेन वस्त्रेण ये कुर्वन्ति मम अर्चनम्।।
तथा तद्रङ्गितं वस्त्रं स्वयं च धारयन्ति ये।
ब्रह्महत्यादिदोषघ्ने प्रसादे हि अन्नबुद्धयः।।
भुक्त्वा च तत्प्रसादान्नम् उच्छिष्टं परिमुञ्चति।
मदुत्सवे पर्वबुद्धिः येषां क्वापि प्रजायते।।
शक्तौ गौणोपचारं ये मत्पूजां कल्पयन्ति हि।
येषां वन्ध्यो हि दिवसो भागवतश्रवणं विना।।
यथा हरिस्तथा पूजा येषां नो विद्यते गुरौ।
यथा हरिः तथा तस्य पूजा येषां न विद्यते।।
मद्रूपगुणनामानि जन्मकर्माणि यानि च।
मायामया विजानाति ते अपराधमहत्कृताः।।

अपराधेषु सर्वेषु षडेते सर्वतो अधिकाः।
गुरोः निन्दा सतां निन्दा निन्दा भागवतस्य च।।
श्रीभागवतधर्माणां हरेः नाम्नां तथैव च।
[२२]**मानुषं जनुरासाद्य खण्डे भारतसञ्ज्ञके।।**
गुरुकर्णधारं सम्प्राप्य न तरन्ति भवार्णवम्।
अपराधपरास्ते हि सर्वेषाम् अधिका मताः।।
एतद् मया गुह्यतमं नारायणमुखात् श्रुतम्।
निरापराधो भवति सकृत् श्रुत्वापि केवलम्।।
किं पुनः श्रद्धया भक्त्या हि अपराधान् विहाय च।
ये कुर्वन्ति हरेः सेवां सदा सर्वेश्वरस्य च।।
अपराधसहस्राणि क्रियन्ते अहर्निशं मया।
'दासोऽयम्' इति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वर।।

इति. अत्र अश्रद्धा वैष्णवे इति न विद्यते श्रद्धा येषां ते इति बहुव्रीहिः द्रष्टव्यः. वैष्णवे जातिधीः येषाम् इति अत्र वैष्णवे भगवद्धर्मवति तद् अनादृत्य उत्कर्षापकर्षप्रयोजिका तज्जातिबुद्धिः ज्ञातव्या. तत्र भगवत्सम्बन्धात् कृतस्य उत्कर्षस्य तस्य[२३] अभानाद् इति. संसर्गम् इति अस्य ''प्रकुर्वन्ति विमोहिताः'' इति अनेनैव सम्बन्धः. तथाच अवैष्णवमन्त्रसंसर्गएव अपराधः इति अर्थः. ''तैः मन्त्रैः'' वा इति अस्य 'संसर्ग'पदेन सम्बन्धः. अथ लोभतः इत्यस्य तेषां प्रसाददानम् इति अनेन सम्बन्धः. लोभो अत्र द्रव्यादिविषयकः. तेन भीत्या वा अनिष्टनिवृत्तिबुद्धया वा दानं न अपराधः इति भाति. जलम् इति अत्र पानं विनापि तेषां जलसंसर्गस्यैव अपराधत्वं बोध्यते. स्थितिः कदाचन इति सेवाव्यतिरिक्तसमयेऽपि इति बोध्यते. जपमन्त्रम् इति पदद्वयम् अग्रेऽपि त्रिषु सम्बध्यते. अत्र न्यासं विना इति यस्य न्यासः उक्तो अस्ति तम् इति बोध्यम्. तेन भक्तिमार्गीयमन्त्रजपे न्यासाभावो[२४] न दोषः, तत्र तदनुक्तेः. शेषन्तु मन्त्रमात्रे जपकाले भाषणाच्च इति वाक्यद्वयेऽपि अपराधो अस्ति इति शेषो बोध्यः. अचक्राङ्कितपक्वान्नम् इति तु अन्नकूटविषयम् इति प्रतिभाति, तत्रैव भक्तपाकोपरि चक्रधारणशिष्टाचारात्. अवैष्णवफलम् इति अत्र अर्पणम्. प्रत्येकं मदपराधरूपम्. महताम् अपराधकृद् इति भिन्नो अपराधः. ''तद्रङ्गितेन वस्त्रेण'' इति अत्र नीलीरङ्गितवस्त्रं पट्टभिन्नं चित्रभिन्नं वा इति प्रागेव व्युत्पादितम्. तेन हरितवर्णवस्त्रे नीलीहरिद्रावयवमेलनेन चित्रप्रायत्वमिति अदोषः. ''**वर्णश्च मे हरिच्चेष्टः तस्माद् हरिरहं स्मृतः**'' इति महाभारते भगवद्वाक्ये प्रियत्वबोधनात् च इति ज्ञेयम्. शेषं स्फुटम्. तदेतत् सर्वं प्रसङ्गाद् विचारितम्.

श्रीमत्प्रभुचरणैः तेभ्यो अन्ये भक्तिमार्गीया द्वात्रिंशद् अपराधाः निरूपिताः तदुत्तरं च एते द्वात्रिंशदपराधाः ते भक्तिमार्गस्थेन न कर्तव्याः. करणे अनिष्टप्राप्तिः इति उक्तम्. तत्र कस्मात् का अनिष्टप्राप्तिः इति विवेक्तुं ते विव्रियन्ते.

तत्र आदौ

गुरौ भेदबुद्धिः प्रथमो अपराधः॥१॥

सतु स्वस्य भगवन्मार्गोपदेष्टरि ''**मदभिज्ञं गुरुं शान्तम् उपासीत मदात्मकम्**'' (भाग.पुरा.११।१०।५) इति एकादशे भगवद्वाक्याद् अभेदबुद्धिरेव कर्तव्या इति तत्र भगवद्भिन्नत्वज्ञानं प्रथमो अपराधः.

अयञ्च नारदपञ्चरात्रेऽपि उक्तः ''**गुरौ ये नरबुद्धयः**'' इति. एतेन गुरुपूजाभावोऽपि संगृहीतः. एतत्करणे

''**यस्य देवे परा भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ**
तस्य एते कथिताः हि अर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः'' (श्वेता.उप.६।२३)

इति श्रुत्युक्तगुरुभक्तिभङ्गात्.

''**यस्य साक्षाद् भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ,**
मर्त्याऽसद्धीः कृतं तस्य मन्ये कुञ्जरशौचवत्'' (भाग.पुरा.७।१५।२६)

इति वाक्योक्तसत्कृतिवैय्यर्थ्यात् च भगवज्ज्ञानाभाव-रूपानिष्टप्राप्तिः.

आत्मसमर्पणं विना सेवाकरणम्॥२॥

एतत्करणे चेतनाचेतनेषु वस्तुषु स्वाभिमानानपायाद् भगवता तत्सेवानङ्गीकृतौ ''**एवंधर्मैः मनुष्याणाम् उद्धव आत्मनिवेदिनाम्**'' (भाग.पुरा.११।१९।२४) इति भगवदुक्तभक्त्यनुत्पत्तिरूपानिष्टप्राप्तिः.

भगवन्नाम्नि साधरणाक्षरबुद्धिः॥३॥

अयमपि पञ्चरात्रे उक्तः ''**सर्वोत्तमे हरेः नाम्नि हि अर्थवादेति बुद्धयः**'' इति एतत्करणे.

''**नाम चिन्तामणिः कृष्ण-चैतन्यरसविग्रहः**
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तो अभिन्नत्वाद् नामनामिनोः''

इति हरिवल्लभसुधोदयस्थ-पाद्मवाक्योक्तस्य तेषाम् अखण्डशब्द-ब्रह्मात्मकत्वस्य अज्ञानेन

''सतां निन्दां नाम्नां परमम् अपराधं वितनुते,
यतः ख्यातिं यातः कथमु सहते तद्विगणनाम्,
शिवस्य श्रीविष्णोः य इह गुणनामादिसकलं,
धिया भिन्नं पश्येत् स खलु हरिनामाहितकरः''

इति तत्रैव पाद्मे नारदं प्रति सनत्कुमारवाक्यात्. ततः सवासन–पापक्षयरूप–निष्पावनाभावात्मकानिष्टप्राप्तिः तद् मुख्यफलाप्राप्तिः च.

''सर्वापराधकृदपि मुच्यते हरिसंश्रयः,
हरेरपि अपराधान्यः कुर्याद् द्विपदपांसनो
नामाश्रयः कदाचित् स्यात् तरत्येव स नामतः,
नाम्नोऽपि सर्वसुहृदोतु अपराधात् पतति अधः''

इति वाक्यात् पातोऽपि.

एते अत्र यो अग्रे महापराधमध्येऽपि गणिताः

गुर्वाज्ञोल्लङ्घनम्।।४।।

''ये गुर्वाज्ञां न कुर्वन्ति पापिष्ठाः पुरुषाधमाः,
न तेषां नरकक्लेशनिस्तारो मुनिसत्तम''

इति साधनदीपिकायाम् अगस्त्यसंहितावाक्याद् नरकप्राप्तिरूपा अनिष्टप्राप्तिः.

गुर्वासनादिस्थितिः।।५।।

''गुरुशय्यासनं यानं पादुकोपानहादिकं,
स्नानोदकं तथा छायां लंघयेद् न कदाचन''

इति रामार्चनचन्द्रिकायाम् आगमवाक्यात् तत्करणे अवज्ञायां गुरुभक्ति–भङ्गरूपानिष्टप्राप्तिः.

वेदाज्ञात्यागः।।६।।

अत्र 'वेद'पदेन पुराणपञ्चरात्रयोरपि वेदमूलकयोः संग्रहाद् वाराहपुराणस्य भगवच्छास्त्रत्वात् च तदुक्तापराधाः त्याज्यत्वेन संगृह्यन्ते इति बोध्यम्.

''नाचरेद् यस्तु वेदोक्तं स्वयम् अज्ञो अजितेन्द्रियो,
विकर्मणा हि अधर्मेण मृत्योर्मृत्युम् उपैति सः''(भाग.पुरा.११।३।४५)

इति एकादशस्कन्धे आविर्होत्रवाक्याद् अधर्मेण मरणरूपानिष्टप्राप्तिः.

गुर्वमर्यादा।।७।।

''यैः शिष्यैः शश्वदाराध्या गुरवो हि अवमानिताः,
पुत्रमित्रकलत्रादि-सम्पद्भ्यः प्रच्युता हि ते,
इहैव अत्यन्तदुःखानि पश्यन्ति आमुष्मिके किमु''

इत्यादिवचनोक्त्या लोकद्वयेऽपि अनिष्टप्राप्तिः.

सेवाकाले जीवस्तुति-निन्दे।।८।।

इदञ्च रामार्चनचन्द्रिकायामपि अपराधेषु गणितम्. श्रीभागवते **''गुणदोष-दृशिर्दोषो गुणस्तु उभयवर्जितः''** (भाग.पुरा.११।१९।४५) इति एकादशे भगवद्वाक्याद् गुणदोषदृशेः दोषत्वेन स्तुतिनिन्दयोः च तत्प्रयुक्तत्वेन[२५] सेवाकाले तत्करणे कर्तृदोषात् सेवादुष्टत्वापत्तिरूपानिष्टप्राप्तिः.

सेवायां लोकानुकूल्यम्।।९।।

लोकाः जनाः तदानुकूल्यस्य तदपेक्षाप्रयुक्तत्वात् तत्करणे भगवदप्रसादरूपा लौकिकक्लेशरूपा च अनिष्टप्राप्तिः **''लोकार्थी चेद् भजेत् कृष्णं क्लिष्टो भवति सर्वथा''** (सिद्धान्तमुक्तावली १६) इति श्रीमदाचार्यवाक्यात्.

पाषण्डमार्गसंसर्गः।।१०।।

''उपधर्मस्तु पाषण्डः'' (भाग.पुरा.७।१५।१३) इति सप्तमस्कन्धे तल्लक्षणात्. **''तानि पापस्य खण्डानि लिङ्गं 'षण्डम्' इह उच्यते''** (भाग.पुरा. ४।१९।२३) इति चतुर्थस्कन्धे पापलिङ्गत्वोक्तेः च तन्मार्गस्य पेशल-वाग्मित्वादिना संसर्गे पापरूपा बुद्धिभ्रंशरूपा च अनिष्टप्राप्तिः.

भगवद्भोगं विना कृतभोगसामग्रीप्रकाशः।।११।।

तत्करणे सामग्र्याम् अन्यमनसो गमनात् तस्या भगवतानङ्गीकरणात् तद्वैय्यर्थ्यरूपानिष्टप्राप्तिः. इदञ्च पञ्चरात्रेऽपि **''पूजनाय कृतस्यापि परिकीर्तनम् आचरेत्''** इत्यनेन उक्तम्.

सेवायाम् अपशब्दापलापौ।।१२।।

एतत्करणे या अनिष्टप्राप्तिः सातु वाराहपुराणे **''वायुं पुरिषसंयुक्तम्''** इत्यादिभिः उक्ता.

अविश्वासेन भजनम्।।१३।।

अयमपि महापराधमध्ये गणितः. एतत्करणे ब्रह्मास्त्रन्यायाद् भजनवैय्यर्थ्यरूपा अनिष्टप्राप्तिः.

श्रीमदाचार्याविश्वासः।।१४।।

एतत्करणे गुरौ भेदबुद्ध्या अनिष्टं तस्मादपि अधिकं ब्राह्मणश्रमणन्यायाद् अवगन्तव्यम्. अयमपि अग्रे श्रीमदाचार्याज्ञोल्लङ्घनस्य महापराधमध्ये गणनात् तेष्वेव निवेशितः.

स्वमार्गीयसेव्यभगवद्रूपे भेदबुद्धिः।।१५।।

स्वमार्गीयसेव्यः पुरुषोत्तमः. भगवद्रूपं सेव्यमानं तयोः भेदबुद्धौ सत्याम् अयोगोलके वह्निरिव व्याप्त्यनवगमात् तत्र कृतोपचारस्य साक्षाद् अनङ्गीकारएव अनिष्टरूपः तत्प्राप्तिः. अतएव अयमपि महापराधेषु गणितः.

माला-मुद्रा-तिलकरहितसेवाकरणम्।।१६।।

एतत्करणे सेवावैय्यर्थ्यरूपा अनिष्टप्राप्तिः

''**धारयन्ति न ये मालां हैतुकाः पापबुद्धयः**'' इति.

''**शङ्ख ादिचिह्नरहितः**'' इति

''**ऊर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम्**'' इति वाक्येभ्यः.

अनिवेदितभक्षणम्।।१७।।

''**अम्बरीष गृहे पक्वं सदा अभीष्टं यद् आत्मनो**
अनिवेद्य हरेः भुञ्जन् सप्तजन्मनि नारकी''

इति हरिवल्लभसुधोदये पाद्मे गौत्तमवाक्यात्. [२६]एतत्करणे [२७]एतद्वाक्योक्ता अनिष्टप्राप्तिः.

क्लिष्टसमर्पणम्।।१८।।

आत्मक्लिष्टं चित्तक्लिष्टं [२८]परक्लिष्टं च इति क्लिष्टं त्रिविधं निबन्धे निरूपितम्. तत्समर्पणे तस्य पदार्थस्य भगवदनङ्गीकाररूपा अनिष्टप्राप्तिः.

हस्तप्रक्षालनं विना हरिसामग्रीस्पर्शः।।१९।।

अत्रापि हस्तयोः यत्[२९] तत्स्पर्शदुष्टत्वेन तदप्रक्षालनेन पूर्वोक्तदोषः.

कलिङ्ग–मूलादिभक्षणम्।।२०।।

''वृन्ताकं च कलिङ्गं च दग्धम् अन्नं मसूरिका,

उदरे यस्य तिष्ठन्ति तस्य दूरतरो हरिः'' इति.

''यो अर्चयेद् माधवं मूढो भक्षयित्वा तु मूलकम्

अपराधशतं तेन कृतं नात्र विचारणा''

इत्यादिवाक्येभ्यः. अत्र 'आदि'पदेन कलिकाले अभक्ष्याणां तत्तत्तिथौ च अभक्ष्याणाम् अन्येषां च संग्रहः. तद्भक्षणे तत्तद्वाक्योक्तैव अनिष्टप्राप्तिः.

अवैष्णवमुखात् श्रीमद्भागवतश्रवणम्।।२१।।

हरिवल्लभसुधोदये

''मत्कथावाचकं चैव मत्कथाश्रवणे रतम्,

मत्कथाप्रीतमनसं नाहं त्यक्ष्यामि अनन्तरम्''

इति विष्णुधर्मे भगवद्वाक्यात्, अतादृशस्य भगवता त्यागाद्, अवैष्णवस्य भगवति विश्वासाभावेन सर्वोत्कृष्टतन्माहात्म्यज्ञानाभावात् तादृशस्य मुखात् श्रीभागवतश्रवणे तत्तद्वाक्योक्तैव अनिष्टप्राप्तिः. इदञ्च

''अवैष्णवोपदिष्टेन मन्त्रेण नरकं व्रजेत,

पुनश्च विधिना सम्यग् वैष्णवाद् ग्राहयेद् गुरोः''

इति नारदपञ्चरात्रोक्तवाक्यसिद्धन्यायादपि सिध्यति इति बोध्यम्.

श्रीभागवताविश्वासः।।२२।।

एतत्करणेतु

''श्रीमद्भागवते ये तु पुराणैः तुल्यबुद्धयः,

येषां स्वरूपभेदो अस्ति हरेः भागवतस्य च''

इति हरिवल्लभसुधोदये नारदपञ्चरात्रवाक्योक्तापराधद्वय[३०]–भवनात् तत्फलाभावरूपानिष्टप्राप्तिः. अतएव अयमपि महापराधेषु गणितः.

अनधिकारिणि मार्गरहस्यप्रकाशः।।२३।।

तस्य स्वसर्वस्वत्वाज्ञानएव स्वोत्कर्षज्ञापनाद्यर्थं तत्संवादाद् एतत्करणे

रहस्यभेत्तृत्वात् प्रभुकोपेन मार्गफलाभावो अत्यन्तबाहिर्मुख्यसम्भवः च इति महत्येव अनिष्टप्राप्तिः. अतएव च अस्यापि महापराधेषु गणना.

अन्यदेवपूजाकरणम्।।२४।।

यज्ञविवाहादिरूप-नित्यावश्यक-श्रौतस्मार्त-कर्मानङ्गतया स्वतन्त्रतया फलदातृत्वानुसन्धानेन अन्यदेवपूजाकरणम् इति अर्थः. एतत्करणे अन्याश्रयाद्

''यावद् अन्याश्रयः तावद् भगवानपि तं जनं,
विलोकयेद् न दयया हि अनन्यजनवत्सलः''

इति वाक्योक्ता अनिष्टप्राप्तिः. अतएव अस्यापि महापराधेषु गणना.

तन्निर्माल्यादिग्रहणं च।।२५।।

'आदि'पदेन नैवेद्यस्य तद्ग्रहणे

''भुक्त्वा अन्यदेवनैवेद्यं द्विजः चान्द्रायणं चरेद्
भुक्त्वा केशवनैवेद्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते''

इति पाद्मे माघमाहात्म्यवाक्योक्त-प्रायश्चित्तप्राप्तिः अधिका.

सेवानुकूलगृहपरित्यागः।।२६।।

भक्तिमार्गीयसंन्यासाधिकाराभावे गृहिणोपसंहारन्यायेन गृहमेव फलानुकूलम् इति तदभावेऽपि गृहपरित्यागो अपराधः इति अर्थः. एतत्करणे पाषण्डित्वभवन-रूपानिष्टप्राप्तिः. एतच्च संन्यासनिर्णयाद् भक्तिवर्धिनीतः च अवगन्तव्यम्.

तत्प्रतिकूल-तत्परिग्रहश्च।।२७।।

ततकरणे भक्तिमार्गात् च्युतिरेव अनिष्टरूपा.

अविद्धभगवद्व्रतत्यागः।।२८।।

निषिद्धविद्धतत्त्यागस्य शास्त्रेणैव प्राप्तत्वाद् अविद्ध-तत्त्यागे शास्त्रोल्लङ्घनमेव अनिष्टजनकम्.

वेद-गुरु-देव-ब्राह्मणनिन्दा।।२९।।

एतेषां चतुर्णां प्रत्येकमपि निन्दायां हीनयोनिप्राप्त्यादिरूपम् अनिष्टं शास्त्रेषु प्रसिद्धमेव.

सेवाभिमानः।।३०।।

एतत्करणे भगवदपरितोषादेव तदनङ्गीकाररूपमेव अनिष्टम्.

सेवादित्यागः।।३१।।

एतत्करणे भक्तिमार्गाद् भ्रंशरूपमेव अनिष्टम्.

श्रीमदाचार्योल्लङ्घनम्।।३२।।

एतत्करणे

''**आचार्यवान् पुरुषो वेद**'' (छान्दो.उप.६।१४।२) इति श्रुत्या

''**लब्धानुग्रह आचार्यात् तेन संदर्शितागमः**'' (भाग.पुरा.११।३।४८)

इति एकादशस्कन्धीयवाक्यात् च मार्गज्ञानं प्रति आचार्याणामेव कारणत्वात् तदाज्ञायां प्रामाण्यभङ्गाद् मार्गाज्ञानरूपा मार्गफलाप्राप्तिरूपा च अनिष्टप्राप्तिः. अतएव अस्य महापराधेषु गणना.

एवम् अत्र पूर्वोक्तेभ्यो अतिरिक्ताः भक्तिमार्गीयाः अपराधाः विचारिताः. तेषां निवृत्युपायस्तु अत्र न उक्तः. तेन एतेषां सर्वथा अकरणमेव प्रभूणाम् अभिप्रेतम्. नतु तत्र प्रमादो विधेयः इति. यदि पुनः दैवात् कदाचित् कश्चिद् भवेत् तदातु क्रच्छ्रादिरूपस्य उपायस्य दुष्करत्वाद् भगवता श्रीवराहेणापि अवनिकृपया मथुरागमनस्यैव आज्ञप्तत्वात् तत्रापि अप्रमादेन स्थित्वा सेवाकृतेरेव आवश्यकत्वाद् अन्यथा ''**पुण्यक्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति**'' इति वाक्येन दोषस्यैव सम्भवात्. प्रबोधिनीव्रतपूजादिकमेव सुगमतया अवशिष्यते. आगमिकेषु तु क्षमाप्रार्थनं प्रणामः च निवृत्युपायत्वेन उक्तः. तत्र प्रार्थनन्तु अनुचितं, विवेकविरुद्धत्वात् ''**प्रार्थिते वा ततः किं स्यात् स्वाम्यभिप्रायसंशयाद्**'' (विवेकधैर्याश्रयः २) इति न्यायेन वैय्यर्थ्यात् च. भगवदाज्ञायाः अभावे मथुरादौ विशेषगतेरपि कर्तुम् अशक्यत्वात्. पाञ्चरात्रिकेषु तु अपराधश्रवणं तत्त्यागपूर्वकं भगवत्सेवनं च निवृत्युपायत्वेन उक्तम्. तत्र आद्यन्तु अपराधप्रागभाव–परिपालकत्वेन प्रतिभाति. अन्यथा द्वितीयं न वदेत्, प्रयोजनाभावात्. तस्यापि निर्वाहकत्वेन शरणगमनस्यैव अपेक्षितत्वात् च. एवम् आगमिकेऽपि बोध्यम्, न्यायतौल्यात्. अतः सर्वथा शरणगमनमेव मुख्योपायः. विवेकधैर्याश्रयग्रन्थे ''**दुःखहानौ तथा पापे**'' (विवेकधैर्याश्रयः १०) इत्यारभ्य ''**एवं चित्ते सदा भाव्यम्**'' (विवेकधैर्याश्रयः १३) इत्यन्तेन तस्यैव उक्तत्वात्. अन्तःकरणप्रबोधादिष्वपि तस्यैव

उपदेशात्. सदा शरणभावनप्रभावेण अग्रेऽपि तदुत्पत्यसम्भवात्. ''**सर्वधर्मान् परित्यज्य**'' (भग.गीता १८।६६) इत्यनेन भगवता तस्यैव आज्ञापनात्. एकादशस्कन्धेऽपि उद्धवं प्रति तस्यैव उपदेशात्. व्रजस्थैरपि तत्र-तत्र शरणगमनस्यैव कृतत्वात् च एषए उपायः इति विभाव्य एतदेव सदा कार्यम्.

इति श्रीवल्लभाचार्य श्रीविट्ठलपदाश्रयः।
अपराधोक्तिविवृत्तिं कृतवान् पुरुषोत्तमः।।

इति श्रीवल्लभाचार्यविट्ठलेश्वरचरणैकतान-पीताम्बरात्मजपुरुषोत्तमविरचिता
भक्तिमार्गीयापराधनिरूपणविवृति
सम्पूर्णा

पाठभेदाः

१. 'प्रायश्चित्तप्रवृत्तिः' इति मां. पाठः.
२. 'कल्पयामि' इति ख,ग,मा पाठः.
३. ''राजान्नन्तु न भोक्तव्यम्'' इति मां. पाठः.
४. ''भोजनव्यवहारः तत्र आहारस्य अपराधत्वम्'' इति मां. पाठः.
५. 'कौसम्भ' इति ग,मां,ख पाठः.
६. 'पूजायां' इति मां पाठः.
७. 'व्र/षू' इति ग-ख/मां पाठः.
८. 'मतान्तरम्' इति ख, 'मर्थान्तरम्' इति ग पाठः.
९. ''पूजा जीर्णान्ध'' इति मां. पाठः.
१०. 'धारणं' इति ग-ख पाठः.
११. ख पुस्तके नास्ति.
१२. 'यणापराकं' इति ग पाठः.
१३. ख पुस्तके नास्ति.
१४. '...निषेचनात्' इति मां. पाठः.
१५. 'नित्यं तैस्तत्प्रा' इति ख,मां,ग पाठः.
१६. 'इत्यत्र कर्माणान्तध...' इति ख पाठः. 'वातकर्माजीर्णान्धिकार' इति मां. पाठः.
१७. 'सा पूजा' इति मां. पाठः.
१८. 'यत्' इति मां., ग पाठः.
१९. 'यत्' इति ख, ग, मां. पाठः.
२०. 'मन्यते' मां.,ख पाठः.

२१. 'च' इति ख,ग,मां पाठः.
२२. 'मानुष्यं जन्ममासाद्य' इति ख, 'जन्ममासाद्य' इति ग-मां. पाठः.
२३. 'तया' इति ख,ग 'तथा' इति मां पाठः.
२४. 'न्यासाभावे' इति ख-मां. पाठः.
२५. 'तदायुक्तत्वेन' इति मां. पाठः.
२६. 'तत्करणे' इति ख.-मां. पाठः.
२७. 'गौत्तमवाक्योक्तानिष्टप्राप्तिः' इति ग. पाठः.
२८. 'लोकक्लिष्टं' इति ग. पाठः.
२९. 'यत्पर्शादुष्टत्वेन' इति ख. 'हयस्तयो अत्र स्पर्शाद् उच्छिष्टः तेन' इति मां. पाठः.
३०. 'द्वयं' इति ख., 'द्वयस्य' इति मां. पाठः.

श्रीविट्ठलनाथप्रभुचरणविरचितः

।। श्रीजन्माष्टमीनिर्णयः ।।

प्रणम्य पितृपादाब्जयुगलं विगलन् मधु।।
जन्माष्टमी का अष्टमी इति संशयान् नाशयामि अहम्।।१।।

तत्र जन्माष्टमीव्रतस्य नित्यत्वं जन्माष्टमीजयन्त्योः भेदश्च माधवाचार्यादिभिः प्रपञ्चितएव अस्तीति न अस्माभिः प्रपञ्च्यते. किन्तु उपोष्या

गोस्वामिश्रीपुरुषोत्तमचरणविरचितः

जन्माष्टमीनिर्णयप्रकाशः

श्रीमदाचार्यचरणान् प्रभून् श्रीविट्ठलेश्वरान्।।
नत्वा उत्सवानां समयः सोपपत्तिकः उच्यते।।१।।

तत्र तावत् प्रथमं जन्माष्टमीसमयएव निर्णेयः, सकलोत्सवमूलत्वात् आविर्भावोत्सवस्य. स च प्रभुभिरेव निर्णीतः इति प्रथमं तन्निर्णयाशयएव प्रकाश्यते. तथा हि, अथ श्रीमत्प्रभुचरणाः स्वीयानां श्रीगोकुलाधीश-प्रादुर्भावदिवस-व्रतविषयकं कलिकलितवादिकलिकलितम् अन्तःकरणकलिलम् असहमानाः तन्निरासाय[१] प्रादुर्भावतिथिनिर्णयं प्रतिजानते **प्रणम्य** इत्यादि, **का अष्टमी इति संशयान्** इति. **का अष्टमी** इति प्रश्नहेतुभूतान् संशयान् इति अर्थः.

ते च पूज्यतिथिः विद्धा अविद्धा वा, अविद्धा चेत् क्षये **कीदृशी** उपोष्या इत्यादिरूपा उन्नेयाः. उत्तरे स्फुटिष्यन्ति च. ननु अत्र व्रतस्य नित्यत्व-काम्यत्वादिकं जन्माष्टमीजयन्त्योः भेदाभेदादिकं च कुतो न विचार्यते इति अतः आहुः, **तत्र** इत्यादि. तत्र तादृशसंशयो **न अस्माभिः प्रपञ्च्यते**. तयोः यदि [२]व्रतभेदात् तिथिप्रकारभेदाद् वा[३] भेदः. उभयथाऽपि यस्मिन् वर्षे जयन्तीयोगो नास्ति तस्मिन् वर्षे जन्माष्टम्यैव निर्वाहात् अनतिप्रयोजनत्वेन[-१] मुख्यतया न प्रपञ्च्यते इति अर्थः. ननु एवं सति संशयान्तरमपि ततएव नङ्क्ष्यत इति निर्णयारम्भो व्यर्थः इति अतः आहुः, किन्तु इत्यादि. तथा च

कीदृशी तिथिः इति सन्देहो निवार्यते. सा च विद्धा शुद्धा च इति द्विविधा.

तत्र कैश्चिद् वेधविचारे जन्माष्टम्या जयन्त्याश्च रात्रिप्रधानत्वाद् रात्रिवेधः प्रशस्तः इति उक्त्वा

''अष्टमी रोहिणीयुक्ता निश्यर्द्धे दृश्यते यदि,
मुख्यकाल इति ख्यातः तत्र जातो हरिः स्वयम्''

इति वसिष्ठसंहितावचनम् उक्तम्.

''रोहिण्याम् अर्धरात्रे तु यदा कृष्णाष्टमी भवेत्,
तस्याम् अभ्यर्चनं शौरेः हन्ति पापं त्रिजन्मजम्''

इति विष्णुरहस्यवचनं प्रोक्तम्. ततः

''अर्द्धरात्राद् अधश्चोर्ध्वं कलयाऽपि यदा भवेत्,
'जयन्ती' नाम सा प्रोक्ता सर्वपापप्रणाशिनी''

इत्यादिपुराणवचनं च.

''सिंहे अर्के रोहिणीयुक्ता भवेत् कृष्णाष्टमी यदि,
रात्यर्द्धपूर्वपरगा जयन्ती कलयापि च''

इति वराहसंहितावचनं च. एतद् अग्रे च अन्यान्यपि एतादृशानि वचनानि उक्तानि. तत्र आदिपुराणे वराहसंहितायां योगीश्वरादिवचनेषु च स्फुटं 'जयन्ती'पदम् अस्ति इति तदेकवाक्यतार्थम् अन्येषामपि ईदृशानां वचनानां जयन्तीव्रतपरत्वम् अभ्युपेयम्. यत्तु

उक्तविधसंशयः ततो न अपयाति इति निर्णयारम्भो न व्यर्थः इति अर्थः. उपोष्यनिर्णयार्थं विप्रतिपत्त्युत्पादकप्रकारद्वयं[४] प्रथमतः आहुः **सा च** इत्यादि.

तत्र विद्धायाः प्रथमोद्दिष्टत्वात् का विद्धा इति आकाङ्क्षायां वेधं निर्णिनीषन्तः तद्द्वारा जयन्ती-जन्माष्टम्योः भेदं च निर्णिनीषन्तः प्रथमतः परमतम् अनुवदन्ति **तत्र** इत्यादि **वचनानि उक्तानि** इति अन्तम्. व्यवस्थापयन्ति **तत्र** इत्यादि **अभ्युपेयम्** इत्यन्तम्. ईदृशानां रात्रिप्राधान्यज्ञापकानाम् इति अर्थः. ननु 'दिवा वे'तिवाक्ये रोहिण्यभावे रात्रिप्रधानत्वम् अष्टम्या उच्यते इति कथं सर्वेषां तादृशां जयन्तीपरत्वम् इति अतः आहुः **यत्तु** इत्यादि **न वदेद्** इत्यन्तम्. तथा च जयन्त्याम् अर्द्धरात्रे रोहिण्यष्टमीयोगस्य

''दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्ति चेद् रोहिणीकला,

रात्रियुक्तां प्रकुर्वीत विशेषेणेन्दुसंयुताम्''

इति वचनं तदपि जयन्तीपरम् इति ज्ञेयम्. तत्र अर्द्धरात्रे रोहिण्यष्टमीयोगस्य मुख्यत्वात्.

''प्रतिवर्षं विधानेन मद्भक्तो धर्मनन्दन,

नरो वा यदि वा नारी यथोक्तफलम् आप्नुयाद्''

इति भविष्योत्तरीय-जयन्तीकल्पीयवचनात्

''प्राजापत्यर्क्षसंयुक्ता श्रावणस्य असिताष्टमी,

वर्षे वर्षे तु कर्त्तव्या तुष्ट्यर्थं चक्रपाणिनः''

इति स्मृत्यन्तरे जयन्तीप्रकरणीयवचनाच्च प्रतिवर्षं कार्यम्. एवं सति यस्मिन् वर्षे मुख्यो जयन्तीयोगो नास्ति तस्मिन् वर्षे जन्माष्टम्याम् अहोरात्रमध्ये मुहूर्तमपि यदा रोहिणीयोगः तदा उपवासः कार्यः इति जयन्तीपरत्वादेव इन्दुसंयुतत्वम् उक्तम्. तत्र जयन्तीव्रते चन्द्रार्घदानस्य आवश्यकत्वात्.

''मुहूर्तमपि अहोरात्रे यस्मिन् युक्तं तु लभ्यते,

अष्टम्यां रोहिणी-ऋक्षं तां सुपुण्याम् उपावसेद्''

इति विष्णुरहस्यवचनस्यापि अयमेव विषयः. यदा तु जन्माष्टम्यामपि अहोरात्रमध्ये रोहिणीयोगो नास्ति तदा विशिष्टाभावे निशीथव्यापीनी अष्टम्येव उपोष्या, नतु जयन्तीव्रतविच्छेदः कार्यः इति [२]आशयो ''दिवा वे''ति वचनस्य. (अत एव इन्दुसंयुतत्वम् उक्तम्, तत्र चन्द्रार्घदानस्य आवश्यकत्वात्.) अन्यथा ''सऋक्षापि न कर्तव्या'' इतिवचनाद् जन्माष्टम्याम् ऋक्षयोगस्य अप्रयोजकत्वात् तदावश्यकत्व-ज्ञापकरोहिणीकलासत्त्वाभावं निमित्तत्वेन न वदेत्. यत्तु जयन्तीव्रते यो निर्णयः सएव जन्माष्टम्याम् इति उक्तं तद् न विचारक्षमम्.

मुख्यत्वात्, तत्र चन्द्रार्घदानस्य आवश्यकत्वेन इन्दुसंयुतत्वकथनाद् जयन्त्या नित्यत्वज्ञापनार्थं रोहिण्यभावेऽपि निशीथव्यापिनी अष्टम्या गौणतरादिकालत्व-ज्ञापनार्थत्वात् च अस्य जयन्त्येव विषय इति तादृशाम् अन्येषामपि सएव विषयः इति अर्थः. ननु एतेषां वचसां जयन्तीपरत्वेन व्यवस्थायां भवतां किम् आयातम् इति अतः आहुः **यत्तु** इत्यादि **ग्राह्य** इत्यन्तम्. अत्र अयम् अर्थः, जन्माष्टमीप्रकरणस्थवाक्यान्तरेषु

''पूर्वविद्धाष्टमी या तु उदये नवमीदिने,
मुहूर्तमपि संयुक्ता सम्पूर्णा साऽष्टमी भवेत्''.
''कलाकाष्ठामुहूर्ताऽपि यदा कृष्णाष्टमीतिथिः,
नवम्यां सैव ग्राह्या स्यात् सप्तमीसंयुता न हि''

इति पद्मपुराणवचनम्. 'उदय'पदेन जन्माष्टम्यां सूर्योदयकाले सत्वे एव वेध, जयन्त्याम् अर्द्धरात्रवेधएव ग्राह्यः.

उपवासातिरिक्ताष्टयामिक-व्रतान्तरादर्शनाद् अस्मिन् वाक्ये[५] विद्धायाधिकायां पूर्णत्वातिदेशाच्च अस्य उपवासव्रतत्वे निश्चिते तस्याष्टयामिकत्वेन

''कर्मणो यस्य यः कालः तत्कालव्यापिनी तिथिः,
तया कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम्,
उदयादुदयात् प्रोक्ता हरिवासरवर्जिता''

इति च वाक्यात् तावद्व्यापिन्येव[६] मुख्यः कालः तदभावे च पारिभाषिक-तावद्व्यापिनी गौणः कालः इति सिद्ध्यति. तत्र[७] च गौणकाले कर्मविशेषतिथिसामान्य-पुरस्कारेण प्रवृत्ताभ्यां

''उदये तूपवासस्य नक्तस्यास्तमये तिथिः,
मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या एकभक्तव्रते तिथिः,
आदित्योदयवेलायां याऽल्पापि च तिथिः भवेत्,
पूर्णा इत्येव मन्तव्या प्रभूता[८] नोदयं विना''

इति बौधायनस्य **''प्रायः प्रान्त उपोष्या हि तिथिः दैवफलेप्सुभिः''** इति शिवरहस्यस्य च वाक्याभ्यां सूर्योदयास्तमयव्यापित्वघटितं पक्षद्वयम् इति प्रकृते कः आदरणीयः इति आकाङ्क्षायाम् अनेन प्रातिस्विकवाक्येन[९] जन्माष्टम्याम् अस्तमयपक्षो अपोद्यते. यदि जन्माष्टम्या रात्रिप्रधानत्वं स्यात् स न अपोद्येत. तस्मात् न जयन्तीवद् अस्या अर्द्धरात्रव्याप्त्या निर्णयः किन्तु उक्तरीत्या[१०] निर्णयः इति आयातम् इति अर्थः. किञ्च, ''कलाकाष्ठा'' इति वाक्योपन्यासात् नवमीविद्धा नक्षत्रहीना तु मुहूर्त्तमात्रा ग्राह्या, इति वदन् अपरार्कोऽपि प्रत्युक्तो ज्ञेयः. यत्तु 'कलाकाष्ठा' इति उक्तवाक्यस्य त्रिमुहूर्त्तस्तावकत्वम्, इति कैश्चिद् उक्तम्, तदपि न विचारचारु.

''नागो द्वादशनाडीभिः दिक् पञ्चदशभिः तथा,
भूतोऽष्टादशनाडीभिः दूषयति उत्तरां[११] तिथिम्''

इतिवद् अस्य[१२] विशेषवचनत्वात्[१३]. अतएव नृसिंहपरिचर्यायां हरिवल्लभ-सुधोदये च

''पलवेधेऽपि[१४] विप्रेन्द्र सप्तम्या अष्टमीं त्यजेत्,
सुराया बिंदुना स्पृष्टं गङ्गाम्भःकलशं यथा''

इति स्कन्दवचनम् उक्तम्.

अपरार्कोऽपि **''त्रुटिमात्रयापि सप्तम्या विद्धाऽष्टमी सनक्षत्रापि न ग्राह्या''** इति आह इति दिक्. न च निषेधस्य प्राप्तिपूर्वकत्वनियमेन विषयभेदाच्च तदभावेन निषेधानुपपत्तिः इति वाच्यं, **''भूमौ अग्निः चेतव्यो न अन्तरिक्षे न दिवि''** इत्यादिवत् नित्यानुवादरूपत्वात्. परधर्मकरणवद् भ्रमात् करणप्राप्तेः सुवचत्वाच्च. न च विधिनिषेधयोः उभयप्रकरणस्थत्वदर्शनाद् न एवम् इति वाच्यं, यथासम्भवं [१५]श्रुतिलिङ्गाभ्यां[१६] प्रकरणबाधस्य वक्तुं शक्यत्वात् इति दिक्. यत्तु कश्चित् जन्माष्टम्या रात्रिप्रधानत्वम् अङ्गीकृत्य

''प्रस्तुतविधिनिषेधानां पूर्वोक्तरीत्या व्यवस्थापनम् अनुचितं सर्ववाद्यसम्मतत्वात्''

इति आह, तद् अति तुच्छम्, तेषु नियतविरोधदर्शनात्. न च[१७] पूर्वेद्युरेव निशीथव्याप्तौ विध्यवकाशः परेद्युरेव निशीथव्याप्तौ च निषेधावकाशो दिनद्वयेपि तद्व्याप्तौ अव्याप्तौ च विरोधः इति अनियतएव सः इति वाच्यम्, अवकाशस्थले कर्मकालशास्त्रेणैव निर्वाहाद् उभयोः आनर्थक्यप्रसङ्गात्. न च सामान्यविशेषभावेन उभयसार्थकत्वम् इति वाच्यम्. विशेषशास्त्रेण सामान्यस्य अस्य सङ्कोचे चतुर्द्धाकरणवत्कर्मकालशास्त्रस्य अन्यत्र प्रवृत्तिप्रतिरोधप्रसङ्गात् यच्छब्दबोधित-सामान्यताबाधप्रसङ्गाच्च. असङ्कोचे विरोधस्य अपरिहाराच्च. ननु विरोधस्थले कर्मोपक्रमकालशास्त्रं सङ्कल्पकाले सत्वम् अधिकव्याप्तिं च यथासम्भवम् आमादाय निबन्धकारैः विधिनिषेधव्यवस्थापनेन सोऽपि परिह्रियते इति चेत् न, पूजाप्राधान्यवादे अर्द्धरात्रस्थपूजायाः प्रातरुपक्रमाभावेन कर्मकालशास्त्रस्य च क्वचित् तुल्यत्वेन क्वचिद् उदासीनत्वेन विरोधतादवस्थ्यात् उपवासप्राधान्यवादेऽपि यदा प्रथमदिने अधिकनिशीथव्याप्तेः द्वितीयदिने संकल्प-कालाल्पनिशीथव्याप्तिः तदानीं विरोधतादवस्थ्यात् पक्षद्वयेऽपि अव्यवस्थित-विकल्पदोषप्रसक्तेः.

अतएव स्कन्दपुराणे **‘‘उदये चाष्टमी किञ्चिद् नवमी सकला यदि’’** इति उक्तम्.

यत्तु विष्णुधर्मोत्तरवचनम्

न च तत्र रोहिण्या निर्णयः इति वाच्यं, तस्या अप्रयोजकत्वात्

‘‘याः काश्चित् तिथयः प्रोक्ताः पुण्या नक्षत्रयोगतः.

तास्वेव तद्व्रतं कुर्यात् विना श्रवणरोहिणीम्’’

इति वाक्यात्. न च अधिकनिशीथव्याप्त्या निर्णयः इति वाच्यम्, काल्पनिकत्वात्. समव्याप्तौ तद्दोषतादवस्थ्याच्च. न च निषेधबाधितः कर्मकालो विधिना प्रतिप्रसूयते इति वाच्यं, निषेधानवकाशप्रसङ्गात्. ‘‘प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य’’ इति न्यायेन उभयानर्थक्यप्रसङ्गाच्च. एतेनैव विधिबोधितं निषिध्यते इत्यपि प्रत्युक्तं ज्ञेयम्. न च वारेण निर्णयः इति साम्प्रतं, तस्य उपलक्षकत्वाद् अनियतत्वाच्च. एतेनैव चन्द्रोदयोपि प्रत्युक्तः[-३]. वादिविसम्मतिस्तु ‘‘शतमपि अन्धा न पश्यन्ति’’ इति न्यायात्. **‘‘ज्ञानिनामपि चेतांसि’’** इति वाक्याच्च परिहणीया. भगवद्दासेषु तु सा न समर्था, **‘‘मामेव ये प्रपद्यन्ते’’** इति वाक्यात्. तस्माद् नियतएव विरोधः इति पूर्वोक्तैव व्यवस्था सदादरणीया इति. मानहीनो रात्रिप्रधानत्वाङ्गीकारोऽपार्थ एवेति दिक्. (सामान्य-विशेषाभावात् सर्वसार्थक्यम् इति दिक्).

सूर्योदयकाले अष्टमीसत्त्वं पुराणान्तरेऽपि अभिप्रेतम् इति आत्याशयेन आहुः. **अत एव** इत्यादि. अतएव सूर्योदयवेधस्य[१८] परिहार्यत्वादेव. यस्तु द्वैतनिर्णये भगवद्भास्करे च एकमूलकल्पनालाघवलिप्सया ‘उदय’पदेन **‘‘तारापत्युदये सति’’** इति अनेन एकवाक्यत्वात् चन्द्रोदयो ग्राह्यः, इति एकः पक्षः उक्तः, स तु न सङ्गच्छते, नवमी-साकल्योक्तिविरोधात्. नहि प्रहरषट्कव्यापिनी अष्टम्यपेक्षया प्रहरद्वयव्यापिन्या नवम्याः साकल्यं युज्यते. न च ‘सकला’शब्देन निशीथे सकला इति अर्थः उच्यते इति वाच्यम्, अनुक्तसिद्धत्वात्. अतएव कालतत्त्वविवेकेऽपि ‘‘अत्र च सूर्योदयप्रतीतिः’’ इत्येव उक्तम्. [१९]तस्मात् तयोः व्याख्येयवाक्यविरोध[२०] एव इति.

प्रकृतम् अनुसरामः. ननु वेधविचारस्य व्रतानुष्ठानोपयोगित्वाद् व्रतस्य च प्रत्यक्षोन्नीतान्यतरविध्यधीनत्वाद् जन्माष्टमी-जयन्तीविध्योश्च भगवत्प्रादुर्भाव-प्रयुक्तत्वेन तुल्यतया व्रतभेदस्य बहुवाद्यसंमतत्वाद् नाममात्रेण तिथिप्रकारमात्रभेदेऽपि

''रोहिणीसहिता कृष्णा मासि भाद्रपदे अष्टमी,
सप्तम्याम् अर्धरात्राधः कलयाऽपि यदा भवेत्,
तत्र जातो जगन्नाथः कौस्तुभी हरिरीश्वरः''

इति. तत्तु **''अविद्धायां तु सर्क्षायां जातो देवकीनन्दनः''** इति

जयन्त्यां गुणफलसम्बन्धाङ्गीकारात् 'व्रत'पदाभावे[२१] तदुपयोगिवेधविचारो[२२] व्यर्थः इति आकांक्षायां वेधविचारवैयर्थ्यपरिजिहीर्षया प्रयोजकभेदरूपभेदशब्दान्तरैः व्रतभेदं वक्तुं प्रयोजकादिभेदबोधकं विष्णुधर्मोत्तरवाक्यम् उपन्यस्यन्ति **यत्तु** इत्यादि.

तदर्थम् आहु: **तत्तु** इत्यादि **व्रतपरमेव** इत्यन्तम्. अत्र अयम् अर्थ: सम्पद्यते

''रोहिणीसहिता कृष्णा मासि भाद्रपदेऽष्टमी,
सप्तम्यामर्द्धरात्राध: कलयापि यदा भवेत्.
तत्र जातो जगन्नाथ: कौस्तुभी हरिरीश्वर:.
तमेवोपवसेत् कालं तत्र कुर्याच्च जागरम्.
अर्द्धरात्रे तु योगोऽयं तारापत्युदये सति.
नियतात्मा शुचि: स्नात: पूजां तत्र प्रवर्त्तयेत्''

इति वाक्ये प्रथमपादत्रयेण जयन्तीरूपं कालम् अनूद्य सम्भावनार्थक-लिङ्-घटित-तुरीयपादेन अग्रिमार्द्धेन[२३] च आपादकम् उक्त्वा तदग्रिमार्द्धेन आपाद्यम् उक्तम्. एवं च अयम् अर्थो भवति : उक्तविधकाले यदि भगवान् जातो भवेत् तमेव उपवसेत् तत्र जागरं च कुर्यात्. यतो न एवम् अतो न एवम् इति तर्कनिरूपणद्वारा तदुभयं निषिध्य तादृशे काले किं कुर्यात् इति आकांक्षायां तत्स्वरूपनिरूपणपूर्वकं तत्र कर्तव्यम् आह 'अर्द्धरात्रे' इति पद्येन. अतएव भगवज्जन्मकालत्वशङ्कानिरासकः 'तु' उक्त:. एवं सति जयन्तीव्रतं भाद्रकृष्णसप्तम्यष्टमी रोहिण्यर्द्धरात्रादिसमुदायप्रयुक्तं, दशहरावत् पूजारूपकं(पं!?) च ''पूजां प्रवर्त्तयेद्'' इति शब्दान्तरप्राप्तं च. जन्माष्टमीव्रतं तु भगवत्प्रादुर्भावयुक्तम् उपवासरूपकम्(पं!?) 'उपवसेत[२४]' इति शब्दान्तरप्राप्तं च इति तयोः भेदएव सिद्ध्यति. यदि आपाद्यकोटौ उपवासाद्यनुवादः[२५] उच्यते तदाऽपि तस्य[२६] विध्यनुवादत्वात् तेनापि विधिः उन्नेतुं शक्यः इति न कोऽपि दोष:. यदि च

''अभिजिन्नाम नक्षत्रं जयन्तीनाम शर्वरी.
मुहूर्त्तो विजयो नाम यत्र जातो हरि: स्वयम्''

इति वाक्याद् जयन्तीत्वं जन्माष्टम्यामपि विभाव्यते. तदापि ''अर्द्धरात्रे तु योगोऽयम्'' इति वाक्यात् पदप्रवृत्तिनिमित्तभेदाद् भेद[२७] एव तयोः इति न दोष:. यस्तु

जन्माष्टमीजयन्त्योः भिन्नत्वे जयन्तीव्रताकर्तॄणां वर्षविशेषे प्रत्यवायः केनचिद् आशङ्कितः सोपि अनेनैव समाहितो ज्ञेयः. यदि च योगविशेषप्रयुक्तोपवासस्य नित्यत्वम् आगृह्णीयात् तदाऽपि पूर्वविद्धायां जन्माभावात् योगभङ्गएव इति न नित्योपवासप्राप्तिः. यत्र तु शुद्धाधिकायां जयन्तीयोगः तत्र तु फलातिशयमात्रं न तु नित्योपवासः इति वक्ष्यते इति दिक्.

यत्तु माधवाचार्यैः

''अर्द्धरात्राद् अधश्चोर्ध्वं कलयापि यदा भवेत्,
जयन्तीनाम सा प्रोक्ता सर्वपापप्रणाशिनी''

इति आदित्यपुराणीयम्, **''रात्यर्द्धपूर्वा परगा जयन्ती फलयापि च''** इति वराहसंहितावचनं च उक्त्वा कलास्वरूपं च व्याख्याय ''खण्डतिथिरूपा कृष्णाष्टमी द्विधा, पूर्वेद्युः सप्तमीयुक्ता परेद्युर्नवमीयुक्ता च इति. तत्र **''सप्तमीयुक्तायाः रात्रिपूर्वार्द्धावसाने कलासद्भावो विधीयते''** इत्यादि च उक्त्वा सप्तमीपूर्वार्द्ध-रात्रावसानाष्टमीकलाभिधायकत्वं विष्णुधर्मोत्तरीयवाक्यस्य[२८] दर्शितं तदपि तदा संगतं भवति यदा **''तत्र जातो जगन्नाथः''** इति अर्द्धं[२९] मध्ये न भवति. तत्सत्त्वात् च अनुपदोक्तएव अर्थः प्राञ्जलः प्रतिभाति इति. यदि च 'रोहिणी' इति पदस्य सम्भावितकालानुवादकत्वं 'तत्र जातः' इति अर्द्धस्य च भूतार्थबोधकत्वेन उनोपवासादिकं प्रति हेतुत्वम् इति विभाव्यते तदापि सम्भावितकाले भूतार्थकथनात् कल्पनावैरूप्यापत्तिः अनिवार्यैव. यदि च **''यदा स्थिता तत्र जातः अतो यदा भवेत् तमेव उपवसेत्''** इति एवं लाप्यते तदापि अध्याहारदोषो मूलद्वयकल्पना[३०] च इत्याग्रहवादिषु जोषंभावएव सताम् उचित इति दिक्. यच्च द्वैतनिर्णयभगवद्भास्करकाराभ्यां भविष्यविष्णुधर्मोत्तरयोः इति अभिधाय

''रोहिण्याम् अर्द्धरात्रे तु''
''प्राजापत्यर्क्षसंयुक्ता''
''अर्द्धरात्रे तु योगो अयं''
''रोहिणीसहिता कृष्णा''
''अर्द्धरात्राद् अधश्चोर्ध्वं कलयाऽपि यदा भवेत्,
तत्र जातो जगन्नाथः''

इति अवधिवाक्यक्रमभेदेन पाठभेदो अलेखि, ''तमेव उपवसेद्'' इति अर्धं च न

ब्रह्मवैवर्त्तवचनविरोधाद् रोहिण्यष्टमीयोगमात्रपरम् इति जयन्तीव्रतपरमेव. भगवदाविर्भावे जाते मुहूर्तमात्रानन्तरं योगमायाया नवम्याम् आविर्भावात्. एवं सति सप्तमीवेधासम्भवात् पूर्ववचनेन पूर्वविद्धायाम् आविर्भावो न वक्तुं शक्यः. यदुक्तं भविष्ये

''नवम्यां योगमायाया जन्माष्टम्यां हरेः अतः,

नवमीसहितो पोष्या रोहिणीबुधसंयुता''.

तस्मात् सूर्योदयकाले सप्तमी भवति, तदुपरि वर्त्तमानाष्टमी सा विद्धा. सूर्योदयम् आरभ्य प्रवर्त्तमानाष्टमी सा शुद्धा. तत्रापि विद्धा अधिका शुद्धा अधिका च

अलेखि तदपि माधवीयादिषु प्राचीनेषु कालतत्त्वविवेके अर्वाचीने च तथापाठादर्शनात् पुराणवाक्यसाङ्कर्येण लिखनात् पूर्वोक्तदोषापत्तेश्च तदनुसारिणामेव विश्वसनीयम् इति ध्येयम्.

ननु कल्पभेदेन अविद्धाविद्धयोः प्रादुर्भावाङ्गीकारे कः दोषः इति चेत् तत्र आहुः **भगवद्**...इत्यादि **संयुता** इत्यन्तम्. तथा च ब्रह्मवैवर्तेन सप्तमीविद्धानिषेधपूर्वकम् अविद्धायां प्रादुर्भावः उक्तः. श्रीमद्भागवते च भगवत्प्रादुर्भावोत्तरं **''यदा बहिर्गन्तुमिवेष तर्ह्यजा या योगमायाऽजनि नन्दजायया''** इति मुहूर्त्तानन्तरं योगमायाजन्मोक्तम्. तच्च भविष्ये नवम्याम् उक्तं

''नवम्यां योगनिद्राया जन्माष्टम्यां हरेरतः,

नवमीसहिता उपोष्या रोहिणीबुधसंयुता''

इति. विष्णुपुराणे पञ्चमे अंशे प्रथमाध्याये. ब्रह्मपुराणे च

''प्रावृट्काले च नभसि कृष्णाष्टम्यां महानिशि,

उत्पत्स्यामि नवम्यां च प्रसूतिं त्वम् अवाप्स्यसि''

इति च नवम्याम् उक्तम्. एवं[३१] सति पुराणचतुष्टयैकवाक्यतया[३२] न पूर्वविद्धायाम् आविर्भावो वक्तुं शक्यः. किन्तु योगविशेषमात्रपरत्वमेव अभ्युपेयम् इति अर्थः. एतेन कालतत्वविवेके यः कल्पभेदेन जन्मकालभेदो अङ्गीकृतः सोऽपि प्रत्युक्तो ज्ञेयः. वशिष्ठवचनं[३३] तु प्रादुर्भावकालमात्रबोधकत्वाद् विद्धाविद्धयोः समानम् इति न तेनापि आग्रहो युज्यते. फलितम् आहुः **तस्मात्** इत्यादि **द्वैविध्यम्** इत्यन्तम्. **तस्मात्** उपोष्यतिथेः जन्मसामयिककालानुरोधेन विचार्यत्वाद्, अत्र 'विद्धा'-'शुद्धा'पदाभ्यां विद्धन्यूनाशुद्धन्यूने उच्येते. शुद्धसमाविद्धसमयोः एकादश्यादौ पुराणसिद्धत्वेऽपि इदानींतनज्योतिर्विद्भिः सूक्ष्मकालानवगमेन अनङ्गीकारात्. शुद्धाधिकाविद्धाधिके च

इति द्वैविध्यम्. तत्रापि निशीथव्यापित्वाव्यापित्वाभ्यां प्रत्येकं द्वैविध्यम्. तत्र शुद्धाधिकायां पूर्वदिने एव उपवासो बाधकाभावात्. विद्धाधिकायां तु परदिने एव उपवासः, विद्धायाम् उपवासनिषेधश्रवणात्. तथा हि ब्रह्मवैवर्त्ते

''वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसंयुताष्टमी''.

''सऋक्षापि न कर्तव्या सप्तमीसंयुताष्टमी,
अविद्धायां तु सर्क्षायां जातो देवकीनन्दनः'' इति.

ननु

''कार्या विद्धापि सप्तम्यां रोहिणीसहिताष्टमी,
तत्रोपवासं कुर्वीत तिथिभान्ते च पारणम्''

इति पद्मपुराणवचनाद् न एवं निर्णयः उचितः इति चेद्, मा एवम्.

''जयन्त्यां पूर्वविद्धायाम् उपवासं समाचरेत्,
तिथ्यन्ते चोत्सवान्ते वा व्रती कुर्वीत पारणम्''

इति गारुडपुराणवचनाद् जयन्तीव्रतविषयत्वाद् एतादृशानां वचनानां **''सऋक्षापि न कर्त्तव्या''** इति वचनाद् जन्माष्टमीव्रते रोहिणीयोगस्य अप्रयोजकत्वात्. तेषु सर्वेषु वचनेषु रोहिणीयोगस्य श्रूयमाणत्वात्. जयन्त्याश्च

''श्रावणे वा नभस्ये वा रोहिणीसहिताऽष्टमी,
यदा कृष्णा नरैः लब्धा सा जयन्ती इति कीर्तिता''.

विष्णुधर्मोत्तरे च,

''रोहिणी च यदा कृष्णे पक्षे अष्टम्यां द्विजोत्तम,
जयन्तीनाम सा प्रोक्ता सर्वपापहरा तिथिः''.

ननु यदा दिनद्वयेऽपि निशीथयोगो अष्टम्याः तद्विषयकानि सप्तमीविद्धा-निषेधवचनानि इति चेद्, मा एवम्,

---

ईषदधिकव्यापिन्यौ. तत्रापि इति बहुकालव्यापिन्यां विद्धाधिकायां शिष्टौ द्वौ भेदौ. एवं षट्. **तत्रापि** इत्यस्य शुद्धाधिकाविद्धाधिकयोः [-४]इत्यर्थकत्वेपि आद्याधिक्यस्य अविवक्षितत्वेन[३४] षडेव. सर्वेषामपि निर्णयम् आहुः **तत्र**... इत्यादिना. अत्र द्वयोः कण्ठोक्तत्वेऽपि त्यागात्यागहेतूक्त्या शिष्टानाम् अनुक्तसिद्धएव इति आशयो ज्ञेयः.

अत्र विद्धाविधीनाम् उभयविषयत्वं मन्वाना उभयाभेदं च मन्वानाः शङ्कन्ते.

''पूर्वविद्धाष्टमी या तु उदये नवमीदिने,
मुहूर्त्तमपि संयुक्ता सम्पूर्णा सा अष्टमी भवेत्,
कलाकाष्ठामुहूर्त्तापि यदा कृष्णाष्टमी तिथिः,
नवम्यां सैव ग्राह्या स्यात् सप्तमीसंयुता न हि''

तन्मतम् अनुवदन्ति **ननु...** इत्यादि. समादधते **मैवम्...** इत्यादि **तिथिः** इत्यन्तम्.

एवं विधिवाक्यानि व्यवस्थाप्य निषेधवाक्यानि व्यवस्थापयितुं पूर्ववद् **ननु** इत्यादिना परमतम् अनूद्य दूषयन्ति **मैवम्** इत्यारभ्य **उक्तवचनविरोधाद्** इत्यन्तम्.

यत्तु द्वैतनिर्णयकारैः यदा तु पूर्वेद्युः निशीथात् ऊर्ध्वं परेद्युश्च प्राङ्निशीथाद् इति दिनद्वयेऽपि रोहिणीयोगः तदा त्रैविध्यं, दिनद्वयेऽपि निशीथे अष्टमीसत्त्वं, परेद्युरेव वा-पूर्वेद्युरेव वा इति. तत्र आद्ययो: कल्पयोः द्वितीयैव उपोष्या. तदुक्तं स्कन्दपुराणे

''सप्तमीसंयुताष्टम्यां भूत्वा ऋक्षं द्विजोत्तम,
प्राजापत्यं द्वितीयेऽह्नि मुहूर्त्तार्द्धं भवेत् यदि,
तदाष्टयामिकं ज्ञेयं प्रोक्तं व्यासादिभिः पुरा''.
''मुहूर्त्तेनापि संयुक्ता''

इति प्रदर्शितपाद्मवचनात् च इति उक्त्वा यत्तु कैश्चित् पाद्मम् इति अलेखी इति च उक्त्वा पूर्वविद्धाष्टमी इतिवाक्यद्वयं[३५] च धृत्वा तदपि एवंविधएव विषये योजनीयम्. सप्तमीसंयुताष्टम्या नवमीदिने उदयावच्छेदेन मुहूर्त्तादिसंयुक्तत्वस्य सम्भवाद् इति [३६]कथनाद् आतिदैशिकजयन्तीयोगविषयत्वम् अस्य इति[३७] स्वाशयः उद्घाटितः. सोऽपि विनिगमकाभावाद् अविचाररुचिरएव. (न च तौल्यम् इति वाच्यम्. ऋक्षानुक्तेरेव गमकत्वात्.)[३८]

यत्तु भगवद्भास्करे उपवासस्य पूजाङ्गत्वस्य प्राक् स्थापितत्वेन न स्वातन्त्र्येण कालनिर्णयप्रयोजकत्वम् इति उक्तं, यच्च **''सोपवासो हरेः पूजां शुचिः सम्यग् उपोषितः''** इत्यादौ उपवासस्य गुणत्वप्रतीतेः ''सदतो धावति'' इत्यादिवत् फलिसंस्कारः. पूजैव प्रधानम्. एवं च उपवासस्य पारार्थ्ये निर्बाधे ज्ञाते यः तद्वाक्ये फलोल्लेखः स केवलं स्तावकएव, पर्णतादिवत्[३९]. ''अङ्गे फलश्रुतिः अर्थवादः'' इति न्यायाद् इति उक्तम्. यच्च उक्तयुक्त्या[४०] पूजायाएव फलसम्बन्धे **''श्रावणे बहुले पक्षे''** इत्यादिवाक्येषु कृष्णजन्माष्टमीव्रतशब्देन पूजाया ग्रहणाद् युक्तो अकरण-निन्दार्थवादश्रवणाद् नित्यत्वोद्घोषः इति. तस्माद् उपवासो अङ्गं पूजैव तु प्रधानम् इति

इति पद्मपुराणवचनविरोधात्. एतेनैव नक्तादिव्रतयोगेषु रात्रियोगो विशिष्यते इति वचनं जन्माष्टम्यतिरिक्तव्रतपरम् इति ज्ञेयम्, उक्तवचनविरोधात्.

यत्तु

''जन्माष्टमी जयन्ती च शिवरात्रिः तथैव च,
पूर्वविद्धैव कर्त्तव्या तिथिभान्ते च पारणम्''

इति भृगुवचनम् तस्य अयम् अर्थः **''श्रावणे वा नभस्ये वा''** इति वाक्याद् मासद्वयेऽपि जयन्तीव्रतं सम्भवति तत्र पूर्वविद्धायामेव अष्टम्यां रोहिणी यदा भवति न परदिने तदा

''सप्तमीसंयुताष्टम्यां भूत्वा ऋक्षं द्विजोत्तम,
प्राजापत्यं द्वितीये अह्नि मुहूर्त्तार्द्धं भवेद् यदि,

उक्तं तदपि आपातरमणीयमेव. ''श्रावणे बहुले'' इत्यादौ 'जन्माष्टमीव्रत'शब्देन पूजाग्रहणसम्भवेऽपि **''तां सुपुण्याम् उपावसेद्''** **''उपोष्या सा प्रयत्नतः''** इत्यादौ उपवासस्यैव स्फुटोक्तेः

''जयन्तीवासरे प्राप्ते करोत्युदरपूरणम्,
सम्पीड्यते अतिमात्रं तु यमदूतैः कलेवरम्''
''यो भुञ्जीत विमूढात्मा जयन्तीवासरे नृप''

इति माधवधृतस्कान्दे च उपवासाकरणस्यैव निन्दनाद् उपवासस्यैव नित्यत्वप्रतीतेः तदेकमूलतया[४१] ''श्रावणे बहुले'' इत्यादावपि उपवासग्रहणमेव उचितं, नतु पूजाग्रहणम्. न च जयन्ती-जन्माष्टम्योः भेदाद् न इदं साम्प्रतम् इति वाच्यम्. इयं हि अस्मदुक्तिः नतु तदुक्तिः. तैस्तु पूजाप्राधान्यम् अङ्गीकुर्वद्भिः जन्माष्टमीजयन्त्योः अभेदएव द्योत्यते. यदि न इत्थं तदा तदुपन्यस्त-जन्माष्टमीवाक्येषु कुत्र वा पूजा उक्ता येन तत्प्राधान्यम् अङ्गीक्रियते. 'सोपवासः' 'सम्यगुपोषितः' इति तु प्राप्तानुवादकम्[४२], ''कृत्वा तु पार्वणश्राद्धम्'' इत्यादिवद्, नतु अङ्गत्वबोधकम्. अन्यथा

''केवलेनोपवासेन तस्मिन् जन्मदिने मम,
शतजन्मकृतात् पापात् मुच्यते नात्र संशयः''

इति वाक्ये ''न अत्र संशयः'' इत्युक्तिबाधापत्तेः. तस्माद् अङ्गत्वप्रतीतिः विपर्यास[४३] एव इति तस्यापि[४४] प्राधान्यम् अप्रत्यूहम् इति सोऽपि कालनिर्णये प्रयोजकः इति अङ्गीकार्यमेव. अतएव द्वैतनिर्णयेऽपि उपवासमेव उल्लिख्य द्वैतं निरणायि. माधवादयः कालतत्त्वविवेकादयोऽपि तस्य प्राधान्यम् ऊचुः इति दिक्.

तदाष्टयामिकं ज्ञेयं प्रोक्तं व्यासादिभिः पुरा''

इति स्कन्दपुराणवचनात्,

''पूर्वविद्धाष्टमी या तु उदये नवमीदिने,
मुहूर्तमपि संयुक्ता सम्पूर्णा साऽष्टमी भवेत्''

इति पद्मपुराणवचनाच्च परदिनेपि आतिदेशिको जयन्तीयोगो अस्तीति जन्माष्टमीवद् जयन्त्यपि परदिनएव कार्या इति भ्रमः स्यात् तन्निवृत्यर्थम् आह **जन्माष्टमी** इत्यादिना. **चो** 'अपि' अर्थे. यथा श्रावणे पूर्वविद्धैव जयन्ती कार्या, एवमेव जन्माष्टम्यां या जयन्ती सापि पूर्वविद्धैव कार्या इति. यदा 'रोहिणी' इति पाठः तदा जन्माष्टम्यां या रोहिणी जयन्ती इति यावत् सा तथा इति अर्थः.

जन्माष्टमीप्रकरणस्थत्वाद् एतयोः वचनयोः न जयन्तीपरत्वं वक्तुं शक्यं, जयन्त्यां रोहिणीयोगस्य प्राधान्यात् तस्य मुख्यतया निर्देशः कृतः,

''पूर्वविद्धाष्टमी या तु उदये नवमीदिने,
मुहूर्तमपि संयुक्ता सम्पूर्णा साऽष्टमी भवेत्''

एवं द्विविधवाक्यगतिम् उपपाद्य जन्माष्टम्या रात्रिप्रधानत्ववादिनः प्रति वदन्तो वाक्यान्तरव्यवस्थाम् आहुः **एतेनैव** इति, अविद्धायां जन्मनिश्चयाद् उक्तवाक्य-व्यवस्थापनेन इति अर्थः. एवं वेधरहितैव उपोष्या इति प्रतिपाद्य वक्ष्यमाण-भृगुवाक्यदर्शनज-विद्धाकार्यत्व-भ्रमभङ्गाय भृगुवाक्यम् उपन्यस्य तदर्थम् आहुः **यत्तु** इति आरभ्य **तथा इति अर्थः** इत्यन्तम्. **न परदिने** इति न द्वितीयदिने निशीथव्यापिनी इति अर्थः. अत्र यथा 'श्रावणे' इत्यादिग्रन्थेन **''श्रावणे बहुले पक्षे कृष्णजन्माष्टमीव्रतम्''** इत्यादौ 'श्रावण'शब्द-'व्रत'शब्दयोः श्रवणात् **''तिथिकृत्ये च कृष्णादिव्रते शुक्लादिमेव च''** इति श्रवणाच्च तिथिकृत्यत्वात् कृष्णादिश्रावणे जन्माष्टमी कार्या इति कस्यचिद् भ्रमः स्यात् स न कार्यः, किन्तु तिथिकृत्यत्वेऽपि व्रतत्वस्य अक्षतत्वाद् जयन्तीवत् कालान्तराविधानाच्च शुक्लादिरेव ग्राह्यः. जयन्त्यां तु उभयोरपि[४५] ग्रहणाद् उभौ कृष्णादी ग्राह्यौ इत्यपि उक्तं ज्ञेयम्[४६]. ननु स्कान्द-पाद्मवचनयोरपि जयन्तीपरत्वोक्तौ किं बाधकम् इति अतः आहुः **जन्माष्टमी** इत्यादि. 'रोहिणी'पदतात्पर्यम् आहुः **जयन्त्याम्** इत्यादि. ननु विद्धाधिकायां भवतु अयं निर्णयः, शुद्धाधिकायां तु **''विहीनशल्यापि विवर्जनीया पद्यग्रतो वृद्धिम् उपैति पक्षः''** इति

इति वाक्यात् पूर्ववेधाभावे नवम्याम् उदयसमये अष्टमीसद्भावेऽपि न सा ग्राह्या, किन्तु पूर्वैव, त्यागहेताः वेधस्य अभावात्. तद् एवं सप्तमीवेधरहिता जन्माष्टमी निशीथयोगे तदयोगे च नक्षत्रयोगे तदयोगेऽपि सा[-५] कार्या. एतावान् परं विशेषः, वेधरहितायामेव चेद् नक्षत्रयोगे निशीथे बुधस्य सोमस्य वा वारश्च भवति तदा तत्प्रयुक्तः फलविशेषो भवति. तदुक्तं स्कन्दपुराणे

''उदये चाष्टमी किञ्चिद् नवमी सकला यदि,
भवेत्तु बुधसंयुक्ता प्राजापत्यर्क्षसंयुता,
अपि वर्षशतेनापि लभ्यते वाऽथवा न वा''.

पद्मपुराणेऽपि

''प्रेतयोनिगतानां तु प्रेतत्वं नाशितं नरैः,
यैः कृता श्रावणे मासि अष्टमी रोहिणीयुता,
किं पुनः बुधवारेण सोमेनापि विशेषतः,
किं पुनः नवमीयुक्ता कुलकोट्यास्तु मुक्तिदा''

इति.

''यथा मलिम्लुचः पूर्वो दैवो मासः तथोत्तरः,
त्याज्या तिथिः तथा पूर्वा वृद्धौ ग्राह्या तथोत्तरा''

इति वाक्याद् द्वितीयैव कार्या इति पूर्वोक्तः शुद्धाधिकानिर्णयो न साधुः इत्यतः आहुः **पूर्वे**त्यादि **अभावाद्** इत्यन्तम्. तथा च तेषां सामान्यत्वाद् न तैः एतन्निर्णयः किन्तु प्रातिस्विकेन अनेनैव निर्णयः इति पूर्वोक्तं साध्वेव इति अर्थः[४७].

फलितम् आहुः, **तदेवम्**... इत्यादि **कार्या** इत्यन्तम्. **तत्** तस्माद् उक्तहेतोः.

''पुरा देवैः ऋषिगणैः स्वपदच्युतिशङ्कया,
सप्तमीवेधजालेन गोपितं चाष्टमीव्रतम्,
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन त्याज्यमेवाशुभं बुधैः,
वेधे पुण्यं क्षयं याति तमः सूर्योदये यथा''

इति स्कान्दात्.

''पञ्चगव्यं यथा शुद्धं न ग्राह्यं मद्यसंयुतम्,
रविविद्धा तथा त्याज्या रोहिणीसहिता यदि''

इति पाद्मात् च वा इति अर्थः. **एतावान्** इत्यादि **मुक्तिदा** इत्यन्तो ग्रन्थः स्पष्टः.

“**पूर्वविद्धाष्टमी या तु उदये नवमीदिने**” इति वाक्यात् पूर्वविद्धायाः परदिने मुहूर्त्तमपि सत्त्व एव पूर्वविद्धायाः त्यागो नतु असत्त्वेऽपि. केचित्तु

“जन्माष्टमीं पूर्वविद्धां स ऋक्षां सकलामपि,

विहाय नवमीं शुद्धाम् उपोष्य व्रतम् आचरेत्”

इति व्यासवचनात् पूर्वविद्धायाः क्षये (तु) शुद्धैव नवमी उपोष्या वचनबलाद्, एकादश्या दशमीवेधे शुद्धद्वादशीवद् इति वदन्ति. तत्र यदि एतद् वचनं समूलकं तदा तथैव. नो चेत् पूर्वोक्तरीतिरेव अनुसर्त्तव्या.

ननु विद्धाक्षये किं कार्यम् इति आकाङ्क्षायां प्राचोर्वादिनोः मतद्वयम् अनुवदन्ति **पूर्वे**त्यादि **वदन्ति** इति अन्तम्. **इति** इति अन्तं मतम् अपरार्ककृष्णपण्डितादीनाम्, द्वितीयं विष्णुभक्तिचन्द्रोदयादीनां ज्ञेयम्. एवं मतद्वयम् अनूद्य सिद्धान्तम् आहुः तत्र इत्यादि. **नो चेद्,** वचनमूलालाभे **पूर्वोक्तरीतिः अनुसर्त्तव्या,** अव्यवहितपूर्वोक्त एकादश्या दशमीवेधे शुद्धद्वादशीवद् इति प्रकारो अनुसर्त्तव्यः. यद्वा पूर्वविद्धाष्टमी इति वाक्यस्य या अगत्या अन्यग्रहणरूपा रीतिः विद्धाक्षये परैः आदृता सा रीतिः नवम्याम् अनुसर्त्तव्या. अयम् अर्थः

“पूर्वविद्धा यथा नन्दा वर्जिता श्रवणान्विता,

तथाऽष्टमीं पूर्वविद्धां सऋक्षामपि सन्त्यजेत्”

ति अपरार्कधृतपाद्मवचनेन अष्टमीत्यागः एकादशीत्यागवद् अतिदिश्यते. एकादशीत्यागप्रकारश्च

“दिनक्षये तु शुद्धैव द्वादशी मोक्षकाङ्क्षिभिः,

उपोष्या दशमीयुक्ता नोपोष्यैकादशी तिथिः”

इति सुमन्तुना द्वादशीं गौणकालं गृहीत्वा मोक्षकामपरत्वेन व्यवस्थापितः तथैव अष्टमीं त्यजेत्. नवमीं गौणकालं गृहीत्वा त्यजेद् इति प्रकारो अनुसर्त्तव्यः इति. (हरिवल्लभसुधोदये) कूर्मपुराणेऽपि

“दिनक्षये तु संप्राप्ते उपोष्या द्वादशी भवेत्,

दशमीशेषसंयुक्तां न कुर्वीत कदाचन”

इति. यद्यपि

“अर्द्धरात्रम् अतिक्रम्य दशमी दृश्यते यदि,

तदा ह्येकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत्”

इत्यपि कूर्मपुराणे अस्ति तथापि स त्यागो न अत्र अतिदेशविषयः[४९], **“उदयाद्**

उदयात् प्रोक्ता'' इति वाक्येन प्रतिबद्धत्वात्. तस्माद् अयमेव विषयः इति दिक्. न च भवतु अष्टमीत्यागः तथा, तथापि द्वादशीवद् नवमीप्रापकवचनाभावाद् नवम्युपोषणं न सांप्रतम् इति वाच्यं, विद्धानिषेधैरेव त्यागस्य सिद्धौ अतिदेशस्य अनारभ्यत्वापातात्. अथ ग्रहिलतया विधिवाक्यएव चेद् आग्रहः क्रियते तदा तथैव विधिवाक्यमपि सोपपत्तिकम् उदाह्रियते. तथाहि

''विना ऋक्षेण कर्त्तव्या नवमी संयुताऽष्टमी,
सऋक्षापि न कर्त्तव्या सप्तमीसंयुताष्टमी''

इति हरिवल्लभसुधोदये स्कान्दम् अवधारय. कथम् अत्र विधिलाभः इति चेद् इत्थम्. अमिश्रणार्थक'यु'धातुप्रयोगेण सम्यक्-लेशमात्रेणापि युता अमिश्रिता अष्टमी यस्यां सा संयुताष्टमी तादृशी नवमी कर्त्तव्या उपोष्या. तत्र हेतुः उत्तरार्द्धाद् अवधेयः इति एवं वचनव्यक्तेः इति जानीहि. न च अत्र विनिगमकाभावः शङ्क्यः. तर्कैः तन्निश्चयात्. तथा हि.

प्रस्तुतनवमी यदि स्वानुगुणतिथिगौणकालत्वेन उपोष्या[५०] न स्यात् तत्तिथ्यदूषक-वेधनिरूपणयोग्या[५१] न स्यात्, तत्तिथिदूषक-वेधनिरूपणायोग्यत्वे सति यद्यदूषक-वेधनिरूपणयोग्या[५२] न स्यात्, तत्तिथिवेधनिरूपणयोग्यैव न स्याद् इति.

किञ्च अनेन व्याप्तिमूलभूतेन तर्केण उपोष्यत्वम् अनुमातुमपि शक्यम्. तथा हि. प्रस्तुतनवमी स्वानुगुणतिथिगौणकालत्वेन उपोष्या तत्तिथ्यदूषकवेधनिरूपण-योग्यत्वाद्, यद् एवं तद् एवं द्वादशीवद्, यद् न एवं तद् न एवं दशमीवत्. अनुगुणत्वं च अत्र तद्वेधघटितत्वे सति तन्निरूपितदोषरहितत्वं, तन्निरूपितगुणवत्वं वा. वेधत्वं च गुणदोषान्यतर-प्रयोजक-सम्बन्धविशेषत्वं बोध्यम्. विषयशोधकाश्च तर्काः सन्ति. प्रस्तुतनवमी यदि जन्माष्टमीगौणकालत्वेन उपोष्या न स्यात् प्रातिस्विकवाक्येषु तद्विद्धजन्माष्टमी प्रशंसापि न स्यात्. इत्थं प्रशंसा यदि योगविशेषज-फलविशेष-सूचनमात्रफलिका स्याद्, बुधसोमादिवद् उपलक्षणविधामात्रेणैव स्यात्. किञ्च नवमी यदि तथा उपोष्या न स्याद्, भगवज्जन्मतिथिः नवमीसहिता न स्याद् इति एवं रूपा अन्येऽपि उन्नेयाः. तस्माद् अदूषकवेधघटकत्व-प्रशस्तवेधघटकत्वोत्सवाधिकरणत्व-रूपानुकूल-तर्कत्रयेण **''यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः''** इति वाक्येन च उक्तवाक्यार्थो[५३] नवम्युपोषणविधायकएव विनिगन्तव्यः. उत्सवाधिकरणत्वं च सुबोधिन्यां पुत्रोत्सवादिकं

च शुद्धनवम्यामेव जातम् इति श्रीमदाचार्यचरणोक्तिभिः अवगन्तव्यम्.

यत्तु कैश्चिद् विद्धाक्षये विद्धोपवासो अगत्या कर्त्तव्यः इति प्रत्यपादि तद् अप्रयोजकत्वाद् विद्धानिन्दार्थवादाद् निबन्धेषु परस्परं व्यवस्थाकलहदर्शनाच्च अनवधानविजृम्भितमेव[५४].

प्रकृतम् अनुसरामः. यद्वा अत्र 'रीति'शब्दः संप्रदायवाची. तथा च प्राचीनशिष्ट–वैष्णवोक्तसंप्रदायो अनुसर्त्तव्यः इति अर्थः. न च एवम् अन्धपरम्परापत्तिः, सदाचारस्यापि धर्ममूलत्वात्, ''**श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः**'' इति वाक्यात्. नच स्मृत्यपेक्षया सदाचारो निर्बलः इति वाच्यं ''**साधूनां समयश्चापि प्रमाणं वेदवद् भवेत्**'' इति वाक्ये वेदवद् इति अतिदेशेन स्मृत्यपेक्षया कलौ तस्य सबलत्वबोधनात्. न[५५] च इदं वाक्यं

''**यत्र सायं गृहत्वं च मुनिभिः तत्त्वतत्परैः,**
एतानि लोकगुप्त्यर्थं कलेरादौ महात्मभिः,
निवर्त्तितानि कर्माणि व्यवस्थापूर्वकं बुधैः''

इति कलिवर्ज्यम् उपक्रम्य पठनात् तत्रैव प्राबल्यं बोधयतीति न अन्यत्र तस्य प्राबल्यम् इति वाच्यं, वचनस्य स्मार्त्तत्वेन स्मृत्यैव निवृत्तिसम्भवे[५६] एतानि इति सार्द्धपद्यवैयर्थ्यापातात्. तस्मात् तत्प्राबल्यबोधनायैव[५७] तदुक्तिः इति[५८] दिक्. अतएव माधवोपि गौरीतृतीयानिर्णये मुहूर्त्तमात्रायां विद्धाधिकायां व्रतकरणे शिष्टाचारमेव शरणीचकार. न च शिष्टानामपि बहुविधत्वात् पुनर्विनिगमनाविरहः इति वाच्यम्, अवतारकालिकशिष्टानाम् अत्र विवक्षितत्वात्. ते तु शुद्धनवम्यामेव जन्मोत्सवादिकं चक्रिरे, नवम्यामेव ज्ञानात्. यदि च विद्धाक्षये कदाचिद् विद्धायां तैः कृतः स्यात् तथा इतिहासोपि क्वापि भवेदेव. तदभावाच्च एवमेव निश्चीयते इति न कापि अनुपपत्तिः. ननु यद्येवं तदा निर्णये स्फुटमेव कुतो न उक्तम् इति चेत्, इतः. व्रते हि निमित्तं भगवज्जन्म तत्तु विद्धायामिव नवम्यामपि न प्राप्यते, लोकन्यायेन प्राप्तः कालस्तु ''वर्जनीया प्रयत्नेन'' इति वाक्ये हेतूक्तिपुरःसरं वर्ज्यते, तथा सति व्रताभावे प्रसक्ते उत्सवाधिकरणकालम् आदायैव व्रतं कार्यम्. उत्सवान्ते पारणविधानाद् व्रते उत्सवाङ्गत्वस्यापि शक्यवचनत्वात्. उत्सवस्तु श्रीनन्दादिकृतः स्फुटएव नवम्याम् इति प्रकृते ते एव शिष्टाः 'पूर्व'शब्देन परामृष्टाः, भक्तिमार्गस्य गोप्यत्वाच्च स्फुटं न उक्ता इति जानीहि. अतएव श्रीमदाचार्यचरणैः ''यदा बहिर्गन्तुमियेष'' इत्यस्य व्याख्याने ''मुहूर्त्तानन्तरं सा जाता'' इति ज्ञायते. नवम्यां च सा जाता. रोहिणी तु तुल्या. अतो रोहिण्याः कृत्तिकावेधो न

इत्थं[-६] श्रीगोकुलाधीशप्रादुर्भावदिनव्रतम्।।
अस्माभिर्निरणाय्येतत् पदाम्भोजप्रसादतः।।

।। इति श्रीविट्ठलदीक्षितविरचितो जन्माष्टमीनिर्णयः ।।

दोषाय. सप्तमीवेधस्तु दोषायैव, इति विद्धात्यागबीजम् उक्त्वा ''पुत्रोत्सवादिकं च शुद्धनवम्यामेव जातम् इति शुद्धाष्टम्यभावे केवला नवमी उपोष्या इति केवलनवम्युपोषणे बीजम् उक्तम् इति पूर्वोक्तम् अनवद्यम् इति दिक्.

ननु व्रतस्य पारणान्तत्वनियमात् तद्विचारः कुतो न कृतः इति चेद्, विद्धात्यागे कृते द्वितीयदिने तिथ्यभावेन ऋक्षाप्रयोजकत्वस्य च साधितत्वेन तदोत्सवान्तस्यापि जातत्वेन अनुक्तसिद्धत्वादेव इति जानीहि.

उपसंहरन्ति **इत्थम्** इत्यादि. यद्वा एवं योज्यं **–श्रीगोकुलाधीश–प्रादुर्भावदिनव्रतम् इत्थम्**, एवंप्रकारकमेव न अन्यथा इति अर्थः. **अस्माभिः एतद् निरणायि**, एवं निर्णयकरणे किं बीजम् इति आकाङ्क्षायाम् आहुः, **पदे**त्यादि. पदं सुप्ति(?)–तिङन्यतर–विशिष्टवर्णसमुदायः. तदेव अम्भोजमिव अम्भोजम् आह्लाद–कारित्वादिना, तत्प्रसादतः तदाशयस्फुटीकाराद् इति अर्थः. तथा च ''**पदद्वयं सुप्–तिङन्तं ताभ्यां चलति वाक्पतिः**'' इति तत्त्वदीपोक्तेः नामात्मकस्य भगवतः चरणरूपम् इदम् इति तत्प्रसाद एवंलक्षणएव उचितः. यथा मनसो हर्षलक्षणो दिशां दूरदर्शनलक्षणो नीरस्य नैर्मल्यलक्षण आकाशस्य व्यभ्रत्वलक्षणः तथा शब्दस्य तात्पर्यवैशद्यलक्षणः तस्माद् इति भावः इति दिक्.

इति सत्तर्कसहस्रैस्तदुपोद्बलकैरमीभिरपि वाक्यैः।।
बाधेऽपि वादभाजां धीराः किं नेह लज्जते धीर्वः।।१।।
सद्भिर्विचारचातुर्यविद्भिर्विद्धातिथिक्षये।।
शास्त्रोक्तिबलमाश्रित्य नवम्येवमुपोष्यताम्।।२।।
इति प्रभुपदाम्भोजमधुव्रततया मया।।
कृपाबलमुपाश्रित्य विवृतो निर्णयाशयः।।३।।
यदत्र सदसद्वापि जीवबुध्या मयोदितम्।।
प्रभुभिस्तत्तदीयैश्च क्षम्यतां बालचापलम्।।४।।

इति श्रीवल्लभनन्दनचरणैकतान–पुरुषोत्तमविरचितो
जन्माष्टमीनिर्णयप्रकाशः सम्पूर्णः.

(प्राचिनतमप्रतानपुस्तके कुत्रचित् कैश्चित् कृता कठिनांशबोधिनी टिप्पणी. अर्थसौकर्यार्थम् अत्र मुद्रिता.

१.कलिना युगेन कलितः सम्पादितः यो वादिषु कलिः कलहः, तेन कलितं सम्पादितम् अन्तःकरण–कलिलम्.

२.स्वरूपभेदाद् इति अर्थः.

३.ऋक्षसाहित्यासाहित्याभ्याम्.

४.विरुद्धमानोत्पादकम्.

५.'पूर्वविद्धाष्टमी'वाक्ये.

६.अष्टयामव्यापिन्यष्टम्येव.

७.मुख्यकालगौणकालयोः मध्ये.

८.अधिकदेशव्याप्तियुता.

९.निषेधस्य निषेधकं वाक्यं प्रातिस्विकम्, पूर्वविद्धेत्यादिना इति अर्थः.

१०.सूर्योदयव्याप्त्या इति अर्थः.

११.विद्ध्यति इति अर्थः.

१२.कलाकाष्ठा इति वाक्यस्य.

१३.कलाकाष्ठा इत्यस्य विशेषवाक्यत्वेन स्तावकत्वाभावादेव.

१४.ननु 'अविद्धायां तु सर्क्षायां जातो देवकीनन्दनः' इत्यादिवाक्याद् अष्टम्यामेव जन्मप्राप्ति! न तु सप्तमीविद्धायाम् अतः 'पलवेधेपि विप्रेन्द्रे'त्यादिना निषेधो अनुपपन्नः. न च ''कार्या विद्धापि सप्तम्या रोहिणी सहिताष्टमी''त्यादिना प्राप्तस्यैव निषेध इति वाच्यम्. 'कार्या विद्धे'त्यादितिथौ जयन्ती सप्तमीविद्धानिषेधकवाक्यानां जन्माष्टमीपरत्वं तद्विधायकवाक्यानां जयन्तीपरत्वम् इति उभय–प्रकरणस्थत्वं, सप्तमीविद्धायां व्रतविधायकवाक्यानां तत्रैव व्रतनिषेधकवाक्यानां च जयन्ती–जन्माष्टमीरूपविषयभेदेन व्यवस्थापनम् अनुचितम् इति अर्थः.

१५.श्रुति–लिङ्ग–वाक्य–प्रकरण–स्थान–समाख्यानां समवाये पारदौर्बल्यम्. अर्थविप्रकर्षाद् इति जैमिनीसूत्रात्.

१६.'सिंहेऽर्के रोहिणीयुक्ते'त्यादिषु 'जयन्ती'पदस्य श्रुतिः, मुहूर्तमपि–अहोरात्र इत्यादिषु यज्जयन्तीलिङ्गं ताभ्याम् इति अर्थः.

१७.न* च अनियतएव स इति वाच्यम्. अनियतत्वस्य अशक्यवचनत्वात्. तथा हि, किम् अत्र पूर्वेद्युरेव निशीथव्याप्तौ विध्यवकाशः, परेद्युरेव निशीथव्याप्तौ च निषेधावकाशो, दिनद्वयेपि तद्व्याप्तावव्याप्तौ च विरोध, उत उभयत्र, परेद्युश्च तद्व्याप्तौ निषेधाकाशः, उभयेद्युरव्याप्तौ च विरोधः शेषे विध्यवकाशः इति न आद्यः, अवकाशस्थले कर्मकालशास्त्रेणैव निर्वाहाद् उभयोः आनर्थक्यप्रसङ्गात्. न द्वितीयः उभयत्र व्याप्तिस्थले कर्मकालशास्त्रस्योभयपक्षपातितया विरोधस्यैव आपातात्. अन्यत्र च आनर्थक्यस्यैव दर्शितत्वात्. यदि च सामान्यविशेषभावेन उभयसार्थकत्वम् इति भाव्यते तथापि विरोधस्तु दुष्परिहर* एव.

(–१७ ख–ग पुस्तकेऽपि एवमेव पाठः)

(*अयं भागो अत्र एकस्मिन् प्राचीनतमे पुस्तके वर्तमानोपि बहुषु प्राचीनेषु पुस्तकेषु अविद्यमानत्वाद्

अधस्ताद् रक्षित:. श्रीपुरुषोत्तमचरणै: पुन: संशोध्य वर्धितोसौ प्रतानग्रन्थ:. प्रतानकाराणां समये एव लिखितेषु पुस्तकेषु शोधवृद्ध्योः उपलम्भाद् इत्येवम् अनुभवयुजो मीमांसन्ते.

*विशेषशास्त्रेण सामान्यस्य अस्य सङ्कोचे चतुर्धाकरणवत् कर्मकालशास्त्रस्य अन्यत्र प्रवृत्तिप्रतिरोध–प्रसङ्गात्, 'यत्'शब्दबोधित–सामान्यताबाधप्रसङ्गाच्च. असङ्कोचे विरोधापरिहाराच्च. ''यो यस्य विहितः कालः कर्मणस्तदुपक्रमे, तिथिर्याभिमता सा तु कार्या नोपक्रमोज्झते''ति.)

यदि च विरोधस्थले कर्मोपक्रमकालशास्त्रस्य निषेधानुग्राहकत्वं विभाव्य स परिह्रियते. तदापि अर्द्धरात्रस्य पूजाकालत्वमिति तत्रत्यपूजाया: प्रातरुपक्रमाभावेन प्रातः तत्कालाभावात् तद्दोषतादवस्थ्यम्. उपवासस्य तु अहोरात्रभोजनाभावरूपस्य कर्मत्वमेव दुर्घटम् इति पूर्ववदेव दोष:. यदि च प्रत्यवायप्रागभावपरिपालनस्य विद्धाया इव गौणकर्मत्वं विभाव्यते तदापि विद्धाक्षयातिरिक्तस्थले निषेधस्यैव प्राबल्यम् इति तदीयव्यवस्था वो दुष्टा इत्येव दोष:. सिद्धान्ते तु श्रीमदाचार्यचरणैः एकादश्यतिदेशेनैव जन्माष्टमी निर्णीतेति निमित्तकालस्यैव निर्णयप्रयोजकत्वं न तु अधिकरणकालस्यापि इति न कोपि दोषः इति दिक्.

१८.सूर्योदये सप्तमीवेधस्य इति अर्थः.

१९.द्वैतनिर्णयकारभगवद्भास्करयोः.

२०.तां पुण्यां समुपावसेद् इति प्रत्यक्षविधिः. ''ये न कुर्वन्ति जानन्तः कृष्णजन्माष्टमीव्रतम्, ते भवन्ति महाप्राज्ञ व्याला महति कानने'' इत्युन्नीतविधिः व्रताकरणे दोषो वा. 'उदये चाष्टमी'तिव्याख्येयवाक्यम्.

२१.गुणऋक्षयोगः फलं तद्वाक्योक्तम्.

२२.व्रतोपयोगी इति अर्थः.

२३.'भवेद्' इति लिङ्घटितेत्यर्थः.

२४.ननु जन्माष्टमीव्रतम् उपवसेद् इति शब्दप्रायं न भवति. तत्र हि यदि जातो भवेत् तदोपवसेद् इति सम्भावनार्थकत्वात् लिङ्विधेः अप्राप्तत्वाद् इत्यतः आहुः यदीत्यादि.

२५.तमेव उपवसेत् कालं तत्र कुर्याद् जागरम् इत्यापाद्यकोटौ.

२६.विध्यभावे तदनुवादस्य अशक्यनिरूपणत्वाद् इति भावः.

२७.जन्माष्टम्यां भगवज्जन्म शर्वरीत्वं च जयन्त्यां योगविशेषः तयोर्भेदाद् इत्यर्थः.

२८.''रोहिणीसहिता कृष्णा मासे भाद्रपदेष्टमी'' इति वाक्यस्य.

२९.अनन्वितत्वाद् विद्धायां तु सर्क्षायां जातः इति वाक्यविरुद्धार्थापाताच्च इति भावः.

३०.मूलभूतश्रुतिकल्पना. स्मृतेः श्रुतिमूलकत्वात् स्मृत्युक्तोपवासद्वयमूलभूतश्रुतिद्वयकल्पना च स्मृत्युक्तपदार्थस्य श्रुतिमूलकत्वाद् इति भावः.

३१.''हरिवंशेऽपि तथा 'नवम्यामेव संजाता कृष्णपक्षस्य वै तिथौ' इति वचनात्''. इति अर्वाचीने सर्वपुस्तकेषु वर्तते. हरिवंशेन साकं गणने अत्र 'पुराणपञ्चक' पाठः.

३२.श्रीभागवत–विष्णुपुराण–भविष्यपुराण–ब्रह्मपुराण–हरिवंशाख्येति पुराणपञ्चकम्.

३३.वशिष्ठवचनम् ''अष्टमी रोहिणीयुक्ता निश्यर्द्धे दृश्यते यदि, मुख्यकाल इति ख्यातः तत्र जातो हरिः स्वयम्''.

३४.'ईषदाधिक्यस्य' प्राचीनपाठः.

३५.''पूर्वविद्धाष्टमी या तु उदये नवमीदिने'' इति. ''कलाकाष्ठा मुहूर्तापि यदा कृष्णाष्टमी तिथिः'' इति च.

३६-३७.'पूर्वविद्धाष्टमी'त्यादिवाक्यद्वयस्य.

३८.परेद्युर्दिनद्वये च अष्टम्या निशीथसत्वविषयकं निर्णयं पुरस्कृत्यैव अस्य लिखनात्. 'पूर्वविद्धाष्टमी' इत्यादिवाक्यद्वयस्थ'नवमी'पदविचारे च सूर्योदयोत्तरप्रवृत्तसंपूर्णनवम्या एव सम्यग्भानेन उक्तविधविषयस्य तत्र अलाभात्. (इति वर्धितपाठः)

३९.''यस्य पर्णमयी जुहूर्भवति न स पापं श्लोकं शृणोति''.

४०.'सोपवासे'तिवाक्योक्तयुक्त्या इति अर्थः.

४१.माधवधृतस्कान्दवचनैकमूलतया.

४२.न तु गुणत्वप्रतिपादकम् इति शेषः.

४३.व्रतस्य पूजाङ्गत्वप्रतीतिः.

४४.उपवासस्य.

४५.श्रावणभाद्रपदयोः.

४६.''सप्तमी संयुताष्टम्याम्'' इति स्कान्दम्. ''पूर्वविद्धाष्टमी या तु'' इति पाद्मम्.

४७.''वस्तुतस्तु ते द्वे अपि वाक्ये एकादशीविशेषविषये इति न च आशङ्का न च उत्तरम्'' इति अधिकम्.

४८.अत्र क्वचित् पुस्तके ''पूर्वं यथा विद्धाधिकायां विद्धानिषेधश्रवणात् परोपोष्या तथा विद्धाक्षयेऽपि विद्धानिषेधश्रवणात् परैवोपोष्या इति अर्थः.(इति नाथद्वारीयमुद्रिते)

४९.जन्माष्टमीविषये.

५०.'स्व'पदेन नवमी ग्राह्या. स्वानुगुणतिथिः शुद्धाष्टमी तस्या गौणकालत्वेन इति अर्थः.

५१.स्वानुगुणतिथ्यदूषको यो वेधः तन्निरूपणयोग्या इति अर्थः.

५२.नवम्याः तत्तिथ्यदूषकवेधनिरूपणयोग्यत्वेपि तर्कं प्रमाणयन्ति तत्तिथीत्यादि.

५३.''विना ऋक्षेण कर्तव्या नवमी संयुताष्टमी'' इति स्कान्दवाक्यार्थः.

५४.प्रमादग्रस्तम्.

५५.'साधूनां समय' इति वाक्यम्. इदं निर्णयसिन्धौ कलिवर्ज्यप्रकरणे उक्तम्. तत्रैव ''अटन्ति वसुधां विप्राः पृथिवीदर्शनाय च, अनिकेता अनाहारा यत्र सत्यं गृहास्तु ते'' इति विष्णुपुराणीयम् उक्तम्.

५६.कलिवर्ज्यानां कलौ निवृत्तिसम्भवे.

५७.सर्वत्र तत्प्राबल्येत्यर्थः.

५८.सार्धपद्योक्तिः.

नवीनपाठभेदाः

-१'प्रयोजनतया' इति ख-ग पाठः.

-२'आशयेन दिवावेत्यादिवचनम् उक्तम्' इति ख-ग पाठः.

-३'प्रत्युक्तो ज्ञेयः' इति ख पाठः.

-४''अर्थकत्वे अष्टौ वा. सर्वेषामपि...'' इति ख पाठः.

-५'सदा कार्या' इति ख-ग पाठः.

श्रीपुरुषोत्तमचरणविरचितः

।। उत्सवप्रतानः ।।

अथ भाद्रपदोत्सवः

अतः परं स्वतन्त्रतया निर्णीयन्ते.

अथ भाद्रपदशुक्लाष्टम्यां श्रीमत्स्वामिन्युत्सवः.

स[1] च पाद्मोत्तरखण्डे उक्तः.

''वृषभानुरितिख्यातो गोपो ज्ञातिमतां वरः.
तस्य पत्नी महाभागा नाम्ना सौभाग्यसुन्दरी.
तावुभौ ब्रह्मसावित्र्यौ स्वांशेन जगतीं गतौ.
तयोः गेहे महालक्ष्मीः प्रादुर्भूता सुरेश्वरी.
अयोनिजा विशालाक्षी कृष्णस्यानन्दकारिणी.
मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां भौमे मूलर्क्षमण्डिते''.

इति. सतु लोकन्यायेन[2] विद्धायामेव कार्यो विद्धाक्षये. अन्यथातु औदयिक्येव तिथिः ग्राह्या

''युगाद्या[3] वर्षवृद्धिश्च सप्तमी पार्वतीप्रिया.
रवेरुदयमीक्षन्ते न तत्र तिथियुग्मता[4]''

इति निर्णयसिन्धौ कृत्यतत्त्वार्णववचनात्. दिनद्वये तद्व्याप्तौ तु पूर्वैव

''षष्टिदण्डात्मिकायास्तु तिथेर्निष्क्रमणं परे.
अकर्मण्यं तिथिमलं विद्यादेकादशीं विना''

इति ज्योतिर्निबन्धे वाक्यात्. अयं भक्तिमार्गसम्प्रदायप्राप्तत्वाद् आवश्यको न विशेषतो मार्यादिकपदवीम् अधिरोढुम् अर्हति इति उपरम्यते.

[**कैश्चित् प्राचीनैः विरचिता प्रतानटिप्पण्यः**

१.वर्धितपाठः. २.लोकजन्मदिवसादिन्यायेन. ३.कार्त्तिकशुक्लनवमी सत्ययुगादिः, वैशाखशुक्लतृतीया त्रेतादिः, माघस्य अमावास्या द्वापरादिः, भाद्रपदकृष्णत्रयोदशी कलियुगादिः. ४.युग्मवाक्यं न प्रवर्त्तते निर्बलत्वात् इति भावः.]

परिवर्त्तनोत्सवः

अत्र एकादश्यां द्वादश्यां वा परिवर्त्तनोत्सवः. स च सम्प्रदायाभावाद् न अत्र विविच्यते. श्रद्धया कश्चित् करोति चेद् वक्ष्यमाणप्रबोधिनीवत् तिथिं गृह्णातु.

भाद्रपदशुक्लद्वादश्यां श्रवणयुतायां वामनोत्सवः.

तदुक्तं निर्णयसिन्धौ श्रीभागवते अष्टमस्कन्धे

''श्रोणायां[1] श्रवणद्वादश्यां मुहूर्त्तेऽभिजिति[2] प्रभो,
सर्वे नक्षत्रताराद्याः चक्रुः तज्जन्मदक्षिणम्,
द्वादश्यां सविता तिष्ठन् मध्यं दिनगतो नृप,
'विजया' नाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म विदुर्हरेः'' इति.

हेमाद्रिदिनकरोद्योतयोस्तु भविष्ये

''एकादशी यदा सा स्यात् श्रवणेन समन्विता,
विजया सा तिथि प्रोक्ता भक्तानां विजयप्रदा''

इति उपक्रम्य

''अथ काले बहुतिथे गते सा[3] गुर्विणी भवत्,
सुषुवे नवमे मासि पुत्रं सा वामनं हरिम्''

इत्यादि च उक्त्वा

''एतत् सर्वं समभवद् एकादश्यां युधिष्ठिर,
तेनेष्टा देवदेवस्य सर्वथा विजयातिथिः''

इति उपसंहाराद् एकादश्याम् अङ्गीकृतम्. एवं कल्पभेदेन तिथिद्वयेऽपि मध्याह्नएव वामनाविर्भावः, **''अह्नो मध्ये वामनो रामरामौ''** इति पुराणसमुच्चयात्. एवं च श्रीभागवते श्रवणद्वादशीशब्देन श्रवणलाभेऽपि पुनः 'श्रोणा'पदोक्त्या श्रवणस्य आवश्यकता प्राप्यते. तिथी च उभे अपि अविरुद्धे.

''एकादशी द्वादशी च वैष्णव्यमपि तत्र चेत्,
तद्विष्णुशृङ्खलं नाम विष्णुसायुज्यकृद्भवेत्''

इति विष्णुधर्मोत्तरात्.

''द्वादशीं श्रवणर्क्षं चेत् स्पृशेत् एकादशीं यदि.
स एव वैष्णवो योगो विष्णुशृङ्खलसंज्ञकः.
तस्मिन् उपोष्य विधिवद् नरः प्रक्षीणकिल्बिषः.
प्राप्नोत्यनुत्तमां सिद्धिं पुनरावृत्तिदुर्लभाम्''

इति मात्स्याच्च. श्रवणस्य तिथिद्वयस्पर्शित्वेन शृङ्खलाघटकत्वे विष्णुशृङ्खलयोगः. स च पुण्यातिशयजनकः इति तादृशयोगसम्भवे तत्रैव उत्सवः कार्यः तदङ्गभूतं व्रतमपि तदैव.

यत्तु हेमाद्रौ **''द्वादशी श्रवणस्पृष्टा स्पृशेद् एकादशीं यदि''** इति श्रवणद्वादशी–स्पर्शमात्रेऽपि विष्णुशृङ्खलम् उक्तम्, तद्भ्रमसात्, स्पर्शस्य भावित्वेन तदानीं शृङ्खला–स्वरूपाभावात्. कल्याणरायैस्तु तदनूदितमिति न दोषः. वाक्यं तु द्वादशीश्रवणयोः एककालावच्छिन्नैकादशी–स्पर्शाभिप्रायम् इति दिक्.

यदा तु केवलायां शुद्धाधिकायां वा द्वादश्यामेव श्रवणयोगः तदा तु सर्क्षायां द्वादश्यामेव उत्सवः, श्रीभागवतवाक्यात्

''तिथिनक्षत्रयोर्योगो योगश्चैव नराधिप,
द्विकलो यदि लभ्येत स ज्ञेयो ह्याष्टयामिकः''

इति श्रवणद्वादशीप्रकरणीयभविष्योक्तेश्च. **''उदयव्यापिनी ग्राह्या श्रवणद्वादशीव्रते''** इति नारदीयस्य अयमेव विषयः. अत्र व्रतकरणेऽपि न पूर्वव्रतलोपः.

''एकादशीम् उपोष्यैव द्वादशीमप्युपोषयेत्,
न चात्र विधिलोपः स्याद् उभयोर्देवता हरिः''

इति भविष्योक्तेः. यदा च एकादश्यामेव श्रवणयोगो न द्वादश्यां न वा विष्णुशृङ्खलं तदा एकादश्यामेव उत्सवादिकम्. श्रीभागवतवाक्येन श्रोणावश्यकताप्राप्तेः भविष्येन आविर्भावप्राप्तेश्च.

''यदा न प्राप्यते ऋक्षं द्वादश्यां वैष्णवं क्वचित्,
एकादशी तदोपोष्या पापघ्नी श्रवणान्विता,
उभयोर्देवता विष्णुः पुराणपुरुषोत्तमः,
विभेदोऽपि न कर्त्तव्यो विभेदात् पतते नरः''

इति नारदीयवाक्यात् व्रतेपि आनुगुण्याच्च. कल्याणरायाअपि एवम् आहुः. यदि च दशमीविद्धायामेव श्रवणयोगः तदा तु द्वादश्यामेव उत्सवादिकं, श्रीभागवते द्वादश्यामेव प्रादुर्भावोक्तेः.

''एकादश्यां[४] नरो भुक्त्वा द्वादश्यां समुपोषणात्,
व्रतद्वयकृतं पुण्यं सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम्''

इति वाराहाद् व्रतद्वयफलाप्तेश्च, न[५] विद्धायाम्. विद्धादूषणबीजस्य सर्वत्र तौल्यात्[६].

यत्तु दिनकरोद्योतादौ

''दशम्यैकादशी यत्र सा नोपोष्या भवेत् तिथिः,

श्रवणेन तु संयुक्ता सा चेत् स्यात् सर्वकामदा''

इति वह्निपुराणाद् विद्धोपोष्या इति उक्तं तत् सकामपरं, 'सर्वकामदा' इति उक्तेः.

यदा तु प्रथमे अह्नि न विष्णुशृङ्खलं [पा.भे.१]द्वितीयदिने च द्वादश्याः मध्याह्नाव्याप्तिः, उभयत्र समविषमैकदेशव्याप्तिर्वा, तदापि पूर्वदिनमेव ग्राह्यम्. ''रुद्रेण द्वादशी'' इति युग्मवाक्यात्[७]. यदा तु दिनद्वयेऽपि न श्रवणयोगः तदाऽपि [पा.भे.२]द्वादश्यामेव उत्सवः. उपवासस्तु शक्तस्य उभयत्र, अशक्तस्य द्वादश्यामेव. यद्यपि

''द्वादश्यां शुक्लपक्षे तु नक्षत्रं श्रवणं यदि,

उपोष्यैकादशीं तत्र द्वादश्यां पूजयेत् हरिम्'' इति मात्स्ये.

''श्रवणेन सिते यत्र द्वादशी लभ्यते क्वचिद्,

उपोष्यैकादशीं तत्र द्वादश्यां पूजयेद् हरिम्''

इति यमेन च पूजामात्रम् उक्तम्. तथाऽपि तत्र मासानुल्लेखात् तद् वामन-जयन्तीभिन्नद्वादशीपरम्. अतएव श्रीमदाचार्यचरणैः तत्वदीपे

''तथा वामनजयन्त्युत्सवकरणे एकादश्याम् उपोषणम् अकृत्वाऽपि द्वादश्याम् उपोषणं कार्यम्. किं बहुना उत्सवः प्रधानभूतः. भुक्त्वा च उत्सवो निषिद्धो, भगवदावेशाभावाद्''

इत्येव उक्तम्. तस्माद् एषएव व्रतनिश्चयः.

अत्र केचन एकादशीव्रतमात्रं कृत्वा द्वादश्याम् उत्सवोत्तरं पारणं कुर्वन्ति. तदाशयो नृसिंहजयन्तीनिर्णये विवेच्यः.

अथ पारणा विचार्यते. तत्र तावत् श्रवणद्वादशी-वामनजयन्त्योः अविरोधतः तन्त्रेण अनुष्ठानात् उभयोः पारणं यथासंभवम् उभयान्ते अन्यतरान्ते वा कार्यम्. तत्र अयंविषयविवेकः. यदा शुद्धन्यूनायां विद्धन्यूनायां वा द्वादश्यां श्रवणयोगो द्वितीयदिने च

---

१. 'द्वितीयदिने च न श्रवणं द्वादश्याश्च' इति ख पाठः.

२. ''द्वादश्या द्वितीयदिनएव मध्याह्नव्याप्तौ तस्यामेव उत्सवः'' इति ख पाठः.

स्वल्पं श्रवणं तदा त्रयोदश्यां पारणनिषेधस्य अभावेन

''एकादशी कलां प्राप्ता येन द्वादश्युपोषिता,
पुण्यं क्रतुशतस्योक्तं त्रयोदश्यां तु पारणम्''

इति विष्णुरहस्यात्.

''द्वादश्यैकादशी यत्र संगता त्रिदशाधिय,
ताम् उपोष्य ततः कुर्यात् त्रयोदश्यां तु पारणम्''

इति तत्त्वसागराच्च पुण्यातिशयजनकत्वेन च उभयान्ते पारणं कार्यम्. यदा च शुद्धाधिका विद्धाधिका वा द्वादशी श्रवणं च पूर्वदिने स्वल्पं सद् द्वितीयदिवसे वर्द्धते, तदा एकादशीव्रतमपि तन्त्रतः तत्रैव सिद्ध्यति.

''पूर्णा भवेत् यदा नन्दा[८] भद्रा चैव विवर्द्धते,
तदोपोष्या तु भद्रा स्यात् तिथिवृद्धिः प्रशस्यते''

इति गारुडात्.

''निष्कामस्तु गृही कुर्यात् उत्तरैकादशीं सदा,
प्रातर्भवतु वा मा वा द्वादशी च द्विजोत्तम''

इति स्कान्दाच्च. तादृशस्थले व्रतत्रयस्यापि पारणं श्रवणान्तनैरपेक्ष्येण स्वल्पद्वादश्यामेव कार्यम्.

''विशेषेण महीपाल श्रवणं वर्द्धते यदि,
तिथिक्षये न भोक्तव्यं द्वादशीं नैव लङ्घयेत्''

इति निर्णयामृते मार्कण्डेयोक्तेः. **क्षये** अन्ते इति अर्थः.

''एकादशीम् उपोष्यैव द्वादश्यां पारणं स्मृतम्,
त्रयोदश्यां न तत्कुर्याद् द्वादशद्वादशीक्षयाद्''

इति मात्स्यात् कौर्माच्च. यदि च तादृशस्थले श्रवणस्य मध्यभागः तथापि स उपेक्षणीयः[९], द्वादशीत्यागे द्वादशद्वादशीक्षयात्. मध्यभागमध्ये पारणे एकक्षयात्. 'आभाका' इत्यस्य समूलत्वेऽपि दोषस्य उभयत्र तौल्याद् इति. यदा तु शुद्धोनायां विद्धोनायां वा स्वल्पं श्रवणं द्वितीयदिने च भूयः तदा श्रवणमध्यभागः त्याज्यः.

''मैत्राद्यपादे[१०] स्वपितीह विष्णुः पौष्णान्त्यपादे[११] प्रतिबोधमेति,
श्रुतेश्च[१२] मध्ये परिवृत्तमेति सुप्तप्रबोधपरिवर्त्तनमेव वर्ज्यम्''

इति विष्णुधर्मवाक्यात्.

''आभाकासितपक्षस्य[१३] मैत्रश्रवणरेवती[१४],
सङ्गमे नैव भोक्तव्यं द्वादशद्वादशीर्हरेत्''

इति वाक्यं तु केचित् निर्मूलम् इति आहुः. यदि समूलं तदाऽपि पूर्वोक्त-विष्णुधर्मवाक्येन उपसंहारात् पूर्वोक्तैव व्यवस्था इति दिक्. इति भाद्रपदोत्सवः.

[कठिनांशटिप्पणी: १.श्रवणनक्षत्रस्थिते चन्द्रे श्रावणे इति यावत्. २.मध्याह्ने. ३.अदितिः. ४.अत्राशक्तो नरो ग्राह्यः. तेन अशक्तः फलादिकं भुक्त्वेत्यर्थः. शक्तस्य तूपवासद्वयस्यानुपदमेव वक्ष्यमाणत्वात्. ५.वर्धितपाठः. ६.विद्धादूषणबीजम्-पुण्यक्षयरूपम्. ७.''युग्माग्नियुगभूतानां षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः. रुद्रेण द्वादशीयुक्ता चतुर्दश्या च पूर्णिमा. प्रतिपद्यप्यमावास्या तिथ्योर्युग्ममहाफलम्''. इति युग्मवाक्यम्. ८.नंद=एकादशी, भद्रा=द्वादशी. ९.''श्रुतेश्च मध्ये परिवृत्तिमेति'', ''सुप्तप्रबोधपरिवर्तनमेव वर्ज्यम्'', इत्यनेन श्रवणमध्ये परिवर्त्तनेन तत्र च पारणानिषेधेपि स निषेध उपेक्षणीय इत्यर्थः.१०.मैत्रम्-अनुराधाम्. ११.पौष्णः-रेवती. १२.श्रुतिः-श्रवणम्. १३.'आभाके'त्यत्राषाढभाद्रपदकार्तिकाख्या मासा ग्राह्या, नामैकदेशे नामग्रहणात् सत्यादिवत्. १४.मैत्रः-अनुराधा.]

अथ आश्विनोत्सवाः

अथ आश्विने नवरात्रारम्भः.

औदयिक्यामेव प्रतिपद् इति ततएव पर्वंमन्तव्यम्. विशेषप्रयोजनाभावाच्च न विचार्यते.

विजयोत्सवः

अथ आश्विने शुद्धदशम्यां विजयोत्सवः. तन्निर्णयार्थं प्रतापमार्त्तण्ड-निर्णयामृत-भगवद्भास्कर-दिनकरोद्योत-हेमाद्रि-निर्णयसिन्धु-प्रभृतिस्थानि वचांसि पूर्वं सङ्गृह्यन्ते.

पुराणसमुच्चये

''दशम्यां च नरैः सम्यक् पूजनीयाऽपराजिता,
ऐशानीं दिशमाश्रित्य अपराहणे प्रयत्नतः,
या पूर्णा नवमीयुक्ता तस्यां पूज्याऽपराजिता,
क्षेमार्थं विजयार्थं च पूर्वोक्तविधिना नरैः,
आश्विनस्य सिते पक्षे दशम्यां पूजयेत् नरः,
एकादश्यां न कुर्वीत पूजनं चापराजितम्'' इति.

श्रीवाशिष्ठगंगाधरशास्त्रिप्रणीतो विजयाविवेकः

अथ आश्विने शुक्ले दशम्यां विजयोत्सवे **''ऐशानीं दिशम्''** इति ऐशानीद्वारेण निर्गत्य इति अर्थः. **पूर्णा** इति दशमी, **श्रवणे च अपराजिता इति** विधेया इति शेषः. **समुल्लंघ्य** इति

ग्रन्थान्तरे

‘‘मूलेनागमनं देव्याः पूर्वाषाढासु पूजनम्,
उत्तरासु बलिं दद्यात् श्रवणे चापराजिता’’ इति.

स्कान्दे

‘‘दशमीं यः समुल्लङ्घ्य प्रस्थानं कुरुते नृपः,
तस्य संवत्सरं राज्ये न क्वापि विजयो भवेद्’’ इति.

भृगुरपि

‘‘आश्विनस्य सिते पक्षे दशम्यां सर्वराशिषु,
सायं काले शुभा यात्रा दिवा वा विजयक्षणे,
एकादशो मुहूर्त्तोऽपि विजयः परिकीर्त्तितः,
तस्मिन् सर्वैः विधातव्या यात्रा विजयकाङ्क्षिभिः’’ इति.

विश्वरूपः

‘‘आश्विनस्य सिते पक्षे सीमातिक्रमणोत्सवः,
विजयाय मुहूर्त्ताय कर्त्तव्यो विजयक्षणे,
नवम्या सहिता कार्या दशम्याश्वयुजे सिता,
एकादश्या युता जातु न कार्या जयकाङ्क्षिभिः’’ इति.

रत्नकोशे नारदः

‘‘ईषत्सन्ध्याम् अतिक्रान्तः किञ्चिद् उद्भिन्नतारकः,
स कालो विजयो ज्ञेयः सर्वकार्यार्थसिद्धिदः’’ इति.

नारदः

‘‘सूर्योदये यदा राजन् दृश्यते दशमी तिथिः,
आश्विने मासि शुक्ले तु विजयां तां विदुर्बुधाः,
ईषस्य दशमीं शुक्लां पूर्वविद्धां न कारयेत्,
श्रवणेनापि संयुक्तां राज्ञां पट्टाभिषेचने’’ इति.

धर्मविवृतौ

‘‘आश्विने दशमी शुक्ला श्रवणेन समन्विता,

एकादश्याम् इति शेषः. **सर्वराशिषु** इति चन्द्रादिविचारो नास्ति इति भावः. **विजयक्षण** इति विजयमुहूर्ते. **सूर्योदयः** इत्यादिवचनत्रयं पट्टाभिषेकपरम् इति अनुपदं स्पष्टीभविष्यतीति न पूर्ववचोविरोधः.

विजयादशमी प्रोक्ता सैव चात्यन्तदुर्लभा'' इति.

कश्यपः

''उदये दशमी किञ्चित् सम्पूर्णैकादशी यदि,
श्रवणर्क्षं यदा काले सा तिथिः विजयाऽभिधा.
श्रवणर्क्षे तु पूर्णायां काकुत्स्थः प्रस्थितो यतः,
उल्लङ्घयेयुः सीमानं तद्दिनर्क्षे ततो नराः'' इति.

गोपथब्राह्मणे भविष्ये पुराणसमुच्चये च, वास्त्वादिपूजन-खंजनालोकनादि-रूपम् अनुष्ठेयान्तरमपि बहुवाक्यसमाजेन अपरार्कादौ उक्तम्. तत्र तिथिद्वैधे[1] पट्टाभिषेचने तु सर्वमते परैव. इतरेषु[2] तु श्रवणस्य कर्मकालव्याप्त्या केचन निर्णयम् आहुः. अपरे च तिथिस्पृक्श्रवणस्य कर्मकालव्याप्त्या. इतरे च दशम्याः[3] कर्मकाल-व्याप्त्या. श्रवणयोगाभावे तु सर्वेऽपि लल्लवाक्यम् उदाहृत्य[4] तिथिमेव प्रधानयन्ति. तत्कालं[5] बहवो अपराह्णमेव आहुः. अपरे च ईषत्संध्याम् अतिक्रान्तं प्रदोषम् आहुः. आद्यमपि एके त्रेधा[6] विभजन्ते. अन्ये तु पञ्चधा. विजयमुहूर्त्तमपि केचन एकादशम्

न च एवम् **''आश्विने दशमी शुक्ला''** इति सामान्यवचनं पट्टाभिषेकप्रकरणे किमर्थम् उक्तम् इति वाच्यम्. यदा पूर्वदिने सम्पूर्णा दशमी द्वितीयदिने च उदयकालएव तदा पूर्वदिनेपि काले श्रवणसत्वे सैव ग्राह्या, वेधाभावात् इति ध्वनयितुं यत् वक्ष्यन्ति.

पट्टाभिषेकः तावत् शुद्धाधिकायां प्रथमे अह्नि श्रवणसत्त्वे पूर्वैव. द्वितीये अह्निएव श्रवणसत्त्वे तु द्वितीयैव, अतिदुर्लभयोगलाभाद् इति. ननु एवमपि यात्रिकं 'श्रवणर्क्षेतु' इति किम् उक्तम्? सत्यम्, उदये इति वचसो यात्रापरत्वम् आशङ्कियात्रायादशम्यामेव विधानाद् इति वक्तुम्. 'श्रवणर्क्षेतु' इति पूर्वव्यवच्छेदेन सीमोल्लङ्घनादि-वचनात् पूर्ववाक्यं पट्टाभिषेकपरम्. हेमाद्रौ तु तद्वाक्यं व्रतप्रकरणे पठितम् इति तन्मते व्रतपरमेव तत्. समयमयूखेपि, उदय इति वाक्यं दक्षोक्त्या लिखितं तारकोदयपरं च इति तद्ग्रन्थविदुषां स्पष्टम्. अतएव[1] अत्र पूर्णायां सीमोल्लङ्घनं प्रतिपदम् उक्तम्. नतु पूर्ववाक्ये[2] किञ्चित्[3] **इतरेषु तु** इति[4] सीमोल्लंघनादिषु. 'श्रवणस्य' इति दशमीयुक्तस्य इति अर्थः. धर्मप्रवृत्तिवाक्ये **'समन्विते'**तिपदेन तात्कालिक-दशमीश्रवण-समन्वितस्य विवक्षितत्वात्. तथैव सम्यक्त्वाद्, नतु उदये किञ्चिद् दशमीसत्वे विजयमुहूर्ते श्रवणमात्रम् अत्र अभिप्रेतं, तिथिस्पृक्श्रवणस्य इति अपरमताद् अविशेषापत्तेः. तत्र कर्मकाले तिथेः सम्बन्धाभावात्. स्पर्शस्य किञ्चित् सम्बन्धे रूढेः. न च पूर्वमते श्रवणं कर्मकालिकम् परमते तु उदयकाले कर्मकाले च इति विशेषः. तथा सति पूर्वमते श्रवणकाले दशम्यभावेन दशमीश्रवणयोगाभावेन अत्यन्तदुर्लभयोगायोगेन प्रशस्ततरत्त्वानुपपादनाद् इति अन्यत्र विस्तृतम्. **इतरे च** इति. उभयदिने

आद्रियन्ते, इतरे तु पञ्चदशम्, अपरे च प्रदोषम् इति.

तत्र किम् आदरणीयम्? तत्तदाद्यमेव इति वदामः. कुतः? नक्षत्रप्राबल्याद् वचनस्वारस्याद् व्यवस्थितिसामञ्जस्यात् सकलानुष्ठेयकरणसौकर्याच्च इति. तथा हि.

''यत् पुण्यं नक्षत्रं तत् बट्कुर्वीत उपव्युषम्. यदा वै सूर्य उदेति, अथ नक्षत्रं नैति. यावति तत्र सूर्यो गच्छेत्. यत्र जघन्यं पश्येत्. तावति कुर्वीत यत्कारी स्यात्. पुण्याहएव कुरुते. एवं ह वै यज्ञेषु च शतद्युम्नं च मात्स्यो निरवसाययांचकार''

इति श्रुतिः हि पुण्याहे कर्मकरणं विदधाना नक्षत्रस्वल्पतायां कथं महत्कर्मकरणं

श्रवणसत्त्वे इति शेषः. अतएव उत्तरमताद् अविशेषः. **अभावे तु** इति. पूर्वव्यवच्छेदिना तुना पूर्वोक्तमतत्रयेपि श्रवणयोगः प्रत्याय्यते.

तत्तदाद्यम् इत्यादि अयम् अर्थः. श्रवणयुक्ते उक्तमतत्रये वक्ष्यमाणं नक्षत्रप्राबल्यं, श्रवणरहिततिथिप्रधानपक्षे तु पट्टाभिषेकीयवाक्यत्रयात् पूर्वोदाहृत-यावद्वचनस्वारस्यं, किञ्च केवलदशम्यां श्रवणसत्त्वे पट्टाभिषेकः नवमीविद्धदशम्यां केवलदशम्यां वा यात्रा इति व्यवस्था सम्भवति. अपराह्णमते तु सकलानुष्ठेय-करणसौकर्यम्. त्रेधा विभागपक्षे च एतत् सम्भवति एकादशमुहूर्त्तपक्षे च.

ननु एवं तिथिप्रधानपक्षे बहुसौष्ठवे श्रवणयुक्तदशम्यादरः किम् इति चेद्, धर्मप्रवृत्तिवाक्ये विधेयानुल्लेखात् अतिदुर्लभयोगोक्तेश्च इति आशयेन. नक्षत्रप्राबल्यं व्युत्पादयन्ति **तथा हि** इति. तद्बट् **कुर्वीत इति** तद् नक्षत्र बट् प्रत्यक्षं 'बट्' इति अव्ययं त्वशे हिंसार्थात् क्विपि अपिशब्दशक्तिवैचित्यात् प्रत्यक्षार्थत्वम्. प्रत्यक्षकरणोपायम् आह **उपव्युषम्** इति गतम्. किञ्च, 'उषः कालोऽष्टपञ्चाशत्' इति वेधविचारे लिखितवाक्याद् उषसि इति व्युषम् इति विभक्त्यर्थे अव्ययीभावः. अव्ययानां भमात्रे टिलोपः. **व्युष्ठं समीपम् उपव्युषं** पारिभाषिकसूर्योदयकाले इति अर्थः. अथवा उषेति रात्रौ अव्ययं, विगतरात्रिसमीपकाले इति अर्थः. तदानीं सूर्यतेजसा नक्षत्रतेजो अनभिभवात्. तदाह **यदा** इति पारिभाषिकसूर्योदयकाले इति अर्थः. **न एति** इति, सूर्यतेजसाऽभिभवं न एति इति अर्थः. **यावती**ति काले. **तत्र** इति नक्षत्रे. यत्र नक्षत्रे जघन्यं स्वतेजसा अभिभूतं गर्हितं रूपं पश्येत् दर्शयेत् इति अर्थः. **यत्कारी** इति पुण्याहे कर्मकारी इति अर्थः. **पुण्याहे** इति नक्षत्रयुक्ताहे इति अर्थः. **निरवसायां चकार** इति, अवसायस्यैव निश्चयार्थत्वेपि निरोद्योतकत्वाद् न दोषः. द्वौ ब्राह्मणौ इत्यादौ द्योतकवाचकसमुच्चयस्य दृष्टत्वाद् इति एके. निष्ठ्यायाम् इति निसोगते इति त्यप्रत्ययः. यथा वर्णाश्रमेभ्यो निर्गतो वर्णः चाण्डालादिर्निष्ठ्यः तथा कार्यान्तरेभ्यो व्यावर्त्तिता तारापि निष्ठ्योच्यते.

संभविष्यति इति जानाना च ''तद्बट् कुर्वीतोपव्युषम्'' इत्यनेन पुण्यनक्षत्रस्य प्रत्यक्षीकरणं सोपायं विधत्ते. एवं ह वा इत्यनेन निदर्शनं शिष्टाचारं च प्रदर्शयति. यदि नक्षत्रस्य फलोपधायकत्वरूपं प्राबल्यं न अभिप्रेयात् किमिति एवं विदध्यादिति[९] नक्षत्रम् इतरापेक्षया प्रबलमेव. न च इदं नक्षत्रेष्टिविषयकम् इति वाच्यम् **''यां कामयेत दुहितरं प्रिया स्यात् इति तां निष्टथायां दद्यात्''** इत्यादिभिः स्वात्यभिजित्-रेवतीषु कन्यादान-जयोद्यम-पशुकार्यकरणानाम् अग्रे विधानदर्शनस्य असंगतत्वापत्तेः. **''यत् किञ्च अर्वाचीनं सोमाद्''** इत्यनेन अन्येषामपि कर्मणां रेवत्यां विधानाच्च इति. पुण्यत्वं च अत्र तत्तत्कार्योपयोगित्वेन विहितत्वमेव, न तु देवनक्षत्रत्वम्. अभिजिद्-रेवत्योर्यमनक्षत्रत्वेन अग्रे व्यवस्थापनात्. ननु एवं सति पुराणसमुच्चय-स्कान्दादिवचसां का गतिः ? इति चेत्, तत्तिथियुक्ते अह्नि नक्षत्रयोगाभावो यस्मिन् वर्षे तद्विषयकत्वमेव. [१०]अतएव कश्यपेन तद्दिनर्क्षे इति उक्तम्. न च अत्र उत्तरपदलोपी समासो अस्तु. तथा सति न केवलम् ऋक्षस्यैव प्राधान्यम् अत्र आयाति इति वाच्यं, तादृक्समासेऽपि तिथेः सहभावप्रतीत्या तत्प्राधान्यस्य दुर्घटत्वाद् इति. तत्कालश्च विजयमुहूर्त्तद्वयघटितः त्रेधा विभक्तो अपराह्णएव उचितो राज्ञाम्. तदैव गोपथब्राह्मणोदित-यावत्कर्मकरणसौकर्यसम्भवात्. अन्येषां तु प्रदोषः पञ्चदशो विजयमुहूर्त्तश्च. भृगुवाक्ये एकादशस्य मुहूर्त्तस्य स्फुटं गौणतरत्वसूचनात्.

एवं सति इदम् अत्र सम्पद्यते. पट्टाभिषेकः तावत् शुद्धाधिकायां प्रथमे अह्नि श्रवणे प्रथम दिनएव. द्वितीये अह्न्येव श्रवणयोगे द्वितीयदिनएव. अतिदुर्लभ-

---

तद् आहुः **स्वाती**त्यादि.

नक्षत्रप्राधान्ये व्यवस्थापिते वचनेषु सर्वेषु तददर्शनिन एतद् न युक्तम् इति आशयेन शङ्कन्ते **ननु** इति. ननु अस्य ग्रन्थस्य उदयकालिकदशम्युपरित-नैकादशी-श्रवणयोगो विषयः, ग्रन्थे कण्ठरवेण तथानभिधानेन तथा शङ्काया अप्रतीतेः. अतएव अग्रे **''अतएव कश्यपेन''** इत्यनेन तद्वचनं स्मारितम्. तस्य प्रकृतत्वे तु अतएव कश्यपेन इत्यस्य वैय्यर्थ्यं क्रियमाणा अग्रिमव्यवस्थायाम् एतदर्थस्य सर्वथानुल्लेखात् का गतिः इति तत्र नक्षत्रयोगः कुतो न उक्त इति आक्षेपः. तत् तिथि इति दशमीयुक्ते दिने इति अर्थः. दशमीयोगश्च अत्र सर्वत्र कर्मकालएव नतु औदयिकः. **''कर्मणो यस्य यः कालः तत्कालव्यापिनी तिथिः''** इति वाक्यात् पूर्वविद्धाप्रशंसनाच्च **दुर्घटत्वाद्** इति. कर्मकालैकदेशे किञ्चिद् दशमीसत्वे श्रवणयोगे सैव न तु यद्दिने दशमीव्याप्तिः कर्मकाले अधिका सैव इति भावः. धर्मप्रवृत्तिविवृतातिदुर्लभयोगलाभात् पूर्वविद्धाप्राशस्त्यस्य अग्रे कण्ठरवेण अभिधानाच्च. अतः

योगविशेषलाभात्. तदभावेऽपि[११] तु पूर्वदिने एव. एकादश्यतिरिक्तवृद्धौ उत्तरस्यानिषेधाद् विद्धाधिकायामपि द्वितीयैव विद्धानिषेधात्. विद्धाक्षये तु न भवत्येव, प्रतिप्रसवाभावात्. अपराजितापूजनसीमोल्लङ्घनादि तु पूर्वेद्युरेव श्रवणस्य कर्मकालव्याप्तौ पूर्वयुतायाम्. परदिनएव तथात्वे परस्याम्. दिनद्वये समविषमैकदेशव्याप्तौ पूर्वत्रैव, पूर्वविद्धाप्राशस्त्यात्. यत्तु निषेधशास्त्रम्, तद् अपराजितापूजनविषयं राजविषयं च, नतु अन्यविषयम्. तेन भगवति यवनवदलार्पणम् उक्तविधायामेव कार्यम् इति न कोऽपि शङ्कावकाशः.

कालमेव विचारयन्ति तत्कालश्च इति. **तदभावेपि** इति शुद्धाधिकायाम् इति भावः. **निषेधाद्** इति **''षष्टिदण्डात्मिकायास्तु तिथेर्निष्क्रमणं परे''** इति नारदवाक्यात्. **विद्धानिषेधाद्** इति **''पूर्वविद्धां न कारयेद्''** इति **''राज्ञां पट्टाभिषेचने''** इति नारदवाक्यात्. **न भवत्येव** इति. ये तु पट्टाभिषेकवद् इतरदपि निर्णिनीषन्ति तेषामपि अयं दोषः. यद् उत्सवलोपप्रसङ्गः इति. **अपराजित...** इत्यादि पूर्वयुतायाम् इत्यन्तम् एकवाक्यम्. **पूर्वयुतायाम्** इति नवमीयुतायां दशम्याम् इति अर्थः. **तथात्व**[१] इति, दशम्यां श्रवणस्य कर्मकालव्याप्तौ. **दिनद्वय** इति दशम्याम् इति अनुषज्यते. **व्याप्तौ** इति. **श्रवस्य** इति वर्तते. **निषेध** इति पूर्वोक्तनारदवाक्यम्. **अपराजित** इति[२]. ननु एवम् अनुपदोक्तिविरोधः पुराणसमुच्चयविरोधश्च इति अरुचेः आहुः. **राज** इति. वस्तुतस्तु अपूजनम् इति छेदः. ''पूर्वविद्धां न कारयेद्'' इति निषेधशास्त्रं न अपराजितापूजननिषेधकं किन्तु पट्टाभिषेकपरं वाक्यशेषाद् इति भावः. **उक्तविधायाम्** इति पूर्वविद्धायाम् इति अर्थः. नतु उदयकालिकदशमी अपराह्णकालिकश्रवणं च कुत्रचिद् उक्तम्.

यद्यपि व्यवस्थायाः **पूर्वम् उच्येत** तथापि बहुव्यवधानात् न परामृश्येत्. यदि पूर्वविद्धाप्राशस्त्याद् इति अनन्तरम् उच्येत भवेत् परामर्शार्हः. उत्सवकीर्त्तनेष्वपि राघवस्य यात्रादिकमेव वर्ण्यते, तेन पट्टाभिषेकदिनकृत्यं यात्रादिभिन्नदिनकृत्यत्वं च अस्य, निर्भयरामभट्टैरपि उत्सवप्रतानव्यवस्थाम् अनूद्य यदा सूर्योदये स्वल्पादशमी अपराह्णे च एकादश्यां श्रवणं तदापि तत्रैव उत्सवः इति परमतम् उपन्यस्तम्. तस्य उत्सवप्रतानाभिमतत्वे तु ततः प्रागेव इति उत्सवप्रताने निर्णीतम् इति न लिखेत्. तदग्रे विजयदशम्यां श्रवणप्राधान्यं प्रताने उक्तम् इति उक्त्वा केचित् शिष्टा एतन्निर्णयानुसारेण न व्यवहरन्ति, किन्तु ''उदये दशमी किञ्चित्'' इति पट्टाभिषेकपरत्वम् इत्यादि नारदवाक्यैकवाक्यत्वाद् अपूर्ववाक्यकल्पने गौरवात्. अथवा दिनद्वये तारकोदयकालालाभे इदं वचः कृतार्थम् इति उक्तम्. तत्र केचित् शिष्टा इत्यनेन स्वे एव अभिमताः. उत्तरत्र स्वयमेव तन्मतस्य द्विधा समर्थनाद् उत्सवप्रतानाननुसरणे शिष्टत्वभङ्गाच्च. दिनद्वये तारकोदयकालालाभे इदं वचनम् इति समयमयूखे विदुषां दृश्यते. 'उदय'पदं तारकोदयः इति च. न च सूर्योदयः इति वाक्यैकवाक्यत्वाद् 'उदय'पदं सूर्योदयपरमेव. किञ्च दिनद्वये तारकोदयकालालाभे इदं वचनम् इत्यपि उक्तम् ''उदये दशमी किञ्चिद्'' इति वचनाद् इति वाच्यं, सूर्योदयः इत्यनेनैकवाक्यत्वे तद्वद् अस्य

[कठिनांशटिप्पणी: १.नवमीविद्धा. शुद्धा च दशमी. २.'तु'नात्र तिथिद्वैध इति सप्तम्यन्तं पदमनुवर्तते, स्वारस्यात्. ३.श्रवणस्पृशः. अग्रे तदभावकथनात्. ४.''तिथिः शरीरं तिथिरेव कारणं तिथिः प्रमाणं तिथिरेव साधनमि''ति. ५.कर्मकालम्. ६.दिवसस्य त्रेधा विभागपक्षमाश्रित्येत्यर्थः. ७.तत् नक्षत्रम्. बट् प्रत्यक्षार्थे अव्ययम्. प्रत्यक्षं कुर्वीतेत्यर्थः. प्रत्यक्षकरणोपायमाह उपव्युषमिति. 'उषःकालोष्टपञ्चाशदि'ति वाक्यात्. उषसीति व्युषमिति विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः. व्युषं समीपं उपव्युषम्-पारिभाषिकसूर्योदयकाल इत्यर्थः. तदानीं सूर्यतेजसा नक्षत्रतेजसोनभिभवात्. तदाह उदेति, पारिभाषिकसूर्योदयकालः. नैतीति सूर्यतेजसाऽभिभवं नैति इत्यर्थः. यावतीति काले. तत्रेति नक्षत्रे. यत्र नक्षत्रे जघन्यं स्वतेजसाऽभिभवरूपं गर्हितं पश्येद् दर्शयेदिति (यत्कारीति. पुण्याहकारी नक्षत्रयुक्ताहे.) ८.निरवसाययाञ्चकार=अत्र मुहूर्ते श्रैष्ठ्यं प्रापयामास. ९.बट्कुर्वीत. १०.नक्षत्रस्य प्राबल्यादेव. ११.तदभावेपि तु पूर्वदिने एव एकादश्यतिरिक्तवृद्धौ उत्तरस्यानिषेधात्. विद्धाधिकायामपि द्वितीयैव. विद्धानिषेधात्. विद्धाक्षये तु न भवत्येव. प्रतिप्रसवाभावात्.(११''तु द्वितीयदिनएव. वृद्धौतु उत्तरस्याएव औचित्यात्. विद्धाधिकायामपि'' इति ख-ग पाठः)]

पट्टाभिषेकपरत्वस्यैव युक्तत्वात्.

किञ्च 'किञ्चित्'पदं न द्वित्रनाडिपरं किन्तु एकादशमुहूर्त्तपरं पूर्वदिने एकादश-मुहूर्तपरम्, पूर्वदिने एकादशमुहूर्त्तान्तं नवमीसत्त्वस्य मयूखे उक्तेः. परदिने अपराह्णन्तं सायं पर्यन्तं वा दशमीसम्भवात्. हेमाद्रौ व्रतखण्डे 'उदय' इति वाक्यसत्वाद् एकादशीव्रतपरं वा.

''दशम्येकादशी यत्र सा नोपोष्या भवेत् तिथिः,
श्रवणेन तु संयुक्ता सा तिथिः सर्वकामदा'' इति,
''पुनर्वसौ जयानाम-श्रवणे विजयामता''

इत्यादि कृत्यरत्नावल्यादौ उक्तेः, अथवा तारकोदये दशमी किञ्चित् तत्रैव काले श्रवणं विवक्षितम्.

श्रीद्वारकेशकृपया गंगाधर उदारधीः।।
प्रताने वैजये मुक्तामालाजालमलंवयत्।।१।।

(१.भिन्नोक्तित्वादेव. २.उदये दशमीति कश्यपवाक्ये. ३.यात्रा वाऽभिषेको वा. ४.तिथिर्द्वेध इति तुशब्दस्वारस्यात्. ५.कर्मकालव्याप्तिमत्तिथिस्पृगृक्षे सत्वे इत्यर्थः. ६.वाक्यानां राजापराजितापूजनविषयत्वेनान्यविषयत्वेन चेत्यर्थः.)

।। इति श्रीवासिष्ठगंगाधरशास्त्रिप्रणीतो विजयाविवेकः समाप्तिम् अफाणीत् ।।

आश्विनशुक्लपौर्णमास्यां रासोत्सवः.

स च राकायामेव कार्यो न तु अनुमत्याम्. अखण्डमण्डलस्य इन्दोः तदैव दर्शनाद्, युग्मवाक्याच्च इति दिक्. इति आश्विनोत्सवाः.

अथ कार्तिकोत्सवाः

तत्र हेमाद्रि–निर्णयामृत–निर्णयसिन्धु–निर्णयदीप–समयालोक–दिनकरोद्योत–भगवद्भास्करस्थ–दीपोत्सवसम्बन्धि–वाक्यसङ्ग्रहः. तथा हि, ज्योतिर्निबन्धे नारदः

''आश्विने कृष्णपक्षे तु द्वादश्यादिषु पञ्चसु,
तिथिषूक्तः पूर्वरात्रे नृणां नीराजनाविधिः''.

धनत्रयोदशीकर्तव्यम्.

स्कान्दे

''कार्तिकस्यासिते पक्षे त्रयोदश्यां निशामुखे,
यमदीपं बहिर्दद्यात् अपमृत्युः विनश्यति''

नरकचतुर्दशीकर्तव्यम्.

श्रीकृष्णावतारावसरे 'नरक'नामासुरः सञ्जातः तस्मै श्रीकृष्णेन वरो दत्तः तेन कार्तिककृष्णचतुर्दश्यां नरकचतुर्दश्यां मलस्नानं निरयप्राप्त्यभावाय प्रयत्नेन कर्तव्यम्. तथा च उक्तं पद्मपुराणोत्तरखण्डे श्रीकृष्णचरित्रे शिवेन उमां प्रति

''अन्यलोकहितार्थाय वृणेऽहं वरमुत्तमम्,
मृतेऽहनि तु मे कृष्ण ईश भूतमहेश्वर,
ये नरास्तु मलस्नानं कुर्वन्ति मधुसूदन,
न तेषां निरयप्राप्तिः भवत्वेव यदूत्तम,
एवम् अस्तु इति गोविन्दो ददौ तस्मै वरं प्रभुः'' इति.

भविष्योत्तरे, ब्राह्मे च

''कार्तिके कृष्णपक्षे तु चतुर्दश्याम् इनोदये,
अवश्यमेव कर्त्तव्यं स्नानं नरकभीरुभिः''

''तिलतैलेन कर्त्तव्यं स्नानम्'' इत्यपि क्वचित् पाठः. अत्र इनोदये, दिनोदये,

इवोदये, विधूदये इति पाठचतुष्टयं पुस्तक–पुराणभेदेन दृश्यते. तत्रैव,

‘‘तैले लक्ष्मीर्जले गङ्गा दीपावल्याश्चतुर्दशीम्,

प्रातः स्नानं तु यः कुर्यात् यमलोकं न पश्यति’’

अत्र ‘प्राप्येति शेषः’ इति निर्णयसिन्धुः. सप्तम्यर्थे द्वितीया इति दिनकरोद्योतः.

कश्यपसंहितायाम्

‘‘इन्दुक्षयेऽपि सङ्क्रान्तौ रवौ पाते दिनक्षये,

अत्राभ्यङ्गो न दोषाय प्रातः पापापनुत्तये’’.

स्मृत्यन्तरे

‘‘भोगाय क्रियते यत्तु स्नानं यादृच्छिकं नरैः,

तन्निषिद्धं दशम्यादौ नित्यनैमित्तिके न तु’’.

भविष्योत्तरे

‘‘पूर्वविद्धचतुर्दश्याम् आश्विनस्य सितेतरे,

पक्षे प्रत्यूषसमये स्नानं कुर्यात् प्रयत्नतः,

ततश्च तर्पणं कार्यं धर्मराजस्य नामभिः’’.

ज्योतिर्निबन्धे भविष्योत्तरे

‘‘अपामार्गं भ्रामयित्वा के कुर्यात् यमतर्पणम्,

नरकाय प्रदातव्यो दीपः संपूज्य देवताः’’.

कश्चित्तु, गार्ग्यवचस्त्वेन इदम् उदाजह्रे. दिवोदासीये च भविष्ये

‘‘अरुणोदयतोऽन्यत्र रिक्तायां स्नाति यो नरः,

तस्याब्दिकभवो धर्मो नश्यत्येव न संशयः’’

सर्वज्ञनारायणः

‘‘तथा कृष्णचतुर्दश्याम् आश्विनेऽर्कोदयात् पुरा,

यामिन्याः पश्चिमे यामे तैलाभ्यङ्गो विशिष्यते’’.

यत्तु

‘‘त्रयोदशी यदा प्रातः क्षयं याति चतुर्दशी,

रात्रिशेषे त्वमावास्या तदाऽभ्यङ्गे त्रयोदशी’’

इति वचनम्. तद् निर्मूलम् इति निर्णयसिन्धुः, प्रामाणिकम् इति भगवद्भास्करः.

क्वचिच्च

''स्निग्धस्नानं न कर्त्तव्यं द्वितीयायां सदैव हि,
दशम्यां च त्रयोदश्यां वर्जयित्वा तथाऽऽश्विनम्''

लैङ्गे

''माषपत्रस्य शाकेन भुक्त्वा तत्र दिने नरः,
प्रेताख्यायां चतुर्दश्यां सर्वपापैः प्रमुच्यते''.

क्वचित्तु पाद्मे इति उक्त्वा

''ततः प्रदोषसमये दीपान् दद्यात् मनोरमान्''

इत्यादिवचोनिचयेन दीपदानम् आहुः, नक्तं च आहुः.

अथ अमावास्याकर्तव्यनिर्णयः.

कालादर्शे

''प्रत्यूष आश्वयुग्दर्शे कृताभ्यङ्गादिमङ्गलः,
भक्त्या प्रपूजयेद् लक्ष्मीम् अलक्ष्मीविनिवृत्तये''.

भविष्योत्तरादित्यपुराणयोः अभ्यङ्गम् अभिधाय

''एवं प्रभातसमये अमायां च नराधिप,
स्नात्वा देवान् पितृन् भक्त्या संपूज्याथ प्रणम्य च,
कृत्वा तु पार्वणश्राद्धं दधिक्षीरघृतादिभिः,
दिवा तत्र न भोक्तव्यम् ऋते बालातुराज्जनात्,
प्रदोषसमये लक्ष्मीं पूजयित्वा यथाक्रमम्,
दीपवृक्षाश्च दातव्याः शक्त्या देवगृहेषु च,
चतुष्पथे श्मशाने च नदीपर्वतवेश्मसु,
वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु चत्वरेषु गृहेषु च,
वस्त्रैः पुष्पैः शोभितव्याः क्रयविक्रयभूमयः,
दीपमालापरिक्षिप्ते प्रदेशे तदनन्तरम्,
ब्राह्मणान् भोजयित्वाऽऽदौ संभोज्य च बुभुक्षितान्,
अलंकृतेन भोक्तव्यं नववस्त्रोपशोभिना''.

स्कान्देऽपि

''ततः प्रदोषसमये दीपान् दद्यात् मनोरमान्,
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां भवनेषु मठेषु च,
प्राकारोद्यानवापीषु प्रतोलीनिष्कुटेषु च,
मन्दुरासु च सर्वासु हस्तिशालासु चैव हि''.

(स्कान्दे पुरुषोत्तममाहात्म्ये तु उत्थापनमहोत्सवप्रसङ्गे ''पूजयित्वा जगन्नाथं कौमुद्याख्ये महोत्सवे, अक्षक्रीडादिभिः पुष्पवस्त्रमाल्यानुलेपनैः'' इत्यपि अनूदितम्)

भविष्योत्तरे

''कार्तिके कृष्णपक्षस्य पञ्चदश्यां निशामुखे,
यथेष्टचेष्टं दैत्यानां राज्यं तेषां महीतले'' इति उपक्रम्य
''ततोऽपराह्णसमये घोषयेन्नगरे नृप,
अद्य राज्यं बलेर्लोको यथेष्टं चेष्टतामिति,
लोकश्चापि पुरे हृद्ये सुधाधवलिताजिरे,
गीतवादित्रसंघुष्टे प्रज्वालितसुदीपके,
अन्योन्यप्रीतिसंहृष्टदत्ततालानके जने,
ताम्बूलहृष्टवदने कुङ्कुमक्षोदचर्चिते,
दुकूलपट्टवसने नेपथ्यस्वर्णभूषणे,
मित्रस्वजनसम्बन्धिस्वगोत्रज्ञातिपूजिते''

'व्रजेद्' इति शेषः.

''ततोऽर्द्धरात्रसमये स्वयं राजा व्रजेत् पुरम्,
अवलोकयितुं रम्यं पद्मामेव शनैः शनैः,
महता तूर्यघोषेण ज्वलद्भिः हस्तदीपकैः,
हर्म्यशोभासुखं यायात् कृतकैरश्वकैः नरैः,
बलिराज्यप्रमोदं च दृष्ट्वा स्वगृहमाव्रजेत्,
एवं गते निशिथे तु जने निद्रार्धलोचने,
तावन्नगरनारीभिः शूर्पडिण्डिमवादनैः,
निष्काश्यते प्रहृष्टाभिः अलक्ष्मीः स्वगृहाङ्गणात्''.

श्राद्धदीपदानादौ प्रमाणम्.

ज्योतिर्निबन्धे भविष्योत्तरे

''अमायाम् आश्विने मासि पितृकर्म विधाय च,
दीपदानं ततः कुर्यात् प्रदोषे च तथोल्मुकम्''

अन्यच्च

''अपराह्णे प्रकर्त्तव्यं श्राद्धं पितृपरायणैः,
प्रदोषसमये राजन् कर्त्तव्या दीपमालिका''

क्वचित्तु आदित्यपुराणे

‘‘अमायां चैव देवास्तु कार्तिके मासि केशवात्,
अभयं प्राप्य सुप्तास्तु सुखं क्षीरोदसानुषु,
लक्ष्मीर्दैत्यभयात् मुक्ता सुखं सुप्ताऽम्बुजोदरे,
अतोर्थं विधिवत्कार्या तुष्ट्यै तु सुखसुप्तिका,
अर्धरात्रे भ्रमत्येव लक्ष्मीराश्रयितुं गृहान्,
अतः स्वलङ्कृता लिप्ता दीपैर्जाग्रज्जनोत्सवाः,
सुधाधवलिताः कार्या पुष्पमालोपशोभिताः’’

अत्र ‘‘गृहाः कार्याः’’ इति शेषः.

द्यूते प्रमाणम्.

अन्यच्च

‘‘नारिकेलोदकं पीत्वा अक्षक्रीडां समाचरेत्,
निशीथे वरदा लक्ष्मीः को जागर्तीति भाषिणी,
तस्मै वित्तं प्रयच्छामि अक्षक्रीडां करोति यः’’

क्वचिच्च *कुबेरपूजानिशीथे लक्ष्मीपूजाऽपि उच्यते.

(*‘‘स्त्रीसेवा जागरं रात्रौ पूजनं परिदेवनम्, पिण्डदाने कृते सर्वम् आश्विनान्ते न दुष्यति’’ इत्यपि उच्यते तथा.)(पूर्वकोष्ठकान्तर्गतः पाठः ‘ग’ पुस्तकेऽपि अस्ति).

प्रतिपत्कर्तव्यनिर्णयः.

प्रतिपदि च ज्योतिर्निबन्धे

‘‘नन्दायाम् उदये अभ्यङ्गं कृत्वा नीराजनं ततः,
सुवेशः सत्कथागीतैः दानैश्च दिवसं नयेत्’’

वशिष्ठः

‘‘वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च,
तैलाभ्यङ्गम् अकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते’’

ब्राह्मे

‘‘कार्तिके शुक्लपक्षे तु विधानद्वितयं भवेत्,
नारीनीराजनं प्रातः सायं मङ्गलमालिका’’

स्कान्दे

‘‘प्रातर्गोवर्द्धनः पूज्यो द्यूतं चापि समाचरेत्,
भूषणीयास्तथा गावः पूज्यास्त्वावाहदोहनाः’’

आदित्यपुराणे

‘‘शङ्करस्तु पुरा द्यूतं ससर्ज्ज सुमनोहरम्,
कार्तिके शुक्लपक्षे तु प्रथमेऽहनि सत्यवत्,
जितश्च शङ्करस्तत्र जयं लेभे च पार्वती,
अतोऽर्थ शङ्करो दुःखी उमा नित्यं सुखोचिता,
तस्माद् द्यूतं प्रकर्त्तव्यं प्रभाते तत्र मानवैः,
तस्मिन् द्यूते जयो यस्य तस्य संवत्सरं जयः,
पराजयो विवृद्धश्च लाभनाशकरो भवेत्,
श्रोतव्यं गीतवाद्यादि स्वनुलिप्तैः स्वलङ्कृतैः,
विशेषवच्च भोक्तव्यं प्रशस्तैः बान्धवैः सह,
तस्यां निशायां कर्त्तव्यं शय्यास्थानं सुशोभनम्,
गन्धैः पुष्पैः तथा वस्त्रैः दिव्यरत्नैः अलङ्कृतम्,
दीपमालापरिक्षिप्तं तथा धूपेन धूपितम्,
दयिताभिश्च सहितैः नेया सा च भवेत् निशा,
नवैर्वस्त्रैश्च संपूज्या द्विजसम्बन्धिबान्धवाः’’

दुःखी वस्त्रादिहीनः.

भविष्योत्तरे

‘‘ततः प्रबुद्धे सकले जने प्राप्तमहोत्सवे,
द्विजाभिवादनपरे सुखरात्र्यादिवादिनि,
प्रभातसमये राज्ञा तोषणीयाः ततो जनाः,
सुवासिनीभ्यो देयानि वस्त्राण्याभरणानि च,
सद्भावेनैव सन्तोष्या दानेन च तथा द्विजाः,
इतरे चान्नपानेन सन्मानेन च पण्डिताः,
वस्त्रैः ताम्बूलदानैश्च पुष्पकर्पूरकुङ्कमैः,
तथा सम्पूजयेत् मानैरन्तःपुरविलासिनीः,
पदातिजनसङ्घातान् ग्रैवेयैः कटकैः शुभैः,
स्वनामाङ्कैः स्वयं राजा तोषयेत् स्वजनान् पृथक्,
वृषभान् महिषांश्चैव युध्यमानान् परैः सह,
गजान् अश्वांश्च योधांश्च पदातीन् समलङ्कृतान्,
मञ्चारूढः स्वयं पश्येत् नटनर्त्तकचारणान्,

क्रुद्धापयेत् त्रासयेच्च गोमहिष्यादिकं ततः,
एतद्गोक्रीडनं कार्य प्रातर्नन्दादिने नरैः,
ततोऽपराह्णसमये पूर्वस्यां दिशि भारत,
मार्गपालीं प्रबध्नीयात् तुङ्गे स्तम्भेऽथ पादपे,
कुशकाशमयैः दिव्यां लम्बकैः बहुभिः नृप,
दर्शयित्वा गजान् अश्वान् मार्गपाल्यास्तले नयेत्,
नीराजनं च तत्रैव कार्यं राष्ट्रजयप्रदम्,
मार्गपालीतलेनेत्थं यान्ति गावो वृषा गजाः,
राजानो राजपुत्राश्च ब्राह्मणाः शूद्रजातयः,
मार्गपालीं समुल्लङ्घ्य नीरुजः स्युः सुखान्विताः,
कृत्वैतत् सर्वमेवाहन् रात्रौ दैत्यपतेर्बलेः,
पूजां कृत्वा नृपः साक्षात् भूमौ मण्डलके कृते''

अहन् अहनीति अर्थः.

अथ बलिपूजाविधिः.

''बलिमालिख्य दैत्येन्द्रं वर्णकैः पञ्चरङ्गकैः,
सर्वाभरणसंपूर्णं विंध्यावल्या सहासितम्,
द्विभुजं दैत्यराजानं कारयित्वा नृपः स्वयम्,
गृहस्य मध्ये शालायां विशालायां ततोऽर्चयेत्,
लोकश्चापि गृहस्यान्तः शय्यायां शुक्लतन्दुलैः,
संस्थाप्य बलिराजानं फलैः पुष्पैश्च पूजयेत्''

पञ्चरङ्गकृतां मूर्त्तिं राजा पूजयेत्, लोकस्तु शुक्लतन्दुलकृताम् इति अर्थः.

''बलिम् उद्दिश्य दीयन्ते दानानि कुरुनन्दन,
यानि तान्यक्षयाण्याहुः मयैतत् सम्प्रदर्शितम्,
यदस्यां दीयते दानं स्वल्पं वा यदि वा बहु,
तदक्षयं भवेत् सर्वं विष्णोः प्रीतिकरं परम्,
कौ मुत्प्रीतिः बलेः यस्मात् दीयतेऽस्यां युधिष्ठिर,
अतोऽर्थे पार्थिवैः पार्थ तेनैषा कौमुदी स्मृता,
यो यादृशेन भावेन तिष्ठत्यस्यां युधिष्ठिर,
हर्षदैन्यादिरूपेण तस्य वर्षं प्रयाति हि,

तस्मात् प्रहृष्टैः तुष्टैश्च कर्त्तव्या कौमुदी नरैः,
दीपोत्सवे जनितसर्वजनप्रमोदे
कुर्वन्ति ये सुमतयो बलिराजपूजाम्,
दानोपभोगसुखऋद्धिशताकुलानां
राजन् प्रयाति सकलं प्रमुदैव वर्षम्''.

रज्ज्वाकर्षणम्.

आदित्यपुराणे

''कुशकाशमयीं कुर्यात् वृष्टिकां सुदृढां नवाम्,
ताम् एकतो राजपुत्रा हीनवर्णाः तथाऽन्यतः,
गृहीत्वा कर्षयेयुः तां यथासारं मुहुर्मुहुः,
जयेऽत्र हीनजातीनां जयो राज्ञस्तु वत्सरम्,
जयचिह्नम् इदं राजा विदधीत प्रयत्नतः''

समसङ्ख्याकाः समबलाश्च कर्षयेयुः इति अर्थः.

अथ दिनद्वयमधिकृत्य कृत्यम्.

ज्योतिषे

''तुलासंस्थे सहस्रांशौ प्रदोषे भूतदर्शयोः,
उल्काहस्ता नराः कुर्युः पितॄणां मार्गदर्शनम्''

दिवोदासीये ब्राह्मे

''अमावास्याचतुर्दश्योः प्रदोषे दीपदानतः,
यममार्गान्धकारेभ्यो मुच्यते कार्तिके नरः''

अथ दिनत्रयम् अधिकृत्य,

पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे

''इषे भूते च दर्शे च कार्तिके प्रथमे दिने,
यदा स्वाती तदाऽभ्यङ्गस्नानं कुर्यात् दिनोदये,
ऊर्जशुक्लद्वितीयान्ततिथिषु स्वातियुक्प्रगे,
मानवो मङ्गलस्नायी नैव लक्ष्म्या वियुज्यते,
दीपैः नीराजनात् अत्र सैषा दीपावली स्मृता''

ज्योतिर्निबन्धे नारदः

‘‘इषासितचतुर्द्दश्याम् इन्दुक्षयतिथावपि,
ऊर्जादौ स्वातिसंयुक्ते तदा दीपावली भवेत्,
कुर्यात् संलग्नमेतच्च दीपोत्सवदिनत्रयम्’’.

क्वचित्तु

‘‘संलग्नमेव कर्त्तव्यं दीपोत्सवदिनत्रयम्,
विभेदं कुरुते यस्तु नरके स निमज्जति’’

इति दोषोऽपि पठ्यते.

भविष्योत्तरे

‘‘पुरा वामनरूपेण प्रार्थयित्वा धराम् इमाम्,
ददौ अतिथिरिन्द्राय बलिं पातालवासिनम्,
कृत्वा दैत्यपतेः दत्वा अहोरात्रत्रयं बुधः’’.

अथ कालनिर्णये मध्याह्नकालिकशास्त्रम्.

ज्योतिर्निबन्धे

‘‘आश्विने मासि भूतादितिथयः कीर्तितास्त्रयः,
दीपदानादिकृत्येषु ग्राह्या मध्याह्नकालिकाः,
अर्द्धोदयात् सहस्रांशोः प्रातः स्यात् त्रिमुहूर्त्तकः,
सङ्गवः त्रिमुहूर्तः स्यात् मध्याह्नस्त्रिमुहूर्त्तकः,
शारदः त्रिमुहूर्त्तः स्यात् सायाह्नः त्रिमुहूर्त्तकः,
यदि स्युः सङ्गवाद् अर्वाग् एते च तिथयः त्रयः,
दीपदानादिकृत्येषु कर्त्तव्याः पूर्वसंयुताः,
अथ चेत् सङ्गवाद् ऊर्ध्वम् एते च तिथयः त्रयः,
भवन्ति वृद्धिगामित्वे कर्त्तव्याः परसंयुताः’’.

क्वचित्तु ‘‘अमायाम् आश्विने मासि’’ इति अभिधाय.

‘‘रिक्तायुक्ते यदा दर्शे श्राद्धकालो न लभ्यते,
तदा अपरे अह्नि कर्त्तव्यं श्राद्धं दीपोल्मुकं तथा,
श्राद्धकाले यदा दर्शो अपराह्णे प्रतिपत् यदि,
दीपदानादिकं कर्म तत्प्रदोषे न दुष्यति,

दर्शश्राद्धं विना यस्मिन् राष्ट्रे दीपोल्मुकं भवेत्,
तद्राष्ट्रं नाशम् आयाति परचक्राग्नितस्करैः''.

क्वचित्तु
''नैकः श्राद्धद्वयं कुर्याद् अनिमित्ते कदाचन,
निमित्ते सति कर्त्तव्यं विना वृद्धिमहालयम्''
इत्यपि मध्ये पठन्ति.

''पूर्वं नीराजनं कृत्वा दीपान् दत्वा तथैव च,
पश्चाद् यः: कुरुते श्राद्धं तत्सर्वम् आसुरं भवेत्''
इति उक्त्वा ततः ''आश्विने मासि दर्शादि'' इत्येवं सार्द्धपद्यचतुष्कं लिखन्ति.

क्वचित्तु
''सायाह्ने च चतुर्दश्याम् अमा यत्र प्रदृश्यते,
तत्र श्राद्धं तथा दीपं पितॄणाम् अक्षयं भवेत्,
आश्विनान्ते चतुर्दश्यां तुलासंस्थे दिवाकरे,
दिनान्ते दृश्यते चामा कलामात्राऽपि कर्हिचित्,
तदाऽपराह्णे श्राद्धं स्यात् सायं दीपोल्मुकादिकम्''.

अथ गोक्रीडनम्.

तत्र द्वितीयाविद्धानिषेधः.
''प्रातर्गोक्रीडनं कार्यं दर्शे नन्दायुते सदा.
क्रीडन्त्यमाप्रतिपदि गावश्चेत् लोकमातरः।।
अश्वव्याधिभयं नैव राज्ञः शस्त्रभयं न हि।।३।।
प्रतिपद्दर्शसंयोगे गावो यत्र प्रपूजिताः।।
तत्राऽऽयुः वर्द्धते नित्यं राज्यं पुत्रा धनं तथा।।४।।
कार्तिकस्याऽसिते पक्षे तुलाभानुः यदा भवेत्।।
यत्नेन वर्जयेत् भद्रां गवां क्रीडनकर्मणि।।५।।''
तत्रैव ब्रह्माण्डे
''नन्दा किञ्चित् युता यत्र दृश्यते च द्वितीयया,
बलेः दिनं न कर्त्तव्यं चन्द्रदर्शनसम्भवात्,

गवां क्रीडादिने नन्दा द्वितीयामिश्रिता यदा,
क्षतिरायुः प्रजाङ्गानां छत्रभङ्गो नराधिपे''

तत्र निर्णयभास्करे च ब्राह्मे

''आश्विने शुक्लपक्षे तु तुलाभानुः यदा भवेत्,
स्त्रियः क्रीडन्तु दर्शे तु गावो नन्दासु कार्तिके''

पाद्मे

''पूर्वविद्धा प्रकर्त्तव्या शिवरात्रिः बलेः दिनम्''

तथा

''या कुहूः प्रतिपन्मिश्रा तत्र गाः पूजयेत् नृप,
पूजनात् त्रीणि वर्द्धन्ते प्रजा गावो महीपतिः''

देवलः

''प्रतिपद्दर्शसंयोगे क्रीडनं तु गवां मतम्,
परविद्धासु यः कुर्यात् पुत्रदारधनक्षयः''

पुराणसमुच्चये

''गवां क्रीडादिने यत्र रात्रौ दृश्यते चन्द्रमाः,
सोमो राजा पशून् हन्ति सुरभीपूजकांस्तथा''

तथा

''नन्दाया दर्शने रक्षा बलिदानं दशासु च,
भद्रायां गोकुलक्रीडा स देशो वै विनश्यति,
प्रतिपद्यग्निकरणं द्वितीयायां तु गोर्चनम्,
भूपच्छेदं करिष्येते वित्तनाशं कुलक्षयम्''.

अथ गोक्रीडायां अमाविद्धानिषेधः. ब्राह्मे,

''कातिर्के शुक्लपक्षे तु तुलाभानुः यदा भवेत्,
यत्नेन वर्जयेद् दर्शं गोक्रीडायां तु भूतले,
गावः संक्रीडमानास्तु नाशं यान्ति न संशयः,
आयुःक्षतिः प्रजानाशः छत्रभङ्गो नराधिपे,
प्रतिपत्सद्वितीया चेद् गवां चैव प्रपूजनम्,
आयुर्वृद्धिः प्रजावृद्धी राज्यवृद्धिस्तथा भवेत्,
अमावास्यायां(?) क्रीडन्ते गावो लोकस्य मातरः,
अश्वव्याधिः भवेत् तत्र राज्ञां शस्त्रभयं भवेत्''

शिवरहस्ये

‘‘प्रतिपद्दिवसे कुर्यात् पूजां गोवर्द्धनस्य तु,
पूर्वविद्धा न कर्तव्या या च दृश्या दिवोदया,
नन्दा यामे मोदमाना भद्रा नष्टा प्रजायते,
पूतं भवति तद्वर्षं राज्यदं सुखवर्द्धनम्’’.

त्रियामिकसार्धत्रियामिकशास्त्रम्.

स्कान्दसमुच्चये

‘‘त्रियामिकादर्शतिथिः भवेत् चेत् सार्द्धत्रियामा प्रतिपद्विवृद्धौ,
दीपोत्सवे ते मुनिभिः प्रदिष्टे इतोऽन्यथा पूर्वयुते विधेये,
वर्द्धमानतिथौ नन्दा यदा सार्द्धत्रियामिका,
द्वितीया वृद्धिगामित्वात् उत्तरा तत्र चोच्यते’’.

ब्राह्मे विधानद्वितयम् अभिधाय

‘‘अथ चेत् प्रतिपत्स्वल्पा नारीनीराजनं भवेत्,
द्वितीयायां तदा कुर्यात् सायं मङ्गलमालिकाम्’’

भविष्यपुराणे

‘‘लभ्येत यदि वा प्रातः प्रतिपद् घटिकाद्वयम्,
तस्यां नीराजनं कार्यं सायं मङ्गलमालिका’’.

देवीपुराणे

‘‘प्रातर्वा यदि लभ्येत प्रतिपद्घटिका शुभा,
द्वितीयायां तदा कुर्यात् सायं मङ्गलमालिकाम्,
आश्विनान्ते यदा दर्शे नारीनीराजनं भवेत्,
नारीणां तत्र वैधव्यं देशे दुर्भिक्षमेव च,
कार्तिके शुक्लपक्षादौ अमावास्याघटीद्वयम्,
देशभङ्गभयान्नैव कुर्यात् मङ्गलमालिकाम्’’

इति. ईदृशानि वचांसि निर्णयामृत-प्रपातमार्तण्ड-विश्वप्रकाश-चन्द्रप्रकाशादिषु अन्यान्यपि सन्ति.

अथ तिथिकृत्यसंग्रहः.

एवम् एतेषु वचनेषु चतुर्दश्याम् उदये नित्यं काम्यं च अभ्यङ्गस्नानं, ततो यमतर्पणं, शैवद्विजभोजनं, माषपत्रशाकभोजनं च यथावसरं नक्तं च. प्रदोषे च

दीपदानोल्मुके. पूर्वरात्रे च नीराजनम्[१]. दर्शे च प्रत्यूषे मङ्गलस्नानं प्रातश्च देवादिपूजा–प्रणामादयः ततो अपराह्णे पार्वणश्राद्धं प्रदोषे च नीराजन–लक्ष्मीपूजन–दीपदानानि.

एषां पौर्वापर्यं च. पितृदीपदानम् उल्मुकं च. रात्रौ च जागराद्यनेकोत्सव–गीतवाद्यादिश्रवण–स्त्रीसेवनादि–यथेष्टचेष्टाः. निशीथे च लक्ष्मीभ्रमणं लक्ष्मीपूजा कुबेरपूजा च. अपररात्रे च अलक्ष्मीनिस्सारणं[२], प्रतिपदि च उदये अभ्यङ्ग–नीराजने, पूर्वाह्णे गोवर्द्धनपूजा–द्यूत–गोपूजन–जनतोषण–गोक्रीडन–वृषगजादियोधन–नारीनीराजनानि. अपराह्णे मार्गपालीसमुल्लङ्घन–नीराजने. सायं मङ्गलमालिका रज्वाकर्षणं च अनियतकालम्. किञ्चित् प्रक्रम्य तदनन्तरं च रात्रौ बलिपूजा शय्यास्थानमण्डन–स्त्रीसाहित्यादयो विधीयन्ते. भूतादित्रयस्य बलिराज्यसम्बन्धित्वं च उच्यते. संलग्नकर्त्तव्यताकत्वं च विधीयते. इति तिथिकृत्यसंग्रहः.

मतान्तराणि.

मतान्तराणि. तन्निर्णये तु केचन श्राद्ध–दीपदानयोः [३]पूर्वापरभाव–वैपरीत्यज–दोषबोधकशास्त्रकांदिशीकाः तयोः अङ्गाङ्गिभावम् अङ्गीकृत्य[४] तिथिद्वैधे पूर्वापर–भावनिर्वाहाय दिनान्ते दर्शे चतुर्दश्यां श्राद्धविधिम् अवतारयन्तः तत्फलस्तावकं शास्त्रं[३] प्रतिपद्युल्मुकनिषेधशास्त्रं[५] च दर्शयन्तो वक्ष्यमाणं प्रमाणयन्ति.

अन्ये च तद्दोषभीताः[६] पूर्वोक्तम् अप्रमाणीकृत्य[७] वैपरीत्यम् अङ्गीकुर्वन्तः तिथिद्वैधे पूर्वापरभावनिर्वाहाय *भूतादित्रयस्य (वक्ष्यमाणप्रकारकत्वम् अङ्गीकृत्य) तदर्थं मध्याह्नकालिकतावाक्यं[८] सङ्गवादर्वाङ्निवृत्यूर्ध्वगमनयोः पूर्वपरयुतात्ववाक्यद्वयं च अवतार्य[९] दर्शस्य श्राद्धकालव्याप्तौ प्रतिपदि दीपदानादिशास्त्रं प्रतिपद्युल्मुक–प्रतिप्रसवशास्त्रं च दर्शयन्ति.

कठिनांशटिप्पणी:१.एतदन्तेन चतुदर्शीदिनकृत्यं दर्शितम्. २.एतदन्तेन दर्शकृत्यमुक्तम्. ३.कांदिशीको भयद्रुत इत्यमरः. बोधकशास्त्रम्–''दर्शश्राद्धं विने'तिवाक्यम्. ''दर्शश्राद्धं विना यस्मिन् राष्ट्रे दीपोल्मुकं भवेत्. तद्राष्ट्रं नाशमायाति परचक्राग्नितस्करैः''. ४.'सायाह्ने च चतुर्दश्याम्' इत्यादिवाक्यत्रयम्. ५.'प्रतिपद्यग्निकरणं' इतिवाक्यम्. ६.वक्ष्यमाणदोषभीताः. ७.प्रकारान्तरेण निर्णयदर्शनात्. इति यावद्. ८.'आश्विने मासि भूतादि' इतिवाक्यसार्धचतुष्कम् ज्योतिर्निबन्धनीयम्. ९.'रिक्तायुक्ते यदा' इति.
*'भूतादित्रयस्य मध्याह्नकालिकत्वादिकम् अङ्गीकृत्य तदर्थं' इति ख पाठः.

केचन च मध्याह्नकालिकादिशास्त्रगतदीपदानादिपदम् अतद्गुणसंविज्ञान–बहुव्रीहिणा समस्य (प्रथमदिनएव प्रदोषव्यापित्वे[1]) तत् पूर्वकर्मविषयत्वं शास्त्रस्य आहुः. (युक्तं[2] तु पञ्चमीतत्पुरुषेण तदर्थं समस्तव्यमिति.)

अथ बहवस्तु तत्तच्छास्त्रं निर्मूलम् इति उक्त्वा श्राद्धोल्मुकादि–वैपरीत्य–दोषोपेक्षका उभयविधाङ्गाङ्गिभावनिरादराः तत्रापि केचिद् वैपरीत्यदूषक–तन्निर्वाहक-शास्त्रम् अलिखन्तः प्रतिपद्युल्मुकनिषेधशास्त्रं च विषयविशेषे सावकाशयन्तः केचन च अलिखन्तः पूर्णतिथावेव तत्पूर्वापर्यम् आद्रियन्ते न इतरत्र. प्रतिपदि च बलिपूजायां पूर्वविद्धात्वं नारीनीराजन–मङ्गलमालिक्योश्च परात्वं गोक्रीडने तु चन्द्रदर्शनपरविद्धात्वयोः तिथिक्षयसाम्याभ्यां च पूर्वयुतात्वम् अन्यथा परयुतात्वं बहवः आहुः.

केचन च आश्विनकृष्णकार्तिकशुक्लयोः तुलासंक्रमेण पूर्वपरयुतात्वं गोक्रीडायाम् आहुः. संलग्नताशास्त्रस्य च मलमासनिवृत्यर्थकत्वं केचन आहुः. अपरे च दीपदानमात्रविषयत्वम् इति.

[कठिनांशटिप्पणीः १.प्रथमदिने एव प्रदोषव्यापित्वे. २.मध्याह्नकालिकादिशास्त्रस्य.]

सिद्धान्ते श्राद्धदीपदानादौ क्रमव्यवस्था.

तत्र किं किम् आदरणीयम्? दोषाद्यजनकं सद् यद् व्यवस्थितिसमञ्जसं वचन–स्वरसाप्तं वा तत् आदर्त्तव्यम् उच्यते. तथा हि, श्राद्धदीपादिपूर्वापरभाव–विघटनजदोष–भीततया यदि तयोः अङ्गाङ्गिभावः आद्रियते तदा दीपदानाङ्गभूतपार्वणश्राद्धं दार्शिकातिरिक्तम् अङ्गीकार्यम्. ‘‘कृत्वा तु पार्वणश्राद्धं दधिक्षीरघृतादिभिः’’ इति वाक्ये द्रव्यान्तरपरिसङ्ख्यानात्[1] ‘आदि’शब्देन द्रव्यान्तरग्रहणेऽपि अनुक्तस्य गौणत्वात्. ‘पार्वण’शब्दश्च त्र्युद्देश्यकश्राद्धपरः.

‘‘एकम् उद्दिश्य तु यच्छ्राद्धम् एकोदिष्टं विदुर्बुधाः,
त्रीन् उद्दिश्य तु यच्छ्राद्धं पार्वणं तत् प्रचक्षते’’

इति भगवद्भास्करे वचनात्. ‘‘**चत्वारः पार्वणाः कार्याः**’’ इत्यादिषु तथा दर्शनाच्च. युक्तं च एतत्. अन्यथा दार्शिकश्राद्धम् इत्येव ब्रूयात्. तथा च पूर्वत्र सायं कलामात्रदर्शसत्वे द्वितीयदिने च प्रदोषे तदसत्वे पूर्वत्र दीपोत्सवकर्म. तत्पूर्वदिने तत्र भूतासत्वे तु तद्दीपदानमपि प्रासङ्गिकं[2] तान्त्रिकं वा स्वकालएव दर्शे. दार्शिकश्राद्धं तु द्वितीयदिने स्वकालएव. एवं सति ‘‘सायाह्ने च चतुर्दश्याम्’’ इति वाक्याच्च च यस्य

प्रथमदिनमात्रप्रदोषव्यापि-दर्शविषयत्वं ''**कार्त्तिककृष्णे तुलासङ्क्रमे**'' ''**रिक्तायुक्ते**'' इत्यादिवाक्यद्वयस्य च कार्त्तिकशुक्ले तुलासङ्क्रमे प्रथमदिनएव प्रदोषव्यापिदर्श(योग)[पा.भे.१] विषयत्वम्. ''**दर्शश्राद्धं विना**'' इति ''**पूर्वं नीराजनम्**'' इति च वाक्यद्वयस्य प्रदोषद्वयव्यापि-दर्शविषयत्वम् उचितम्, मध्याह्नकालिक-वाक्यस्वारस्यात्. तेन ''**सायाह्ने च चतुर्दश्याम्**'' इति उक्ते काले दीपदानेऽपि न दोषसञ्चारः. उल्मुकनिषेधस्य द्वितीयदिनएव प्रदोषैकदेशव्यापि-प्रतिपद्यवकाश-लाभाच्च. तेन 'रिक्तायुक्ते' इत्याद्युक्ते द्वितीयपक्षेऽपि न दोषसञ्चारः.

कश्चित्तु, ''**प्रतिपद्यग्निकरणम्**'' इति निषेधशास्त्रेण रिक्तायुक्तेति विधिशास्त्रसमूलताम् अनुमिनोति स्म. तद् असाम्प्रतम्, उक्तव्यवस्थाया बहुवादि-संमतत्वाद्, विहितप्रतिषिद्धत्वे विकल्पप्रसङ्गाच्च, निषेधस्य विध्यनुमापन-व्यग्रतया निषेध्याभावे सति वाक्यार्थभङ्गप्रसङ्गाच्च.

वस्तुतस्तु पार्वणदीपदानयोः पृथक् कर्मत्वमेव साधीयः. सौर्यार्यमण-प्राजापत्यादिवत् भिन्नप्रयोगविधिपरिगृहीतत्वात्. पूर्वोक्तव्यवस्थया अङ्गाङ्गिभावम् अन्तरेणाऽपि शास्त्रमात्रसंगतेः नित्यस्य नैमित्तिकाङ्गतानौचित्यात् कल्पनालाघवाद् बहुवादिसंमतत्वाच्च इति. श्राद्धदीपदानक्रमश्च पूर्णतिथावेव प्राप्तो अनूद्यते इत्येव मन्तव्यम् इति दिक्.

कश्चित्तु ''न हि अत्र क्रमानुवादः. तथात्वे वचनवैयर्थ्यापातात्''. एवं सति भिन्नप्रयोगविधिपरिगृहीतत्वेऽपि ''**दर्शपूर्णमासाभ्याम् इष्ट्वा सोमेन यजेत**'' इत्यादिवत् श्राद्धानन्तर्यस्य दीपदानाङ्गत्वे तु न किञ्चित् बाधकम्. न च कर्मकालशास्त्रं बाधकम् इति वाच्यम्, 'अमावास्या'शब्दस्य सन्धिवाचित्वेन सन्धिदिने प्रदोषे दीपदानेऽपि तदविरोधात्. अङ्गीकृतं च सन्धिदिनस्य पूर्णस्यापि अमावास्यात्वं नारायणवृत्तिकारैः ''**अमावास्यायाम् अपराह्णे**'' इत्यत्र. ''**चन्द्रक्षयाविशेषेण साऽपि दर्शात्मिका स्मृता**'' इति देवलवचनाच्च. त्रियामिकास्थले मदनरत्नादिभिः प्रतिपदि दीपदानाङ्गीकराच्च इति दिक् इति आह.

स तु आग्रहवादएव इति जानीमः, सर्वनिबन्धवैसंमत्यात्. नारायणवृत्तिकारोक्तेः पिण्डपितृयज्ञविषयत्वात्. ''**अमावास्यायाम् अपराह्णे पिण्डपितृयज्ञेन चरन्ति**'' इति

व्याख्येयवाक्ये तथा दर्शनात्. देवलस्मृतेः पक्षश्राद्धम् आभ्याधीतत्वेन तद्विषयत्वात्. ''**अहः षोडशकं यत्तु शुक्लप्रतिपदा सह**'' इति तत्पूर्वार्द्धे दर्शनाच्च. 'त्रियामिका' इति वाक्यं तु स्वविषयएव नियामकं न अन्यत्र. अन्यथा अतिप्रसङ्गापत्तेः दुर्वारत्वात् इति. किं च एवम् उल्मुकनिषेधवैयर्थ्यापत्तिः. तथा हि पूर्णतिथौ विषयाभावाद् अन्यदा च श्राद्धोत्तरत्वेन तत्प्राप्त्या अनवसरपराहतेः. तच्छास्त्रप्रामाण्यावश्यकत्वे[३] तु तादृशविषये[४] दीपोल्मुकादिलोपएव [पा.भे.२]इति. न च क्रमबोधक-वाक्यवैयर्थ्यापत्तिः, ''एवं[५] प्रभात-समये'' इत्यादौ यथा नित्यस्नानानुवादेन अभ्यङ्गक्रमयोः देवपूजानुवादेन भक्तिक्रमयोश्च उत्सवाङ्गत्वेन यथा विधानं तथा नित्यश्राद्धम् अनूद्य तत्तद्द्रव्यविशिष्ट-सदैवत्वादेः विधानम् इति अङ्गीकारे[६] उपपत्तेः. पूर्णतिथौ दार्शिकेनैव प्रसङ्गसिद्धेश्च. न च तदकर्त्तुः अनधिकारापत्तिः इति[७] वाच्यं, तत्कर्त्तारं[८] प्रत्येव तादृशाधिकारसंचारात्. अन्यथा गुर्विणीपतिजीवत्पितृकादेरपि अनधिकारापत्तेः. न च इष्टापत्तिः, प्रसिद्धिविरोधात् इति दिक्.

[कठिनांशटिप्पणी: १.परिसंख्यानम्-गणना. २.''आश्विने मासि भूतादितिथयः कीर्तितास्त्रयः. दीपदानादिकृत्येषु ग्राह्या मध्याह्नकालिका'' इति ज्योतिर्निबन्धवाक्यस्वारस्यात्. सायंकाल एव दर्शे तदानीं मध्याह्नकालिक-वाक्यस्वारस्यात् एकदेशभूतसत्वाच्चेत्यर्थः. ३.प्रतिपदि-उल्मुकशास्त्रनिषेधशास्त्रम्. ४.यत्र श्राद्धाकालिकदर्शोत्तरं प्रतिपत्तत्रेत्यर्थः. ५.''एवं प्रभातसमये अमायां च नराधिप. स्नात्वा देवान् पितॄन् भक्त्या सम्पूज्याथ प्रणम्य च. कृत्वा तु पार्वणश्राद्धं दधिक्षीरघृतादिभिः''. ६.विश्वेदेवसाहित्यादेः. ७.श्राद्धाकर्तुररग्निमकर्मणि दीपदानेऽनाधिकारापत्तिः. ८.श्राद्धकर्तारं श्राद्धाधिकारिणमिति यावत्.]

पाठभेदाः १.'दर्शत्याग' इति ख पाठः. २''इति च न'' इति ख-ग पाठः.

सार्धत्रियाम-पूर्वविद्धा-परविद्धासमन्वयः.

एवं च उक्तप्रथमकल्पोक्तगौरवमपि निरस्तं बोध्यम्[१]. (दीपदानाङ्गभूत-पार्वणश्राद्धं दार्शिकातिरिक्तम् अङ्गीकार्यम् इति प्रथमपक्षोक्तगौरवम्.) वस्तुतस्तु क्रमानुवादएव शास्त्रकारानुशयगोचरः इति ज्ञायते. अन्यथा (हृदयस्य अग्रे अवद्यति-अथ जिह्वाया-अथ वक्षस इति वत्) विदध्यादेव नानुवदेत् इति अत्यलं प्रसक्तानुप्रसक्त्या. तथैव गोक्रीडायां (यदा तिथिवृद्धौ सत्यामपि सार्द्धत्रियामत्वं न भवति तदा) तु '**त्रियामिका**' इति वाक्ये ''**इतो अन्यथा पूर्वयुते विधेये**'' इति कथनाद् ''**गवां क्रीडादिने यत्र**'' इति ''**परविद्धासु यः कुर्याद्**'' इति वाक्याभ्यां च तिथिवृद्धौ सार्द्धत्रियामात्वाभावेन चन्द्रदर्शनसम्भावनया परवेधानुकल्पसम्भवेन च पूर्वयुता. न च वृध्दौ पूर्वस्याः सामान्यतो निषेधाद् न एवम् इति वाच्यं, मासातिदेशेन तस्य त्रिस्पृक्तिथिविषयत्वावगमात्.

एकादशीविषयत्वाद् वा, अस्य प्रातिस्विकत्वाच्च. तिथिसाम्यह्रासयोः सार्द्धत्रिया-तमत्वेऽपि वृद्ध्यभावेन पूर्वयुता. उभयसत्वे चन्द्रदर्शनेन [पा.भे.१]पूर्वयुता. (तस्य विशेषवाक्यत्वात्). परं ''**कार्तिके शुक्लपक्षे**'' इति वाक्यात् कार्तिकशुक्ले तुलासंक्रमे दर्शगतपूर्वाह्णकालमात्रातिक्रमः[२] कार्यः तस्य विशेषवाक्यत्वात्. एवं सति यावन्तः पूर्वविद्धाविधयः उत्तरविद्धानिषेधाश्च ते सर्वे ईदृशविषय[३] एव उपसंहृता बोध्याः. न च निषेधानाम् उपसंहारो[४] नास्ति इति वाच्यं, वृन्ताक-श्वेतवृन्ताक-निषेधादौ माधवादिभिः तस्य अङ्गीकाराद् इति. उभयसत्त्वे[५] चन्द्रादर्शने तु परयुतैव प्रतिपद् ग्राह्या इति निष्कर्षः. अत्र बलिपूजापूर्वभावित्वं यद्यपि गोक्रीडायाः न सिद्ध्यति तथाऽपि कालबाधापेक्षया कदाचित् कर्मबाधापेक्षया च क्रममात्रबाधएव साधुः इति न कोऽपि दोषः. उत्तरविद्धाविधीनां पूर्वविद्धानिषेधानाम् अत्र उपसंहाराच्च इति[६]. न च सार्द्धत्रियामत्वम् अविवक्षितम् इति[७] वाच्यं, प्रमाणाभावात्. न च चन्द्रदर्शनपरवेधदोषदर्शकशास्त्रमेव तत्र प्रमाणम् इति वाच्यं, अप्रयोजकत्वाद्, विनिगमनाविरहात्. अन्यथा वृद्धेरपि अविवक्षितत्वापातात्. न च इष्टापत्तिः, वाक्यवैयर्थ्यापातात्. किन्तु पूर्वतिथेः त्रियामात्वमेव अविवक्षितम्. अतएव 'वर्द्धमानतिथौ' इति वाक्ये तस्य अनुपादानं युज्यते. बलिपूजायां तु पूर्वविद्धैव, ''पूर्वविद्धैव कर्तव्या'' इत्यादिवाक्यात्. ''तिस्रो ह्येताः पराः प्रोक्ता'' इति अत्र 'पर'शब्दे उत्कृष्टवाचकत्वस्य शक्यवचनत्वाच्च. दिनकरोद्द्योते वाक्यस्य कृष्णप्रतिपद्विषयत्व-स्थापनाच्च. नारीनीराजन-मङ्गलमालिकयोस्तु बहुवादिसंमतम् उचिततरम्. व्याख्यानक्लेशस्तु न प्रामाणिकजनगोचरः.

[कठिनांशटिप्पणी: १.नेदं प्रतानकारवाक्यम्. २.पूर्वदिवसे सायं कलामात्रदर्शसत्वे, द्वितीयदिने च प्रदोषेतरसत्त्वे पूर्वत्र दीपोत्सवकर्मेति सैद्धान्तिकनिर्णयेन प्राप्तो यो दर्शविशेषः पूर्वदिनात्मकः कालस्तत्रातिक्रमः, अयं च निर्णयः 'रिक्तायुक्त' इत्यादिना दर्शितः. ३.यत्र तिथिवृद्धौ सत्यामपि त्रियात्मत्वं न भवति प्रतिपदस्तादशविषयः. ४.'कृत्वैतत् सर्वमेवाह' इत्यादिपूर्वोक्तवाक्येषु बलिपूजाया अन्ते उक्तेरिति. ५.त्रियामात्वसार्धत्रियामत्वयोस्तु. ६.वृद्धौ सत्यां यत्र त्रियामा भवति प्रतिपत्तत्र. ७.उत्तरतिथेः.]पाठभेदाः १.''पूर्वयुता. वृद्धौ परानिषेधस्य दत्तोत्तरत्वात्. परं कार्तिके'' इति ख-ग पाठः

पूर्वाह्णापराह्णाभ्यां दिनत्रयकृत्यकालव्यवस्था.

(ज्योतिर्विदाभरणेऽपि एवमेव सिद्ध्यति. तत्र हि

''इषान्तदर्शो रजनीमुखाधिको दीपोत्सवोऽसौ गदितो बुधैरिह।
श्राद्धं विधाय द्युदलक्षणत्रये सायं सदैवोल्मुकमादृतं ततः।।१।।

रिक्तानिशीथे किल विष्णुमायाम् अभ्यर्च्य दीपोत्सवमप्यमायाम्।
कृत्वा बलेश्च प्रतिपद्युतस्य पूजा तु गोक्रीडनमृद्धये स्यात्।।२।।
अमा यदा भूतदिनेऽपराह्णे प्रदृश्यते तद्दिवसेऽक्षयं स्यात्।
श्राद्धं पितृणां तदनूल्मुकाख्यं तमीमुखे लोकनृपार्थकारि।।३।।
प्रातश्च संगवश्चैव मध्याह्नः शारदस्तथा।
सायाह्नमर्द्धोदयतः पंचशो द्युमिते क्रमात्।।४।।
पंचधा भागकालोऽसौ त्रिधा पूर्वाह्णिकं ततः।
मध्याह्नमपराह्णं तु द्वेधा पूर्वापराह्णिके।।५।।
दिनावसाने क्षणमप्यमा चेत् श्राद्धं विधायोल्मुकमत्र कुर्यात्।
क्षयेऽथ वृद्धौ प्रतिपद्युपेते दर्शे ततोऽग्रे बलिपूजनं स्यात्।।६।।
श्राद्धे कृते शारदगामिदर्शे नन्दोल्मुकं दूषणकृन्न राज्ये।
तदा निशीथे सुरशक्तिपूजाऽदर्शेऽपि लोकेश्वरसौख्यदा स्यात्।।७।।
सूर्यास्तकालोल्मुकमङ्गिकर्म स्यादङ्गकर्माण्यपराणि चात्र।
दर्शोदरः पञ्चदिनात्मकोऽसौ दीपोत्सवस्तद्व्यवहारसिद्धः।।८।।

इत्यादिश्लोकद्वयेन पूर्णतिथौ क्रमप्राप्तानि श्राद्धोल्मुक-लक्ष्मीपूजन-दीपोत्सवरूपाणि अमाकृत्यानि, बलिब्रह्मपूजा-गोक्रीडनानि प्रतिपत्कृत्यानि उक्त्वा, ततः 'अमा यदा' इति पद्येन भूतदिने अपराह्णम् आरभ्य प्रवृत्तायाम् अमायां श्राद्धोल्मुकादिपौर्वापर्यं स्वरसप्राप्तम् उत्तमम् इति उक्त्वा 'प्रातश्च' इत्यादिश्लोकद्वयेन दिवसस्य पञ्चधा त्रेधा द्वेधा विभागं प्रासङ्गिकं दिनान्तस्य अपराह्णत्वाय बोधयित्वा "**दिनावसाने क्षणमप्यमा चेत् श्राद्धं विधायोल्मुकमत्र कुर्यात्, क्षये**" इत्यनेन पैतृके सूर्यास्तव्यापितिथिसाकल्यशास्त्रस्य तदनुसारिणः "**आश्विनान्ते चतुर्दश्याम्**" इत्यादिशास्त्रस्य च अनुग्रहात् चतुर्दश्यां श्राद्धं विधाय तदुत्तरम् उल्मुककरणं "**इतोऽन्यथा पूर्वयुते विधेये**" इति शास्त्रानुसारेण उक्त्वा, तत्रापि अमाया अभावे "**अथ प्रवृद्धौ प्रतिपद्युपेते दर्शे**" इत्यादिना "**त्रियामिका दर्शतिथिः**" इति शास्त्रानुसारेण श्राद्धोत्तरं प्रतिपद्युल्मुकं न दुष्टम् इति बोधयित्वा, लक्ष्मीपूजामपि आदर्शे सौख्यदाम् उक्त्वा, "**सूर्यास्तकालोल्मुकमङ्गिकर्म स्यादङ्गकर्माण्यपराणि चात्र**" इत्यनेन उल्मुकानुरोधेन श्राद्धादीनां पैतृकाणां गौणकालेऽपि करणं न अनुचितम् इति बोधयित्वा अत्र "**दर्शोदरः पंचदिनात्मकोऽसौ दीपोत्सवस्तद्व्यवहारसिद्ध**" इत्यनेन दीपोत्सवस्य व्यवहारसिद्धत्वेन दर्शोदरस्य पञ्चदिनात्मकत्वं पञ्चात्मकदर्शोदरव्यवहारसिद्धत्वं वा दीपोत्सवस्य इति उक्तम्. एवं च उभयथापि पौर्वरात्रिकनीराजनस्य वा अमास्थदीपदानस्य वा दीपोत्सवत्वं सिद्ध्यति. तत्र नीराजनस्य द्वादश्यादौ दैनंदिनत्वात् न श्राद्धोत्तरत्वापेक्षां,

नापि दीपदानस्य, लक्ष्मीजागरणोत्सवरूपत्वेन तत्प्रीत्याद्यर्थत्वात्. अत एव अत्र सन्दर्भे श्राद्धोत्तरत्वम् उल्मुकमात्रस्यैव उक्तं न इतरस्य. **'दर्शश्राद्धं विना'** इति वाक्ये 'दीप'पदं तु उल्मुकसाहचर्यात् पितृदीपपरम्. ''**पूर्वं नीराजनं कृत्वा**'' इति वाक्यं तु दिनद्वयप्रदोष–व्याप्यमायां प्रथमायाः त्याज्यत्वाय इति पूर्वोक्तम् अविरुद्धम् इति दिक्.)

अथ इदं विचार्यते. संलग्नताशास्त्रं मलमास–दीपोत्सव–निवर्त्तनविषयकं[१] दीपदानमात्रविषयकं वा. 'दीपदान'शब्दोऽपि किं नीराजनपरो दीपदानपरो वा. नीराजनमपि पौर्वरात्रिकम् औदयिकं वा इति. तत्र न तावत् आद्यः. ''**मलेऽनन्यगतिं कुर्यात् नित्यां नैमित्तिकीं क्रियाम्**'' इति वाक्ये (गत्यन्तराभावएव नैमित्तिककरणविधानेन इह च) गत्यन्तरसत्त्वेन मले तत्प्राप्त्यसम्भवात्. 'इषासित' इति प्राथमिकवाक्ये 'ऊर्जा'दिपदसमभिव्याहारादेव आश्विनसंसर्प्प एतस्य निवृत्त्या संलग्नतावाक्य–वैयर्थ्यापत्तेश्च. कार्तिकसंसर्प्पत्वे[२] तन्निवारणे विश्लेषस्यैव आपाताच्च. वस्तुतस्तु[३] सांप्रतं कार्तिकादित्रयसंसर्प्पस्यैव असम्भवाद् न किञ्चिद् एतत्. तदंहस्पतौ[४] च तार्त्तीयीकदिनालाभेन असम्भवाच्च. यदि च स्वातियोगेन दीपावलीत्वम् अङ्गीकृत्य तत्र संलग्नता नियम्यत इति विभाव्यते. तदाऽपि सूर्यभोग्यस्वातिग्रहणे तु मलासम्भवएव. अन्यदाऽपि त्रिस्पृङ्नक्षत्रविषयत्वे[५] च प्रायिकत्वापत्त्या कादाचित्कत्वमेव स्याद् रोहिण्यष्टमीजयन्तीवत्. प्रसिद्धिविरोधश्च अन्धपरंपरा च स्यात्. तस्य त्रिस्पृक्त्वाभावे तु सिद्धान्तकुक्षिगतत्वमेव. द्वितीयेऽपि न आद्यः, द्वादश्यादिपञ्चकसंलग्नतापातात्. 'तत्समानत्वादितरेषु तथात्वम्' इति न्यायात्. न च इष्टापत्तिः. तथा वाक्यान् अभिव्यक्तेः. बहुवाद्यसम्मतत्वाच्च. न इतरः, चतुर्दश्यां प्रातर्नीराजनप्रापकवचनाभावात्.

''स्वातिस्थिते रवाविन्दुः यदि स्वातिगतो भवेत्,
पञ्चत्वगुदकस्नायी कृताऽभ्यङ्गविधिर्नरः,
नीराजितो महालक्ष्मीम् अर्चयन् श्रियम् अश्नुते''

इति पुष्करपुराणोक्तकालस्य च प्रायिकत्वात्. न च तद्विषयत्वमेव अस्तु. 'त्रियामिका' इति वाक्ये द्वयोरेव दीपोत्सवत्वम् उक्तम् इति इष्टापत्तेः इति वाच्यम्, 'उत्सव'पदासङ्गतिप्रसङ्गात्. न हि 'उत्सव'पदेन नीराजनमात्रम् उच्यते अपितु उत्सवरूपाणि सर्वाण्येव कर्माणि इति. किञ्च, ''**दीपैः नीराजनाद् अत्र सैषा दीपावली स्मृता**'' इति ब्राह्मात्, ''**तदा दीपावली भवेत्**'' इति अत्र नीराजनपरिसंख्यानेन स्वातियोगाभावे तत्करणाभावेन पूर्वोक्तदूषणापत्तेः. न अन्त्यः, प्रतिपदि तत्प्रापक–वचनाभावात्. 'संलग्नमेव' इति 'त्रियामिका' इति शास्त्रयोस्तु संलग्नकर्त्तव्यताकत्व–

पूर्वयोगपरयोगव्यवस्थापकत्वयोरेव विषयत्वेन भानाच्च. किंच, यदा त्रयोदशीप्रदोषे चतुर्दशी, तत्प्रदोषे च दर्शः, स च द्वितीये अह्नि दण्डमात्रः तादृग्विषये व्यभिचारापत्तेश्च, 'दण्डैकरजनी' इति वाक्यात् श्राद्धोत्तरत्वोक्तेश्च परेद्युरेव तत्करणात्. दार्शिकदीपावृत्तिस्तु न उचितैव, प्रसिद्धिविरोधात् उक्तहेतुभ्यां च.

कस्तर्हि विषयः इति चेद्, वदामः. भविष्योत्तरे,

''पुरा वामनरूपेण प्रार्थयित्वा धरामिमाम्,
ददावतिथिरिन्द्राय बलिं पातालवासिनम्,
कृत्वा दैत्यपतेः दत्वा अहोरात्रत्रयं बुधः''

इति वाक्यदर्शनात् तदेकमूलकल्पनया तत्तिथित्रयं प्रक्रम्य पठितानि 'उत्सव'पदोक्तेः उत्सवरूपाणि कर्माणि विषयः इति. उचितमपि एतत्. परस्परविरुद्धानाम् एकत्र विधानदर्शनाद् विरुद्धयोः देवासुरयोः अत्र ऐक्यश्रवणाद् उत्साहाच्च उत्सवरूपत्वस्य स्फुटत्वात्. विवरवासिनः पुना राज्यप्राप्तेरपि. अतएव ''**अद्य राज्यं बलेः लोको यथेष्टं चेष्टताम्**'' इत्यादिवाक्योक्त-राजप्रयुक्त-बलिराज्यघोषलोककर्तृक-यथेष्टचेष्टादिरपि संगच्छते.

[कठिनांशटिप्पणी: १.मलमासे दीपोत्सवनिवर्तनविषयकमित्यर्थः. २.आधिक्यम्. ३.एतस्य निवृत्या संलग्नतावाक्य-वैयर्थ्यापत्तेश्च. कार्तिकसंसर्पित्वेन. ४.अंहस्पतौ-क्षये. ५.नक्षत्रक्षये.]

त्रियामत्वशास्त्रस्य रहस्यार्थः

अत्र इदं बोध्यम्. ''**सैषा दीपावली स्मृता**'' इति ब्राह्मे एकवचनात् प्रसिद्धेश्च अमायाएव दीपोत्सवत्वाद् ''**दीपोत्सवदिनत्रयम्**'' इति अत्र 'दिनत्रय'शब्देन तत्पौरस्त्यपाश्चात्ययोः तस्य च कृत्यं लक्ष्यते इति मन्तव्यम्. तिथ्यहोरात्रोक्तौ तु तयोः अनुक्तसिद्धत्वाद् वचनवैयर्थ्यापत्तिः दुर्दुर्वारैव स्यात्. एतेन ''**दीपोत्सवे ते मुनिभिः प्रदिष्टे**'' इत्यत्रापि 'दीपोत्सव'शब्दः सप्तम्यन्तो बोध्यः. तथा च दीपोत्सवे विवृद्धौ सत्यां ते त्रियामासार्द्धत्रियामे अमाप्रतिपत्तिथी प्रदिष्टे. कर्मनिमित्तकालतया ग्राह्यत्वेनोक्ते, इतो अन्यथा तिथिवृद्धावपि त्रियात्मत्वसार्द्धत्रियामत्वयोः अभावे, तिथिसाम्यह्रासयोश्च त्रियामत्वसार्द्धत्रियामादित्वे सति पूर्वयुते भूतयुता अमाऽमायुता प्रतिपद् इत्येवं विधेये कर्मकालत्वेन ग्राह्ये इति अर्थो निष्प्रत्यूहः स्फुटति.

एवं सति अत्र इयं व्यवस्था. यदा तिथिवृद्धौ सार्द्धत्रियात्मत्वाभावे पूर्वयुता

प्रतिपत् तदा गोपूजाक्रीडयोः दर्शस्य प्रशस्तत्वात् भौतिकदार्शिकदीपदानयोः बलिपूजायाः तदङ्गानां च स्वस्वकालएव यथाक्रमम् अनुष्ठानम्. अभ्यङ्गे तिथेः तात्कालिकत्वस्य विशेषवाक्यगोचरत्वेन व्युत्क्रमो दिनत्रयबहिर्भावश्च न दुष्टः, नारीनीराजनादिवत्. परं दार्शिकश्राद्धं कदाचिद् द्वितीये अह्नि दिनद्वये वा दर्शश्राद्धं तदुपपादितं पूर्वम्. वृद्धौ पूर्वानिषेधस्तइ[१] दत्तोत्तरो[२] विशेषवाक्यबाध्यश्च[३]. परं तु कार्तिकशुक्लपक्षे तुलासंक्रमे गोक्रीडायाः कालो दर्शपूर्वाह्णो बोध्यः[४]. गवां कर्णजागरणं च न कार्यम्. गोपूजनं तु न निषिद्धम् इति भवत्येव. तथैव गोवर्द्धनपूजान्नकूटादिकमपि. दर्शस्य तत्कालत्वेन वक्ष्यमाणत्वात्. प्रतिपदि गोवर्द्धनपूजावाक्यस्य केवलपूजापरत्वात्. अन्नकूटस्य अद्रिगोद्विजमखत्वेन तदु(?)द्देश्यकतया गोपूजासाहचर्यलाभाच्च. पूर्णतिथौ प्रतिपदादारस्तु ''**कृत्वैतत् सर्वमेवाहन्**'' इति वाक्यान्तरे बलिपूजापूर्वभावानुरोधात्. दीपोत्सवोत्तरमेव शिष्टाचाराच्च इति दिक्.

यदा च तिथिसाम्ये सार्द्धत्रियामत्वे पूर्वयुता, तदापि सर्वं पूर्ववदेव. यदा च तिथिह्रासे सार्द्धत्रियामत्वे पूर्वयुता, तदाऽपि भूतदर्शयोः प्रदोषद्वयाव्यापित्वं चेद् गौणकालव्याप्तिमादाय[५] कर्म विधेयम् इति सर्वं पूर्ववदेव. यदा तु भूतस्य प्रदोषद्वय-व्यापित्वोत्तरं दर्शाद् ह्रासः तदापि दर्शस्य गौणप्रदोषे सत्वात् पूर्ववदेव कामरात्रौ भूतदीपदानम्, भूते प्रातरभ्यङ्गो रात्रौ च दार्शिकं दीपदानं, दर्शदिने अन्नकूटादि रात्रौ बलिपूजादि. यदा च दर्शस्य प्रदोषद्वयव्यापित्वोत्तरं प्रतिपदो ह्रासः तदापि द्वितीयदिने दर्शस्य दण्डमात्रत्वाऽभावे पूर्ववदेव. द्वितीयदिने दण्डमात्रत्वे तु ''**दण्डैकरजनीयोगे दर्शः स्यात्तु परेऽहनि, तदा विहाय पूर्वेद्युः परेऽह्नि सुखरात्रिका**'' इति तिथितत्त्वे ज्योतिर्वचनात् परयुता कार्या. अन्यथा एतद्बाधापत्तेः. 'इतोन्यथा' इत्यस्य पूर्वोक्तविषयेषु सावकाशत्वाच्च.

[कठिनांशटिप्पणी: १.त्याज्यास्तिथिस्त....पूर्वावृद्धौ ग्राह्या तथोत्तरेति. २.'अकर्म्मण्यं तिथिमलमि'त्यनेन. ३.'इतोन्यथेति' वाक्यम्. ४.''कार्तिके शुक्लपक्षे तु तुलाभानुर्यदा भवेत्. यत्नेन वर्जयेद् दर्शं गोक्रीडायां तु भूतले'' इत्यनेन काल एव बाध्यः, प्रदोषे कर्णजागरञ्च न कार्यम्. तस्य क्रीडाप्रयोजकत्वात्. ५.स्वकालादुत्तरकालो गौणः सर्वस्य कर्मणः.]

बलिपूजायां चन्द्रदर्शनदोषः

न च बलिपूजायां दोषसञ्चारः,

''नन्दा किञ्चिद्युता यत्र दृश्यते च द्वितीयया,
बलेर्दिनं न कर्तव्यं चन्द्रदर्शनसम्भवात्''

इति वाक्ये चन्द्रदर्शनस्यैव दोषप्रयोजकत्वोक्तेः. एवं सति मध्याह्नकालिक-शास्त्रम् आदाय भूतदीपदानं भूतप्रदोषे अमायां भवति इति विशेषः. शेषं यथा स्थानम् इति ज्ञेयम्.

अन्नकूटे चन्द्रदर्शनदोषो नास्ति.

यदा च एतादृशे विषये चन्द्रदर्शनसम्भावना कार्तिककृष्णे तुलाभानुः वा तदा तु पूर्वेद्युरेव सुखरात्रौ बलिपूजाऽपि गोक्रीडाऽपि रात्रौ प्रतिपदि. तथा च गवां कर्णजागरणमात्रं कार्यं न अन्यद् इति फलति. अन्नकूटगोपूजागोवर्द्धनपूजादिकं तु द्वितीयएव दिने प्रतिपत्पूर्वाह्णे. श्रीमद्भागवते

''वयं गोवृत्तयोऽनिशम्''
''तस्मात् सम्पूजयेत् कर्म''
''तस्माद् गवां ब्राह्मणानाम् अद्रेश्च आरभ्यतां मखः,
अयं गोब्राह्मणाद्रीणां मह्यं च दयितो मख''

इत्यादिभगवद्वाक्येषु गवादीनां प्राधान्यप्रतीतेः बलिपूजाङ्गत्वभ्रमभङ्गात्[१]. यदा च ''वर्द्धमानतिथौ'' इति वाक्योक्तो यथाश्रुतः कालः तदापि अनुपदोक्तएव प्रकारः इति सर्वम् अनवद्यम्.

ननु अन्नकूटोत्सवः कुत्र उक्तः? इति चेत्, पाद्मोत्तरखण्डे इति जानीहि. तथाहि

''ततो बलिगृहद्वारि स्थाप्यो गोमयमूर्तिमान्,
पुनः श्रीबालगोपालः तथा गोवर्द्धनो महान्,
बलिराजद्वारपालो भवान् अद्य भव प्रभो,
निजवाक्पालनार्थं त्वं सगोवर्द्धनगोपते,
इति संस्थाप्य गोपालं गोवर्द्धनसमन्वितम्,
प्रतिष्ठापूर्वकं धीमान् भक्त्या संपूजयेत् मुने,
गोपालमूर्त्ते विश्वेश शक्रोत्सवविभेदक,
गोवर्द्धनकृतच्छत्र पूजां मे गृह्ण गोपते,
गोवर्द्धनधराधार गोकुलत्राणकारक,
विष्णुबाहुकृतच्छाय गवां कोटिप्रदो भव,
इति सम्पूज्य विधिना भक्ष्यभोज्यैः शुभावहैः,

ज्ञातीन् बन्धून् जनान् सर्वान् क्रमशो भोजयेत् ततः,
भक्ष्यं चात्महितं भोज्यं तथान्तःपुरचारिभिः,
वस्त्रैः ताम्बूलदानैश्च पुष्पचन्दनकुङ्कुमैः,
एलालवङ्गकर्पूरकस्तूरीभिश्चतान्[२] यजेत्,
कृत्वैतत् सर्वमेवं हि पुनः कुर्यात् महोत्सवम्,
अन्नकूटम् इति ख्यातं विष्णोः भक्त्या सुशोभनम्''

इति. वाराहपुराणे मथुरामाहात्म्ये च अन्नकूटो निरुक्तः.

''अन्नकूटस्य सांनिध्ये तीर्थं कृष्णविनिर्मितम्,
तत्र कृष्णेन पूजार्थम् इन्द्रस्य विहतो मखः,
महानिन्द्रस्य चोत्थानं भक्ष्यभोज्यसमन्वितम्,
कृत्वा तुष्टिकरं साक्षाद् इन्द्रेण सह संकथाः,
इन्द्रस्य वर्षतोऽत्यन्तं गवां पीडाकरं जलम्,
तासां रक्षार्थं संस्तभ्य धृतो गिरिवरस्तदा,
सोऽन्नकूट इति ख्यातः सर्वतः शक्रपूजितः''

इति.

अत्र अन्नकूटोत्सवाङ्गत्वेन क्रियमाणोऽपि गोवर्द्धनोत्सवो व्रतदिनकरे (बलीवर्दकथायां) मासान्तरेऽपि उक्तः.

''गोवर्द्धने च नन्देन कृतोऽयं सुमहोत्सवः,
दर्शे च श्रावणे मासि गोपैः सुबहुली[पा.भे.१] कृतः''

इति उक्त्वा

''इन्द्रो महेन्द्रो विमृधो दर्शेष्टौ श्रुतिचोदितः,
कथं शक्रो वेदितव्यः श्रुतौ गुणविभागतः,
तस्माद् अत्र विधातव्यो गोवर्द्धनमहोत्सवः''

इति श्रीनन्दं प्रति भगवद्वाक्यात् सोपि दर्शेष्टिकालएव कार्यः इति ज्ञायते. तत्रापि श्रीभागवते ''**अपर्त्तावुल्बणं वर्षम्**'' इति कथनात् शरद्गम्यते. हरिवंशे शरदः कण्ठतः उक्तेश्च. शिष्टाचाराच्च इदानीं शरदेव मुख्येति गम्यते. तत्र च भगवदीयैः भगवदुक्तत्वेनैव क्रियते नतु बलिपूजाङ्गत्वेन इति तां विनाऽपि तत्करणम् उचिततरम्.

किञ्च, दर्शदिने असौकर्ये द्वादश्यन्तमपि तत्करणं शिष्टानाम् उचितमेव. इन्द्रयागसम्भारोपयोगायैव दर्शग्रहणात्. अन्यदा तेषां वैरस्य सम्भवात्. अतएव तिथौ

आग्रहाभावात् प्रतिपदपि उक्ता. तस्मात् सर्वम् अनवद्यम् इति दिक्.

इति श्रीमद्वल्लभनन्दनचरणरजोनुरागपूरितहृदय–
पुरुषोत्तमकृतो दीपोत्सवनिर्णयः सम्पूर्णः.

[कठिनांशटिप्पणी: १.बलिपूजान्नकूटोत्सवश्च पृथग्विधी स्तः. २.तामिति गोमयमूर्तिम् इत्यर्थः. (सर्वपुस्तकेषु वर्त्तते अत्र 'तान्' पाठः.]

पाठभेदः १.''...कृतः'' इत्यादिना पृथगपि उक्तः. तेन कालान्तरेऽपि गोवर्धनपूजनं साम्प्रदायिकानां युक्तम् इति सर्वम् अनवद्यम् इति दिक्'' इति ख–ग पाठः.

अथ कार्तिकशुद्धद्वितीया भ्रातृद्वितीया.

सा च उत्सवे भोजनकालव्यापिनी ग्राह्या. यद्यपि भोजनस्य यमप्रीत्यर्थत्वात् यमस्य च पितृत्वेन अपराह्णे एव पूज्यत्वात् तद्व्यापिनी तिथिः ग्रहीतुम् उचिता, सर्ववादिसम्मता च. तथापि ''**देवत्वं च पितृत्वं च यमस्यास्ति द्विरूपता**'' इति वाक्येन देवत्वस्यापि सत्त्वेन केवलपितृत्वाभावाद् ''**आवर्तनात्तु पूर्वाह्णो ह्यपराह्णस्ततः परः**'' इति द्वेधाविभक्तापराह्णस्य भोजनकालेऽपि सम्भवात् तम् आदायैव ग्राह्या. यमपूजाया अकरणाद् वा तथा अस्तु. इति यमद्वितीयानिर्णयः.

अथ कार्तिकशुक्लाष्टमी गोपाष्टमी.

तथा उक्तं व्रतदिनकरे पाद्मे,

''शुक्लाष्टमी कार्तिके तु स्मृता गोपाष्टमी बुधैः,
तद्दिने वासुदेवोऽभूत् गोपः पूर्वं तु वत्सपः,
तत्र पूजां गवां कुर्यात् गोग्रासं गोप्रदक्षिणाम्,
गवानुगमनं कार्यं सर्वकामार्थसिद्धये''

इति. अत्र उदयव्याप्त्या निर्णयः. विद्धाक्षये तु अगत्या विद्धैव कार्या इति. इति गोपाष्टमीनिर्णयः.

अथ कार्तिकशुक्लैकादशी प्रबोधोत्सवः.

अथ उत्थापनविधिः. तदुक्तं हेमाद्रौ ब्राह्मे

''एकादश्यां तु शुक्लायां कार्तिके मासि केशवम्,
प्रसुप्तं बोधयेद् रात्रौ श्रद्धाभक्तिसमन्वितः,
नृत्यैः गीतैः तथा वाद्यैः ऋग्यजुःसाममङ्गलैः,

वीणापटहशब्दैश्च पुराणपठनेन च''

इत्यादिना. तत्रैव भविष्योत्तरेऽपि

''कार्तिके शुक्लपक्षे तु एकादश्यां पृथासुत,
मन्त्रेणानेन राजेन्द्र देवम् उत्थापयेत् द्विजः,
ब्रह्मेन्द्ररुद्राग्निकुबेरसूर्य–सोमादिभिर्वन्दितवन्दनीय,
बुध्यस्व देवेश जगन्निवास मन्त्रप्रभावेण सुखेन देव,
इयं च द्वादशी देवप्रबोधार्थं विनिर्मिता,
त्वयैव सर्वलोकानां हितार्थं शेषशायिना,
त्वयि सुप्ते जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेद् इदम्,
उत्थिते चेष्टते सर्वम् उत्तिष्ठोत्तिष्ठ माधव''

इत्यादिना च. अन्यच्च तत्र भविष्योत्तरे

''आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती,
आदिमध्यावसानेषु प्रस्वापावर्त्तनोत्सवाः,
निशि स्वापो दिवोत्थानं सन्ध्यायां परिवर्त्तनम्,
अन्यत्र पादयोगे तु द्वादश्यामेव कारयेत्''

इत्यादि. स्कान्दे चातुर्मास्यव्रतकल्पे तु विशेषः उक्तः,

''जागरं च प्रबोधिन्यां कुर्यात् वै नियतेन्द्रियः,
गुरोर्गोमिथुनं दत्वा द्वादश्यां भोजयेद् द्विजान्,
आसायाह्नं पुराणाद्यैरहः संक्षपयेद् बुधः,
अस्तङ्गते दिनकरे पुनः स्नायाद् यथाविधि,
वृन्दावने ततः कुर्यात् मण्डपं चतुरस्रकम्,
पुष्पमाल्यैः फलैर्दिव्यैः नारिकेलादिभिः शुभैः,
पुंगीफलैरिक्षुदण्डै रम्भास्तभ्भैश्च शोभितम्,
तत्र देवं प्रतिष्ठाप्य सुघोषैर्मन्त्रपूर्वकम्''

''**इदं विष्णुः**'' इति मन्त्रेण वाराहोक्तमन्त्रैश्च उत्थापयेद् इति शेषः. स्कान्दे पुरुषोत्तममाहात्म्ये तु पञ्चामृतस्नापनम् उत्थापनोत्तरम् उक्तम्. ''**सुगन्धतैलेनाभ्यंज्य स्नापयेत् पुरुषोत्तमम्, पञ्चामृतैः नारिकेलरसैः फलरसैः तथा**'' इति. एवं च अत्र द्विविधैः वाक्यैः तिथिद्वयं रात्रिर्दिनं सन्ध्या च यथायथं काल इति बहूनां मतम्.

मम तु 'द्वादशी'शब्द एकादशीपरः इत्येवं प्रतिभाति. भविष्योत्तरे, ''**एकादश्यां मन्त्रेणानेन**'' इति उपक्रम्य ''**इयं च द्वादशी देवप्रबोधार्थं विनिर्मिता**'' इति मन्त्रोक्तेः.

‘द्वादशी’पदस्य एकादशीवाचकत्वं पवित्रोत्सवनिरूपणे स्फुटीकार्यम्. मन्त्राणां वाराहीयत्वे द्वादशीम् उपक्रम्य पाठे तु तिथिद्वयमपि प्रबोधकालो अस्तु न कापि क्षतिः. एवं च उत्थापनस्य दिवा रात्रौ च विधानाद् उभयमपि प्रबोधकालः.

तेन अयं विशेषः. एकादश्याम् उत्थापने विद्धा त्याज्यैव, आसुरीत्वाद् युग्मवाक्यानुरोधाच्च. भद्रापि त्याज्यैव, कालान्तरस्यापि लाभात्. द्वादश्याम् उत्थापने च ऋक्षपादयोगौ न अत्यन्तावश्यकौ, ‘‘**द्वादश्यां संधिसमये नक्षत्राणाम् असम्भभवे, आभाकासितपक्षेषु शयनावर्त्तनादिकम्**’’ इति वाराहात्.

अथ अत्र प्रसङ्गात् वेधो विचार्यते. स च (हरिवल्लभसुधोदयादौ) स्थूलतया चतुर्विधो विष्णुधर्मोत्तरे निरूपितः

‘‘**पञ्चचत्वारिंशता स्पर्शः सङ्गः पञ्चाशता मतः,**
पञ्चपञ्चाशकः शल्यो वेधः षट्पञ्चाशकः स्मृतः,
स्पर्शे तु घटिकाः पञ्च पञ्चसङ्गे तथैव च,
शल्ये पञ्च तथा वेधे पूर्णवेधश्चतुर्विधः,
स्पर्शादिचतुरो वेधान् वर्जयेत् वैष्णवो नरः’’

इति. व्यवस्थापितश्च तत्रैव. ‘‘**स्पर्शादिचतुरो वेधाः सुप्रसिद्धाः कृते युगे, सङ्गादयस्तु त्रेतायां शल्याद्यौ द्वापरे कलौ**’’ इति. (अस्मिन् वाक्ये ‘शल्याद्यौ’ इति अत्र वेधस्य आद्यत्वाभावाद् द्वन्द्वेनार्थासिद्धेः द्विवचनेन तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीह्यवगमाद् उभयोः युगद्वये प्राप्तेः साम्प्रदायिकैः सशल्यैकादशी त्यज्यते. अतद्गुणसंविज्ञानपक्षे तु) तेन इदानीं वेधएव वैष्णवैः त्याज्यः. तत्प्रकारश्च श्रीमदाचार्यचरणैः निबन्धे निरूपितः.

‘‘**एकादशीव्रतं च षट्पञ्चाशद्वेधरहितं कर्त्तव्यम्. पूर्वम् अन्यथाकरणेऽपि भगवन्मार्गप्रवेशानन्तरं पञ्चपञ्चाशद्घटिका दशमीचेत् तदैकादशी त्याज्या**’’

इति. अत्र इदं हृदयम्. ‘‘**नाडिकाः षट् च पञ्चाशत् प्रातस्त्वेकोऽधिकोऽरुणः, उषः कालोऽष्टपञ्चाशत् शेषः सूर्योदयः स्मृतः**’’ इति वाक्ये एकोनषष्टिघटिकोत्तरमपि पारिभाषिकः सूर्योदयो भवतीति तम् आदाय ‘‘**उदयात् प्राक् चतस्रस्तु नाडिका अरुणोदयः**’’ इति उक्ते पारिभाषिके अरुणोदये गृहीते पञ्चपञ्चाशद्घटिकाऽपि दशमी (पाक्षिकं) अरुणोदयवेधं विधत्ते इति सोऽपि दोषः परिहरणीयः इति. (यत्तु ‘‘उषः कालोऽष्टपञ्चाशत्’’ इति अष्टपञ्चाशत्तमायाः घटिकायाः उषःकालत्वविधानात्

तच्छेषद्विघटिकस्य सूर्योदयत्वं शङ्कितं, तदबोधात्. 'अष्टपञ्चाशद्' इति अत्र पूरणप्रत्ययाभावेन तस्य अर्थस्य अनुपस्थितेः. अतः षट्पञ्चाशच्च नाडिका यदा व्यतियन्ति ततः प्रातरित्येव अर्थः साधीयान्. एवम् अग्रेऽपि. उचितं च एतत्. षट्पञ्चाशदुत्तरं शिष्टनाडीनां चतुःसङ्ख्याकत्वात् प्रातरादिनाम्नां तथात्वाच्च.) न च इदम् अप्रयोजकम्. प्रत्यक्षारुणोदयस्य सार्द्धद्विघटिकावशेषे त्रिघटिकावशेषे वा उपलम्भात् चतुरवशेषे यो अरुणोदयः सः पारिभाषिकएव इति तत्र तादृशस्यैव औचित्यात्. मुख्येनैव सर्वत्र निर्वाहे परिभाषावैयर्थ्यापत्तेः इति.

(पारिभाषिकसूर्योदयः) यत्तु यामयामार्द्धादिगणनायाः सर्वत्र प्रत्यक्षसूर्योदयम् आरभ्यैव दृष्टत्वाद् ''**निशि प्रान्ते तु यामार्द्धे देववादित्रवादने, सारस्वतानध्ययने अरुणोदय उच्यते**'' इति हेमाद्रिधृतस्मृतौ पारिभाषिक-सूर्योदयावधिक-यामार्धप्रतीत्यभावाच्च पारिभाषिकसूर्योदयावधिकारुणोदयग्रहणम् अयुक्तम्, इति उक्तम्. तद् न, नियमाभावात्. ''**सूर्यग्रहे तु नाश्नीयात् पूर्वयामचतुष्टयम्**'' इत्यादौ व्यभिचारात्. अतो यत्किञ्चित् अवध्यपेक्षत्वेन उक्तस्मृतावपि तत्प्रतीतेः अनिवार्यत्वाद् न दोषः.

न च ''चतस्रो घटिकाः प्रातररुणोदयनिश्चयः'' इति ब्रह्मवैवर्तीये ''नाडिकाः षट् च पञ्चाशत्प्रातः'' इति वाक्योक्त-प्रातरात्मक-घटिकाचतुष्टयस्य अरुणोदयत्व-कथनात् पारिभाषिकसूर्योदयावधिकारुणोदयग्रहणे मूलद्वयकल्पनागौरवापत्तिः. सा च सम्भवति एकमूलत्वे अन्याय्या. अतएव चतुर्दण्डमुहूर्त्तद्वयादिवाक्येषु यामार्द्धोप-लक्षकत्वमेव तद्भिया निबन्धकृद्भिः अङ्गीकृतम् इति न पूर्वोक्तं साधीयः इति वाच्यम्.

''**नाडिकाः षट् च**'' इति वाक्ये एव ''**एको अधिको अरुण**'' इति अग्रे दर्शनात् त्रिघटिकाविशेषेऽपि अरुणोदयप्राप्तेः एकमूलत्वस्य कथमपि असम्भवात्. सिद्धे चतुर्दण्डादिपदानाम् उपलक्षकत्वे यामार्द्धपदस्य विवक्षितार्थत्वसिद्धिः तत्सिद्धौ च तदेकमूलकल्पनया चतुर्दण्डादिवाक्यानां तात्पर्यानुपपत्तौ चतुर्दण्डादिपदानाम् उपलक्षकत्वसिद्धिः इति चक्रकापत्तेश्च. अतः प्रामाणिकत्वेन मूलद्वयकल्पनागौरवस्य अदुष्टत्वात्, ''**स्पर्शे तु घटिकाः पञ्च**'' इत्यादीनाम् अरुणोदयवेधनिन्दामात्र-प्रतिपादनपरत्वकथनमपि अनालम्बनमेव.

यत्तु माधवाचार्यैः

''**अर्द्धरात्रेऽपि केषाञ्चिद् दशम्या वेध इष्यते,**

अरुणोदयवेलायां नावकाशो विचारणे,
कपालवेध इत्याहुः आचार्या ये हरिप्रियाः,
न तन्मम मतं यस्मात् त्रियामारात्रिरिष्यते''

इत्यादेः कैमुतिकन्यायेन अरुणोदयवेधनिन्दार्थत्वम् उक्तम्. तद्रीत्यापि विचारे अरुणोदयवेधस्य सर्वथा त्याज्यत्वमेव आयाति इति तद्वेलानिर्णयस्य आवश्यकत्वात् सूक्ष्मेक्षकाणाम् अस्मदुपदर्शितसरणिः आदरणीयैव. उक्तशौनकवाक्ये रात्रेः त्रियामात्वस्य हेतूकरणेन तस्य च रात्रिपूर्वोत्तरार्द्धयामयोः सन्ध्यायां निवेशेन सिद्ध्या सूक्ष्मेक्षिका-वश्यकत्वस्य सूचितत्वात्. न च अनेन वाक्येन हरिप्रियाचार्याणां स्थूलदर्शित्वं शङ्क्यं, उत्तरायणस्य देवार्द्धरात्रत्वेन तत्र सूर्यसंक्रमे दैवादिशुभकार्यस्य दर्शनात् सूर्यस्य उदयकरकपाले प्राप्तौ उदयोद्योगात् तस्य विद्धत्वे दैत्यबलसम्भवेन सूक्ष्मेक्षिकया तैः तत्यागस्य आदरणात्. साम्प्रतं तु युगस्य आसुरत्वेन विष्णुधर्मोत्तरे कलौ वेधस्यैव त्याज्यत्वबोधनात् शौनकेनापि इदानीं तमेव आदाय तथाबोधनात् उभयत्रापि अदोषात्.

यत्तु. ''**अर्द्धरात्रे तु**'' इति वाक्यस्य

''**दशम्याः सङ्गदोषेण अर्द्धरात्रात्परेण तु,**
वर्जयेत् चतुरो यामान् संकल्पार्चनयोस्तदा,
विद्धोपवासेऽनश्नंस्तु दिनं त्यक्त्वा समाहितः,
रात्रौ संपूजयेद्विष्णुं संकल्पं च तदाऽऽचरेत्''

इति नारदीयवाक्यात् पूर्वचतुर्यामे व्रतसंकल्पपूजावर्जनार्थत्वम् उक्तम्. तदपि न रोचिष्णु, उक्तवाक्ये सङ्गदोषपदात्, सङ्गदोषस्य च पञ्चाशता भवनात् अर्द्धरात्रात् परेण इत्यनेन तस्य अत्र विवरणाच्च. ''**प्रारम्भोवरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः**'' इति वाक्यदर्शनात् संकल्पाकरणे तदानीं व्रतानारंभाद् यथेष्टचेष्टाप्रसक्तेश्च इति.

यत्तु पारिभाषिकसूर्योदयग्रहणे निशाप्रान्तयामार्द्धस्य तदानीं समाप्तौ तस्य कालस्य कुत्रापि अनिवेशः इति उक्तम्. तदपि न, प्रदोषस्य रजनीमुखत्ववत् प्रत्यूषस्य अहर्मुखत्वेन तत्र सुखेन अन्तर्भावात्. त्रियामा रात्रिः इति पक्षे प्रान्तार्द्धयामस्येव अस्यापि प्रत्यक्षरात्रावपि निवेशस्य शक्यवचनत्वाच्च. किञ्च प्रत्यक्षसूर्योदयग्रहणेऽपि मदनरत्न

''**आदित्योदयवेलायाः प्राङ्मुहूर्त्तद्वयान्विता,**
एकादशी तु सम्पूर्णा विद्धाऽन्या परिकीर्तिता''

इति मुहूर्त्तद्वयस्य अरुणोदयत्वसूचनात्. ''**लघूनि वै समान्माता दश पञ्च च नाडिकाः, ते द्वे मुहूर्त्त**'' इति तृतीयस्कन्धे नाडिकाद्वयस्य मुहूर्त्तत्वकथनात् चतुर्द्दण्डा-

त्मकएव अरुणोदयो युक्तो न तु यामार्द्धरूपः, तस्य अनियतत्वेन सर्वदा मुहूर्त्तद्वयवाक्य-विरुद्धत्वात्. यामार्द्धवाक्यस्य तदुक्त-कर्माङ्गभूतारुणोदयमात्र-प्रतिपादनेनापि सावकाशत्वात् चतुर्दण्डादिवाक्यस्य एकादशीप्रकरणस्थत्वाच्च तदादरस्यैव औचित्यात्. पञ्चदशैव दिनादिमुहूर्ता इति पक्षेपि अरुणोदयावधावेव विवादो नतु माने. अवधिस्तु वाक्यप्राप्तत्वाद् न प्रतिक्षेपार्हः इति अतोऽपि न दोषः.

किञ्च, ''**अरुणोदयवेलायां दर्शागन्धो भवेत् यदि**'' इत्यादौ 'वेला'पदाद् वेलायाश्च ततः पूर्वकारएव व्यवहारदर्शनात् गन्धस्य च सन्निधौ व्यवहारदर्शनात् प्रत्यक्षसूर्योदयम् आदायापि चतुर्द्दण्डाद्यन्यतमारुणोदयग्रहणे अरुणोदयवेलादशमी-गन्धसम्बन्धेनापि घटिकामात्रं त्याज्यमेव इत्यपि ज्ञेयम्. तस्माद् अस्मदुक्तएव पक्षो न अन्यः इति निश्चयः.

एवं च विष्णुधर्मोत्तरीयवाक्यमपि ''**शल्ये पञ्च तथा वेधे**'' इति वेधेऽपि पञ्चघटिका अतिदिशत् 'षट्पञ्चाशता वेधः' इति च वदद् वेधस्य द्वैविध्यं व्यनक्ति इति बोध्यम्. तेन यथाधिकारं यथाशिष्टाचारं च व्यवस्थितिः भवति.

किञ्च, ''**कामविध्वंसिनी शल्या विद्धा मोक्षविघातिनी**'' इति विष्णुधर्मवाक्यादपि पाक्षिकविद्धात्यागः उचितएव इति निगूढाशयः. किञ्च एवं ''**विष्णुधर्मेषु सर्वेषु ग्राह्या आर्योद्भवा तिथिः**'' इत्यपि संगृहीतं भवति. ''**विवादेषु च सर्वेषु द्वादश्यां समुपोषणम्**'' ''**सन्दिग्धैकादशी यत्र द्वादश्यां समुपोषणम्**'' इत्यादीनामपि संग्रहो भवति इति ज्ञेयम्. विंशतिदोषशोधनमपि युगान्तरीयत्वेनैव फलति इति न अत्र विशेषतो निरूप्यते.

अन्ये एकादशीवेधाः.

कदाचित्तु वेधाभावेपि एकादशीत्यागः तथासति यदा उपवासः तदैव उत्थापनं कार्यम्, द्वादश्यामपि विधानात्. त्यागनिमित्तानि तु प्रोक्तानि. तथा हि. तत्र एकादश्याधिक्ये नारदः

''सम्पूर्णैकादशी यत्र द्वादश्यां वृद्धिगामिनी,
द्वादश्यां लङ्घनं कार्यं त्रयोदश्यां तु पारणम्''

इति. मार्कण्डेयेऽपि

''सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा,
पूर्वाम् उपवसेत् कामी निष्कामस्तूत्तरां वसेत्''

इति. द्वादश्याधिक्ये तु गारुडे

''पूर्णा भवेत् यदा नन्दा भद्रा चैव विवर्द्धते,
तदोपोष्या तु भद्रा स्यात् तिथिवृद्धिः प्रशस्यते''

इति. स्कान्देपि

''एकादशी भवेत् पूर्णा परतो द्वादशी यदा,
तदा ह्येकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत्''

इति. उभयाधिक्ये तु भृगुः आह

''सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा,
तत्रोपोष्या द्वितीया तु परतो द्वादशी यदि'' इति.

(किञ्च एताएव उन्मीलिनीत्यादिसञ्ज्ञाः प्राप्नुवन्तीति प्रसङ्गात् ता अपि विचार्यन्ते[१]. यतः पातिव्रत्यव्रतानां विष्णुपञ्चकव्रतम् आवश्यकम्. तदुक्तं पाद्मोत्तरखण्डे द्वारकामाहात्म्यसमाप्तौ

''गोविन्दं परमानन्दं माधवं मधुसूदनम्,
त्यक्त्वा नैव विजानाति पातिव्रत्यव्रतः स च,
कृष्णजन्माष्टमी रामनवम्येकादशीव्रतम्,
वामनद्वादशी तद्वत् नृहरेस्तु चतुर्दशी,
विष्णुपञ्चकम् इत्येवं व्रतं सर्वाघनाशनम्,
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं विष्णुपञ्चकमेव हि,
न त्याज्यं सर्वथा प्राज्ञैः अनित्यं सर्वथा वपुः''

इति पातिव्रत्यव्रतम् उपक्रम्य सावधारणं तदत्यागकथनात्. यद्यपि अत्र **''नित्यं नैमितिकं काम्यम्''** इति विष्णुपञ्चकविशेषणत्वेन प्रतीयते तथापि त्रिविधैकादशी-व्रतकथासमाप्तौ

''नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधैकादशीव्रतम्,
नित्यं प्रावाहिकं पुण्यं नैमित्यम् अभयाव्रतम्,
काम्यम् अष्टदिनं प्रोक्तं जलादि कथितं हि मे''

इति उपसंहारवाक्याद् एकादशीविशेषणमेव ज्ञेयम्. तत्र अरुणोदये दशमीवेधरहितं 'प्रावाहिक'पदेन उच्यते इति पूर्वग्रन्थाद् अवगम्यते. तत्र एकादशीव्रते अरुणोदयवेधं दुष्टत्वेन उक्त्वा

‘‘शुक्रेण मोहिताः सर्वे दैत्यानां विजयाय च,
अतो विद्धं प्रकुर्वन्ति वासरं विष्णुदैवतम्,
यमविद्धं व्रतं त्याज्यं सर्वथा मोक्षकाङ्क्षिभिः’’

इति कथनात्. तच्च उपवासव्रतम् एकदिनसाध्यमेव. अभयैकादशीव्रतं तु दिनत्रयसाध्यम्. क्वचित्तु ‘उभये’ति पाठः. तच्च पूजाप्रधानकं, दशम्यादिदिनत्रयनियमान् उक्त्वा मार्गशीर्षशुक्लैकादशीम् आरभ्य यावद्वर्षं तत्पूजाविधानं च उक्त्वा **‘‘एवम् एकादशीपूजाव्रतं कुर्वन्ति ये नराः, चतुर्वर्गफलं तेषां प्रददाति हरिः स्वयम्’’** इति उपसंहारात्. उपवासस्तु नित्यो अनुक्तसिद्धोऽपि एतदङ्गत्वेन अनुक्तत्वाद् अङ्गतां न तेन रूपेण प्राप्नोति. अष्टवासरव्रतं तु उपवासपूजाप्रधानकम्. उभयोः तत्र विधानदर्शनात्. तत्स्वरूपं तु तत्रैव उक्तम्.

[कठिनांशटिप्पणी: १.इत आरभ्य ‘अथ प्रकृतमेवानुसरामः’ इत्यन्तो ग्रन्थो रचयितृचरणैर्वर्धितः.]

एकादशीनामभेदाः.

‘‘अथाष्टवासरं वक्ष्ये व्रतं पापप्रणाशनम्,
जया च विजया चैव जयन्ती पापनाशिनी,
उन्मीलनी व्यञ्जुलिनी त्रिस्पृशा पक्षवर्द्धिनी,
पुनर्वसौ ‘जया’ नाम श्रवणे ‘विजया’ मता,
‘जयन्ती’ रोहिणीयुक्ता पुष्ये ‘पापप्रणाशिनी’,
सम्पूर्णैकादशी भूत्वा द्वितीयेऽहनि वर्द्धते,
‘उन्मीलिनी’ समाख्याता पापपङ्कौघनाशिनी,
द्वादश्याम् उपवासश्च द्वादश्यां चैव पारणम्,
‘व्यञ्जुली’ नाम सा प्रोक्ता हत्यायुतविनाशिनी,
आदावेकादशी स्वल्पा ततोपि द्वादशी भवेत्,
त्रयोदशी दिनान्ते च ‘त्रिस्पृशा’ सा हरेः प्रिया,
पूर्णमासी यदा शुक्ले वर्द्धते प्रतिपद्दिने,
कृष्णपक्षे तथा दर्शः कलया वर्द्धते यदि,
‘पक्षवर्द्धिनी’ सा प्रोक्ता सर्वाशुभहरा स्मृता’’ इति.

तत्र जया-जयन्ती-पापनाशिनीषु अविद्धात्वमात्रम् अपेक्षितं, तत्कथासु विद्धात्यागमात्रस्यैव दर्शनात्. विजयायान्तु

‘‘शुक्ले वाऽसितपक्षे वा यदा श्रवणयोगिनी,

विजयैकादशी नाम सर्वाशुभनिवारिणी,
शुद्धाम् एकादशीं त्यक्त्वा श्रवणैकादशीव्रतम्,
कार्यं व्रतोत्तमं धीमन् मासे यत्र भवेद् इदम्''

इति विशेषवाक्याद् अविद्धायाअपि त्यागः. यद्यपि एवं तथापि नित्यव्रतकर्तॄणां प्रथमायां श्रवणयोगेपि द्वितीयैव आवश्यकी, ''निष्कामस्तूत्तरां वसेत्'' इति पूर्वोक्त-मार्कण्डेयवाक्यात्. एवमेव उन्मीलिन्यामपि पञ्चपञ्चाशद्वेधिनां तु निष्कामत्व-विद्धात्वाभ्यां पूर्वात्यागः इति विशेषः.

व्यञ्जुल्यास्तु काम्यत्वात् पूर्वोक्तगारुड-स्कान्दयोः अशक्तपरत्वेनापि व्यवस्थापितुं शक्यत्वात् च अविद्धात्यागो यद्यपि न आयाति, तथापि पाद्मोत्तरखण्डे एकादशीद्वादश्योः माहात्म्ये विधाने च पार्वत्या पृष्टे ''**शृणु देवि प्रवक्ष्यामि**'' इत्यादिभिः ''**एकादश्यां न भुञ्जीत**'' इत्यन्तैः एकादशीव्रतनित्यत्वं प्रतिपाद्य ततः तद्विधानकथनप्रस्तावे

''**तस्माद् एकादशीं शुद्धाम् उपवासं समाचरेत्,**
दशमीमिश्रितां तां तु प्रयत्नेन विवर्जयेत्,
अरुणोदयवेलायां दशमीमिश्रिता भवेत्,
तां त्यक्त्वा द्वादशीं शुद्धाम् उपोषेद् अविचारयन्''

इति विद्धात्याग-शुद्धोपवासौ विधाय अग्रे

''**कलायाम् अनुसम्प्राप्ते सूर्यस्योदयनं प्रति,**
त्रयोदश्यां तया देवि द्वादशी परिविद्यते,
तथापि द्वादशीं शुद्धाम् उपवासो विधीयते,
अरुणोदयवेलायां कृत्यं सर्वं समाचरेत्,
कलायामपि द्वादश्यां पारणं तत्र चोदितम्,
शुद्धाम् एकादशीं वापि त्यजेत् तत्र न संशयः,
कलाप्येकादशी यत्र द्वादशीम् उदिते रवौ,
सर्वाम् एकादशीं त्यक्त्वा तत्रैवोपवसेद् द्विजः,
एवं विधिं विनिश्चित्य समुपोष्यं हरेर्दिनम्''

इति शिवेन 'कलायाम्' इत्यादिभिः 'न संशयः' इत्यन्तैः द्वादश्याधिक्ये 'कलाप्येकादशी' इत्यनेन एकादश्याधिक्ये च द्वादश्यात्मकस्यैव व्रतकालस्वरूपस्य एकादशीत्यागकथनपूर्वकं निर्णीतत्वात् उन्मीलिन्यामिव व्यञ्जुल्यामपि कालत्वाभावादेव त्यागः. न च श्रीमदाचार्यचरणोक्तिविरोधः. तस्याः पञ्चपञ्चाशद्विद्धात्यागमात्रपरत्वात्.

प्रतिज्ञावाक्यस्य प्रसिद्धारुणोदयवेधरहितधर्मसंग्राहकत्वेनैव सार्थक्याच्च. एवं च ''**अविद्धापि च विद्धास्यात् परतो द्वादशी यदि**'' इति हेमाद्रिस्थपाद्मस्यापि संग्रहः.

त्रिस्पृशा तु पूर्वोक्तरूपैव कार्या. न च ''**विद्धाप्यविद्धा विज्ञेया परतो द्वादशी न चेद्**'' इति पूर्वार्द्धात् त्रिस्पृशायां विद्धाग्रहणं शंक्यम्. पाद्मे जाह्नव्या

''**दशम्येकादशी भद्रा दिनैकस्मिन् यदा भवेत्,**
त्रिस्पृशा सा भवेद् देव न वेद्मि वद मे प्रभो''

इति पृष्टे

''**आसुरी त्रिस्पृशा देवि या त्वया परिकीर्तिता,**
वर्जनीया प्रयत्नेन वृषहीनो यथा पतिः''

इति प्राचीमाधवेन तस्या आसुरीत्वकथनात्. विद्धाग्रहणस्य माधवेन स्मार्त्तपरताङ्गीकाराच्च. हेमाद्रिणाऽपि

''**एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी,**
त्रिभिः मिश्रा तिथिः प्रोक्ता सर्वपापहरा शुभा,
तदोपवासः कर्त्तव्यो विष्णुसायुज्यम् आप्नुयात्,
उपवासः कृतः तत्र मोक्षमेव प्रयच्छति''

इति वाक्ये पापक्षयार्थि–मोक्षार्थि–विष्णुभक्तानां तस्याएव ग्राह्यत्व–व्यवस्थापनात्. ''**एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी, उपवासं न कुर्वीत पुत्रपौत्र–समन्वितः**'' इति वाक्यस्य पापक्षयार्थ्यादि–व्यतिरिक्त–गृहस्थपरत्व–व्यवस्थापनेन पूर्वोक्तवाक्य–पूर्वार्द्धस्यापि तत्परत्वावसायात् च इति दिक्.

पक्षवर्द्धिन्यास्तु स्वरूपं पूर्वं सामान्यत उक्तमपि कथोपसंहारे

''**अमा वा यदि वा पूर्णमासी पूर्णा भवेद् यदा,**
भूत्वा तु षष्टिघटिका वर्द्धते प्रतिपद्दिने,
प्रतिपदं समारभ्य यावद् भवति द्वादशी,
तावद् वृद्धिं समायाति सा भवेत् पक्षवर्द्धिनी''

इति विशेष्योक्तम्. तेन न पूर्वपक्षान्त्यवृद्धिमात्रेण सा इति फलति. हरिवल्लभसुधोदये तु

''**पौर्णमासी यदा शुक्ले कृष्णे दर्शश्च वर्द्धते,**
भूत्वा तु षष्टिघटिका दृश्यते प्रतिपद्दिने,
षडहं शोधयेत् प्राज्ञः समुपोष्य हरेर्दिनम्,

कुलकोटिं समुद्धृत्य नरकाद् व्रजते दिवि,
पर्वाच्युतनगद्वृद्धावीशदुर्गान्तकक्षये,
सम्पूर्णैकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेद्''

इति पाद्मवचनम् एतद्व्रतकथायाम् उक्तम्. तत्र पर्व प्रसिद्धमेव. अच्युतो द्वादशी, जगद् एकादशी, विश्वेदेवदेवताकत्वात्. ईशदुर्गान्तकाः अष्टमीनवमीदशम्यः. पाद्मोत्तरखण्डे भगवदर्जुनसंवादे तु भगवता स्वरूपान्तराण्यपि उक्तानि

''पुरा चैवावसाने च तिथिनां समता भवेत्,
चतस्रस्तिथयो वृद्धाः प्रत्येकं दशमीमुखाः,
घटिकार्द्धं तु दशमी हरेः स्यात् सार्द्धनाडिका,
सार्द्धत्रयं भवेत् चान्या कामस्तदधिका भवेत्,
एवं वृद्धिसमायुक्ता प्रोच्यते पक्षवर्द्धिनी।।१।।
प्राक् समा दशमी यावत् शेषा वृद्धिसमागताः,
परिवृद्धा हि यास्तासां सा ग्राह्या पक्षवर्द्धिनी।।२।।
यस्मिन् पक्षे हि तिथयो वृद्धिं यातास्तु षोडश,
तासां षोडशमी ग्राह्या सर्वसिद्धिप्रदायिनी।।३।।
चन्द्रवृद्धौ तु यो वृद्धः पक्षः पापप्रणाशनः,
तस्मिन् वृद्धिम् उपेता या सा प्रोक्ता पक्षवर्द्धिनी।।४।।

इति.

एवं षोढा भवति.

१. अमा वा पूर्णिमा वा वृद्धा प्रतिपदं स्पृशति ततो द्वादश्यन्तं वृद्धौ प्रथमा.
२. अमा पूर्णिमा वा वृद्धा प्रतिपदं स्पृशति ततो अष्टम्यादित्रयक्षये एकादशीद्वादश्योः वृद्धिः तदा द्वितीया.
३. प्रतिपदम् आरभ्य नवम्यन्ताः समाः दशम्या अर्द्धघटिवृद्धिः एकादश्याः सार्द्धघटिका, द्वादश्याः सार्धत्रिघटिका, त्रयोदश्याः तदधिका तदा तृतीया.
४. प्रतिपदम् आरभ्य दशम्यन्ताः समाः एकादशीम् आरभ्य वृद्धाः तदा तुरीया.
५. प्रतिपदम् आरभ्य षोडशानां वृद्धौ या दशमी वेधरहिता सा पञ्चमी.
६. द्वितीयाम् आरभ्य वृद्धे पक्षे या वर्द्धते सा षष्ठी.

एते च पक्षा अस्मिन् कल्पे न सम्भवन्ति इति ज्योतिर्विद आहुः, तत्र एषा उपपत्तिः. सूर्याचन्द्रमसोः द्वादशद्वादशांशान्तरेण तिथिः एकैकोत्पद्यते. तयोः

स्पष्टगत्यन्तरस्य अमान्तात् अमान्तात्मकचान्द्रे भगणैकभोगसत्वात्. तिथेः वृद्धिह्रासौ तु पुष्पवतोः गत्यन्तरभेदेन. तथा हि. एकस्मिन् सावने यदा द्वादशांशकलाप्रमाणं खाश्विशैलात्मकं ७२० गत्यन्तरं तदा तिथिसाम्यम्. यदा खाश्विशैलकलातो अन्तरं न्यूनम्, तदा न साम्यम्. सावनैककालेन चान्द्रैकत्त्वे उत्पन्नत्वाभावात्. किन्तु. किञ्चिदधिक-सावनघटीयुक्त-सावनैकदिनेन तद्भोगः. एवं तिथिवृद्धिः.

यदा तु खाश्विशैलकलातो अन्तरम् अधिकं तदा तिथिह्रास इति बोध्यम्. अत्र अनुपाताः. यदि एतावतीभिः गत्यन्तरकलाभिः सावनाः षष्टिघट्यः तदा खाश्विशैलकलाभिः का इति. यथा सूर्यगतिः ५९, ८ चन्द्रगतिः ७९०, ३५ एतयो गत्यन्तरम् ७३१, २७ अनयोः एतावत्यां सावनैकदिनैकदिने गत्यां चान्द्रदिनम् एकं काश्चिद् घट्यश्च जाताः. गत्यन्तरविकलाभाजकः षष्टिघटिकाया द्वादशांश-विकलागुणकः न्यासो यथा ४३८८७ प्रमाणम्. ६० फलम्. ४३२०० इच्छागुणितफलप्रमाणेन भक्तं लब्धम् इच्छायाः फलम्. एवं प्रत्यहं गत्योः विसदृशत्वेन गत्यन्तरस्य विसदृशत्वाद् न साम्यम्. गतिफलं तु उच्चतुल्ये ग्रहे परमम्. तत्र अपचीयमानम् ऋणात्मकं प्रथमपदे. उपचीयमानं धनात्मकं च द्वितीयपदे. तृतीयपदे तु अपचीयमानं धनात्मकम्. चतुर्थपदे तु उपचीयमानम् ऋणात्मकम्. एवं कर्कादिकेन्द्रे धनं मृगादिकेन्द्रऋणम् इति सिद्धम्. स्फुटम् इदं मध्यकक्षायां प्रतिमण्डलतो रेखान्तरं न्यूनम् अधिकं च भंग्यां दृश्यते. एवं चन्द्रस्य इदं सर्वमपि मासमध्ये सम्भवति. एवं मासे-मासे तिथेः वृद्धित्वं पुनः ह्रासत्वं च सम्भवति. एवं प्रायो दशैकादशदिनपर्यन्तं तिथेः वृद्धित्वं प्राप्य किञ्चिद्घटिकामात्रेण दिनद्वयं साम्यं भूत्वा ह्रासप्राप्तिः. ह्रासताऽपि प्रायः पञ्चदशदिनपर्यन्तम्. पुनः तथैव साम्यं भूत्वा वृद्धिः. यद्यपि अत्र सूर्यमन्दोच्चस्य कालान्तरे भेदो भविष्यति तथापि सूर्यस्य गतिस्वल्पत्वेन न किञ्चिद् बाधकम्. सर्वम् इदं स्फुटतरं सिद्धान्तज्ञज्योतिर्विदाम्. एवं कदाचिदपि नवदशतिथीनां साम्यं तिथिचतुष्टयस्यैव वृद्धिः, पुनः पक्षावसाने साम्यम्. तथा च. षोडशतिथीनां वृद्धिः इत्यादिकं न उत्पद्यते. पुराणप्रोक्तत्वात् कल्पान्तरे तु अस्तु. अस्मिन् कल्पे तु न. अलं भूयसा इति.

मतान्तराणि.

स्मृतिकौस्तुभ-कालतत्वविवेककारादयस्तु ब्रह्मवैवर्तवचनानि उपन्यस्य तत्र द्वादशीम् उपक्रम्य जयादिभेदानां कथनात् द्वादशीविशेषत्वम् एतासाम् इच्छन्ति. नृसिंह-परिचर्याकारस्तु द्वादशीव्रतत्वम् अङ्गीकुर्वन्

''न करिष्यन्ति ये लोके द्वादश्योऽष्टौ ममाज्ञया,

तेषां यमपुरे वासो यावदाभूतसम्प्लवम्''

इति हिरण्याक्षवधाय प्रार्थितस्य भगवतो मार्कण्डेयं प्रति उक्तेन अष्टमहा-द्वादशीसाधारणेन पाद्मवाक्येन नित्यत्वमपि इच्छति.

वयन्तु पूर्वोक्तपाद्मसन्दर्भे त्रिविधैकादशीविशिष्टविष्णुपञ्चकस्य सावधारणं सर्वथा अत्याज्यत्वकथनाद् अष्टवासरव्रतस्य काम्यत्वकथनाच्च जयादिषु उक्तस्य फलस्य कामनायां सत्यां पातिव्रत्यव्रतिना तादृशफलार्थम् अष्टवासरव्रतं त्यक्त्वा अन्यस्य करणे त्यागनिषेधोल्लङ्घनात् समुच्चयेन करणे अवधारणोल्लङ्घनाच्च प्रत्यवाय:. पातिव्रत्यव्रतभङ्गश्च भवति, न तु कामनाया अभावेऽपि त्यागः इति सिध्यति. अन्यथा काम्यतोक्तिवैयर्थ्यापत्ते:. तेन तादृक्कामनासत्त्वएव नित्यत्वं नतु प्रावाहिकव्रतवद् इति वदाम:.

किञ्च ज्ञानाज्ञानादिना पापसम्भवे विद्धैकादश्युपोषणादौ च प्रायश्चित्तम् आवश्यकम्. तत्र व्यञ्जुल्यां 'हत्यायुतविनाशिनी' इत्यादि कथनात् पञ्चसूनाऽपनोदक-वैश्वदेववदपि कर्त्तव्यता.

''हत्या नश्यति काश्यां तु गयायां पैतृकम् ऋणम्,

दशमीवेधजं पापं न काश्यां न गयापुरे,

दशमीवेधजं पापं व्यपोहयति व्यञ्जुली,

तत्र युक्तो महीपाल पुनर्न कुरुते यदि,

दशमीवेधजं विष्णोर्वासरं हरिवल्लभम्,

दिनं तदा व्युञ्जुली च पूर्वपापं व्यपोहति''

इत्यादिवाक्यैश्च तथा इति प्रासङ्गिकम् एतद् उक्तम्.

अथ प्रकृतमेव अनुसराम:.

प्रबोधिन्यां जागरणम् आवश्यकम्.

''प्रबोधिनीं नर: कृत्वा जागरेण समन्विताम्,

न मातुर्जठरे याति अपि पापान्वितो नर:''

इति हेमाद्रौ नारदीयात्. **''इदं च मलमासेपि कार्यम्''** इति उक्तं दिनकरोद्द्योते. मलमासो अत्रांहस्पतिरेव प्रायो ज्ञेय:. जागरणदिनस्थितं शृङ्गारादिकं द्वितीयदिवसे अवश्यं

स्थापनीयम्. तदुक्तं हरिवल्लभसुधोदये नृसिंहपरिचर्यायाम्

''श्रीविष्णोर्जागरे पूजां यो नरो द्वादशीदिने,
तामेवोत्तारयेत् तार्क्ष्य स याति नरकं ध्रुवम्,
एकादश्यां कृतां पूजां यो मूढः काममोहितः,
द्वादश्यां तु वृथा कुर्यात् स पापी नरकं व्रजेद्'' इति.

अथ पारणाविचारः.

हेमाद्रौ भविष्ये,

''आभाकासितपक्षस्य मैत्रश्रावणरेवती,
संगमे नैव भोक्तव्यं द्वादशद्वादशीर्हरेद्'' इति.

तत्रैव विष्णुधर्मे

''मैत्राद्यपादे स्वपितीह विष्णुः पौष्णान्त्यपादे प्रतिबोधमेति,
श्रुतेश्च मध्ये परिवृत्तिमेति सुप्तिप्रबोधपरिवर्त्तनमेव वर्ज्यम्'' इति.

एवं च भविष्यवाक्यस्य विष्णुधर्मवाक्येन उपसंहाराद् न सर्वनक्षत्रनिषेधः किन्तु तत्तदाद्यपादादिनिषेधः. 'मध्य'शब्दश्च द्वितीयतृतीयपादपरो मध्यमविंशतिदण्डपरो वा'' इति दिनकरोद्द्योतः. तत्रापि इदं ध्येयं, यदि विद्धाधिकाद्वादशी प्रथमं क्षीयते, ऋक्षान्त्यपादश्च अनुवर्त्तते, तदा द्वादशीयुतत्रयोदश्यां पारणनिषेधस्य जागरूकत्वाद् द्वादशीमध्ये अद्भिः पारणीयम्. **''आपो वा अशितम् अनशितं च''** इति श्रुतेः. यदापि युगपद् उभयोः क्षयः तदापि इयमेव व्यवस्था. त्रयोदश्यां पारणनिषेधश्च कौर्मे मात्स्ये च

''एकादशीम् उपोष्यैव द्वादश्यां पारणं स्मृतम्,
त्रयोदश्यां न तत्कुर्यात् द्वादशद्वादशीक्षयात्''

इति. त्रयोदश्याम् इति द्वादशीविद्धत्रयोदश्याम्. अन्यथा

''त्रयोदश्यां तु शुद्धायां पारणे पृथिवीफलम्,
शतयज्ञाधिकं वा यो नरः प्राप्नोत्यसंशयम्''

इति नारदीयस्य,

''एकादशी कलां प्राप्ता येन द्वादश्युपोषिता,
पुण्यं क्रतुशतस्योक्तं त्रयोदश्यां तु पारणम्''

इति विष्णुरहस्यस्य,

''द्वादश्यैकादशी यत्र तत्र सन्निहितो हरिः,
तत्र क्रतुशतं पुण्यं द्वादश्यां पारणे कृते,
एकादशीव्रते यत्र परतो द्वादशी मता,

तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणे,
दशम्यैकादशीमिश्रा नोपोष्या नरकप्रदा''

इति आग्नेयस्यापि विरोधापाताद् इति. इति कार्त्तिकोत्सवाः.

अथ मार्गशीर्षमासोत्सवाः.

प्रावरणोत्सवः

मार्गशीर्षे तु

''मार्गशीर्षे शुभे पक्षे षष्ठ्यां प्रावरणोत्सवम्,
कृत्वा दृष्ट्वा नरो भक्त्या वैष्णवं लोकमाप्नुयाद्''

इत्यादिना स्कान्दे प्रावरणोत्सवो विहितः. स च शीतबाहुल्याद् देशान्तरे प्रबोधिन्यामेव विधीयते इति न कोपि विचारः.

श्रीमत्प्रभूणाम् उत्सवः

पौषकृष्णनवम्यां श्रीमत्प्रभूणाम् उत्सवः. स च औदयिक्यामेव कार्यः. विद्धाक्षये तु विद्धायामेव. एतत्करणावश्यकत्वं तु श्रीमदाचार्योत्सवे विवेचनीयम्.

अथ माघोत्सवाः.

तत्र तावद् मकरसंक्रमे पर्वात्मकः उत्सवः कार्यः. तदुक्तं स्कान्दे पुरुषोत्तममाहात्म्ये

''मृगराशिं संक्रमति यदा भास्वान् द्विजोत्तमाः,
उत्तराशां जिगमिषुः तदा स्याद् उत्तरायणम्,
तस्य संक्रमणाद् ऊर्ध्वं यावत् स्याद् विंशतिः कलाः,
महापुण्यतमः कालः पितृदेवद्विजप्रियः,
तत्र स्नात्वा विधानेन तीर्थराजजले नरः,
नारायणं समभ्यर्च्य कल्पवृक्षं प्रणम्य च''

इत्याद्युक्त्वा **''दृष्ट्वोत्तरायणे देवं देहबन्धाद् विमुच्यते''** इति. अत्र च पुण्यकालएव पूजाकालः इति तेनैव निर्णयः. एतेनैव मेषसङ्क्रमोऽपि व्याख्यातो[1] ज्ञेयः[2].

(१.अत्रापि मेषसंक्रमणे यः पुण्यकालः स एव पूजाभोगसमर्पणकालः. स तु प्राक् पश्चाच्च दश-दश

नाड्य:. तदाह वशिष्ठ:. वर्तमाने तुलामेषे नाड्यस्तु उभयतो दशेति. तत्रापि या:-या: संनिहिता नाड्यस्तास्ता: पुण्यतमा मता इति संक्रमणसन्निहितास्तास्ता ग्राह्या इति निर्णय इति दिक्.
२.''वर्त्तमाने तुलामेषे नाड्यस्तूभयतो दश'', इति स कालो एव ग्राह्य:.)

वसन्तोत्सव:

माघशुक्लपञ्चम्यां वसन्तोत्सव:. तदुक्तं निर्णयामृते पुराणसमुच्चये,

''माघमासे नृपश्रेष्ठ शुक्लायां पञ्चमीतिथौ,
रति-कामौ तु संपूज्य कर्त्तव्य: सुमहोत्सव:,
दानानि च प्रदेयानि तेन तुष्यति माधव:''

इति. अत्र उत्सवादिना भगवत्तोषोक्तेः भगवदीयै: साक्षान्मन्मथमन्मथरूप: सलक्ष्मीको भगवानेव पूज्य:[१]. यद्यपि अत्र पूजोपकरणं न उक्तं, तथापि शिष्टा: दोलोत्सवस्थमेव गृह्णते, तच्च अग्रे विवेच्यम्. पूजाकालस्तु प्रातिस्विकवाक्ये अनुक्तत्वात् सामान्यवाक्योक्तएव. स च

''त्रेधा विभक्तदिवसे प्रात:काले सुरार्चनम्,
मध्याह्ने तीर्थकार्यं च सायं रक्षाकरी क्रिया''

इति दिनकरोद्योते हेमाद्रिस्थमहापञ्चरात्रोक्तेः मुहूर्त्तपञ्चकात्मक: पूर्वाह्णएव ग्राह्य:. नतु ''**पूजाव्रतेषु सर्वेषु मध्याह्नव्यापिनी तिथि:**'' इति बोधायनोक्तो मध्याह्न:. तत्र पूज्यानुल्लेखेन सन्दिग्धत्वाद्, अतिथ्यादिपूजादौ तस्य सावकाशत्वाच्च. तेन पूर्वोक्तपूर्वाह्णव्यापिनी तिथिः ग्राह्या. दिनद्वये तदेकदेशव्याप्तौ परैव. ''**देवकार्ये तिथिः ग्राह्या यस्याम् अभ्युदितो रवि:**'' इति, ''शुक्लपक्षे तिथिः ग्राह्या यस्याम् अभ्युदितो रवि:'' इति च वृद्धयाज्ञवल्क्य-मार्कण्डेययोः वचनात्. ''युग्माग्नियुगभूतानाम्'' इति निगमस्य युग्मवाक्यस्य

''प्रतिपत्पञ्चमी भूता सावित्रीवटपूर्णिमा,
नवमी दशमी चैव नोपोष्या परसंयुता''

इति ब्रह्मवैवर्तेन पूर्वसंयुतायाः उपवासविषयत्वावगमात्. यत्तु

''चतुर्थीसंयुता कार्या पञ्चमी परया न तु,
दैवे कर्मणि पित्ये च शुक्ले चैव तथा सिते''

इति वाक्यम् तदपि निर्णयसिन्धौ उपवासएव उपसंहृतम् इति पूर्वोक्तैव व्यवस्था. क्षये तु पूर्वैव, गत्यन्तराभावात्. पूर्णवृद्धौ तु पूर्वैव (''**यथा मलिम्लुच; पूर्वो दैवो मासः तथा उत्तर:. त्याज्या तिथिः तथा पूर्वा वृद्धौ ग्राह्या तथोत्तरा**'' इति वाक्यात्[२]).

''षष्टिदण्डात्मिकायास्तु तिथेर्निष्क्रमणं परे.

अकर्मण्यं तिथिमलं विद्यादेकादशीं विना''

इति ज्योतिर्निबन्धवाक्यात्. यदि च निर्णयसिन्धूक्तम् अनुपपन्नमिति 'कर्मणि' इति पदप्रयोगाद् भाति. तदा तु सुखेन पूर्वविद्धैव यथासम्भवं सदा [पा.भे.] कार्या.

इतः आरभ्य प्रत्यहं फाल्गुनोत्सवं कुर्वन्ति शिष्टाः.

वैधं तु

''फल्गूत्सवं[३] प्रकुर्वीत पञ्चाहानि त्यहानि वा,
फाल्गुन्याः पूर्वतो विप्राः''

इति स्कान्दे पुरुषोत्तममाहात्म्ये वचनात्. पञ्चाहं त्यहं वा बोध्यम्, तेन अशक्तौ तावत्तु कार्यमेव इति दिक्. इति माघोत्सवाः.

[(१.(दृष्टान्ते) वाराहे चातुर्मास्ये. ''तत्र कुर्वीत पञ्चम्यां नागानां पूजनं नरः. मत्पूजानन्तरं शेषं वासुकितक्षकादिकान्. पूजयेच्छर्कराक्षीरघृतपायससाधकैः. साक्षात् सङ्कर्षणात्माहं तत्पूजां स्वयमाददे'' इति तत्तत्पूजादिनेपि भगवत्पूजानन्तरं तत्पूजाबोधकन्यायाच्च.

२.असंगतं वाक्यमिदम्.

३.कार्तिकमाहात्म्ये अष्टाविंशे स्वसारूप्यादिकम् उक्त्वा उच्यते. ''तस्माद् देवि सदा कार्यं चातुर्मास्ये विशेषतः, इदं माहात्म्यमालोक्य यत्पूजां तनुयान्नरः'' इति पूजाविस्तारकथनात् तथा कुर्वन्तीत्यर्थः. अत एव ''यद् यद् इष्टतमं लोके'' इति भागवत इति. अयमेव न्यायः श्रावणमासे दोलोत्सवे ज्ञेयः.]

पा.भे. : ''सदा कार्या'' इत्यनन्तरम् ''अति वृद्धावपि पूर्ववद् इति'' इति ख-ग पुस्तके अधिकः उपलभ्यते.

अथ फाल्गुनोत्सवाः.

अथ फाल्गुनकृष्णसप्तम्यां श्रीमद्गोवर्द्धनोद्धरणागमनोत्सवः. स च भक्तिमार्गीयएव इति औदयिक्यामेव कार्यः, शिष्टाचारात्. क्षये तु तत्रैव, गत्यन्तर-विरहात्. वृद्धौ तु पूर्वैव, औचित्याद् इति.

अत्र फाल्गुनपूर्णिमायां पर्वात्मको होलिकोत्सवः.[१]

तत्र होलिकाप्रदीपनं भद्रां विहाय रात्रौ पूर्णमासीमध्ये कार्यम्

''तपस्ये पौर्णमास्यां तु रजन्यां होलिकोत्सवः''

इति भविष्यवाक्यात्.

''दिनार्द्धात् परतोऽपि स्यात् फाल्गुनीपूर्णिमा यदि,
रात्रौ भद्रावसाने तु होलिकां तत्र दीपयेत्''

इति भविष्योत्तराच्च.

''राकायाम् अद्वयात् ऊर्ध्वं चतुर्दश्यां यदा भवेत्,
होलां भद्रावसाने तु निशीथान्तेपि दीपयेत्''

इति पुराणसमुच्चयाच्च एतद्व्यतिरिक्तकाले होलादीपने दोषश्रवणाच्च.

तथा हि

''प्रतिपद्भूतभद्रासु याऽर्चिता होलिका दिवा,
संवत्सरं च तद्राष्ट्रं पुरं दहति सा द्रुतम्''

इति नारदवाक्यात्.

''भद्रायां द्वे न कर्त्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा,
श्रावणी नृपतिं हन्ति ग्रामं दहति फाल्गुनी'' इति.

''भद्रायां दीपिता होलि राष्ट्रभङ्गं करोति वै,
नगरस्य च नैवेष्टा तस्मात् तां परिवर्जयेत्''

इति पुराणसमुच्चयवाक्याच्च.

''नन्दायां नरकं घोरं भद्रायां देशनाशनम्,
दुर्भिक्षं च चतुर्दश्यां करोत्येव हुताशिनी''

इति ज्योतिर्निबन्धे विद्याविनोदाच्च.

''न कर्तव्यो दिवा विष्ट्यां रिक्तायां प्रतिपत्स्वपि''

इति भविष्याच्च.

''न दिवा पूजयेद् ढुण्ढां पूजिता दुःखदा भवेत्''

इति दिवोदासीयाच्च.

ननु नारदवाक्ये, **''प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या पूर्णिमा फाल्गुनी सदा''** इति ग्रन्थान्तरे च. **''सायाह्ने होलिकां कुर्यात् पूर्वाह्णे क्रीडनं गवाम्''** इत्यादिवाक्येषु प्रदोषग्रहणात्.

''सार्द्धयामत्रयं वा स्याद् द्वितीयदिवसे यदा,
प्रतिपद्वर्द्धमाना तु तदा सा होलिका स्मृता''

इति भविष्यवचनादपि प्रदोषकालस्य अर्थादुपलब्धेश्च इति पूर्वेद्युः भद्रारहित–प्रदोषालाभे परेद्युः प्रदोषे कार्यम् इति चेद् न, एतद्वाक्यानां भिन्नविषयत्वात्. तथा हि,

नारदवाक्ये 'प्रदोषव्यापिनीम्' इति उक्त्या हि उदयव्यापिन्या अप्राशस्त्यम् उच्यते.

''श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशिनी,
पूर्वविद्धैव कर्त्तव्या शिवरात्रिबलेर्दिनम्'' इत्यादेः.

''चतुर्दश्या च पूर्णिमा तिथ्योर्युग्मं महाफलम्,
एतद्व्यस्तं महादोषं हन्ति पुण्यं पुराकृतम्''

इति युग्मवाक्यस्य च अनङ्गीकारे महादोषश्रवणाच्च. सम्पूर्णरात्रौ भद्रारहित–पूर्णालाभे प्रदोषैकमुख्यकालज्ञापने एतद्वाक्यपर्यवसानाच्च. **''भद्रायां विहितं कार्यं होलिकायाः सपूजनम्''** इति. यच्च,

''मध्यरात्रम् अतिक्रम्य विष्टेः पुच्छं यदा भवेत्,
प्रदोषे ज्वालयेद् वह्निं सुखसौभाग्यदायकम्,
प्रदोषाद् मध्यरात्रान्तं होलिकापूजनं शुभम्''

इति च कैश्चिद् अलेखि, तद् अनाकरम् इति मयूखकारोक्तेश्च. कैश्चित् 'प्रदोष'शब्दस्य रजनीपरत्वेन व्याख्यातत्वाच्च. 'सार्द्धयाम' इति वाक्यस्य च अयं विषयः. तथा हि, फाल्गुनसितषष्ठ्यां प्रायो मीनार्के जाते समानत्वेन त्रिंशद्घटिकामित–दिवसे वर्तमाने चतुर्दश्या एकोनषष्टिघटिकात्मके सर्वभोगकाले. पूर्णायाः पञ्चपलोनषष्टिघटिकात्मके प्रतिपद एकषष्टिघटिकात्मके. सूर्योदयात् चतुर्दश्याः त्रिंशद्घटिकात्मके पूर्णायां च पञ्चपलोनत्रिंशद्घटिकात्मके भोग्यकाले हि इति. अन्यथा रात्रौ भद्रारहितपूर्णायाः लाभेऽपि तां विहाय वर्द्धमानप्रतिपदि होलादीपने **''वह्नौ वह्निं परित्यजेद्''** इति भविष्यद्वाक्यमपि विरुद्ध्येत. तु यदापूर्वदिने चतुर्दशी प्रदोषव्यापिनी परदिने च पूर्णिमा न्यूनवशात् प्रदोषात् प्रागेव समाप्यते, तदा पूर्वदिने सम्पूर्णरात्रौ भद्रासत्त्वाद् भद्रायां च होलिकानिषेधाद्, भद्रामुखं विहाय पूर्वदिनएव कार्यम्.

''प्रदोषव्यापिनी न स्याद् यदा पूर्वदिने तदा,
भद्रामुखं वर्जयित्वा होलिकायाः प्रदीपनम्''

इति नारदवचनात्.

''यामत्रयोर्ध्वयुक्ता चेत् प्रतिपत्तु भवेत् तिथिः,
भद्रामुखं परित्यज्य कार्या होला मनीषिभिः''

इति विद्याविनोदे अभिधानाच्च, भूतादिचतुष्टयव्यतिरिक्तकाले होलादीपनं कार्यम्. तदभावे तु प्रतिपद्वर्धगामिनी चेत् तदा अत्रैव. तदभावेऽपि भद्रामुखं विहाय रात्रावेव कार्यम् इति राद्धान्तः इति दिक्.

[कठिनांशटिप्पणी: १.असौ होलिकानिर्णयोऽधिगतेषु सर्वेषु पुस्तकेषु नास्ति. नाथद्वारीयमुद्रितपुस्तकम् अनुसृत्य मुद्रितो अत्र इति.]

अथ दोलोत्सवः.

फाल्गुनपौर्णमास्यां पूर्णिमासमीपे उत्तराफाल्गुन्यां वा दोलोत्सवः. तदुक्तं ब्रह्मपुराणे (ज्येष्ठीप्रशंसकाध्याये)

''नरो दोलायितं दृष्ट्वा गोविन्दं पुरुषोत्तमम्,
फाल्गुन्यां प्रयतो भूत्वा गोविन्दभुवनं व्रजेत्''

इति. स्कान्दे पुरुषोत्तममाहात्म्ये

''तपस्ये मासि राकायां यदोत्तराफाल्गुनी भवेत्,
तदा दोलोत्सवः कार्यः तच्च श्रीपुरुषोत्तमे''

इति. स्कान्दे पुरुषोत्तममाहात्म्ये.

''फाल्गुन्यां क्रीडनं कुर्याद् दोलायां मम भूमिप,
दोलायां येऽपि पश्यन्ति दक्षिणामुखपूजितम्,
ब्रह्महत्यादिभिः पापैः मुच्यन्ते नात्र संशयः''

इति. तथा तत्रैव अग्रे

''फाल्गुने मासि कुर्वीत दोलारोहणम् उत्तमम्,
यत्र क्रीडति गोविन्दो लोकानुग्रहणाय वै''

इति. अत्र अग्रे

''चतुर्दश्यां निशामुखे वह्न्युत्सवं प्रकुर्वीत''

इति उक्त्वा

''प्रातर्यामे चतुर्दश्यां गोविन्दप्रतिमां शुभाम्''

इत्यादिना प्रत्यर्चापूजनादिकं दोलासमीपनयनम्,

''फलपुष्पावनम्रैश्च शाखिभिः परिकल्पिते,
वृन्दावनान्तरे रम्ये मत्तभ्रमरचारिणि,
कोकिलारावमधुरे नानापक्षिगणाकुले,
नानोपशोभारचिते कालागुरुसुधूपिते''

इत्यादिना वृन्दावनकरणं, दोलायाञ्च भगवतः स्थापनम्. ततः,

''उपवेश्याथ गोविन्दं पूजयेद् उपचारकैः,
बल्लवीवृन्दमध्यस्थं कदम्बतरुमूलगम्,
हास्यलास्यविलासैश्च क्रीडमानं वनान्तरे,
गोपिकाभिश्च गोपालैः लीलां दोलितयानगम्,
चिन्तयित्वा जगन्नाथं विकिरेत् गन्धचूर्णकैः,
सकर्पूरैः पीतरक्त–शुक्लैः दिक्षु समन्ततः,

आन्दोलयेद् दोलिकायां सप्तवारान् शनैः–शनैः,
त्रिरेवं दोलयेत् देवं सर्वपापापनोदनम्,
भक्त्यानुग्राहकं पुंसां भुक्ति–मुक्त्येककारणम्,
लीलाविचेष्टितं यस्य प्रथमं सहजं तथा,
अहः सद्यः क्षयकरं मूलाविद्यानिवर्तकम्,
पश्यन् द्वितीयं हरति गोहत्याद्युपपातकम्,
क्षयन्त्यशेषपापानि तृतीये नात्रसंशयः''

इत्यादिना च प्रकारः फलं च उक्तम्. तेन अयमेव प्रकारः, कालश्च यामिन्याः पश्चिमयाम इति निश्चीयते. एवं सति पुराणभेदेन तिथिद्वयस्य उक्तत्वाद् 'राकायाम्' इति सामीप्यसप्तम्या च ''**फाल्गुने राकासमीपे यदा उत्तराफाल्गुनी तदा दोलोत्सवः कार्यः**'' इति वचनव्यक्तेश्च अपररात्रिव्यापिन्याम् उत्तराफाल्गुन्यां दोलोत्सवः कार्यः, नतु तिथौ आग्रहः कर्त्तव्यः. नक्षत्रप्राबल्यस्य विजयदशम्यां दर्शितत्वाद् इति. न च सामीप्यार्थे विनिगमनाविरहः[१]. फाल्गुन–चैत्रादिसञ्ज्ञानां तत्तन्नक्षत्रयुक्त–पौर्णमासीवत्ताप्रयुक्तत्वेऽपि तद्योगस्य अनियतत्वेन यदा तदभावः तदापि तन्मासव्यवहारो नक्षत्रस्य तिथिसामीप्यम् आदायैव क्रियते इति प्रकृते तद्ग्रहणे[२] दोषाभावात्. अतएव च 'मासादि'पदस्थसप्तमीषु न सो अर्थो गृह्यते इति न कोपि शङ्कालेशः इति दिक्.

[कठिनांशटिप्पणी: १.विनिगमनानियामकं तस्य विरहोऽभावः. २.सामीप्यग्रहणे.]

शिवरात्रिव्रतं वैष्णवानां कर्त्तव्यं न कर्त्तव्यं वा?

अथ अत्र प्रसङ्गाद् इदं विचार्यते. शिवरात्रिव्रतं वैष्णवानां कर्त्तव्यं न कर्त्तव्यं वा इति. तत्र तावत् माधवीये स्कान्दे

''परात्परतरं नास्ति शिवरात्रिः परात्परम्,
न पूजयति भक्त्येशं रुद्रं त्रिभुवनेश्वरम्,
जन्तुः जन्मसहस्रेषु भ्रमते नात्र संशयः''

इति अकरणे प्रत्यवायश्रुतेः.

''वर्षे–वर्षे महादेवि नरो नारी पतिव्रता,
शिवरात्रौ महादेवं नित्यं भक्त्या प्रपूजयेत्''

इति वीप्साश्रुतेः.

''अर्णवो यदि वा शुष्येत् क्षीयते हिमवानपि,

चलन्त्येते कदाचिद् वै निश्चलं हि शिवव्रतम्''

इति वचनाच्च सर्वेषां नित्यम् इति माधवनिर्णयसिन्धुप्रभृतयः.

दिनकरोद्द्योतस्तु

''वैष्णवो वाऽथ शैवो वा कुर्याद् एकादशीव्रतम्'',

''वैष्णवो वाऽथ शैवो वा सौरोप्येतत् समाचरेद्''

इति शिवधर्मोक्तसौरोक्तवचनवत् जन्माष्टमी–शिवरात्रि–विधायक–वाक्येषु विशेषवचनाभावाद् न सर्वेषां नित्यं, किन्तु केवलवैष्णवेभ्यो ये भिन्नाः तेषामेव नित्यम्, जन्माष्टमीव्रतं च शैवभिन्नानाम् इति आह.

नृसिंहपरिचर्यायां तु

''सौरो वा वैष्णवो वाऽन्यदेवतान्तरपूजकः,

न पूजाफलामाप्नोति शिवरात्रिबहिर्मुखः''

इति शिवद्वेषिवैष्णवस्य पदप्राप्तिनिषेधात्. तथा तादृशतत्पूजाया हरिणा अग्रहादिस्मरणाद् इति आदरेण शिष्टवैष्णवपरिग्रहाच्च सर्वैः अनुष्ठेयम् –इति आह.

माधवास्तु, शिवं जीवकोटौ गणयन्तीति व्रतं सुतरां न कुर्वन्ति, ये च कुर्वन्ति तेऽपि शिवान्तर्गतविष्णुं पूजयन्ति **''यास्त्वन्यदेवतिथयः तासु विष्णुं प्रपूजयेत्''** इति वराहोक्तेः इति च आहुः. तद् इदं सर्वम् असङ्गतम्. अहंकाराधिष्ठातुः जीवत्वेऽपि गुणावतारस्य ईश्वरकोटित्वात्. तथा हि, श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे

''शरणं तं प्रपद्ये अहं य एव जगदीश्वरः,

प्रजामात्मसमां मह्यं प्रयच्छत्विति चिन्तयन्''

इति मनसि अभिसन्धाय अत्रिणा प्रजार्थं तपःकरणे

''तप्यमानं त्रिभुवनं प्राणायामैधसाग्निना,

निर्गतेन मुनेः मूर्ध्नः समीक्ष्य प्रभवस्त्रयः,

अप्सरोमुनिगन्धर्व–विद्याधरमहोरगैः,

विगीयमानयशसः तदाश्रमपदं ययुः''

इत्यन्तेन.

''विश्वोद्भवस्थितिलयेषु विभज्यमानैः मायागुणैः अनुयुगं विगृहीतदेहाः,

ते ब्रह्मविष्णुगिरिशाः प्रणतोस्म्यहं वः तेभ्यः क एव भवतां म इहोपहूतः''

इति अत्रिस्तुत्यादिना च त्रयाणाम् ईश्वरत्वम् अवगम्यते. दशमस्कन्धेऽपि

‘‘**त्रिष्वधीशेषु**’’ इति उक्त्या च. द्वादशस्कन्धे, ‘‘**वरदेशा वयं त्रय:**’’ इति उक्त्या च. कूर्मपुराणे च ‘‘**लीलया परमेश्वरा:**’’ इति वचनाच्च. न च एवं सति अनेकेश्वरापत्तिः इति वाच्यम्, परात्परस्य कृष्णस्य भगवतः एकस्यैव ईश्वरेश्वरत्वात्. अतएव चतुर्थस्कन्धे दक्षाध्वरध्वंसोत्तरं ब्रह्मस्तुतौ

‘‘**जाने त्वामीशं विश्वस्य जगतो योनिबीजयो:,**
शक्ते: शिवस्य च परं यत्तद् ब्रह्म निरन्तरम्’’

इत्यादि पद्यद्वयेन शिवस्य परमशिवत्वम् उक्त्वा

‘‘**भवांस्तु पुंस: परमस्य मायया दुरन्तयाऽस्पृष्टमति: समस्तदृक्,**
तया हतात्मस्वनुकर्मचेत:स्वनुग्रहं कर्त्तुमिहार्हसि प्रभो’’

इति कथनात् परमशिवस्यापि परपुरुषानुगृहीतत्वमेव प्रतिपादितं, नतु परमपुरुषत्वम्. परमपुरुषस्य कृष्णत्वं ‘‘**कृषिर्भूवाचक:**’’ इत्यादिश्रुत्या ‘‘**त्वमेक आद्य: पुरुषो द्वितीयः तुर्य: स्वदृग्घेतुरहेतुरीश:**’’ इत्यादि श्रीभागवतवाक्यैः अवसेयम्. इदम् अत्र संक्षेपतो निरूपितम्. विशेषस्तु बालबोधटीकायां विवेच्य:, प्रहस्ते भिन्दिपाले विवेचितश्च. तस्माद् जीवत्वकथनम् अनुचितमेव. व्रतन्तु न कार्यमेव

‘‘**भवव्रतधरा ये च ये च तान् समनुव्रताः,**
पाषण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिन:,
नष्टशौचा मूढधियो जटाभस्मास्थि धारिण:,
विशन्तु शिवदीक्षायां यत्र दैवं सुरासवम्,
ब्रह्म च ब्राह्मणांश्चैव यद्यूयं परिनिन्दथ,
सेतुं विधरणं पुंसाम् अतः पाषण्डमाश्रिता:,
एषएव हि लोकानां शिव: पन्था: सनातन:,
यं पूर्वे चानुसंतस्थुः यत्प्रमागं जनार्दन:,
तद्ब्रह्म परमं शुद्धं सतां वर्त्म सनातनम्,
विगर्ह्य यात पाषंड दैवं वो यत्र भूतराट्’’

इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे निन्दाश्रवणात्. न च व्रतविधायकवाक्यानाम् अनवकाशप्रसङ्ग:, तेषां शापपूर्वकालविषयत्वात्. अक्षतागोपश्वादिविधायकवाक्यवत्. न च ‘भवव्रत’शब्देन पाशुपतव्रतम् उच्यते इति वाच्यं, सङ्कोचे मानाभावात्. न च ‘सच्छास्त्रपरिपन्थिन:’ इति शप्तव्यविशेषणमेव मानम् इति वाच्यं, तस्य उत्तरावधिगमकत्वात्. अन्यथा, ‘‘**नष्टशौचा मूढधियो जटाभस्मास्थिधारिण:, विशन्तु शिवदीक्षायां यत्र दैवं सुरासवम्**’’ इत्यादि श्लोकत्रयोक्त-शापद्वयवैयर्थ्यापत्तिः. सच्छास्त्रपरिपन्थित्वेनैव सर्वसम्भवात्. अतः तस्य उत्तरावधिगमकत्वमेव. न च एवं

शिवद्वेषापत्तिः, अनुवादित्वात्. अतएव

‘‘**परात्परतरं यान्ति नारायणपरायणाः,**

न ते तत्र गमिष्यन्ति ये द्विषन्ति महेश्वरम्’’

इति वाक्योक्तदोषोपि न. अतो व्रताकरणं व्रतस्य निषिद्धत्वादेव नतु शिवद्वेषात्, जैनमन्दिरप्रवेशवत्. अन्यथा जिनस्यापि अवतारत्वेन तन्मन्दिरप्रवशेऽपि दोषानुत्पत्ति-प्रसङ्गः. तस्माद् भगवान् शिवो अवतारत्वाद् वैष्णवधर्मोपदेष्टृत्वाद् वेदरूपत्वात् सर्वविद्येश्वरत्वात् सर्वदेहीशानत्वाच्च नमस्यएव मान्यएव. व्रतन्तु निन्दितत्वादेव अकरणीयम् इति दिक्.

अथ प्रसङ्गाद् इदम् उच्यते.

उपरागे सम्भवति भोगसमर्पणादिकं कथं कार्यम् इति. तत्र, स्वमार्गे स्नेहस्य प्राधान्याद् यो बालेषु न्यायः सः आदर्त्तव्यः. तत्र ग्रहणे बालवृद्धातुराणां ग्रहयामात् पूर्वम् एको यामो निषिद्धः

‘‘**सायाह्ने ग्रहणं चेत् स्यात् अपराह्णे न भोजनम्,**

अपराह्णे न मध्याह्ने मध्याह्ने न तु सङ्गवे,

भुञ्जीत सङ्गवे चेत् स्यात् न पूर्वं भोजनक्रिया’’

इति मार्कण्डेयोक्तेः इति आहुः. तत् चिन्त्यम्, उक्तवाक्ये सायाह्नादिपदैः पञ्चधा विभक्तदिवसपञ्चमांशद्वये भोजननिषेधलाभेन ग्रहणसामान्ये उक्तरीत्या यामद्वयत्यागस्य व्याख्येयवाक्यविरुद्धत्वात्. किन्तु, सूर्यग्रहे पञ्चमांशद्वयं निषिद्धम् इति तावदेव त्याज्यम्. चन्द्रग्रहे तु विशेषवाक्यानुपलम्भात् न्यायसाम्यम् आदरणीयम्. यद्यपि रात्रेः पञ्चधा विभागो न प्रसिद्धः तथापि शास्त्रस्य शक्तविषयत्वाद् अर्थापत्या तदादरणम् उचितम्.

‘‘**ग्रहणं तु भवेद् इन्दोः प्रथमादधियामतः,**

भुञ्जीतावर्त्तनात् पूर्वं प्रथमे प्रथमादधः’’

इति वाक्ये ग्रहयामत्यागलाभात् रात्रेः यामोदिवसस्य एकः पञ्चमांशः इति वा. वस्तुतस्तु ‘‘**ग्रहणं तु भवेदिन्दोः**’’ इत्यस्य ‘‘**चन्द्रग्रहे तु यामांस्त्रीन्**’’ इत्यनेन शक्तविषय उपसंहारे कृते ‘‘**बालवृद्धातुरैः विना**’’ इति या तदनुज्ञा सा ग्रहणयामातिरिक्तं कालं बालादिषु अनिषिद्धं बोधयिष्यतीति ग्रहयामएव बालदिभिः न भोक्तव्यम् इति युक्तम् इति एवं पृथङ्निर्णयः उचितः. तेन सूर्यग्रहे दिवसपञ्चमांशद्वयात् प्राक्, चन्द्रग्रहे तु प्रथमयामे चन्द्रग्रहे सूर्यास्तात् पूर्वं भगवते घृतपक्वान्नादिकं समर्पणीयम्. द्वितीयादियामे तु

सूर्यास्तोत्तरमपि अदोषः. तथापि शयनावसरसङ्कोचात् दिवसएव कृत्वा शयनारार्तिकं विधेयम् इति दिक्.

अथ कथम् उत्सवः कार्यः इति शङ्का अवशिष्यते.

तत्र उत्तरम्

''आरनालं पयस्तक्रं दधिस्नेहाज्यपाचितम्,
मणिकथोदकं चैव न दुष्येत् राहुसूतके,
वारितक्रारनालादि तिलदर्भैः न दुष्यति''

इत्यादि वाक्यैः तथाकृतौ सामग्र्यदोषे सर्वदैव कार्यः इति. इयान् परं विशेषः. यदा चन्द्रस्य ग्रस्तास्तः तदैव चेत् तदा मुक्तिम् अवधार्य स्नात्वा शुद्धीभूय स्वल्पशृङ्गारादि कृत्वा शीघ्रतया गौणकाले कार्यः. नच अत्र मानाभावः.

''ग्रस्ते चास्तङ्गते त्विन्दौ ज्ञात्वा मुक्त्यवधारणम्,
स्नानहोमादिकं कार्यं भुञ्जीतेन्दूदये पुनः''

इति निर्णयसिन्धु-दिनकरोद्द्योत-भगवद्भास्कर-लिखितोशनोवाक्ये 'आदि'पदेन तस्यापि सङ्ग्राह्यत्वात्. ग्रहणमध्येऽपि सुरार्च्चनस्य विहितत्वाच्च इति अनेनैव न्यायेन दीपोत्सवेऽपि कार्यम्. भगवतो नैवेद्यसामग्री च स्नेहपक्वातिरिक्ता शृता तदहोरात्रे न कार्या, शृतान्नस्य ग्रहणान्तरितस्य वाक्यान्तरे त्यागस्य उक्तत्वात्. शेषं यथास्थितम् इति. चन्द्रग्रस्ताते मुक्तिम् अवधार्य शुद्ध्यनन्तरं पाकोपि कार्यएव, भगवदर्थत्वात्, स्वार्थन्तु न कार्यएव. कृष्णलेष्ववघातस्येव भोजनसम्बद्धस्य पाकस्य द्वारलोपाद् लोपस्य न्याय्यत्वात्. वस्तुतस्तु उदये भोजनस्य विधानाद् अनुदये परिवेषणादेरेव निवृत्तिः उचिता, नतु आरादुपकारकस्य पाकस्यापि, सम्भारतुल्यत्वादेव तदनुज्ञाप्राप्तेः इति सूर्यग्रस्तास्ते तु **''नाश्नियात् पूर्वं यामचतुष्टयम्''** इति वाक्येन ग्रासात् पूर्वं यामचतुष्टयस्य त्याज्यत्वात्,

''ग्रस्तावेवास्तमानन्तु रवीन्दू प्राप्नुतो यदि,
परेद्युरुदये दृष्ट्वा स्नात्वा अभ्यवहरेद् नरः''

इति माधवीये. अन्यत्र च भृगुवाक्येन मुक्तिदर्शनोत्तरं स्नात्वा भोजनस्य उक्ततया पूर्वं भोजनाभावाच्च अष्टयामिकः उपवासः समर्थस्य, बालवृद्धातुरैस्तु **''सायाह्ने ग्रहणञ्चेत् स्यात्''** इति पूर्वलिखितमार्कण्डेयवाक्यात् पञ्चधाविभक्त-दिवसस्य च यस्मिन् भागे ग्रहणं स भागः तस्मात् पूर्वश्च भागः त्याज्यः. तेन मध्याह्ने सङ्गवे वा भोजनं कार्यम्. इममेव न्यायम् आश्रित्य मध्याह्ने ततः पूर्वं वा भगवते राजभोगः

समर्पणीयः. स च प्रसादो घृतपक्वव्यतिरिक्तो गोभ्यो देयः, तथा शिष्टाचारात्. अस्तानन्तरं तु मुक्त्यवधारणोत्तरं स्वयं स्नात्वा शुद्धं जलम् आनीय भगवन्तं स्नापयित्वा ततः शुद्धजलेन घृतपक्वां सामग्रीं कृत्वा तां दुग्धादिकं च समर्प्य भगवान् स्वापनीयः, सन्ध्यावन्दनादिकं च कार्यम्. यद्यपि अत्र चन्द्रग्रस्तास्तवत् विशेषवचनं नास्ति तथापि उशनोवाक्ये 'इन्दु'पदं रवेरपि उपलक्षणं तुल्यन्यायत्वात्, अन्यथा सायंसन्ध्यादेः लोपप्रसङ्गाच्च. तेन उभयत्र मुक्तिस्नानं विनापि सन्ध्यादिकं कार्यम् इतिवचनतात्पर्यम्. केचित्तु उदयोत्तरमेव सर्वं कुर्वन्ति इति भगवद्भास्कारे न्यायसाम्यादरणात् अदोषः इति आहुः.

मम तु किञ्चिद् अन्यदपि प्रतिभाति. बालवृद्धातुराणां ग्रहणात् पूर्वमिव ग्रस्तास्तोत्तरं भोजनव्यवस्थायाः अनुक्तत्वात् तदर्थमपि न्यायसाम्यादरणम् आवश्यकम्. अन्यथा तदनिर्वाहात्. एवं सति न्यायसाम्यादृता शुद्धिः तदर्थैव नतु शक्ताशक्तसाधारणा. तेन रात्रौ यद् भगवदर्थं कृतं तत् गोभ्यो देयं बालादिभिश्च उपयोक्तव्यम्. ततः उदिते सूर्ये स्नात्वा शुद्धीभूय ततः शुद्धजलेन सर्वं पाकादिकं कार्यं, नतु रात्र्याहृतेन जलेन, तच्छोधकवचनाभावाद् इति दिक्. प्रस्तुतम् अनुसरामः.

इति फाल्गुनोत्सवाः.

श्रीमद्विट्ठलनाथप्रभुचरणविरचितः

।। श्रीरामनवमीनिर्णयः ।।

अगस्त्यसंहितायां

‘‘चैत्रशुद्धा तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि,

सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत्’’

रामार्चनचन्द्रिकायाम्

‘‘विद्धाचेत् ऋक्षसंयुक्ता व्रतं तत्र कथं भवेत्,

विद्धानिषेधश्रवणात् नवमी चेति वाक्यतः’’

अथ चैत्रमासोत्सवाः

चैत्रशुद्धनवम्यां श्रीरामोत्सवः

तदुक्तं हेमाद्रौ अगस्त्यसंहितायाम्

‘‘चैत्रे नवम्यां प्राक्पक्षे दिवा पुण्ये पुनर्वसौ,

उदये गुरुगौरांश्वोः स्वोच्चस्थे ग्रहपञ्चके,

मेषे षूषणि सम्प्राप्ते लग्ने कर्कटकाह्नये,

आविरासीत् स्वकलया कौशल्यायां परः पुमान्,

तस्मिन् दिने तु कर्त्तव्यम् उपवासव्रतं सदा,

केवलापि सदोपोष्या नवमीशब्दसंग्रहात्’’

इति. अन्यच्च तत्रैव

‘‘चैत्रशुक्ला तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि,

सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत्’’

इति. अत्र ‘सैव’इति विशिष्टपरामर्शाद् मध्याह्ने पुनर्वसुयोगे महापुण्यतमत्वम्. मध्याह्नाद् अन्यत्र योगे पुण्यतमत्वम्. अयोगे तु पुण्यत्वमात्रम् इति दिनकरोद्द्योतः. अत्र ‘‘**अह्नो मध्ये वामनो रामरामौ**’’ इति पुराणसमुच्चयात् कर्कलग्नोक्तेश्च मध्याह्नः प्रादुर्भावकाल इति सएव च पूजाकालः इति तद्व्यापिनी तिथिः सर्वैः कार्या इति बहवः. तत्त्वं तु वैष्णवभिन्नैरेव एवं कार्या. वैष्णवैस्तु पारणदिवसे दशमीलाभे विद्धा त्याज्यैव इति.

‘‘नवमी चाष्टमीविद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः,

उपोषणं नवम्यां वै दशम्यामेव पारणम्’’

इति माधवधृतवचनात्. क्वचित्तु, ‘दशम्यां पारणं भवेद्’ इति पाठः. न च इदं

अत्र निर्णयम् आह

''नवमी चाष्टमीविद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः,

उपोषणं नवम्यां वै दशम्यामेव पारणम्''.

ननु व्रतस्य पारणाङ्गत्वबोधकप्रमाणेनैव व्रतविध्यन्यथानुपपत्या च एकादशीपूर्वदिनप्राप्तेः दशम्यामेव इति वचनवैयर्थ्यं स्याद् अतो नियमविधिः अयं, तेन नवमीसत्त्वेपि दशमीक्षये विद्धैव कार्या इति सिद्धम्. न च निषेधवागनुरोधेन न एवं वाच्यम् इति वाच्यं, दशमीवृद्धिविषयत्वात् तस्या इति चेद्, मा एवं, निषेधविधिवद् उक्तनियमविधिरपि वैष्णवमात्रविषयको अथवा साधारणजनविषयकः. उपक्रमानुरोधाद् आद्यएव अभिमतः चेत् तदा 'उपोषणं नवम्याम्' इति व्यर्थम्, उत्पत्तिवाक्यत्वाभावात्. विद्धानिषेधविधिम् आरभ्याधीतत्वात्. सामान्यप्राप्तावेव विशेषविधिनिषेधयोः सम्भवात्. तथा च विद्धानिषेधे सति उत्तरदिनकर्तव्यत्वे प्राप्ते

दिनद्वये मध्याह्नव्याप्त्यव्याप्तिसमैकदेशव्याप्तिविषयम् इति वाच्यम्, तादृशस्थले द्वितीयदिने दशम्या अनुक्तसिद्धत्वेन पारणविधिवैयर्थ्यापातात्. एतेनैव च दिनद्वये मध्याह्ने पुनर्वसुयोगायोगपरत्वं वदन् प्रतापमार्त्तण्डोपि प्रत्युक्तो ज्ञेयः. एकादश्यां[१] जलेन पारणमपि एतेनैव दत्तोत्तरं ज्ञेयम्. यत्तु, दशम्यादिषु वृद्धिः चेद् विद्धा[२] त्याज्यैव वैष्णवैः. तद् अन्येषां च सर्वेषां व्रतं तत्रैव निश्चितम्'' इति रामार्चनचन्द्रिकायाम् अगस्त्यसंहितावचनम् उक्तम्, हेमाद्रिमाधवाभ्याम् अलिखनात् तद् निर्मूलम् इति दिनकरोद्द्योतः. तत्त्वन्तु **''नवमी चाष्टमीविद्धा''** इति वाक्ये निषेधविधिवद् नवम्युपोषणविधिरपि उपक्रमानुरोधाद् वैष्णवमात्रविषयकः इति दशमीसाम्येपि नवमीवृद्धौ दशमीक्षयेऽपि नवमीवृद्धौ नवम्याम् उपोषणप्राप्त्या अविद्धात्यागएव आशयगोचर[३] इति. वचनञ्च सर्वसम्मतम् इति तेन[४] चारितार्थ्यादेव दशमीवृद्धिवचनम् अनुवादकम् इति.

तदेतत् सर्वं हृदिकृत्य श्रीमत्प्रभुचरणैः उक्तम्,

''तथा च विद्धानिषेधे सति उत्तरदिनकर्त्तव्यत्वे प्राप्ते यत् पुनः

१.दशमीक्षये अष्टमीविद्धायां वैष्णवानाम् उपवासस्य हेयत्वाद् वैष्णवभिन्नानां तु विद्धोपोषणे क्षीणदशम्यां पारणसम्भवाद् विद्धैकादश्यां जलेन पारणस्य प्रसङ्गाभावात्.

२.अथ 'वृद्धि'पदेन पूर्णवृद्धिः न विवक्षिता. तथात्वे नवम्या विद्धत्वासम्भवात्. किन्तु औदयिकसत्वमेव अत्र 'वृद्धि'पदेन ज्ञेयम्. 'अवृद्धि'पदेन च तत्प्रतियोग्यौदयिकसत्वाभावः.

३.न तु 'चेत्'पदारोधेन दशमीक्षये विद्धाया ग्राह्यत्वम्, तथात्वे नवम्युपोषणविधेः वैयर्थ्यापातात्.

४.नवम्युपोषणविधिवैयर्थ्यबोधितनियमेन गतार्थत्वादेव-प्रसिद्धार्थबोधकम् ''अनुवादो अवधारिते'' इति वचनात्.

सति यत् पुनः नवम्युपोषणविधानं तत्रापि निश्चयवाचकाव्ययकथनेन नियमकथनपूर्वकं तेन दशम्यवृद्धावपि नवमीवृद्धौ तस्यामेव उपोषणं कार्यं नवम्यवृद्धौ तु विद्धैव उपोष्या इति अवसीयते. अन्यथा दशमीपारणनियमविधिनैव नवम्युपोषणस्यापि प्राप्तेः पुनः तदुक्तिः व्यर्था स्यात्. यद्यपि एवं पारणाविधेः वैयर्थ्यम् आयाति तथापि उपोषणविधेः मुख्यत्वात् पारणविधिवाक्यस्य अमुख्यत्वेन एकादशीपूर्वदिनपरत्वं कल्प्यते.

इति श्रीविट्ठलदीक्षितविरचितः श्रीरामनवमीनिर्णयरः

> **नवम्युपोषणविधानं तत्रापि निश्चय-वाचकाव्ययकथनेन नियमपूर्वकं तेन दशम्यवृद्धावपि[५] नवमीवृद्धौ तस्यामेव उपोषणं कार्यम्. नवम्यवृद्धौ तु विद्धैव उपोष्या इति अवसीयते. अन्यथा दशमीपारणनियमविधिनैव नवम्युपोषणस्यापि प्राप्तेः पुनः तदुक्तिः व्यर्था स्यात्. यद्यपि एवं पारणविधेः वैयर्थ्यम् आयाति, तथापि उपोषणविधेः मुख्यत्वात् पारणविधिवाक्यस्य अमुख्यत्वेन एकादशीपूर्वदिनपरत्वं कल्प्यते'' इति[६].**

अत्र **'एकादशी'**पदं तिथिपरं न तु व्रतपरम्, व्याख्येयवाक्ये दशम्यां पारणविधानात्.

अत्र[७] यद्यपि **''नवमी चाष्टमीविद्धा''** इति वाक्ये भगवद्भक्तानां विद्धात्यागम् आदायैव सर्वैः निर्णयः क्रियते. वेधस्वरूपन्तु न पृथक् विचार्यते. तथा सति **''त्रिभिः मुहूर्त्तैः विध्यन्ति''** इति सामान्यवाक्यात् त्रिमुहूर्त्तवेधएव आयाति, कथञ्चित् तदनुकल्पो

५.नवम्युपोषणविधिवैयर्थ्यबोधितनियमेन दशम्या अनौदयिकत्वे (क्षये)पि तस्यां नवम्यामेव, दशम्याम् औदयिकत्वे तु वचनेनैव विद्धोपोषणं निषिध्य शुद्धोपोष्यते. परम् इयान् विशेषः, नवम्युपोषण-विधिवैय्यर्थ्येन विज्ञायते यद् दशमीक्षये विशुद्धौवोपोष्या इत्यपि शब्दस्वारस्यम्.

६.विद्धोपोषणनिषेधवदेकादश्यां पारणस्य निषेधाभावेनामुख्यत्वम्.
''दशम्यामेव पारणमि''त्युक्तिर्नवमीक्षये निषेधविधि बाधते निरवकाशत्वात्. तथा च नवमीक्षये एकादशीपूर्वदिने एव दशम्यामेवेत्यर्थः. न तु निम्बार्कमतमनुसृत्य दशम्युपोष्यैकादश्यां पारणं कुर्यात्, पारणविधिवैयर्थ्यापातात्.

७.'अत्र यद्यपि' इत्यादि 'स्मृतेर्नैर्बल्यादिति' एतदन्तोऽयं ग्रन्थः त्रयोदशपुस्तकेषु नास्ति. पुस्तकत्रये वर्त्तते. ''तेनायं निष्कर्षः. विद्धाक्षये विद्धा गत्यन्तराभावात्. पारणार्थं दशम्यलाभे पूर्वा दशम्यां पारणस्यावश्यकत्वात्. अन्यदा तु परैवेति दिक्'' इत्यन्तः ग्रन्थो वर्तते.

द्विमुहूर्त्तवेधो वा. तेन अष्टम्याः त्रिमुहूर्त्तत्वस्य द्विमुहूर्त्तत्वस्य वा अभावे नवम्या विद्धत्वं न भवति इति तादृशस्थले पूर्वैव उपोष्य इति आयाति. तथापि साम्प्रदायिका एतादृशस्थले द्वितीयामेव आद्रियन्ते. तत्र तेषाम् अयम् आशयः. विद्धात्यागे बीजं तावद् भगवत्प्रादुर्भावदिने अष्टम्यभावएव. अन्यथा वामनद्वादश्याम् एकादशीवेधस्येव अत्र अष्टमीवेधस्यापि दूषकता न स्यात्. तथा सति स्वल्पस्यापि संसर्गस्य दूषकत्वं निर्बाधम्. अतो जन्माष्टम्यामिव अत्र कलाकाष्ठादिवेधत्याग-वचनाभावेपि संसर्गमात्रात् त्यागो युज्यते, न्यायसाम्यात्.

''युगाद्या वर्षवृद्धिश्च सप्तमी पार्वतीप्रिया,
रवेरुदयमीक्षन्ते न तत्र तिथियुग्मता''

इत्यस्य विशेषवाक्येन वर्षवृद्धौ सूर्योदयव्याप्तेरेव उक्ततया अवतारसामयिक-व्यवहारस्य तदैव प्राप्तेः तन्न्यायेनापि उदयव्यापिन्याएव ग्राह्यत्वस्य युक्तत्वाच्च, एतेनैव 'वसुरन्ध्रयोः' इति युग्मवाक्यमपि दत्तोत्तरम्. विद्धानिषेधस्य प्रातिस्विकत्वाच्च.

न च जन्मसमये तिथ्यभावे पूजाकालाव्याप्त्या द्वितीयग्रहणस्य दुष्टत्वं शङ्क्यम्, विद्धात्यागेनैव तस्य निरासात्. एवं च औदयिकग्रहणबोधकानां सर्वेषां सामान्यवाक्यानामपि आनुगुण्याच्च इति.

नच एवं न्यायप्राप्तग्रहणे सति जन्माष्टम्यामपि विद्धाक्षये विद्धाकरणस्य प्राप्तेः तदनुकल्पत्वेन शुद्धनवमीग्रहणम् अयुक्तं स्याद् इति वाच्यं, कल्पनीयन्यायापेक्षया एकादश्यतिदेशवाक्यस्य बलिष्ठत्वात्. एवम् अत्रापि दशमीपारणवाक्यस्य बलिष्ठत्वाद् यादृशविद्धाधिकास्थले अग्रे पारणदिनं न लभ्यते तादृशविद्धाधिकास्थले एव वर्षवृद्धिन्यायबाधो, न अन्यत्र इति एतादृशस्थले द्वितीयदिनस्य न्यायप्राप्तत्वात् पूर्वदिने नवम्या विद्धात्वाभावेपि विद्धात्यागबीजविचारेण पूर्वां विहाय द्वितीयदिने व्रतकरणम् उपपन्नम्. माधवेन एतादृशस्थले गौरीतृतीयायां द्वितीयप्रापकाभावेऽपि केवल-शिष्टाचारस्यैव शरणीकरणाच्च. एतावान् परं विशेषः, गौरीतृतीयायाः पूर्वविद्धात्वे द्वितीयदिने कर्मकाले रहितायाः ग्रहणम्. अत्र तु पूर्वविद्धात्वाभावेऽपि विद्धात्यागबीज-विचाराद् वर्षवृद्धिन्यायाच्च इति.

तेन अयं निष्कर्षः. विद्धाक्षये विद्धा गत्यन्तराभावात्. पारणार्थं दशम्यलाभेऽपि विद्धा, दशम्यां पारणविधानबलात्. अन्यथा एकादश्याम् अद्भिः पारणेनापि व्रतसमाप्तिसम्भवे पारणविधानस्य वैयर्थ्यस्य अपरिहार्यत्वात्. अन्यदा तु परैव इति दिक्.

अयमेव न्यायो नृसिंहचतुर्दशी स्थले द्रष्टव्यः.

माध्वास्तु

''सर्वासां तु जयन्तीनां श्रेष्ठा कृष्णाष्टमी मता,
यस्मात् सन्निहिताऽत्यन्तं तत्रैवोपवसेत् नरः,
सर्वास्वपि जयन्तीषु पूजा कार्या विशेषतः,
सान्निध्यएव कर्त्तव्यः उपवासो न दूरगः''

इति स्मृत्यर्थसागराख्ये स्वनिबन्धे भरद्वाजसंहितावचनात्.

''चैत्रे मासि नवम्यां तु प्रादुर्भावो हरेर्यदा,
रामपूजां नरः कुर्याद् ब्राह्मणैः सह भोजनम्,
तथैव नारसिंहस्य मत्स्यकूर्मादिकस्य च,
अवतारदिने सम्यक् ब्राह्मणैः सह भोजनम्,
कृते तु नारसिंहं तु त्रेतायां राममेव च,
द्वापरे वामनं प्रोक्तं कलौ कृष्णाष्टमी स्मृता''

इति गारुडात्.

''कृष्णजन्माष्टमी त्यक्त्वा येऽन्यं व्रतम् उपासते,
नाऽऽप्नुवन्ति फलं किञ्चित् इष्टापूर्त्तमथापि वा,
कृष्णाष्टमीं विना नैव जयन्ती क्वापि वैष्णवैः,
कर्त्तव्या यदि कुर्वीत तामसं तदुपोषणम्''

इति स्कान्दात् च इति आहुः, तद् न अस्माकं सम्मतम्, श्रीरामस्य पुरुषोत्तमत्वेन विमृष्टत्वाद्, अनुपोषणे शिष्टाचारविरोधात्, कलौ तत्प्राबल्यस्य व्यवस्थापितत्वेन तदपेक्षया स्मृतेः नैर्बल्याद् इति.

अथेदं विचार्यते. चैत्रीयदोलादमनोत्सवौ कुतो न क्रियेते इति?

तत्र उत्तरम्, सर्वदेवतासाधारणत्वाद् इति. तदुक्तं व्रतदिनकरोद्द्योते वायवीये

''संवत्सरकृतार्चायाः साफल्यायाऽखिलान् सुरान्,
दमनेनाऽर्चयेत् चैत्र्यां विशेषेण सदाशिवम्''

इति. हेमाद्रौ व्रतदिनकरोद्द्योते च भविष्योत्तरे ब्राह्मे च

''धर्मराज निबोधेह दमनादिमहोत्सवम्''

इति उपक्रम्य कयाचिद् विद्याधर्या कृतां दोलां वीक्ष्य उमया प्रार्थने शिवेन

दोलाकरणं शिवयोः तदारोहणं शक्रं प्रति प्रतिवत्सरं शिवदोलामहोत्सवाज्ञापनं च उक्त्वा

''प्राप्ते वसन्तसमये सुरसत्तमानाम्
आनन्दोलनं सुरवरा ननु कुर्वते ये,
ते प्राप्नुवन्ति भुवि जन्मतप:फलानि''

इत्यादि उक्तम्. तेन

''ऊर्जे व्रतं मधौ दोलां श्रावणे तन्तुपूजनम्,
चैत्रे दमनकारोपम् अकुर्वाणो व्रजत्यधः''

इत्यपि तु सर्वदेवपूजकपरं ज्ञेयम्. तेन केवलवैष्णवानां न तदकरणे दोषः. ननु एवं सति तन्तुपूजने किम् आग्रहः इति चेद् भक्तिरत्नप्रदायकत्वेन उक्तत्वात् इति वदामः. यद्वा, 'मधु'पदं वसन्तपरम् इति तत्र दोला तु पूर्वम् उक्तैव. मीनार्केऽपि वसन्तत्वस्य ज्योतिर्निबन्धे सिद्धान्तशिरोमणौ अभिमतत्वात्. अतएव पुनः चैत्रोक्तिः युज्यते, दमनकानारोपस्तु तदभावात्. उत्तमदमनकस्य उत्कलदेश एव उपलम्भात्. सार्वदैशिकस्तु उग्रगन्धो मरुबक एव इति न दोषलेशः इति दिक्. इति चैत्रोत्सवाः.

वैशाखमासोत्सवा.

श्रीमदाचार्यचरणोत्सवः

वैशाखकृष्णैकादश्यां श्रीमदाचार्यचरणोत्सवः. स च स्वामिन्युत्सववत् औदयिक्यां कार्यः. विद्धाक्षये तु विद्धायामेव. शुद्धाधिकायां[१] तु पूर्वस्यामेव, शिष्टाचाराद् इति. एतद् आदाय उत्सवाः च एतन्मार्गीयाणाम् आवश्यकाएव.

''आचार्यं मां विजानीयाद् नावमन्येत कर्हिचित्,
न मर्त्यबुध्या सेवेत सर्वदेवमयो गुरुः''

इति एकादशस्कन्धे भगवद्वाक्यात्.

''गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा यत्र प्रवर्त्तते,
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः''.

''ब्रह्मैवाचार्यरूपेण स्वरूपेणावतिष्ठते''

इति शङ्कराचार्यकृतभारतीयसहस्रनामटीकायां व्यासोक्तेश्च.

''यस्य देवे पराभक्तिः यथा देवे तथा गुरौ''

इति श्रुतेश्च. येऽपि यन्मतानुवर्तिनः स्वाचार्योत्सवादिकं न कुर्वते ते अश्रद्धालवो वा एतद्वचनापर्यालोचका वा इति ध्येयम्.

वैशाखशुक्लतृतीयायां चन्दनयात्रोत्सवः.

तदुक्तं स्कान्दे पुरुषोत्तममाहात्म्ये

''**वैशाखशुक्लपक्षे तु तृतीयाऽक्षयसंज्ञिता,**
तत्र मां लेपयेद् गन्धलेपनैरतिशोभनैः''

इति. ब्रह्मपुराणे च पञ्चतीर्थीमाहात्म्ये

''**यः पश्यति तृतीयायां कृष्णं चन्दनरूपितम्,**
वैशाखस्य सिते पक्षे स यात्यच्युतमन्दिरम्''

इति. अत्र एतद् आरभ्य यावदुष्णकालं व्यजनादिकम् अर्पणीयम्.

''**व्यजनैश्चामरैः छत्रैः वन्यैः नानोपहारकैः,**
सन्तोषयन् जगन्नाथं तृतीयादौ विलेपयेत्''

इति तत्रैव उक्तेः. अत्र विशेषतः कालानुक्तेः पञ्चमुहूर्त्तात्मकं प्रातरेव पूजाकालः, स च वसन्तपञ्चम्यां विवेचितः इति ततो अवधेयः. अत्र तिथिद्वैधे दिनद्वये तदेकदेशव्याप्तौ परैव कार्या. युग्मवाक्ययोः विरोधेऽपि

''**रम्भाख्यां वर्जयित्वैकां तृतीयां द्विजसत्तम,**
तृतीया सर्वकार्येषु गणयुक्ता प्रशस्यते''

इति ब्रह्मवैवर्तेन

''**कला काष्ठाऽपि वा यत्र द्वितीया सम्प्रदृश्यते,**
सा तृतीया न कर्त्तव्या कर्त्तव्या गणसंयुता''

इति स्कान्देन च व्यवस्थापनात्. विद्धाक्षये तु विद्धैव कार्या, गत्यन्तराभावाद् इति.

श्रीनृसिंहोत्सवः

वैशाखशुक्लचतुर्दश्यां श्रीनृसिंहोत्सवः. तदुक्तं नृसिंहपुराणे स्कान्दे च

''**वैशाखे शुक्लपक्षे तु चतुर्दश्यां निशामुखे,**
मज्जन्मसम्भवं पुण्यं व्रतं पापप्रणाशनम्,
वर्षे–वर्षे तु कर्त्तव्यं मम सन्तुष्टिकारणम्'' इति.

''**वैशाखस्य चतुर्दश्यां सोमवारेऽनिलर्क्षके,**
अवतारो नृसिंहस्य प्रदोषसमये द्विजाः'' इति.

अथ प्रदोषविचारः.

अत्र 'प्रदोषा'दिशब्दाः पारिभाषिकमपि कालं यद्यपि विषयीकर्त्तु शक्नुवते,

तथापि हिरण्यकशिपुवरानुरोधात् सायं सन्ध्यापराएव ज्ञेया:. साऽपि मुख्यैव ग्राह्या, उक्तयुक्तेरेव. तत्स्वरूपं च वराहेण उक्तम्

''**अर्द्धास्तसमयात् सन्ध्या व्यक्तीभूता न तारका,**
यावत् तेज: परिहानिवशात्''

इति. तस्मात् तादृशी सन्ध्या वा ''**प्रदोषोऽस्तमयात् ऊर्ध्वं घटिकाद्वयमिष्यते**'' इति प्राच्योक्त: प्रदोषो वा प्रादुर्भावकालः इति दिनकरोद्द्योत:. अन्ये तु प्रदोषकालम् उक्त्वा गच्छन्ति नतु निर्णयं तस्य कुर्वन्ति. द्वैतनिर्णयकारस्तु

''**वैशाखशुक्लपक्षस्य चतुर्दश्यां विवस्वति,**
अस्तंगामिनि सर्वेषां पुरस्तम्भस्य मध्यत:,
प्रबभूव महाविष्णुः नरसिंहाकृतिः नृप''

इत्यादि नृसिंहपुराणवचनम्. सायंकाले प्रादुर्भावबोधकं भविष्यवचनं प्रदोषबोधकं स्कान्दं च उक्त्वा नृसिंहपुराणे घटिकानुक्ते: स्कान्देन निर्णयः इति च उक्त्वा तत्रत्यप्रदोषपदार्थं 'सायं'पदेन निर्णिनाय. सायं च ''**नक्षत्रस्पर्शनात् सन्ध्या सायं तत्परत: स्थितम्**'' इति लक्षितवान्. ततः त्रिघटिकात्मकं सूर्यास्तोत्तरं कालं जन्मकालत्वेन अङ्गीचकार. युक्तं तु विवस्वदस्तसामीप्यम् आरभ्य आसन्ध्यम् इत्येव. हिरण्यकशिप-ुहननात् पूर्वमेव प्रादुर्भावकालत्वस्य उचितत्वाद् इति. अत्र च तिथिद्वैधे सर्वैः प्रदोषव्यापित्वेनैव सर्वेषां निर्णय: क्रियते. युक्तं तु अविद्धात्वेन वैष्णवानाम्, इतरेषां प्रदोषव्यापित्वेन इति.

''**अनङ्गेन समायुक्ता न सोपोष्या चतुर्दशी,**
पूर्णायुक्तां तु कुर्वीत नरसिंहस्य तुष्टये,
य: करोति नरो मोहात् कामविद्धां चतुर्दशीम्,
धनापत्यैः वियुज्येत तस्मात् तां परिवर्जयेद्''

इति गोविन्दार्णवे समयमयूखे च ब्राह्मात्.

''**केवलं च प्रकर्त्तव्यं मद्दिनं फलकांक्षिभि:,**
वैष्णवैस्तु न कर्त्तव्या स्मरविद्धा चतुर्द्दशी''

इति नारसिंहाच्च. एतदुत्तरार्द्धं बहवो न लिखन्ति. तथा सति सर्वेषामेव अविद्धात्वेन निर्णयः उचित: प्रतिभाति, विशेषशास्त्रत्वात्. न च विद्धानिषेधवाक्यं दिनद्वये प्रदोषव्याप्त्यऽव्याप्ति-समैकदेशव्याप्तिविषयम् इति वाच्यं, जन्मकालस्य पूर्वम् उपपादितत्वेन तादृशकाले अनङ्गसम्बन्धस्य स्वल्पतया द्वित्रिमुहूर्त्तात्मकताभावाद् वेधस्वरूपाभावेन वाक्यवैयर्थ्यापातात्. न च प्रादुर्भावकालस्य त्रिमुहूर्त्ताद्यात्मकत्वं वक्तुं शक्यम्, दूषितचरत्वात्. नापि वेधस्य कलाकाष्ठाद्यात्मकत्वं, तादृग्वचनाभावात्. अतो

युग्मवाक्यानुगुण्यात् ''**शुक्ला चतुर्दशी ग्राह्या परविद्धा सदा व्रते**'' इति व्यासवाक्याच्च प्रात:कामवेधरहितैव आदरणीया क्षयाभावे. क्षये तु अगत्या विद्धैव. जन्माष्टमीरीतिस्तु अत्र अनुसर्त्तुम् अशक्यैव. श्रीमदाचार्यैः तत्र नवम्याम् उत्सवाधिकरणत्वस्य दर्शितत्वात्. पौर्णमास्यां च तज्ज्ञापकाभावाद् इति दिक्. इदं च व्रतं प्रायिकत्वेन प्रभूणाम् अभिमतम्, 'चेद्' इति उक्ते:. तत्र बीजं तु माध्वलिखितानि वचांसि. तानि तु रामनवमीस्थलएव उदाहृतानि. तदाशयश्च[१] सर्वनिर्णयप्रकाशे विवेच्य:. इति वैशाखोत्सवा:.

[कठिनांशटिप्पणी: १.अत्र नृसिंहजयन्त्यां चेत् 'पदमहा'पदाभ्यां तयो: प्रायिकत्वं बोधितम्. तत्र बीजं तु इदं प्रतिभाति. श्रीभागवते एतयोः अवतारत्वेन निरूपणाद् नृसिंहतापिनीये च 'विष्णोर्नुकम्' इति श्रुतौ पूर्णतानिरूपणाद् उपासकबाहुल्यात् पुराणे व्रतविधायकानेकवचनदर्शनाच्च यस्य पुरुषोत्तमत्वस्फूर्तिः तेन कार्यम्. 'मदीयव्रतधारणमि'ति श्रीभागवता आज्ञापनात्. यस्य तु न तथा स्फूर्तिः तेन न कार्यम्. साक्षाद्व्रतस्य तं प्रति अभावेन तद्व्रताज्ञाया अपि अभावात्. तथा च तत्तदुपासकान् प्रत्येकनित्यत्वं न अन्यान् प्रत्यपि इति अधिकारिभेदम् आदाय कृताकृतत्वबोधनार्थे अयम् उक्तिः इति दिक्.]

ज्येष्ठमासोत्सवा:

ज्येष्ठाभिषेकोत्सव:

ज्येष्ठशुक्लपूर्णिमायां तत्समीपे वा ज्येष्ठायां ज्येष्ठाभिषेकोत्सव:. तदुक्तं ब्राह्मे

''**ज्येष्ठे मासि च सम्प्राप्ते नक्षत्रे चैन्द्रदैवते,**
पौर्णमास्यां तदा स्नानं सर्वकालं हरेः द्विजा:'' इति.

तथा

''**स्वर्णधर्मानुवाकेन स्नापयेत् पुरुषोत्तमम्**'' इति.

''**पौर्णमास्यां सूक्ततन्त्रै: स्नापयेद् विधिवद् विभुम्**'' इति च.

अत्र च पौर्णमास्याम् इति सामीप्यसप्तमी. तेन दोलोत्सववदेव एतद्व्यवस्था ज्ञेया. तिथिनक्षत्रयोगः चेत् प्रशस्ततरत्वं ज्ञेयम्

''**ज्यैष्ठ्यां ज्येष्ठर्क्षयुक्तायां य: पश्येत् पुरुषोत्तमम्,**
कुलैकविंशम् उद्धृत्य विष्णुलोकं स गच्छति''

इति ब्राह्मात्. यत्तु, स्कान्दे इन्द्रद्युम्नं प्रति भगवद्वाक्यम्

''**ज्यैष्ठ्याम् अहं चावतीर्णः तत्पुण्यं जन्मवासरम्,**
तस्यां मे स्नपनं कार्यं महास्नानविधानत:,
प्रत्यर्चायां महाराज साधिवासं समृद्धिमत्''

इति, तत्तु तत्क्षेत्रस्थस्वस्वरूपपरमेव इति प्रतिभाति.

''न्यग्रोधात् उत्तरे कुपः सर्वतीर्थमयोऽस्ति वै,
स्नानाय पूर्वं निर्माय किञ्चिदाच्छादितो भुवा,
अवतीर्णस्त्वहं पश्चात् तं विविच्य प्रकाशय,
संकार्यः स चतुर्दश्यां बलिं दत्वा विधानतः''

इति कूपविवेचनलिङ्गात्. एतेनैव

''ऋक्षाभावे पूर्णमास्यां यो विधिः स तथैव च,
कार्यः प्रसादनार्थं हि देवस्य पुरुषोत्तमे''

इति ब्राह्मम्.

''पौर्णमास्यां प्रकुर्वीत स्नानं श्रीपुरुषोत्तमे,
यदा ऋक्षं न लभ्येत तदा ग्राह्या तु पूर्णिमा''

इति स्कान्दं च व्याख्यातं ज्ञेयं, क्षेत्रनिर्देशाद् इति. यदि च न इदम् अभ्युपेयते तदा नक्षत्रं तिथिश्च उभयमपि कालो अस्तु व्यवस्था तु शिष्टाचारानुसारात्, कलौ तस्य बलीयस्त्वात्, तदुपपादितं प्राक्.

स्नानावशिष्टं जलं च सर्वाङ्गेषु अभ्युक्षणीयम्.

''स्नानशेषेण कृष्णस्य तोयेनात्माभिषिच्य वै,
वन्ध्या मृतप्रजा या वै दुर्भगा ग्रहपीडिताः,
राक्षस्याद्यैर्गृहीता वा तथा रोगैः ससंयुताः,
सद्यस्ताः स्नानशेषेण उदकेनाभिषेचिताः,
प्राप्नुवन्तीप्सितान् कामान् कामं वाञ्छन्ति चेप्सितम्,
पुत्रार्थी लभते पुत्रान् सौभाग्यं च सुखार्थिनी,
रोगार्त्ता मुच्यते रोगाद् धनं च धनकाङ्क्षिणी,
पुण्यानि यानि तोयानि तिष्ठन्ति धरणीतले,
तानि स्नानावशेषस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्,
तस्मात् स्नानावशेषं यत् कृष्णस्य सलिलं द्विजाः,
अभ्युक्षेत् सर्वगात्राणि सर्वकामप्रदं हि तत्''

इति ब्राह्मात्. इति ज्येष्ठोत्सवाः.

अथ आषाढमासोत्सवाः

रथोत्सवः

अथ आषाढे रथोत्सवः. तदुक्तं स्कान्दे,

''गुण्डिचाख्यां महायात्रां प्रकुर्वीथाः क्षितीश्वर,
यस्याः संकीर्त्तनादेव नरः पापाद् विमुच्यते,
माघमासस्य पञ्चम्याम् अष्टम्यां चैत्रशुक्लके,
एते कालाः प्रशस्ता हि गुण्डिचाख्यमहोत्सवे,
विशेषान् मोक्षदाऽऽषाढद्वितीया पुष्यसंयुता,
ऋक्षाभावे तिथौ कार्या सदा सा प्रीतये मम,
आषाढस्य सिते पक्षे द्वितीया पुष्यसंयुता,
तस्यां रथे समारोप्य रामं मां भद्रया सह,
महोत्सवं प्रवर्त्याथ प्रीणयेत द्विजान् बहून्,
गुण्डिचामण्डपं नाम यत्राऽहमजनं पुरा''

इत्यादिना च मण्डपप्रशंसाम् उक्त्वा **''दिनानि नव यास्यामि यथा तस्माद् इहाऽऽगतः''** इत्यादिना. तेन रथारोहणं गुण्डिचामण्डपगमनार्थं तद्यात्राङ्गभूतं च. शिष्टास्तु केवलमपि प्राधान्येन कुर्वन्ति. तत्र बहूनां कालानाम् उक्तत्वाद् नक्षत्रप्राधान्यस्य उपपादितत्वाच्च ज्येष्ठाभिषेकवदेव निर्णयः इति अलं विस्तरेण.

शयनोत्सवः

अत्र शुक्लैकादश्यां शयनोत्सव उक्तः. स च सम्प्रदायाभावाद् न क्रियते इति न विविच्यते. कश्चित् श्रद्धया आचरति चेद् निर्मले करोतु, एकादशीं च प्रबोधिनीवद् गृह्णातु इति दिक्. इति आषाढोत्सवः.

अथ श्रावणमासोत्सवाः

पवित्रारोपणोत्सवः

अथ श्रावणशुक्लैकादश्यां पवित्रारोपणोत्सवः. स च हेमाद्रौ विष्णुरहस्ये उक्तः

''श्रावणस्य सिते पक्षे कर्कटस्थे दिवाकरे,
द्वादश्यां वासुदेवस्य पवित्रारोपणं स्मृतम्,
द्वादश्यां श्रवणे वापि पञ्चम्याम् अथवा द्विज,
आनुकूल्येषु कर्त्तव्यं पञ्चदश्याम् अथापि वा,

मुख्यालाभे हि सर्वत्र यावद् नोत्तिष्ठते हरिः''

इति. 'सर्वत्रे'ति सर्वमासेषु इति अर्थः. अत्र ''कर्कटस्थे दिवाकरे'' इति मलमाससंग्राहकम्. परं शिष्टा न आद्रियन्ते, अन्यगतिसद्भावात्. न च काचित् शङ्कापि, एकदेशविकृतत्वाद् इति. अत्र प्रथमो 'द्वादशी'शब्दः[पा.भे.] एकादशीपरः, अन्यथा पुनः तदुक्तिवैयर्थ्यापातात्. न च लक्षणापत्तिः,

''पक्षे-पक्षे नृपश्रेष्ठ विधिवद् द्वादशीव्रतम्,
दशमीवेधरहितं कुरुषे जागरान्वितम्.
चक्षुर्हीनो यथा देहः पतिहीना यथाङ्गना,
द्वादशी दशमीविद्धा तथा राष्ट्रम् अवैष्णवम्''

इत्यादिभिः हरिवल्लभसुधोदयस्थपाद्मवचनैः **''दशम्यनुगता हन्ति द्वादशी द्वादशीफलम्''** इति निर्णयसिन्धुस्थकौर्मेण तथा विधैः वाराहवचनैः च एकादशी-पर्यायता-निश्चयात्. न[१] च पाद्मानाम् उन्मीलिनीद्वादशीप्रकरणस्थत्वात् न इदं साम्प्रतम् इति वाच्यं, लिङ्गेन प्रकरणबाधस्य शक्यवचनत्वात्.

किञ्च, **''सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा, उन्मीलिनीति सा प्रोक्ता''** इति लक्षणकायां तस्यां दशमीवेधसम्भावनाराहित्येन अरुणोदयादिवेधादरणे च एकादशी-वाचकत्वस्यैव पर्यवसानेन न कोपि शङ्कालेशः इति.

न च एवम् अतिप्रसङ्गः इति वाच्यम्, लिङ्गपुनरुक्त्यादिसत्वएव तथा अङ्गीकारात्. नापि द्वितीयद्वादशीशब्दस्य अनुवादकत्वं साम्प्रतं, मानाभावात्. यत्तु 'द्वितीयद्वादशी'पदे श्रवणसमभिव्याहारात् तस्य श्रवणद्वादशीपरत्वं तस्याश्च मुख्यतरत्वम् इति अङ्गीकृत्य प्रथमस्य तस्य द्वादशीपरत्वं तस्याश्च प्रथमोद्दिष्टत्वाद् मुख्यतमत्वम् इति कश्चिद् आह तदपि अविचारचारु. **''सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेद्''** इत्यादिवद् मुख्यतमादिपदाभावेन अत्र तादृक्कल्पनायां मानाभावात्. प्रथम-द्वादश्यतिरिक्तेषु मासत्यागापत्तेश्च इति अनुवादलक्षणस्य अप्रामाण्यापत्तेश्च. विधेयान्तराभावे केवलस्य विध्यनुवादस्य क्वापि अदर्शनाद् निषेधस्थलेऽपि देवता-विग्रहवादिमते अनुवादानङ्गीकाराद् जैमिन्यपेक्षया व्यासस्य उभयथापि गुरुत्वाद् आचार्यचरणैरपि तथाङ्गीकारात्. तस्माद् एकादशी मुख्यः कालः. तदलाभे च द्वादश्यादयः इत्येव युक्तम्. ये[२] च एवं न आन्द्रियन्ते ते बोधविधुराएव इति दिक्.

आनुकूल्यं च अत्र दशमीवेधराहित्यरूपं[३] ज्ञेयम्. यद्यपि तदुपवासएव

आवश्यकः. तथापि, विष्णुधर्मोत्तरे नारदेन वेधदोषकारणे पृष्टे भगवता

''दशम्याम् असुरा जाता एकादश्यां सुरास्तथा,

यत्तु जन्मदिनं येषां तत्तेषामेव वर्द्धनम्''

इत्यादिना वेधत्याज्यताबीजम् उक्तम् तत् पुण्यकार्यान्तरेऽपि तुल्यम् इति प्रकृतेऽपि तद्विवक्षितमेव. अन्यथा आनुकूल्येषु इति न शिष्यात्. हरिवासरत्वेन भगवदानुकूल्यं तु अत्रैव पर्यवस्यति. फलानुकूल्यमपि अत्रैवेति न कोपि शङ्कालेशः. एतेनैव[४] भद्राराहित्यमपि सङ्गृहीतं ज्ञेयम्. एवं द्वादश्यादिष्वपि ऊह्यम्.

[कठिनांशटिप्पणीः १.फलानुपलम्भेन विप्रतिपन्नत्वेन च लक्षणां वक्तुम् अशक्यत्वाच्च. अस्तु वा लक्षणा. तथापि न अस्माकं हानिः. तथापि एकादशीपरत्वप्राप्तेः.

२.अत्र किञ्चिद् भेदेन पाठद्वयं दृश्यते, 'यत्तु'इत्यादि 'मासत्यागापत्तिश्च'इत्यन्तो ग्रन्थश्च न दृश्यते.

''विधेयान्तराभावे केवलस्य विध्यनुवादस्य क्वापि अदर्शनात्. निषेधस्थलेऽपि देवताविग्रहवादिमते अनुवादानङ्गीकारात्. जैमिन्यपेक्षया व्यासस्य उभयथाऽपि गुरुत्वात्. आचार्यचरणैरपि तथैव अङ्गीकारात्. ग्रहिलतया अङ्गीकारेपि अनुवादलक्षणस्य तस्य अदर्शनात्. ''न चान्तरिक्षे न दिवि'' इत्यादिवत् नित्यानुवादरूपत्वम्. देवताविग्रहवादादरणेन तत्रापि तदनङ्गीकारात्. अतएव आचार्यचरणैरपि व्यासाविरोधेनैव जैमिनेः प्रामाण्यम् अङ्गीकृतम् अतो न कोपि शङ्कालेशः.

(ख-ग पुस्तकेऽपि एवमेव पाठः)

३.दशमीवेधस्य पापापादकत्वात् तद्राहित्यम् उक्तम्. एतेन व्यतीपातादीनां पुण्यापादकत्वात् तद्राहित्यं न विवक्षितम् इति बोध्यम्.

४.व्यतीपातादीनां पुण्यानुकूलत्वाद् न दोषः. भद्रायास्तु ''भद्रायां द्वे न कर्तव्ये'' इति वाक्ये दिनकरोद्योतादिनिबन्धेषु 'श्रावणी'पदेन तन्मासस्थम् अन्यदपि ग्राह्यम् इति व्याख्यानाद् व्यतीपातादीनां पुण्यानुगुणत्वेन तद्दोषस्य अनुक्तत्वात् शिष्टैः भद्राराहित्यमात्राङ्गीकृतम्. अस्मद्गुरुचरणैरपि तदेव अनूदितम् इति ज्ञेयम्. 'फलानुकूल्यमप्यत्रैवे'ति तेन तदनुगुणत्वेन दोषाभावोपि उक्तः.]

पाठभेदः १.''...शब्दः ''सूतके मृतके वापि न त्याज्यं द्वादशीव्रतम्'' इति अत्रैव समुदायशक्त्यैकादशीपरः'' इति ख पुस्तके अधिकम् उपलभ्यते.

पवित्रारोपणम्

पवित्रारोपणं नित्यं काम्यं च. तदुक्तं दिनकरोद्द्योते हेमाद्रौ ब्राह्मे

''ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः तथा स्त्रीशूद्रएव च,

स्वधर्मनिरताः सर्वे भक्त्या कुर्युः पवित्रकम्,

न करोति विधानेन पवित्रारोपणं तु यः,

तस्य सांवत्सरी पूजा निष्फला मुनिसत्तम,

तस्माद् भक्तिसमायुक्तैः नरैः विष्णुपरायणैः,

वर्षे–वर्षे प्रकर्त्तव्यं पवित्रारोपणं हरेः''

इति. तथा

''पवित्रारोपणं विष्णोः भक्तिरत्नप्रदायकम्,
स्त्रीपुंकीर्तिप्रदं पुण्यं सुखसम्पद्धनावहम्''

इति. तत्प्रकारश्च रामार्चनचन्द्रिकायां प्रयोगसारोक्तः

''पवित्रो नाम नागो वासुक्यवरजः. दिव्यशतवर्षतपसा शिवं तोषयित्वा कण्ठाभरणतां वव्रे. तदा शिवः तथेत्युक्त्वा कण्ठे धारयन् वरान्तरं ददौ''.

''ये त्वां न बहुमन्यन्ते यथा सम्भावितो मया,
जपहोमादिजं तेषा फलं त्वामेतु निश्चयात्,
अत्रैव श्रावणे मासि नक्षत्रे चापि वैष्णवे,
तस्माद् आराधयन्तु त्वां नित्यनैमित्तकोद्यताः,
वैदिकाः सक्तुहोमेन प्राज्ञां कुर्वन्तु तेऽनघ,
त्वत्सादृश्यानुकारेण निवीतेनैव तान्त्रिकाः.
आराध्यारोप्य पूज्यायै देवतायै पवित्रकम्''

इति पवित्रोत्पत्तिम् उक्त्वा ततः आगमोक्तप्रकारेण सूत्रशुद्ध्यादिरूपां कर्त्तव्यताम् उक्त्वा बहुभिः वचनैः उक्तः. स तान्त्रिकाणामेव आवश्यको न तु केवलभक्तानाम्. अतो यावद् आवश्यकं तावदेव संगृह्यते. तत्र भावस्य गुणक्षोभेण नवविधत्वात् त्रिसूत्रत्रिवृत्करणम्, तत्र सांवत्सरपूजासाङ्गत्वाय क्रियमाणत्वात् सूत्रसंख्या, नागाकारत्वाय ग्रन्थयः, देवसान्निध्याय अधिवासनं च इति अत्यावश्यकम्. तत्र

''हैमरौप्यैः ताम्रक्षौमैः सूत्रैः कौशेयपद्मजैः,
कुशैः काशैश्च कार्पासैः ब्राह्मण्या कर्तितैः शुभैः,
कन्याया वा पवित्रं स्याद् न पुंश्चल्यादिभिः कृतैः,
कृते मणिमयं कार्यं त्रेतायां हेमसम्भवम्,
द्वापरे पट्टसूत्रं च कलौ कार्पासमुच्यते,
स्नात्वा त्रिगुणितं सूत्रं त्रिगुणीकृत्य शोधयेत्,
अभिषिञ्चेत् पञ्चगव्यैः अद्भिः प्रक्षालयेत् ततः''

इति तथा.

''तत्रोत्तमं पवित्रं तु षष्ट्या सह शतैस्त्रिभिः,
सप्तत्या सहितं द्वाभ्यां पवित्रं मध्यमं स्मृतम्,
साशीतिना शतेनैव कनिष्ठं तत् समाचरेत्,

उत्तमं तु शतग्रन्थि पञ्चाशद्ग्रन्थि मध्यमम्,
कनिष्ठं तु पवित्रं स्यात् षट्त्रिंशदग्रन्थिशोभनम्,
षट्त्रिंशच्च चतुर्विंशद् द्वादशेति च केचन,
चतुर्विंशद् द्वादशाष्टावित्येके मुनयो विदुः''

इति. हेमाद्रौ विष्णुरहस्ये

''**अष्टोत्तरशतं कुर्याद् चतुःपञ्चाशदेव वा,**
सप्तविंशतिरेव स्याद् ज्येष्ठमध्यकनीयसाम्''

इति. वाराहे चातुर्मास्यमाहात्म्ये तु

''**पूर्णिमायां ततः कुर्यात् पवित्राणां समर्पणम्,**
नानावर्णैः पट्टसूत्रैः निर्मितानि समर्पयेत्,
पवित्राणि ततो दद्याद् दक्षिणाभिः सहैव तु,
ब्राह्मणेभ्यः स्वयं चापि भक्त्या कण्ठेऽथवा करे,
विभृयाद् ब्राह्मणेभ्यश्च दत्तं भवति चाक्षयम्''

इति उक्तम्. रामार्चनचन्द्रिकायाम्

''**अङ्गुष्ठपर्वमात्रं तु कुर्याद् ग्रन्थिम् अथोत्तमे,**
तदर्द्धेन तदर्द्धेन मध्यमे च कनिष्ठके,
ग्रन्थीन् कुर्वीत सर्वत्र सुवृत्तान् सुमनोहरान्,
न वै विषमसङ्ख्याकान् ग्रन्थीन् कुर्वीत कुत्रचित्,
विशोभसूत्रादानेन कर्त्तुः स्याद् अशुभं फलम्,
पवित्रं परया भक्त्या तस्मात् कुर्वीत शोभनम्,
कुङ्कुमं रोचनं चैव कर्पूरेण विमिश्रितम्,
तेन संरंजयेत् सूत्रम्'' इति उक्तम्.

तथा

''**मासं पक्षमहोरात्रं त्रिरात्रं धारयेत् तथा,**
देवे तं सूत्रसन्दर्भं देशकालविवक्षया'' इति.

तथा

''**ततः पवित्रं गुरवे दद्यात् गन्धादिपूर्वकम्,**
अथैनं पूजयेद् भक्त्या स्वर्णवस्त्रानुलेपनैः'' इति.

तथा

''**ततः पवित्रं गुरवे दद्यात् गन्धादिपूर्वकम्,**
अथैनं पूजयेद् भक्त्या स्वर्णवस्त्रानुलेपनैः'' इति.

तथा

''पवित्रारोपणं काले न करोति कथञ्चन,
तदाऽयुतं जपेत् मन्त्रं पुनः स्तोत्रं समाचरेत्''

इति प्रायश्चितमपि प्रमादेन अकरणे उक्तम्.

अधिवासनं गन्धमाल्याद्यैः संस्कारः. सूत्रादिदेवतास्तु प्रायो न सम्मता मार्गान्तरीया इति. अधिवासनं तु सूत्रात्मना अनुस्यूतत्वात् सामान्येन आरोपिताया वार्षिकपूजाया एव आधिदैविकत्वाय इतिज्ञातव्यम्. तेन न कोऽपि शङ्कालेशः इति दिक्.

रक्षाबन्धनोत्सवः

श्रावण्यां[१] पौर्णमास्यां रक्षाबन्धनोत्सवः. स च भद्रारहितायां कार्यः

''भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा,
श्रावणी नृपतिं हन्ति राष्ट्रं हन्ति च फाल्गुनी''

इति वाक्यात्.

''नन्दाया दर्शने रक्षा बलिदानं दशासु च,
भद्रायां गोकुलक्रीडा स देशो वै विनश्यति''

इति वाक्यात् च इति दिक्. इति श्रावणोत्सवाः.

आलोच्य श्रीमदाचार्य–श्रीमत्प्रभुसरस्वतीम्।।
सम्प्रदायं च निश्चित्य प्रभुपौत्रीयनिर्णयैः।।१।।
तत्कृपाबलमाश्रित्य संक्षिप्तवरयुक्तिभिः।।
सम्प्रदायाज्ञजनताकृत[*] शङ्काकुले जने।।२।।
पद्धतिं निर्मलीकर्तुं व्रजराजैः विनिर्मिताम्।।
संवत्सरोत्सवानेहोनिर्णयोऽयं[२] मया कृतः।।३।।
प्रभवस्तेन तुष्यन्तु यन्मयोक्तम् अबोधतः।।
तत्क्षाम्यन्तु यथा मन्तुनिचयो न भवेद् मयि।।४।।

इति श्रीमत्प्रभुपदारविन्दमकरन्दप्राप्तिप्राप्तपुरुषोत्तमाभिधानेन विरचितः
संवत्सरोत्सवकालनिर्णयप्रतानः सम्पूर्णः.

* ''शङ्काकलंकिकाम्'' इति ख, ''शङ्काकलंकितम्'' इति ग पाठः.

[कठिनांशटिप्पणी: १.भविष्ये देवादिषु रक्षाबन्धनानन्तरे सति कथनात् पूर्वं भगवति रक्षाबन्धनं आवश्यकम् इति. २.अनेहसां कालानां निर्णय:.

कैश्चित् प्राचीनैः विरचिता प्रतानटिप्पणी समाप्ता

इयं टिप्पणी सं. १७५८ तमेब्दे सुरतनगरे लिखिते प्रतानपुस्तके लिखितोपलब्धा. भाषासौष्ठवात् विचारगाम्भीर्यात् श्रीपुरुषोत्तमानां स्वगुरुचरणत्वेन (टिप्पण्यां) निर्देशात् तच्छिष्यकोटिस्थेन केनापि विरचिता अत: प्राचीना इति अवगम्यते.]

।।द्रव्यशुद्धिः ।।

(भावदर्शिनी व्रजभाषाटीका)

अनुक्रमणिका.

गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमचरण विरचिता

।।द्रव्यशुद्धिः।।

(भावदर्शिनी व्रजभाषाटीका)

श्रीवल्लभाचार्यजीकूं नमन करके, भगवत्सेवामें उपकार करवेवारी बाहर-भीतरकी पदार्थकी शुद्धिको विचार या ग्रन्थमें करो जाय हे.१

अनेक धर्मशास्त्रके ग्रन्थनमें द्रव्यशुद्धीको विवेकपूर्वक विचार कियो हे, पर वो मन्दबुद्धिनके समझमें नहीं आवे हे तासूं ये ग्रन्थ बनायो जाय हे.२

१. स्नान तथा आचमन को विचार

प्रायश्चित्त प्रकरणमें याज्ञवल्क्यको एसो वचन हे के

''रजस्वला, शव, चाण्डाल, पतित, सूतिका(स्वावडवारी), शावाशौची(सूतकी) इनको जो स्पर्श भयो होय तो सचैलस्नान करनो. ओर रजस्वलादिकने जाकूं छूयो हे वो जो ओरकूं छूले तथा वो भी ओरकूं छूले तो वा तृतीयकूं आचमन करनो ओर ''आपोहिष्ठा'' इत्यादि ३ मन्त्रनको जप करनो और गायत्रीको मनसूं एक बेर जप करें''.

यहां 'तै:' ये बहुवचन कह्यो हे तासूं ओर भी जो कोई अपवित्र हें उनके स्पर्शमें आचमन करनो चहिये एसें यहां शास्त्रार्थसूं सिद्ध होय हे. तासूं रजस्वलाप्रभृतिके स्पर्शमें सचैलस्नान करनो. अपरार्कमें मनुवचन एसो हे के शवस्पर्शिके स्पर्शमें भी स्नान करनो चहिये. मर्यादासिन्धुमें या मनुवाक्यको एसो अर्थ करो हे के, रजस्वलादिने जाकूं छूयो होय वाने ओरकूं छूयो होय तो वा तीसरेकूं भी सचैलस्नान ही करनो चहिये. च्यवनऋषिको वचन एसो हे जो

''कुत्ता, चाण्डाल, प्रेतधूम(मुर्दाको धूंआ) देवद्रव्यसूं जीवेवारो, ग्रामयाजक (सगरेगामकूं यजन करायवेवारो), सोमवल्लीको बेचवेवारो, चिति(मुर्दाकीचिता/चिताके ताईं आयो काष्ठ), मद्य, मद्यकोपात्र, गीलो हाड, शवस्पर्शी, महापातकी, शव(मुर्दा) इनमेसूं काहूको भी स्पर्श भयो होय तो सचैलस्नान जलमें उतरकें करनो. फिर अग्निको स्पर्श करके

आठसे गायत्रीको जप करनो. फिर घी थोडो खायकें दूसरी बेर शुद्धस्नान करनो, फिर आचमन तीन बेर करनो तब शुद्ध होय हे''.

तासूं सिद्धान्त ये भयो के, रजस्वलादिके स्पर्शमें भी तथा उनके स्पर्शीनके स्पर्शमें भी सचैलस्नान ही करनो. इन सिवाय ओर जो कोई अपवित्र हें, जिनको नाम अगाडी लियो जायगो, उनके स्पर्शमें आचमन करनो ये बात याज्ञवल्क्यके वचनसूं अगाडी दिखाई जायगी.

अब यहां रजस्वलादि स्पर्शमें ओर भी विशेष दिखायो जाय हे. मर्यादासिन्धुमें पराशर वचन कह्यो हे के ''जो रजस्वलाको स्पर्श साक्षात् भयो होय अथवा वस्त्रादिकके अन्तरसूं भयो होय, पर सचैल स्नान ही करनो चहिये''. चारों वर्णकी रजस्वलामेंसूं कोई वर्णकी रजस्वला होय पर उनके स्पर्शमें समान अशुद्धि होय हे, तासूं सचैल स्नान करनो एसो ऋषिनको मत हे.

२. वस्त्रादिकके स्पर्शमें तथा बुद्धिपूर्वक स्पर्शमें स्नानादिको विचार

पृथ्वीचन्द्रोदयमें प्रचेता ऋषिको वचन हे के ''वस्त्रादिकके अन्तरसूं भी जो स्पर्श हे वो साक्षात्स्पर्श ही कहवावे हे ओर वामें भी जो साक्षात्स्पर्शकी शुद्धि हे सो ही करनी''.

पराशरको मत एसो हे के ''जाके छूएसूं स्नान करनो पडे वाकूं जो काष्ठ इत्यादिसू छूयो होय तो आचमनसूं शुद्धि होय हे, जेसे नावमें ओर लोग भी बेठे होंय तो भी आचमनसूं शुद्धि होय हे तेसें''.

सबको सार ये हे चाण्डाल, रजस्वला, महापातकी, सूतिका(स्वावडवारी) शव, इनको वस्त्र, काष्ठसूं भी जो स्पर्श करो होय तो भी सचैल स्नान करनो. ओर सूतकीको स्पर्श काष्ठादिकसूं करो होय तो आचमनसूं शुद्धि होय हे. क्योंकि सूतकीको नित्य सूतक ओछो होतो जाय हे. तासूं याज्ञवल्क्यको मत जो पहले कह आए के रजस्वलादि सिवाय ओर अपवित्रके स्पर्शमें आचमनसूं शुद्धि होय हे ये बात भी सङ्गत होय हे. रजस्वलादिकने जाकूं छूयो, वाने ओरकूं छूयो, वाने ओरकूं छूयो होय तो वा तीसरेकूं आचमनसूं ही शुद्धि समझनी एसो संवर्तको मत हे. ओर वस्त्रादिक पदार्थ रजस्वलादिसूं छूए होंय उनसूं ओर वस्त्र छूय जाय, उनसूं ओर छूएं तो विन तीसरे वस्त्रनकी प्रोक्षणसूं ही शुद्धि हे. तीसरे वस्त्रादिक की शुद्धि प्रोक्षणसूं होय हे ये बात 'तथा' इन अक्षरनके स्वारस्यसूं सिद्ध होय हे. तीसरेकूं आचमनसूं होय हे ये बात बुद्धिपूर्वक स्पर्श न करो होय तहां ही समझनो. क्योंके बुद्धिपूर्वक स्पर्शमें गौतमने

तीसरेकूं भी सचैल स्नान ही करनो बतायो हे. मर्यादासिन्धुमें देवल ऋषिको वचन भी एसो हे के तीसरेकूं स्नानसूं ओर चोथेकूं आचमनसूं शुद्धि होय हे. एसे ही वस्त्रादिक जो तीसरे हें उनकूं धोनो ओर चोथेनकूं प्रोक्षण करनो. ओर एकने रजस्वलादिको स्पर्श बिना जाने कियो ओर दूसरेने वाको स्पर्श जानके कर्योहोय तथा तीसरेने दूसरेकूं भी जानके छूयो होय तो वा तीसरे कूं स्नान लगे हे. तथा जहां पहलेने जानके स्पर्श कियो ओरननें फिर उनको स्पर्श अनजाने कियो होवे वा पक्षमें भी तीसरेकूं स्नान समझनो. ओर विशेष द्रव्यशुद्धि प्रकार अमेध्यादि स्पृष्ट पात्रके विचारके प्रकरणमें कहेंगे.

रजस्वलादिके स्पर्श भए पे स्नान केसें करनो ये बात संवर्त ऋषीने अच्छी रीतिसूं बताई हे सो अगाडी कही जाय हे.

३. शीतोदक–उष्णोदकसूं स्नानको विचार

रजस्वलादिकसूं स्पर्श भयो होय तो तीर्थादिकमें जायके शीतोदकसूं स्नान करनो चहिये. मनुने एसे प्रकरणमें उष्ण जलसूं न्हायवेको निषेध कियो हे तासूं, ओर जो तीर्थादिक न होय तो उष्ण जलसूं भी स्नान शंखऋषिने करनो बतायो हे. तासूं नित्य, नैमितक, काम्य क्रियाङ्ग(कर्माङ्गभूत) मलस्नान —ये स्नान तीर्थाभावमें उष्णोदकसूं भी करने. रात्रिमें भी अपवित्र स्पर्शमें स्नान करवेमें दोष नहीं हे.

४. रात्रिमें स्नान करवेको विचार

‘‘चाण्डाल रजस्वलादिको रात्रिमें स्पर्श भयो होय तो रात्रिमें ही स्नान करनो’’ एसो यमको वचन हे. जो रात्रिकूं अज्ञानसूं नहीं न्हाय तो, वाको वो दोष शतगुण होय जाय हे. या विषयमें पराशर ऋषिने विशेष कह्यो हे. यथा

> ‘‘जो सूर्यास्त भये पे चाण्डाल, रजस्वला, पतित, स्वावडवारी आदि अपवित्रनसूं छूयो होय तो रात्रिमें जलाशयमें स्नान करवेको तथा आचमन करवेको निषेध हे. तासूं दिवसमें जो जल जलाशयमेंसूं निकासो होय वासूं स्नान करनो. स्नानके जलमें सुवर्ण डारनो, पासमें अग्नि जरावनो, ब्राह्मणकी आज्ञा लेनो, आकाशकूं देखनो, फिर स्नान करेसूं शुद्धि होय हे’’.

देवल ऋषिको भी ये ही मत हे. जल निकासकें स्नान करेसूं जो ये शुद्धि बताई हे सो रजस्वलादि स्पर्शमें ही समझनी. शवस्पर्शमें तथा शवस्पर्शीके स्पर्शमें तो जलाशयमें उतरके स्नान करेसूं ही शुद्धि होय हे एसो वृद्धशातातप ऋषिको मत हे. ओर

रजस्वलादि स्पर्शमें भी जो दिनको निकासो जल हाजर नही होय तो जलाशयमें उतरकें भलें स्नान करे, पर अग्निकूं पास बरामनो चहिये. जो अग्नि भी हाजर न होय तो सोनेको छल्ला उङ्गरीमें पहरकें अथवा सोनेको तार ही उङ्गरीमें लिपेटके स्नान करेसूं शुद्धि होय हे एसो अत्रि ऋषिको मत हे.

५. रात्रिमें नदीप्रभृति जलाशयमें स्नान करवेको विचार

रात्रिमें नदीमें स्नान करवेको दूसरो प्रकार कात्यायन ऋषिने कह्यो हे के यद्यपि रात्रिमें जलमें प्रवेश करवेको तथा स्नान करवेको तथा जल निकासवेको निषेध हे पर ''धाम्नो–धाम्नोराजन्नितो वरुण नो मुञ्च'' ये जो तैत्तिरीय शाखाको मन्त्र हे ताकू पढकें, जलाशयमें रात्रिकूं भी स्नान करे तो देष नहीं हे. ओर रात्रिमें जलाशयमेंसू जल निकासनो होय तो जब तांई जल निकासे तब तांई प्राणायाम करे एसें बौधायन ऋषिको वचन 'मर्यादासिन्धु'में लिख्यो हे.

अब सबको सार ये हे जो दिनमें रजस्वलादिको स्पर्श भयो होय तो तीर्थादिकमें दिनमें ही शीतजलसूं स्नान करनो. ओर तीर्थादिक नहीं होय तो उष्णदकसूं अथवा पराएके घरके जलसूं स्नान करनो. ओर रात्रिमें जो रजस्वलादि स्पर्श भयो होय तो, रात्रिमें ही तीर्थपे जायकें अग्नि प्रज्वलित करकें ''धाम्नो'' इत्यादि पूर्वोक्त मन्त्र पढकें जलमें गोता मारनो. ओर तीर्थ न होय तो दिनमें निकासे भए जलसूं अथवा उष्णोदकसूं अथवा पराए जलसूं स्नान करनो. स्नानके जलमें सुवर्ण डारनो ओर पास अग्नि राखिके वाको दर्शन करते जानो. ओर अग्नि भी नही होय तो, सोनेको छल्ला अथवा तार हाथमें राखकें स्नान करनो. ओर वो भी न मिले तो पूर्वोक्त वस्तुमेंसूं जो मिले वो ही लेनी ओर रात्रिमें भी जल निकासकें स्नान करनो, फिर दोषकी निवृत्तिकें तांई प्राणायाम यताशक्ति करनो. ओर कछू भी न बन सके तो केवल हरिस्मरण करकें ही स्नान करे पर रात्रिमें अपवित्र ही न रह्यो आवे. ओर शवके स्पर्शमें तथा शवस्पर्शीनके स्पर्शमें तो जलाशयमें उतरके गोता मारेसूं ही शुद्धि होय हे. जलाशय नहीं होय तब तो केवल हरिस्मरणपूर्वक स्नान करेसूं शुद्धि होय हे एसो मालूम पडे हे. क्योंके अशुद्ध ही रहनो ये अनुचित हे. ओर प्रात:काल सूर्य उदयके अनन्तर फिर भी स्नान करे तब शुद्ध होय.

६. रात्रिमें जन्म–मरण वा रजोधर्म भयो होय ताको विचार

मिताक्षरामें कश्यप ऋषिको वचन हे के

१. सूर्योदयके पीछें अर्द्धरात्रपर्यन्त हर कोई समयमें स्त्रीकूं ऋतुधर्म भयो होय, अथवा काऊको जन्मभयो होय वा मरणभयो होय तो पहलो ही दिन माननो. म्लेच्छनकें जेसें रात्रि भए पे दूसरो दिनमाने हे तेसें नहीं माननो.
२. ओर रात्रिके तीन भाग करकें भी व्यवस्था करी हे. जेसें ३० घडी रात्रि होय तो २० घडी पहले दिनमें गिननीं ओर १० घडी बचीं सो दूसरे दिनमें माननी.
३. ओर एसो भी प्रमाण हे के रात्रिमें जन्म – मरण भयो होय वा ऋतुधर्म भयो होय तो जब तांई सूर्योदय न होय तब तांई पहले ही दिवस समझनो.

–इन पक्षनमें देशाचारसू व्यवस्था बांधनी योग्य हे. 'शुद्धिमयूख' ग्रन्थमें तो रात्रिको विभागपक्ष ही शिष्ट सम्मत हे एसें अधिक विचार कर्यो हे.

७. चतुर्थ दिवस प्रभृतिमें रजस्वलाकी शुद्धिको विचार

मिताक्षरामें स्मृत्यन्तरको वचन हे जो ''चतुर्थ दिवस स्नान करेसूं रजस्वला शुद्ध होय हे. ओर देवपूजा श्राद्ध इत्यादि कर्मके योग्य पांचमे दिवसमें होय हे''. ओर ''पञ्चम दिवसमें भी जो रजको संसर्ग होय तो वा दिन भी दैवपित्र्य कर्मके योग्य नहीं होय'' एसो मनुस्मृतिमें वाक्य हे.

देव – पितृ कर्ममें तो बिलकुल रजसंसर्ग न होय तब ही जायवेको अधिकार हे ये ही मत योग्य हे. सो ही वृद्धमनुने कह्यो हे के ''चोथे दिवस रजको संसर्ग होय तो स्नानसूं शुद्धि होय हे परन्तु देव–पितृ कर्मको तो अधिकार नहीं हे''. ओर परम्परासूं देव–पितृ कार्य करवेमें भी दोष नहीं हे. जेसें 'अन्न' संज्ञा जिनकी नहीं हे एसो सूखो चून – अनाज छूयवेमें दोष नहीं हे. तेसें ही शाकपत्र सम्हारवेमें भी दोष नहीं हे. पर साक्षात् पाक करवेमें तो दोष हे. ओर पञ्चम प्रभृति दिवसमें भी कभी रसोई करती वेर जो साडीमे रजो दोष मालूम पडे तो वा साडीकूं बदलके, अङ्गकूं शुद्ध करकें, दूसरी साडी पहरकें रसोई करनी.

८. अटकाववारी शुद्धि भये पीछे फिरसूं अटकाव दीखे ताको विचार

अत्रिऋषिको एसो मत हे के ''जो स्त्री एक बेर ऋतुधर्मसूं होय ओर वाकूं सत्रें दिनके भीतर फिर ऋतुधर्म मालूम पडे तो अशुद्धि नहीं माननी, अठारमें दिन जो मालूम पडे तो एक दिन अशुद्धि माननी, उन्नीसमें दिन जो मालूम पडे तो दो दिन अशुद्धि माननी ओर फिर बीसमें दिनसूं पूर्ण अटकाव माननो''. ओर जहां स्मृत्यन्तरमें एसो वाक्य हे के चौदमें दिवसके पहले अशुद्धि नहीं हे तहां एसो समझनोके चोथे दिवससूं

लेकें चौदमें दिन बताए हें. अटकावके तीन दिन जो वामें जोडेंगे तो सत्रह दिन ही होय जांयगे तासूं परस्पर विरोध कछू नहीं हे. अब ये जो सत्रह दिन ताईं फिर अटकाव दीखे तो न माननो ये बात वहां समझनी के जहां जाकूं बीस दिनके पहलें अटकाव आवतोई न होय. परन्तु जाकूं अठारे दिनके पहलें बहोत करकें अटकाव आवे ताकूं तो अठारे दिनके पहलें भी तीन दिनको पूरो ही अटकाव लगे हे, एसें मिताक्षरामें विज्ञानेश्वरने निर्णय करो हे. ओर जाकूं एक दिन ही अटकाव दीखके फिर न दीखे तब भी तीन दिनको ही माननो चहिये. एसो कश्यप तथा वशिष्ट ऋषिको वचन हे. ओर जाकूं अटकाव भएकी खबर नहीं पडे ओर पहरे भए वस्त्रमें दाग मालूम पडे तो घरमें जो–जो काम करे होय वे सब अशुद्ध होंय ओर तीन दिनकी अशुद्धि लगे हे एसो प्रजापतिको मत हे. ओर 'तत्त्वप्रकाशिका' ग्रन्थमें तथा 'धर्मप्रवृत्ति' ग्रन्थमें ज्ञान होय तबसु अशुद्धि होय एसो लिख्यो हे. यमस्मृतिमें भी एसें लिख्यो हे के

> ''व्यसन (विपत्ति)सूं, काम करवेसूं, निद्रासूं जो अटकावकी खबर न पडे तो पहलें जो पदार्थ छूए होंय वे कोई पदार्थ अशुद्ध नहि होंय हें. जाने पीछें जो–जो घरके पदार्थको स्पर्श करे तो जो–जो पदार्थ छूए उनकी शुद्धि करनी चहिये. जो माटीके पात्र छूए होंय तो उनकूं फेंक देने तथा उनमें जो घृत होय ताकूं तायलें तथा काष्ठके पात्रनकूं तथा मेष–महिषादिके शृङ्गनकूं तथा हाथी इत्यादिके दातनके पात्रनकूं छिलवाय लेनो. कांसेके पात्रनकूं सोबेर भस्म (राख)सूं मांजने. घरकूं गोबर माटी जलसूं लीपनो. धान्यकी शुद्धि प्रोक्षणसूं करनी. जाने–अजाने कोई भी पाप मिल गए होंय तथा ओर भी कोई अशुभ घरमें मिलो होय तो पुण्याहवाचन ब्राह्मणकी आज्ञासूं करनो चहिये. ओर अटकावको ज्ञान भयो होय तब पालनो तथा सन्देह मालूम पडे तो भी पालनो, स्नान करनो''

–इत्यादि सब विचार 'तत्वप्रकाशिका–धर्मप्रवृत्ति' में लिख्यो हे. जो इनके मतमें तो अटकावको ज्ञान होय तबसूं ही पालनो एसें सिद्ध होय हे. ओर 'स्मृत्यर्थसार' ग्रन्थमें एसें लिख्यो हे के पहलें अटकाव नहीं मालूम पड्यो होय पर जब मासपूर्तिके पीछें चार दिवसके भीतर मालूम पड्यो होय तब भी स्राव भयो होय तबको अनुमान करके स्राव जबसूं भयो होय तबसूं ही माननो, ज्ञान भलेंई पीछे भयो होय. ओर जन्म–मरणमें तो जब सुनी होय तबसूं अशुद्धि होय हे. तासूं जो कोई पापकी बात हे वो जबसूं बनी होय तबसूं ही वाको दोष हे, खबर भलेंई पीछे पडो. एसें ही अटकावमें खबर भलेंई पीछें पडो पर जबसूं वो भयो होय वाके अनुमानसूं ही अशुद्धि होय हे, एसें

स्मृत्यर्थसार कर्त्ताको मत हे.

सबको सार ये हे के जा स्त्रीकूं अटकावको महिना पूरो भयो होय ओर चार दिनके भीतर दूसरे-तीसरे दिन जो प्रत्यक्ष स्राव मालूम पड्यो होय तो पहलेसू ही स्रावको अनुमान करकें अशुद्धि माननी. ओर पांचमें दिवस जो स्रावको ज्ञान होय तो स्नानसूं शुद्धि होय हे. ओर महिनासूं चढकें जो ऋतुधर्मसूं होय ओर प्रत्यक्ष वाही समय जिनकूं स्राव मालूम पडे हे उनकूं तो वा समयसूं ही त्रिरात्र अशुद्धि समझनो.

ओर जा स्त्रीकूं अटकाव भयो ओर खबर वा समयमें न पडी होय ताकी छुई भई वस्तुनकी शुद्धिको ये प्रकार हे के जो साक्षात् वाने वस्त्र छूए हें विनकूं तो धोनो ही चहिये. साक्षात् नही छुए हें विनकूं गोमूत्र तथा सुवर्णके जलसूं ''अपवित्र: पवित्रो वा'' इत्यादि मन्त्र पढकें छींटा दे के ग्रहण करनो. ओर जा घरमें बहोत स्त्री रहती होय तहां जा स्त्रीकूं मेले कपडा होय उनमें रजोदोष नहीं मालूम पडतो होय तो भी अपने अटकाव होय वे ही अटकर लगायकें दिन गिनके पूर्वोक्त शुद्धि करनी. ओर जाकूं दिन गिनवेकी अटकर भी नहीं आवे तब तो पुण्याहवाचन करनो, भगवत्स्मरणपूर्वक सर्व स्पृष्ट वस्तुनकों प्रोक्षण करनो, क्योंके वा सिवाय ओर शुद्धि कहा करी जाय! ओर सन्धित(संधाना) ओर पर्पट(पापड) इन दोनोंकी तो 'अन्न'संज्ञा हे तासूं त्याग ही करनो चहिये.

९. रजस्वला अपवित्रको स्पर्श करे तथा अन्य रजस्वलाको स्पर्श करे ताको विचार

अपरार्कमें या विषयक बहोतसे वाक्य लिखे हें, पर उनको सार यहां कह्यो जाय हे. रजस्वला तथा सूतिका(स्वावडवारी) जो चाण्डालसूं छूय जाय तो त्रिरात्र उपवास करनो. ओर चाण्डाल-श्वपच (कुत्ताके मांसकूं खायवेवारो) इन दोनोनमेंसूं कोई भी रजस्वलाकूं छूए तो त्रिरात्र उपवास तथा पञ्चगव्य खानो चहिये एसें शातातपको मत हे. ओर कश्यपने शुद्धि भएपे चोथे दिन व्रत तथा पञ्चगव्याशन ओर बकरीसूं रजस्वलाकूं सूंघावनो चहिये एसें कह्यो हे. बृहस्पतिने एसें कह्यो हे के पतित (महापातकी) तथा श्वपच ये रजस्वलाकूं पहले दिन छूएं तो तीन दिन उपवास. दूसरे दिन छूए तो दो उपवास. तीसरे दिन छूए तो एक उपवास करनो चहिये. चोथे दिन छूएं तो चार प्रहरको उपोषण करनो, पर सब ये उपवास शुद्ध भएपे ही करने ओर ये न बने तो स्पर्श भएपे जब तांई स्नान नहीं करे तब तांईं उपोषण करे, स्नान करे पीछें तो कालसूं शुद्धि होय हे एसें शातातपऋषिने कह्यो हे. ओर ये भी न बने तो अहोरात्र उपवास करनो, पञ्चगव्य प्राशन करनो, सुवर्णदान ब्राह्मणभोजन करावनो.

ओर रजस्वला सगोत्र दूसरी रजस्वलाको स्पर्श करे तो स्नान करनो. समान गोत्रवारी न होय पर एक जातिकी रजस्वलाके स्पर्शमें स्नान करनो. क्षत्रियाकूं ब्राह्मणी छूए तो त्रिरात्र उपवास करनो. वैश्याकूं छूए तो पञ्चरात्र उपवास करे. शूद्राकूं छूए तो अर्द्धरात्रि उपवास करे, एसें वृद्धवसिष्ठने कह्यो हे.

मूत्रादि त्यागसमयमें रजस्वला कोई भी स्त्रीकूं मूत्रादि त्याग करती भईकूं छूए तो अहोरात्र उपवास करनो.

कुत्ता, जम्बूक(स्यारिआ), गधा इत्यादिको रजस्वलाकूं स्पर्श भयो होय तो चार प्रहर उपवास करनो, स्नान करनो, पञ्चगव्य खानो. इत्यादि अपरार्कमें बहोत बात कही हें.

१०. रजस्वलाके स्नानादिकको विचार

> रजस्वलाकूं चोथे दिन माथेकी चिकनाई–मेल निकासकें मलिन वस्त्रनकूं शुद्ध करवायकें स्नान करनो. दन्तधावन करनो तथा ६० बेर मृत्तिका लगायकें मलशुद्धि करनी. गोबर–जलसूं भी शरीरकी शुद्धि करनी. सचैल स्नान जलाशयमें करनो, घरमें नहीं करनो एसो पराशरको वचन हे. अत्रि ऋषिने कह्यो हे के रजस्वला चतुर्थ दिवस दन्तधावन करके ६० बेर मृत्तिका मलस्थानमें लगायके, सूर्योदय पीछे स्नान जलाशयमें करे. गोबर, माटी, भस्म इनसूं यथायोग्य मल दूर करे. स्नान करे पीछें उत्तम वस्त्र पहरकें गन्ध–पुष्पनसूं भूषित होयके सूर्यकी पूजा करे. ओर ''इन्द्र! दत्तवर(गर्भाधान द्यो)'' एसें अपने पतिकी इन्द्रभावसूं प्रार्थना करे. ऋतुस्नात स्त्री जाकूं स्नेहपूर्वक देखे तेसीही वाके सन्तान होय तासूं पतिकूं ही प्रथम देखे.

स्मृत्यर्थसारमें तो प्रात:काल स्नान करनो इतनो ही कह्यो हे, घरमें वा जलाशयमें सो विचार नहीं करो हे. साठ बेर मृत्तिका ब्राह्मणीकूं लगावनी, क्षत्रियाकूं ४५ बेर, वैश्याकूं ३४ बेर, शूद्राकूं २६ बेर ओर विधवाकूं द्विगुण मृत्तिका लगावनी. ओर ग्रन्थनमें तो चतुर्थ दिवस स्नानमात्र लिख्यो हे वाको प्रकार देश – काल नहीं बतायो हे. शिष्टाचार एसो भी हे जो पूर्वोक्त प्रकारसूं सूर्योदयोत्तर घरमें भी स्नान करनो. व्यासस्मृतिमें कह्यो हे सूर्योदयोत्तर सचैल स्नान करके पतिमुख देखके शुद्धि होय हे. देश – कालकी व्यवस्था सदाचारसूं तथा धर्मशास्त्रसूं समझनी. तलाव सर्वत्र तो होय ही नही हें, तासूं घरमें स्नान करनो भी योग्य हे. ओर देशकाल ये जो शास्त्रमें बताए हें सो

असहायतामें समझनो. अकेली स्त्री होय तो अत्यन्त शुद्धपूर्वक घरमें नहीं स्नान कर सके हे तथा सलज्ज तरुण स्त्री तलाव पे जायकें भी या दुष्ट कलियुगमें नहीं स्नान कर सके. तासूं घरमें स्नान करो होय तो गीली भूमि तथा रजस्वलाके रहवेको स्थान लेपादिसूं शुद्ध करनो. ओर पहले यमस्मृतिको वचन कह आये ता रीतिसूं गृहशुद्धि करनी. रजस्वलाके छुए जलकूं फेंकनो. क्योंकि देवल ऋषिने कह्यो हे के अक्षुब्ध जलाशय तथा बहते जलकूं रजस्वलादि छूए तो वे जल नहीं छूएं पर अपने घरके भरे जल छूए होंय तो वे अपवित्र होंय हें. तलाव, नदी, प्रभृतिमें भी जा घाटपे चाण्डालादिको संसर्ग तथा मलसंसर्ग होय वा घाटको त्याग करनो कह्यो हे तो घरके भरे जल तो रजस्वलाके स्पर्शमें त्याग करनो ही चहिये. गुर्जरदेशमें रजस्वलाकी छूई गीली भूमिको शोधन नहीं करे हें तथा जलको भी त्याग नहीं करे हें ये अनाचार ही हे. ओर मध्यदेशमें सारस्वतब्राह्मणनकी स्त्री तथा क्षत्रियादिकनकी स्त्री तीसरे दिन स्नान करे हें ये भी अनाचार हे. एसे ही शवको जिनने स्पर्श करो होय उनकूं भी अपने माथे और वस्त्रादिक की शुद्धि करनी चहिये. शवस्पृष्ट वस्त्रनकूं मृत्तिका लगायके धोने. ओर शवस्पर्शीकूं अपने अङ्गमें भस्म लगायकें स्नान करनो चहिये एसें स्मृत्यन्तरमें कह्यो हे ओर वैसो सदाचार भी हे. ओर उनके छूए जलकूं फेंक देनो.

अब रजस्वलादिक यदि अत्यन्त मांदी होय तो उनके स्नानको प्रकार यम, पराशर, उशना ऋषिनने बतायो हे. ज्वरके मारें आकुल जो रजस्वला स्त्री हे वाकूं दूसरी स्त्री छूय-छूयके सचैल स्नान करे तो रजस्वला स्त्रीकी शुद्धी होय. पर दश बेर अथवा १२ बेर ऐसें करेसूं तथा आचमन करेसूं शुद्धि होय हे. अन्तमें कपडा फेंक देने चहियें. एसे ही आतुरमात्र(रोगीमात्र) में समझनो. कछू दान भी करनो तथा पुण्याहवाचन करनो चहिये.

रजस्वला अवस्थामें ग्रहण आवे तो ग्रहणनिमित्त स्नान करवेमें दोष नहीं हे. निर्णयसिन्धुमें कह्यो हे ''ग्रहणमें होम-जप करवेमें दोष नहीं हे''. रजस्वलाकूं भी तीर्थमेंसूं जल निकासकें स्नान करानो चहिये एसें भार्गवार्चनदीपिकामें सूर्योदयनिबन्ध वाक्य हे. पराशर ऋषिको भी वचन हे के रजस्वलाकूं ग्रहणमें स्नान करनो चहिये. तीन दिनके भीतर ये ग्रहणको स्नान करके फिर जो-जो धर्म रजस्वलाके धर्मशास्त्रमें बताए हें वे सब पालने चहियें. एसें ही ओरनकूं भी राहुग्रस्त चन्द्रादिकको मोक्ष समयमें जब उदय होय तब वा ग्रहणकूं देखकें स्नान करनो. ओर स्नान करवे लायक अवकाश नहीं होय तो मार्जन करके दान करनो तथा मुक्तिस्नान करनो चहिये.

बालकादिकनकूं रजस्वलाको स्पर्श भयो होय तो शुद्धिमयूखमें हरिहरभाष्यस्थ

वृद्धशातातपको वचन लिखो हे के अन्नप्राशन न भयो होय एसे बालकको रजस्वलाको स्पर्श होयवेपे प्रोक्षण करनो. ओर मुंडन न भयो होय तब ताईं आचमन करावनो. ता पीछे तो स्नान ही चहिये. रजस्वलादिको देखो भयो अन्न भी अशुद्ध होय हे एसें शाततपने कह्यो हे ओर वाकी शुद्धि एसें बताई हे के जीवहिंसक, महापातकी, स्वावडवारी, रजस्वला, नास्तिक इनने जा अन्नकूं देखो होय वाको प्रोक्षण करनो, वामेसूं कछु निकास डारनो फिर खानो अथवा वा अन्नमें भस्म लगानी. अथवा जरती लकडीको वाकूं स्पर्श करानो अथवा चांदीको वा सोनेको स्पर्श करानो अथवा बकराकूं सुंघानो फिर खानो चहिये.

११. अन्य स्नानके निमित्तनको विचार

> ''दुःस्वप्नदीखो होय, ऋतुकालमें मैथुन करो होय अथवा अष्टमी, चौदस दिवसमें मैथुन करो होय, उलटी करी होय, दस्त लगे होंय, हजामत कराई होय, चिताको स्पर्श करो होय, पूय(राध) स्पर्श करो होय तो, श्मशानमें जानो भयो होय तो, गीलो अस्थिको स्पर्श करो होय तो स्नान करनो''

–एसो पराशर वाक्य हे. ऋतुकाल सिवाय मैथुनमें तो हस्त–पादके प्रक्षालनसूं तथा कुल्ला करेसूं शुद्धि होय हे एसो बृहस्पति वाक्य हे. ओर अष्टम्यादिकमें मैथुन करे तो सचैल स्नान करे ओर वारुणी ऋचासूं मार्जन करे एसें मिताक्षरा–अपरार्कमें स्मृत्यन्तर हे. ओर मर्यादासिन्धुमें तो भोजन समयमें उलटी करी होय अथवा भोजन करके उलटी करी होय तो स्नान नहीं करनो एसें आपस्तम्बने कह्यो हे. ओर शोक करे पे, अश्रुपात होयवे पे स्नान करनो कह्यो हे. गोविन्दराजने कह्यो हे के दश बेर जो दस्त जाय तो स्नान करनो. ओर मेधातिथिने ये कह्यो के [१]हरीतकी(हर्र) इत्यादि खाई होय, [२]रोगादिकसूं दस्त आठसूं जादें भए होंय तब स्नान करनो. [३]उलटी ओर दस्त दोनोंई भए होंय तो स्नान करनो –एसें तीन मत अधिक बताए हें.

पूय(राध)के स्पर्शमें स्नान जो पहलें बतायो तहां निष्कारण, वैद्य सिवाय, जो कोई स्पर्श करे ताकूं समझनो एसें लिङ्गपुराणमें वाक्य हे. अस्थि स्पर्शमें तो मनुस्मृतिमें विशेष कह्यो हे के मांस–मज्जा लगोभयो गीलो अस्थि ब्राह्मण छूए तो स्नान करनो चहिये. ओर सूखो छूए तो आचमन करनो, गायको स्पर्श करनो, सूर्यदर्शन करनो. ओर जानके सूखे भी हाडकूं छूए तो स्नानपूर्वक गायको स्पर्श करे, सूर्यदर्शन करे, हरिस्मरण करे तब शुद्धि होय. ओर अजीर्णके नाशमें सूर्योदयपर्यन्त निद्रा करी

होय, उल्टी करी होय, दु:खप्न दीखो होय, दुर्जन स्पर्श करो होय तो स्नान करनो. अजीर्णके मिटे पे जो यहां स्नान बतायो हे सो देवपूजनादिमें अधिकार होयवेके ताईं समझनो एसे मर्यादासिन्धुमें यम वाक्यको विवेचन कर्योहे. उदय–अस्तमय कालमें वीर्यपात करो होय तो तथा अक्षिस्पन्दन (आंख फरकनी)मे, कर्णाक्रोशनमें, चिताके चढवेमें, राधके छूयवेमें सचैल स्नान करके 'पुनर्मन:' या ऋचाको जप करनो, सात आहुति घृतकी महाव्याहृतिसूं अग्निमें होम करे तब शुद्ध होय एसो कश्यपको वाक्य हे. ओरनमें होम नहीं कह्यो हे.

चिता, चिताको काष्ठ, राध, चाण्डाल, देवलक (तीन बरसताईं द्रव्यको लोभसूं देवकी पूजा करवेवारो) इनके स्पर्शमें सचैल स्नान करनो एसें स्मृत्यन्तरमें वचन हे.

मिताक्षरामें ब्रह्माण्डपुराणको वचन हे के (वेदबहिष्कृत)शैव–पाशुपत, लोकायत(चार्वाक मत वारो), नास्तिक, कुत्सित कर्म करवेवारो ब्राह्मण, शूद्र, बौद्ध इनके स्पर्शमें स्नान करनो. नग्न, पशुपत, काल, कौल, दिशश्चर इनकूं छूयकें सूर्यदर्शन करे, स्नान करे एसें स्मृत्यन्तर वचन हे.

बौद्ध, पाशुपत, जैन, लोकायतिक, कापिल (कपिलके मतकूं मानये वारो), विकर्म ब्राह्मण, शूद्र इनके स्पर्शमें स्नान करनो एसें मर्यादासिन्धुमें हारीतको वचन हे. ओर कापालिककूं छूए तो स्नान करे पीछें प्राणायाम भी करनो.

यहां जो नग्न–पाशुपत इत्यादि नाम गिनाए हें ये सब वेद बहिष्कृतनके अवान्तर भेदसूं जुदे–जुदे नाम समझनो. अपरार्कमें अङ्गिरा ऋषिको वचन हे के श्वपाककी छायामे भी यदि पांव धरो होय तो स्नान करकें घृतप्राशन करनो चहिये. ओर भी बहोतसे वहां गिनाए हें :

> जो ब्राह्मण अपनो नित्यकर्म न करतो होय वाको एकपक्षके पीछे स्पर्श न करनो. ओर ज्ञातिबहिष्कृत, पुल्कस(चाण्डाल), म्लेच्छ, भील, पारसी, साविका स्त्री (दाई), कुत्तापालवेवारो, उन्मत्त, शूद्रकी जूठन, उच्छिष्ट शूद्र, कुत्ता, विष्ठा खायवेवारो सूवर, ऊंट, गधा, वृक(स्यारिआ), गोमायु(फ्यावरी), बन्दर, काक, मुर्गा, गीध, घुघ्घू इनके स्पर्शमें तथा भास(भिरगुदा–लहटोरा), काक, बन्दर, विकाव, गधा, ऊंट, कुत्ता, सूहर इनके विष्ठाके स्पर्शमें तथा श्मशानको वृक्ष, नीली(लील), नीलीकी बनी चीज, चाण्डालच्छाया, पतितकी छाया, शिवनिर्माल्य, शास्त्रमें भक्ष्य कहे हें उन सिवाय पञ्चनखपशु, शववसा(मांसको एक भेद), विष्ठा,

आर्त्तव(अटकावको लोही), मूत्र, वीर्य, मज्जा, रुधिर –इनके स्पर्शमें सचैल स्नान करनो.

यहां वसाविष्ठा इत्यादिक कहे हें सो दूसरेके होंय विनके स्पर्शमें स्नान हे. यहां जितने पक्षीनके स्पर्शमें स्नान बतायो हे उन सिवाय पक्षीनकें पंख हवासूं उडकें अपने अङ्गपे लगें तो आचमन ही करनो. ओर पूर्वोक्तनके स्पर्श करे भएनको स्पर्श करो होय तो आचमन ही करनो. सदाचारचन्द्रोदयमें मयूरकी विष्ठा भी अपवित्र बताई हें. मर्यादासिन्धुमें या विषयमें विशेष बात भी कही हे :

रजक(रङ्गरेज), चमार, व्याध(अहेडिया), जालोपजीवी(माछीमार), धोबी, नट, शैलूष(नाटक करवेवारो), मुखेभग(मुखयोनि), कुत्ता, चारों वर्णनसूं व्यभिचार करवेवारी स्त्री, चक्री(कुह्मार), ध्वजी(तैलयन्त्रकर्त्ता), वध्यघाती(फांसीदेवेवारो), ग्रामके मुर्गा, सूहर इनको जा अङ्गमें स्पर्श भयो होय वा अङ्गकूं धोय डारनो आचमन करनो ओर कटिके ऊपरको अङ्ग छूयो होय तो स्नान ही करनो. ओर जूठन मोढे जो इनकूं छूए तो एक रात्र दुग्धपान करेसूं शुद्धि होय हे. ओर पूर्वोक्त जो जूठन मोढे होंय ओर जाको स्पर्श करें तो तीन दिन घी खायके ही रहनो तब शुद्धि होय हे एसो आपस्तम्बको मत हे.

पराशरने कह्यो हे के म्लेच्छ, आलून(कसाईको बिछोना) घरमें अथवा बाहर छूयो होय तो आचमन करनो, प्रोक्षण करनो. शंख ऋषिने कह्यो हे : उच्छिष्ट आदमीकूं छूए अथवा उच्छिष्ट पदार्थकूं छूए तो हाथ–पांव धोएसूं, आचमन करेसूं शुद्धि होय हे.

प्रक्षालन इत्यादिको जल पृथ्वीपे पडे तो वाके सूखे पीछे वा पृथ्वीके स्पर्शमें तथा अपवित्र पदार्थको जामें लेप होय ताके स्पर्शमें आचमनसूं हाथ–पांव धोयवेसूं शुद्धि होय हे.

वर्षाऋतुमें गामके कूडेको, कीचको स्पर्श भयो होय तो माटीसूं छ(६) बेर पाव धोने तथा तीन बेर पिनडी धोनो आचमन करनो तब शुद्ध होय हे. स्नान करके, जल पीके छींके अथवा सोवे तो आचमन करनो. भोजन करके बजार जाय तो वहांसूं आयके आचमन करके वस्त्र दूसरो बदलकें फिर आचमन करनो चहिये इत्यादि स्मृत्यन्तरमें वाक्य हें.

पितृनको कार्य कछू भी करे होय तो आचमन करनो तथा अधोवायुके निकसवेमें, रोयवेमें, क्रोध करवेमें, छींकवेमें, मार्जार(बिलाव)–मूसाके स्पर्शमें, बहोत

हंसवेमें, थूकवेमें, झूंठ बोलवेमें आचमन करनो एसें कृष्णभट्टीयमें वाक्य है.

१२. जहां स्पर्शको दोष नहीं हे ताको विचार

मर्यादासिन्धुमें बृहस्पतिवचन हे : ''तीर्थ, विवाह, यात्रा, सङ्ग्राम, देशोपद्रव, नगरदाह, ग्रामदाह इनके विषयमें स्पर्शदोष नहीं हे. अत्यन्त कोई आपत्ति पडी होय तामें, रोगमें, पीडामें, माता–पिता–गुरुकी आज्ञा भई होय तामें स्पर्शदोष नही हे''.

शातातपने भी कह्यो हे के ''गोकुल(गायनके समूह) में, कन्दुकशाला(गेंद खेलवेको स्थान)में, तेलके यन्त्रमें, इक्षुयन्त्रमें, स्त्रीनमें, राजकुलमें, रोगमें स्पर्शविचार नहीं करनो''.

पृथ्वीचन्द्रोदयमें पराशरवाक्य हे के ''विवाहमें, उत्सवमें, यज्ञमें, सङ्ग्राममें, भीडमें, भाजडमें, वनमें, ऊजडमें स्पर्शदोष नही हे''. ये ही बात षड्विंशन्मतमें भी कही हे.

स्मृत्यन्तरमें एसो वचन हे के ''देवयात्रामें आए भये चाण्डाल–पतित इत्यादिनकूं भी देवमन्दिरके समीपमें छूयले तो स्नान नहीं करे. ओर उनके स्पर्शमें जो स्नान करे तो देवद्रोहको पातक लगे हे''.

'स्पृष्टास्पृष्टि' या शब्दको अर्थ स्मृत्यर्थसारमें लिखो हे के 'स्पृष्ट' नाम छूयवेको हे ओर 'अस्पृष्टि' नाम देखवेको, सूंघवेको, सुनवेको हे. अर्थात् पूर्वोक्त चण्डालादिके स्पर्शमें उनके देखवेमें, उनके शब्दादि सुनवे इत्यादिमें दोष नहीं हे.

१३. भगवत्सेवामे तथा देव–पितृकर्ममें कोनसूं अपवित्रता होय हे ओर फिर शुद्धि केसें होय ताको विचार

अब पहलें जिनके स्पर्शमें स्नान बतायो हे तामें तो कछू सन्देह ही नही हे पर पहले जिनके स्पर्शमें आचमन बतायो हे उनके स्पर्शमें भी स्नान ही उचित हे. क्योंके पहले जिनके स्पर्शमें आचमन बतायो उनमेसूं कितनेक पशु–पक्षी प्रभृतिके स्पर्शमें सदाचारचन्द्रोदयमें बृहस्पतिको वचन हे के ''कुत्ता, काक, ऊंट, गधा, घूघ्घू, सूहर ग्रामके पक्षी, दीपक, सूप, शय्या, जोडा, बुहारी इत्यादिको स्नान करे पीछे स्पर्श करे तो फिर स्नान करनो चहिये''. या वचनमें जिनके स्पर्शमें पहलें आचमन बतायो हतो उनमेंसूं ही कितनेक पशु–पक्षीके स्पर्शमें यहां स्नान कह्यो हे तो बाकी जो पशु–पक्षी रहे, जिनको पहले नाम बतायो हे, उनके स्पर्शमें भी तुल्यन्यायसूं स्नान ही करनो

चहिये. तामें दृष्टान्त एक ये भी घटे हे जैसें यज्ञके प्रकरणमें अंजलीसूं सतुआ होमनो बतायो हे. वहां अंजलिको विकास उचिततासूं स्वत: प्राप्त हे तेसें ही एक पङ्क्तमें गिनके जिनको आचमन पहले बतायो हे उनमेंसूं थोडेनको नाम यहां लियो हे तोहू वा पङ्क्तिके सब ही समझनो उचित हे. ये स्नान जो बतायो हे सो भी नाभिके ऊपरके अङ्गकूं जो पूर्वोक्त पक्षी छूए ताहीमें समझनो. ओर जो नाभिमे नीचेको अङ्ग छूए तो वाकूं धोनो तब शुद्ध होय. दीपकादिक स्पर्शमें जो स्नान शास्त्रमें कह्यो हे सो लौकिक दीपकादि समझने एसो मेरो मत हे. स्मृत्यन्तरमें वाक्य हे के ''बकरी, गधा और बुहारी सुं उडी भई धूल तथा खाट ओर दीवा की छायाके स्पर्शसूं पहले जन्मको कृत पुण्य भी नष्ट होय हे''. ऐसे ही ''सूपके पवन लगेसूं, नखाग्रके जलसूं, स्नानको जो पहरो भयो एकवस्त्र हे ताके आधे भागसूं ही शरीरपोंछ वेसूं, बुहारीकी रजसूं, केशके जलसूं पुरातन पुण्य भी नष्ट होय हे'' एसें अत्रिस्मृतिमें कह्यो हे.

इन स्मृतिनमें जो निषेध हे वो लौकिक पदार्थको ही समझनो, अलौकिकके स्पर्शादिकमें तो पुण्य हे. तासूहीं दीपादिकको जब दान कियो जाय हे तब स्नान करवेको कह्यो नहीं हे. श्राद्धमें दीपदान करो जाय हे. कार्तिक-मार्गशीर्ष आदिक मासमें भगवान्के अगाडी धरे भए दीपककूं जो उकसाय दे तो भी वाको बडो फल हे. शूर्पमें सौभाग्यद्रव्य धरकें जब सुवासिनीकूं दीनो जाय हे तब शूर्पको स्पर्शकरोई जाय हे, ओर वाको देवेको बडो फल हे. तथा शय्यामें भगवान्कूं शयन करावें तब शय्याको स्पर्श करोई जाय हे. तथा भगवन्मन्दिरमार्जनकालमें बुहारीको स्पर्श होय हे. तथा गुरुपादुकापूजा शास्त्रमें कही हे. इन सब शास्त्रीय प्रकारनकूं देखते भये पूर्वोक्त निषेध लौकिक दीपादिकमें ही हे ऐसे समझनो, अलौकिकके स्पर्शादिकमें तो अतिपुण्य हे. यामें प्रमाण दानखण्डमें तथा सदाचारचन्द्रोदय, विष्णुभक्तिचन्द्रोदय, हरिवल्लभसुधोदय प्रभृतिमें देखनो. गुरुपादुकापूजन श्रीभागवतमें ''त्वत्पादुके अविरतं परि ये चरन्ति'' इत्यादि पद्यसूं कह्यो हे. ताहीसूं कृष्णावतारमें उद्धवजीकूं पादुकापधराई हे. तथा रामावतारमें श्रीभरतजीकूं पादुका पधराई हे. ओर जेसें भगवत्पादुका पूजा हे तैसे ही स्वगुरुपादुकापूजा करनी भी उचित हे क्योंके श्वेताश्वतर उपनिषद्में कह्यो हे के ''जाकी भक्ति परम उत्कृष्ट भगवच्चरणमें हे तथा वेसी ही गुरुके चरणमें हे वा पुरुषकूं शास्त्रमें कहे भए सब फल मिले हे''. या श्रुतिसूं ये सिद्ध हे के देववत् गुरुभक्ति करनी. तासूं गुरुपादुकापूजा करनी. तथा गुरुके जोडानको ऊर्ध्वाङ्गमें स्पर्श करनो भी योग्य हे. नृसिंहपुराणमें दूतन प्रति यमधर्मराजको वाक्य हे के ''जो भगवान्के मन्दिरमें बुहारी दे तथा मन्दिरकूं गोबरसूं लीपे वाके तीन कुलनकूं तुम छोड दीजो''. यहां बुहारी देवेको

इतनो फल बतायो हे. ओर वो रज अतिपवित्र हे, तासूं बुहारी छूयवेमें तथा वाके उडे रजके स्पर्शमें जो दोष हे वो लौकिकको ही हे. ओर श्रीभागवतमें सम्मार्जन(बुहारी देनो) उपलेपन(लीपनो) एसें दोनों जुदे–जुदे बताए हें. तासूं नृसिंहपुराणमें जो 'सम्मार्जन'पद हे तासों अर्थान्तर भी नहीं होय सके हे. तासूं लौकिक दीपक–सम्मार्जनी–शय्याको ही पूर्वोक्त निषेध हे, अलौकिकनको तो स्पर्श पुण्यकारक हे.

स्नान करके कोरे जोडा पहरके घर आवे तो भी भगवत्सेवा करवेमें दोष नहीं हे क्योंके शास्त्रमें कह्यो हे के ''स्नान करे पीछें तीर्थादिकमें नाभिके नीचेके अङ्गमें जोडाको स्पर्श होय तो भी स्नान न करनो''. तब तो तीर्थादिकमें स्नान करके जोडा पांवमें पहरके आनो तामें दोष कहा हो सके हे! ये सिद्ध होय हे.

ओर बिना जोडा पहरें मार्गमें अनेक मल–मूत्रादिकमें पांव पडे वा दोषसूं जोडाके स्पर्शमें दोष थोडो हे. ओर ब्राह्मणके पांव शुद्ध हें एसो वचन है तासूं घर आय के पांव धोएसूं शुद्धि होय हे. कोई तो एसो वचन भी पढे हें के ''पादुका(खडाऊं) गमन समयमें पवित्र हें तथा जोडा ऊपरके भागमें पवित्र हें''. अर्थात् जोडाको स्पर्श पांवकूं होय हे वो भाग पवित्र हे. अब यदि ये वचन समूल हे तो जोडाके स्पर्शसूं अपवित्र नहीं होवे हें ये सिद्ध होय हे. पर स्नान करके जोडा पहरके घर आनो कह्यो तामें, जिनकूं पहरकें मलमूत्रादि न करो होय एसे जोडा होने चहिये ये सम्प्रदायमें शिष्टाचार हे.

यद्यपि मूत्रादित्याग समयमें जोडा पहरवेको स्मृत्यन्तरमें निषेध हे पर आजकल सर्वत्र मल–मूत्रत्यागमें जोडा पहरवेकी चाल हे तासूं जो नये जोडा होंय उनकूं ही पहरने. कलियुगमें शिष्टाचार ही स्मृतिसूं बलवान् हे तासूं टखनाके नीचे तकके ही जोडा पहरने चहिये.

एसे ही चर्मस्नेह(सरेस)सूं जा पेटीकूं जोडी हे वो सरेस ऊपर नहीं दीखतो होय तो वा पेटीकूं भी छूयवेमें, खायवेकी वस्तुविना, दोष नहीं हे. ओर जो खायवे–पीवेकी वस्तुमें एसो सम्बन्ध होय तो वा वस्तुको स्पर्श नहीं करनो. क्योंके यमको एसो वचन हे के जो जल चर्मको हे वो अपवित्र हे. तासूं सूखे चामके कोसमें जल पीवेकी वस्तु तासूं छूय गयो वाको स्पर्श नहीं करनो. एसें ही ओर भी जो कोई खायवेपीवेको वस्तुकूं अपवित्र स्पर्शमें अशुद्धता होय हे.

ओर भी अपवित्रताके हेतु देवलऋषिने बताये हें

''शरीरस्रोतकी जगेसूं मेल निकसे उनके स्पर्शमें अशुद्धि होय हे. अपरसमें तथा ओर समयमें कछू–कछू खायवेसूं, पीवेसूं, औषधके

खायवेसूं अशुद्धि होय हे. कर्मकालमें खानपानसूं जादें अशुद्धि होय हे. एसें ही धरतीमें पडी भई उच्छिष्टके छूयवेमें तथा अमेध्य(अस्थि इत्यादि) के छूयवेमें अशुद्धि होय हे. सोएसूं, कपडा बदलवेसूं, रस्ता चलवेसूं, अशुद्धता होय हे. शोकयुक्त कठोर अश्लील वाक्य बोलवेसूं, असत्य वचनसूं, क्रूर वचनसूं अपवित्रता होय हे. अपने शरीरपे अपनो द्रप्सा (थूक–खखार) लगो होय तो वा अङ्गकूं माटी–गोबर–जलसूं शुद्ध करनो. अपवित्र पदार्थको लेप, स्नेह(चिकनाई) अथवा गन्ध होय, वाकूं जलादिकसूं शुद्ध करनो, आचमन करनो तब शुद्धि होय हे''.

पहले १२ तरहके मल बताए विनकी गणना अब बतामें हें :

१. वसा(हृदयकी मेदा) २. शुक्र(वीर्य तथा अटकावको लोही)

३. असृक्(रुधिरादिक) ४. मज्जा

५. मूत्र ६. विष्ठा

७. कर्णमल(कानको मेल तथा ओर भी मोढेको मल)

८. नख ९. श्लेष्मा(खखार) १०. अश्रु(आंसू)

११. दूषिका(आंखको मेल गीड) १२. स्वेद(पसीना तथा ओर भी शरीरके मेल)

—ये बारहे मल हें.

यहां शास्त्रार्थसूं एसें सिद्ध होय हे के इन पूर्वोक्त १२ मलनमें दो भाग हें : १.निष्पन्द(रिसाव) और २.निःसरण(टपकनो–बहनो आदि). तामें वसा – शुक्र इत्यादि ६ मलको तनिक भी संसर्ग दीखे तब भी अधिक अशुद्धि हे. ओर श्लेष्मा इत्यादि जब बाहर टपककें गिरें तब विशेष अशुद्धि होय हे एसें समझनो. वसा प्रभृति ६ मल अधिक अशुद्ध हें ओर श्लेष्मा इत्यादि ६ मल कम अशुद्ध हें. तासूं ही बौधायनऋषिको एसो वचन हे के ''वसाप्रभृति ६ मलकी जल तथा माटी सूं शुद्धि होय हे. तथा श्लेष्मा इत्यादि ६ मलकी शुद्धि जलमात्रसूं ही होय हे''. ये भी सब शुद्धि स्वमलकी हे. दूसरेके मलके स्पर्शमें तो सचैल स्नान ही करनो सो पहले बतायो हे. मनुने तो बारहे मलनमें माटी–जल लेनो बतायो हे. पर वो देव–पितृकार्यमें समझनो एसें गोविन्दराजने व्याख्यान करो हे. मर्यादासिन्धुमें श्लेष्मादिमें भी माटी लेनी कही हे तासूं कर्मकालमें माटी लेनी, ओर समयमें न लेनी एसें दोनों व्याख्या युक्त हें.

अब जो पहलें अमेध्य पदार्थ बताए हें वहां 'अमेध्य'को ये अर्थ हे के स्वभावसूं ही अमेध्य(अशुद्ध) होय. स्वभावसूं अमेध्य कोन हें तिनके नाम देवलऋषिने बताए हें. यथा

''मनुष्यको अस्थि(हाड), मुर्दा, विष्ठा, वीर्य, मूत्र, अटकावको लोही, वसा, लोही, आंखको मेल, खखार, मज्जा इनको नाम 'अमेध्य' हे. इनके स्पर्शमें अशुद्धि होय हे''.

या देवलके वाक्यमें तथा ओर ऋषिनके वाक्यमें कहूं भी स्त्रीके स्तनके दुग्धकी मलसञ्ज्ञा नहीं लिखी हे. तासूं अपरसमें भी वो टपक जाय तो स्नान नहीं करनो पडे हे. कदाचित् ये कोई कहे के स्मृतिमें लिख्यो हे के ''ब्राह्मणादिक स्त्रीके स्तनको जो दूध पीलें तो पुन: संस्कार करनो कह्यो हे''. तहां एसो समाधान हे के पीवेमें ही वाकी अशुद्धि बताई हे, पान सिवाय तो शुद्ध ही हे. ओर एसो अर्थ न ल्योगे तो स्मृतिमें एसें कह्यो हे के ''दूसरेके हाथसूं खायवेकी चीज अपने हाथमें लेके फिर खाय तो गोमांसवत् हे. तथा हाथसूं हाथमें लीनो लोन – मृत्तिकाको भक्षण गोमांसवत् हे''. तो इनको स्पर्श करे तो भी अत्यन्त अपवित्रता प्राप्त होयेगी! तासूं एसो अर्थ न लेनो, केवल भक्षणमें ही गोमांसवत् ये दृष्टान्त हे, स्पर्शमें दोष नहीं हे. तेसे हीं स्त्रीके दूध पीवेमें अशुद्धता हे परन्तु वाके स्पर्शमें दोष नहीं हे.

''प्रात:काल उठे पीछे स्नान करे तब देहकी शुद्धि होय हे. क्योंके या शरीरमें मुख – नासिका प्रभृति नव छिद्र हें. दिन–रात इन छिद्रनमेंसूं मल निकसे हे. सोए पीछे तो उत्तम–अधम सभी अंग एक ही अवस्थामें होय जायें हें. ओर सूवत समय लार–थूक निकसे ताकी खबर भी नहीं पडे हे. तासूं या देहकी शुद्धि प्रात:काल स्नान करवेसूं होय हे''.

यहां प्रात:काल सोयकें उठे तब स्नान बतायो हे. पर जब सोवे तब ही अशुद्धि दोष हे एसें समझनो. बेठवे – उठवेके समय तो आचमन मात्रसूं शुद्धि होए हे. परन्तु वा बेर भी थूक–खखार शरीरपे पडे तो स्नान ही करनो चहिये. ये सब बात दक्षस्मृतिमें हे. वस्त्र बदलके दूसरो पहरो होय अथवा छींक आई होय, हुचकी लीनी होय तब आचमनसूं शुद्धि हे. क्योंके विनमें अल्प दोष हे. ताहीसूं सदाचारचन्द्रोदयमें पराशरवचन हे के

''छींक आई होय, थूक्यो होय, बेठें – बेठें निद्राको झोका आयो होय ता बखत, कपडा बदलवेके समय, अश्रुपात भयो होय ता पीछे कोई वैदिककर्म करनो होय तो भी आचमन ही करनो. आचमन न कर सके तो अपने दक्षिण कर्णको स्पर्श करले. अर्थात् श्रोत्राचमन करे''.

क्योंके ''गङ्गाजी दक्षिण कानमें रहे हें तथा नासिकामें अग्नि रहे हे. तासूं इनके स्पर्शसूं ही शुद्धि होय हे'' एसो याज्ञवल्क्यको वाक्य हे. साक्षात् जलसूं आचमन

न होय सके तो गोपृष्ठको स्पर्श करे. वो भी न होय तो सूर्यदर्शन करे. ये भी न होय तब दक्षिण कर्णको ही स्पर्श करे. ऐसें दक्षिण कर्णको स्पर्श तीसरी कोटिमें हे. मुख्य तो आचमन हे एसें मार्कण्डेयपुराणमें लिख्यो हे.ओर

''बोलवेमें जो बहोत महीन थूककी बूंद शरीरपे पडें तो अशुद्धि होय हे ओर वस्त्रादिपे पडें तो दोष नहीं हे'' एसो गौतमऋषिको वचन हे.

''स्नान करे पीछें, जल पीए पीछें, छींक आए पे, बेठें-बेठें निद्राको झोका आवे तब, भोजन करे पीछें, बजारमें, गलीमें, डोलवेमें, वस्त्र पहरवेमें, पितृनके मन्त्रके उच्चारण करे पीछें, हृदयके स्पर्शमें, हृदयके देखवेमें, अधोवायुके निकसवेमें, बहोत हसवेमें, जूठ बोलवेमें, बिलावकूं छूयवेमें, मूसाके स्पर्शमें, आक्रोश करवेमें, क्रोध करवेमें तथा ओर भी निमित्तमें आचमन करनो चहिये''

एसे छन्दोगपरिशिष्टमें हे. ओर बेठें-बेठें निद्राके झोकामें लार टपक जाय तब तो स्नान ही चहिये.

भगवत्सेवामें तो अधोवायु निकसवेमें तथा असत्य बोलवेमें स्नान ही करनो चहिये. क्योंके अधोवायु निकसे हे सो प्राय: अजीर्णमें ही निकसे हे. ओर अजीर्ण होय तब स्नान करनो पहले कह्यो हे. ओर वाराहपुराणमें भगवान्‌को एसो वाक्य हे के

''मेरे अङ्गके स्पर्श करती बेर जो मनुष्य अधोवायु करे तो वाकूं नरकमें विष्ठासहित अधोवायु पान करायो जाय हे. फिर ५ बरस माखी होय हे, ७ बरस मूसा होय हे, ३ बरस कुत्ता होय हे, ९ बरस कच्छप होय हे''.

अब पहलें जो बिलावके स्पर्शमें स्नान बतायो सो बिलावकूं जानकें छूयो होय तब समझनो. ओर बिलाव लगकें निकस गयो होय तब स्नान नहीं चहिये एसो यहां शास्त्रार्थ हे. अथवा कर्मकालमें वाकी पुच्छको स्पर्श करो होय तब समझनो. क्योंके अन्यथा ''बिलाव, करछी, पवन ये सदा शुद्ध हैं'' ये वचन व्यर्थ होय जाये. अथवा मार्जारस्पर्शकी शुद्धि भाण्डादि स्पर्शमें जाननी ओर साक्षात् शरीरको स्पर्श भयो होय तब स्नान करनो ऐसें दोनों वचनको विरोध मिटावनो. दाक्षिणात्यनके ग्रन्थनमें तो ऐसे हें के भोजन अथवा पूजादिक में जो बिलावकी पुच्छको स्पर्श होय तब स्नान करनो अन्यथा नहीं. तामें रत्नावली निबन्धस्थ स्मृतिवचन भी बतायो हे. एसे हीं बिना न्हाएको स्पर्श वस्त्रके अन्तरसूं कियो होय तो भी स्नान ही चहिये, क्योंके पहले कह आए हैं के वस्त्रादिकके अन्तरसूं जो स्पर्श हे वो साक्षात् ही गिनो जाय हे. ओर काष्ठादिकसूं अथवा लोई कम्बर रेशमी वस्त्रसूं स्पर्श करो होय तब स्नान नहीं हे. पर

सदाचार हे तासूं आचमन करनो.

१४. वस्त्रादिककी शुद्धिको विचार

अहत(सांचेको निकसो) वस्त्रकी शुद्धि प्रोक्षण करेसूं होय हे एसें अपरार्कमें वायुपुराणको वचन है. पृथ्वीचन्द्रोदयमें तो भृगु–सत्यतपस ऋषिको एसो वचन हे के अहत वस्त्र माङ्गलिक कर्ममें ही वितने ही समय प्रशस्त है. ओर पुलस्त्य, शातातप और कात्यायन ऋषिने अहतको एसो लक्षण कह्यो हे के

> ‘‘ईषद्धौत(एक बेर धोबीको धुयो अथवा केवल जलसूं ही धोयो भयो), नव(शुक्र, रुधिर, उलटी, खखार, मूत्र, विष्ठा, चिकनाई, दुर्गन्ध, पुरातनता इन दोषन करकें रहित), श्वेत(सुपेद तथा ओर भी रङ्गको), सदश(जाके पल्लेपे जाली होय) इन चार वस्त्रनको नाम ‘अहत’ हे पर ये चारों बिना पहरे चहियें’’.

सो ही सदाचारचन्द्रोदयमें कह्यो हे के ‘‘आठ हाथको नवीन, श्वेत, सदश ये वस्त्र सर्व कर्ममें पवित्र हे पर बिना पहरे चहिये’’. श्रुतिमें भी एसें ही कह्यो हे के ‘‘आठ हाथको बिना पहरो वस्त्र पहरनो चहिये’’. एसें ईषद्धौत, नव, श्वेत, अदश ये चार तरहके वस्त्रनको नाम ‘अहत’ हे. ओर चारोंई बिना पहरे चहियें एसें यहां अक्षरनके स्वारस्यसूं दीखे हे. यहां ‘श्वेत’ पदसूं उपलक्षणसूं रङ्गीन वस्त्रनको भी ग्रहण हे. क्योंके बृहत्पराशरऋषिको एसो वाक्य हे के ‘‘जो सर्व उपस्कर सहित शय्या हे सो तथा रङ्गे भए वस्त्र पुष्प ये तीनों चीज प्रोक्षणसूं ही शुद्ध होंय हें’’. अब ये जो चार प्रकार अहत वस्त्रके बताए तिनको उपयोग जुदे–जुदे कार्यनमें होय हे जेसें ईषद्धौतको उपयोग यज्ञादिकमें. नवको उपयोग ओढवेमें. रङ्गीलको उपयोग कार्त्तिकमें राधादामोदरकी प्रीतिके ताईं स्त्री–पुरुषनकूं दान करे जाय हें तामें. सदशको उपयोग गुर्जर देशमें विवाहके समय कन्याके पहरवे इत्यादिमें होय हे. नव जो वस्त्र हे वो भी प्रक्षालन करे बिना भगवदुपयोगी नहीं होय हे क्योंके वाराहपुराणको एसो भगवद्वचन हे के ‘‘नीलीको रङ्गो भयो वस्त्र तथा प्रोक्षण करे बिना नवीन वस्त्र जो कोई मोकूं समर्पण करे वो रौरव नरकमें पडे हे’’. तासूं या सबको सार ये हे के लीलके रङ्ग सिवाय मनुष्यके उपभोगमें न आए होय एसे चाहे जेसे रङ्गके निर्मल नवीन वस्त्रनको प्रोक्षण करकें भगवत्सेवामें स्पर्श करनो. एसें ही धुए जो वस्त्र हें उनकी भी प्रोक्षणसूं शुद्धि हे पर वे एक बेर पहरकें उतारे भए नहीं होने चहिये. ओर भगवदुपयोगी तो नवीन भी प्रक्षालन करे पीछे ही होय हे. मर्यादासिन्धुमें देवलने मेध्य(शुद्ध)के चार भेद माने हें : ‘‘शुचि,

पूत, स्वयंशुद्ध और पवित्र ये चार भेद शुचिके ही नामान्तर समझने''. क्योंके नवीनता निर्मलता तो चारोंमें हे. जितनो भेद हे परस्पर वो आगे दिखायो जायगो.

शुचि : 'शुचि'को अर्थ ये हे के जो उपभोगमें नहीं आयो एसो नवीन अथवा नवीन न होय पर निर्मल होय. सर्वधान्य (अनाज) वस्त्र, आभरण इनकूं शास्त्रमें शुचि कहवावे हे. पर इनमें कोई बुरी वस्तुको लेप नहीं होनो चहिये. तथा ये अत्यन्त अवर्ज्य (ग्राह्य) हें एसो ज्ञान होवे तब पूर्वोक्त पदार्थनकूं शुचि बताए हें.

पूत : अब दूसरो भेद मेध्यको पूत हे. ताको लक्षण ये हे के जो पहलें बताय आयेके धान्य वस्त्र आभरण इनको नाम शुचि हे विन धान्य वस्त्रादिकको प्रोक्षण वैदिक मन्त्रसूं कियो होय तब उनको 'शुचि' नाम न बोलनो परन्तु 'पूत' नाम बोलनो. प्रोक्षण उनको करो जाय तब वे पूर्वोक्त यज्ञके योग्य होंय हें अर्थात् वस्त्रादिक नवीन होय अथवा निर्मल होय तो उनकूं शुचि तो बोलने पर पूत नहीं बोलने पूत तो तब ही बोलने के जब उनको प्रोक्षणरूप संस्कार करो होय. ओर तब ही उनको यज्ञमें उपयोग होय हे.

स्वयंशुद्ध : मेध्यको तीसरो भेद स्वयंशुद्ध हे. स्वयंशुद्धको अर्थ ये हे के जाकी शुद्धि करनी न पडे, अपने आप ही, अपवित्रके स्पर्शमें भी पवन–सूर्यकिरणसूं शुद्ध होय. ताको उदाहरण :

> ''वसति(घर), चमस(यज्ञको पात्रविशेष; जासूं सोम पीओ जाय हे), यान(सवारी) वाहन(घोडा इत्यादि) साधन(तरवार इत्यादि) छुना, नौका, आसन(जाजम इत्यादि) पशु, रजस्वला भिन्न स्त्री, आकर(खान) क्रीत(खरीदी चीज तथा बेचवेकी चीज) अदृष्ट(बिना देखी चीज) वाकू प्रशस्त (बहोत जाकी प्रशंसा करी होय) इन सब पूर्वोक्त पदार्थनको नाम स्वयंशुद्ध हे''.

पवित्र : अब मेध्य(शुद्ध)को चोथो भेद पवित्र हे. जो पदार्थ आप शुद्ध हे ओर दूसरे अशुद्धके सम्बन्धसूं दूषित न होय कें वा दूसरे अशुद्धकूं शुद्ध करे. तथा देव–पितृ कर्ममें जाको उपयोग होतो होय ताको नाम 'पवित्र' हे. उदाहरण ये हैं :

> ''बकरीको मुख, घोडाको मुख, गायनकी पीठ, पुष्पवारे वृक्ष, उत्तम ब्राह्मण, भस्म, सहेद, सुवर्ण, कुश, कुतप(दिनको अष्टमांश) तिल, अपामार्ग(ओंधा), शिरीष(सिरस), अर्क(आक), पद्म, आमलक(आमरे) मणि, पुष्प, सरसों, दूर्वा, भद्रा(रासना), प्रियंगु(काङ्गनी), अक्षत, सिकता(रेती), लोह, हरिद्रा, चन्दन, यव,

पलाश(खाखरा), खदिर(खेर), अश्वत्थ, तुलसी, घातकी(धवा), वट, पौष्टिक पदार्थ, मलघ्न, खारो इत्यादि तथा (हरीतक्यादिक) गोबर, माटी, जल शोधन (शुद्धि करवेवारे ओर भी पदार्थ) इन सबनको नाम 'पवित्र' हे. इनमें भी गोबर, माटी, जल ये तीन पदार्थ विशेष पवित्र हें''.

अब ये जो मेध्य(शुद्ध)के चार भेद बताए तासूं पहलें जो कह आए के नवीन वस्त्र तथा बिना पहरे–ओढे निर्मल धौत वस्त्र, प्रोक्षण करकें शुद्ध होय हे उनके स्पर्शमें दोष नहीं हे ये बात सिद्ध भई हे. क्योंके पहलेई वे शुद्ध हें ओर फिर उनको शंखोदक इत्यादिसूं प्रोक्षण कर्यो तासूं उनकी 'पूत' संज्ञा भई तब उनकूं भगवत्सेवामें भी स्पर्शमें दोष नहीं. जो कोई कर्मठ(यज्ञादिक कर्म करवेवारे) आजकाल एसें कहे हें के धोबीने जो कपडा धोए उनकूं फिर धोयकें भी कर्मकालमें उपयोगमें न लेने क्योंके खार–साबुनसूं वे धुए हें तासूं अपवित्र हें, पर ये बात ठीक नहीं है. क्योंके यहां पहले पवित्र पदार्थनकी गिनतीमें जो 'मलघ्न' 'खारो' बतायो हे वो मलशोधनमें पवित्र हे. ओर तैत्तिरीय श्रुतिमें कह्यो हे के ''जो दाक्षायण यज्ञ करतो होय वाकूं ही खारे इत्यादिसूं धुए भए कपडा फिर धोयकें भी नहीं पहरने'' तासूं ओर कोई यज्ञादि कर्मनमें धुए भए वस्त्र शंखोदकादिकसूं प्रोक्षण करकें पहरवेमें चिन्ता नहीं हे. तासूं खारेके धुए भए कपडा दाक्षायण यज्ञमें ही न पहरने चहियें क्योंके श्रुतिमें कह्यो हे के ''दाक्षायण यज्ञकर्त्ता असत्य न बोले, मांस न खाय, स्त्रीसङ्ग न करे, खारे इत्यादिसूं धुए वस्त्र न पहरे'' एसें दाक्षायण यज्ञ करवेवारेकूं ही दोष बतायो हे ओरनकूं नहीं हे.

शुद्धि – अशुद्धिको प्रकार एकादशस्कन्ध भागवतमें भगवान्‌ने बतायो हे ओर श्रीधरजीने वाकी व्याख्या करी हे वामें बौधायन ऋषिको वाक्य भी या प्रसङ्गको हे सो सब यहां प्रसङ्गसूं दिखायो जाय हे. भगवद्वाक्यको अर्थ ऐसो है :

वस्त्र–पात्र प्रभृति पदार्थनकी शुद्धि जल इत्यादिसूं होय हे ओर अशुद्धि मूत्रादि स्पर्शसूं होय हे. ओर जहां अपनकूं ऐसो सन्देह होवे के ये पदार्थ शुद्ध हे के अशुद्ध हे तहां ब्राह्मणके वचनसूं शुद्धि – अशुद्धि समझनी.

पुष्पादिककी शुद्धि प्रोक्षणादि संस्कारसूं समझनी. पुष्पादिकी अशुद्धि सूघवेसूं होय हे.

कालसूं शुद्धि वरसातके जलकी होय हे. शास्त्रमें कह्यो हे ''वर्षाऋतुमें तीन दिन पीछें वर्षाको जल उपयोगमें लेनो. ओर अन्य ऋतुमें दस दिन पीछे लेनो''. अर्थात् वर्षाकालमें तीन दिन पीछे जल शुद्ध होय हे ओर अन्य समयमें दश दिन पीछे जल शुद्ध होय हे. ये कालसूं शुद्धिको उदाहरण हे.

अन्नादिक तुरत पाकादिसूं तैयार करो होय वो शुद्ध हे, पर्युषित(बासी) अशुद्ध हे.

पुत्र जन्मादिक दशाहके पीछें जाने होंय तो शुद्ध हें, पहलें अशुद्धि हें. एसें सबकी शुद्धि – अशुद्धि होय हे.

इन शुद्धि – अशुद्धिमें भी शक्ति – अशक्ति, महत्त्व, अल्पता, देश–काल इत्यादि सब विचार करनो. हिमालय इत्यादि देशमें स्नानके ठिकाने आचमनसूं ही शुद्धि करानी. शीतकालमें भी स्नानादि विचारकें बतानो. बहोत पदार्थ हे वाकी शुद्धि थोडेसूं होय हे. थोडो पदार्थ हे वो छूय जाय हे अथवा बहोत शुद्धिसूं शुद्ध होय हे. तैसे ही शक्ति – अशक्तिसूं शुद्धि – अशुद्धि होय हे. ग्रहण–सूतकमें अन्नादिककी अशुद्धि शक्त होय तो जाननी, नहीं तो अशक्तकूं दोष नहीं लगे. जीर्ण–मेलो वस्त्र धनवान् पहरे तो दोष हे, अशक्तकूं दोष नहीं हे. चन्दोवा–कनात नवीन बनायवेकी शक्ति न होय तो एसे स्थलमें दूसरे कोई शुद्धिको उपाय करनो. तलाव–नदी इत्यादिकनकूं चण्डालादिक स्पर्श करे तो भी अशुद्धता नहीं हे ओर थोडोसो जल होय तब चण्डालादि स्पर्शमें छूय जाय हे. एसें ही जो निर्भय देश हे तामें स्नानादिकसूं शुद्धि हे ओर जहां चोर–व्याघ्रादिकको भय हे तहां स्नान बिना भी शुद्धि हे. एसे ही तरुण अवस्था अथवा नीरोग अवस्थामें स्नानादिकसूं ही शुद्धि होय हे ओर वृद्धावस्था अथवा ज्वरादि रोग में स्नान बिना भी शुद्धि होय हे. एसें देश–काल इत्यादि विचारकें शुद्धि – अशुद्धि होय हे. ताहीसूं ब्रह्मपुराणमें तथा लिङ्गपुराणमें यद्यपि एसो वचन हे के ‘‘देव–पितृ कर्ममें नित्य धोयकें ही वस्त्र पहरनो’’. पर वर्षादि ऋतुमें नित्यको धुयो सूख नहीं सके तासूं वेसे कालमें नित्यको धुयो न होय तो पहले दिनको भी काम आय सके. पर प्रोक्षण तो करनो चहिये. ये ही प्रकार भगवत्सेवामें समझनो पहले दिनके धुए वस्त्रके पहरवेसूं जो दोष लगे वो भगवत्सेवासूं ही दूर होय हे.

धौत वस्त्रकूं काष्ठादिकसूं उठायकें लावे तो दोष नहीं हे. क्योंके यज्ञके प्रकरणमें लिख्यो हे के ‘‘यज्ञपशुके अन्वारम्भण(स्पर्श)में यजमानको मृत्यु होय हे ओर अनन्वारम्भण(स्पर्श न करनो)में यजमानकी स्वर्गलोंककी हानि होय हे’’ एसें यहां स्पर्श करवेमें तथा नहीं करवेमें भी दोष बतायो हे. फेरी वाको समाधान करो हे के वपाश्रपणीसूं वा पशुको भले स्पर्श करनो, वो स्पर्श भयो भी कहवावे है ओर नहीं भयो भी कहवावे है. एसे हीं काष्ठसूं स्पर्श करवेमें दोष नहीं हे.

कोई एक आचार्यनको तो एसो मत हे के ‘‘ऊनके वस्त्रमें, रेशमीव स्त्रमें, कारे मृगचर्ममें लिपटो भयो पदार्थ प्रोक्षणसूं ही शुद्ध होय हे’’ एसो वे वाक्य भी पढे हें.

कदाचित् एसी शंका कोई करेके पहले प्रचेताको वचन एसो कह्यो हे के वस्त्रादिकके अन्तरसूं स्पर्शमें भी साक्षात्स्पर्श ही गिनो जाय हे! ताको समाधान ये हे के वो वचन चाण्डालादि स्पर्शमें हे.

अब जेसें पहले मेध्य(शुद्ध)के चार भेद बताए एसें ही अमेध्य(अशुद्ध)के भी चार भेद होवे हैं. यामें प्रमाण देवलऋषिको वाक्य हे : ''दूषित, वर्जित, दुष्ट, कश्मल ये चार भेद अमेध्यके हें. ये चारों भेद दण्डादिक चिन्ह धारण करवे वारेनकूं विशेष करकें मानने चहियें''.

दूषित : अमेध्यको पहलो भेद 'दूषित' हे. जो आप शुद्ध हे ओर दूसरे अशुद्धके संसर्गसूं अशुद्ध भयो होय वा पदार्थको नाम दूषित हे. जेसें धौतवस्त्र वासी वस्त्रसूं मिलजाय तो अशुद्ध होय हे याको नाम दूषित हे. याकी शुद्धि विधिपूर्वक प्रोक्षणसूं भी होय सके.

वर्जित : अमेध्यको दूसरो भेद 'वर्जित' हे. ताके उदाहरण अभक्ष्य, अभोज्य, अपेय पदार्थ जानने. तथा व्यङ्ग(जन्मसूं ही अङ्गहीन), पतित(महापातकी) चाण्डाल, गामको मुर्गा, गामको सूवर, कुत्ता, सव्रण(व्रण जाकें होय रह्यो हे), सूतकी(पिण्डरू वारो), सूती(स्वावड वारी), मत्त, उन्मत्त(बावरो), रजस्वला, मृताशौच वारो, अशुद्ध(चाण्डालादिकसूं छूय गयो होय वो) ये सब 'वर्जित' हें. अर्थात् इनको स्पर्श न करनो.

दुष्ट : अमेध्यको तीसरो भेद 'दुष्ट' हे. उदाहरण : स्वेद(पसीना), अश्रुबिन्दु, फेन, टूटो भयो नख-रोम, गीलो चर्म, लोही ये सब 'दुष्ट' हें.

कश्मल : अब चोथो भेद अमेध्यको 'कश्मल' हे. ताको उदाहरण : मनुष्यको अस्थि(हाड), वसा, विष्ठा, वीर्य, मूत्र, अटकावको लोही, शव, पूय(राध) ये सब 'कश्मल' हे.

—इन सबनके स्पर्शमें स्नान करनो चहिये. इनसूं वस्त्र छूय जाय तो धोनो. ओर वस्त्रकूं विष्ठा इत्यादि कश्मलको संसर्ग भयो होय तब तो त्याग ही करनो.

अब इन चारों अमेध्यनमें अस्नात(बिना न्हायो)की गिनती नहीं हे तासूं जो पूर्व कह आए के अस्नात मनुष्य काष्ठसूं धुले वस्त्रको स्पर्श करे तो-तो वस्त्र नहीं छूए ये बात सिद्ध होय हे. ओर 'आश्वलायन' स्मृतिमें तो एसें कह्यो हे के श्वेतवस्त्र होय वाकूं ही पहरनो तथा ओढनो अथवा श्वेत वस्त्र पहरनो ओर रेशमी वस्त्र ओढनो. ओर ब्राह्मण तो जेसो मिले वो ही ग्रहण करे. ऊनी वस्त्र तथा त्रसर(टसरी) इनकूं न पहरने चहियें. ओर ओढवेमें दोष नहीं हे. त्रसर(टसरी)कूं ओढके जो भोजन करे अथवा

मलत्याग करे तो धोएसूं शुद्धि होय हे ओर रेशमी वस्त्र सदा शुद्ध हे. अङ्गिराऋषिको एसो मत हे के ऊनी वस्त्रकूं जो वीर्य, मुर्दा, मूत्र, विष्ठा, रजस्वला को स्पर्श होय तो भी अपवित्र नहीं होय हे. तासूं जो पहले कह आये के ऊनी, रेशमी, कारो मृगचर्म इनमें लिपटो वस्त्र धुयो भयो नहीं छूए हे ये सिद्ध होय हे. क्योंके मलादिकके स्पर्शमें ऊनी वस्त्र नहीं छूए तासूं वो बहोत पवित्र हे. तासूं ऊनी वस्त्र इत्यादिमें धुए भए कपडाकी लिपेटवेकी चाल हे सो सदाचार नहीं हे. वस्त्रमें जो मलमूत्र, रुधिर, वीर्य को सम्बन्ध भयो होय तो वा वस्त्रकूं साफ करकें धोनो. जो धोएसूं भी दाग नहीं मिटे तो वितनो फाड डारनो अथवा वितनो ही जराय देनो. एसे ही मद्यादिकके स्पर्शमें शुद्धि करनीं. यहां मल–मूत्रादि स्पर्शमें इतनी शुद्धि बताई हे तासूं उच्छिष्ट(जूठन)के स्पर्शमें तो वस्त्रकूं धोएसूं ही शुद्ध करनो. याज्ञवल्क्यस्मृतिमें कह्यो हे के ऊनी वस्त्रकूं तथा कौशिक(रेशमी) वस्त्रकूं गोमूत्र, जल, खारो इनसूं शुद्ध करानो. अंशुपट(वृक्षकी छाल इत्यादिके वस्त्र)कूं बेलपत्र, गोमूत्र, जलसूं शुद्ध करनो ओर कुतप(पहाडी बकराके रोमको कम्बर)की शुद्धि अरीठा, जल इत्यादिसूं होय हे. क्षौम(अलसीको बनो वस्त्र)की शुद्धि सुपेद सरसों जलादिकसूं होय हे. ये जो ऊनीकी शुद्धि याज्ञवल्क्यस्मृतिमें हे सो आज काल ये चाल छूट गई हे. अथवा ऊनी वस्त्रादिकके धोयवे वारे कारीगर लोक एसें ही धोते होंयगे तासूं याज्ञवल्क्यने एसें कह्यो हे. क्योंके एकादशस्कन्धमें भागवतमें कह्यो हे के वस्त्र, पात्र इत्यादिमें जो अपवित्र दाग लगे होंय ओर वे जा चीजसूं साफ होते होंय वो ही वस्तु उनकी शोधक हे. तासूं कारीगर इत्यादि धोयकें दें तब ऊनी वस्त्रादिककी शुद्धि प्रोक्षणसूं ही करनी. अङ्गिराको एसो वचन भी हे के ''बहोत रोमवारेनकी शुद्धि पवन, अग्नि, सूर्य, चन्द्रकी कान्तिसूं होय हे''. एसें ही रज्जु(रस्सी) इत्यादिकी शुद्धि भी समझनी. क्योंके व्यासजीको वचन हे के ''जेसें जल इत्यादिसूं वस्त्रकी माटी शुद्धि होय हे तेसें ही रज्जु, वैदल(बांसके बनाए छवडा, टोकरा इत्यादि)की शुद्धि होय हे''. ओर जो रज्जु प्रभृति अत्यन्त मलसंसर्गवारी होंय तो बितनी ही काट करनी. एसें ही निवारकी शुद्धि समझनी. क्योंके निवार भी रस्सीको ही काम करे हे तासूं रज्जुवत् हे.

१५.पात्रादि शुद्धिको विचार.

> ''सोना चांदी मोती शंख सीप पत्थर के पात्र, ऊर्ध्वपात्र(यज्ञके उलूखल इत्यादि), ग्रह(षोडशि प्रभृति यज्ञके उपयोगी), शाक, रज्जु(बरत) जासूं पत्थर इत्यादि बांधे जाय हें उठाए जाय हें सो,

मूल(अदरक इत्यादि), फल, वस्त्र, विदल(बांस इत्यादि तथा बांसके बने छत्रपात्रादिक), चर्म (बकरा इत्यादिको चाम तथा चामके रस्सा इत्यादि), पात्र(पीतर तामेके), चमस(होतृचमस यज्ञके पात्रविशेष) इनकूं जो उच्छिष्टको स्पर्श भयो होय तो ओर कोई चीजको लेप लग्यो न होय तो धोएसूं शुद्धि होय हे. ओर उच्छिष्टको स्पर्श न होय तब धोयवेको भी काम नहीं हे''.

–एसें 'सौवर्णराजत' या 'याज्ञवल्क्य' की कारिकाके व्याख्यानमें विज्ञानेश्वरने लिख्यो हे. ये शुद्धि लौकिक–अलौकिक दोनो प्रसङ्गमें समान हे. क्योंके शाक इत्यादिनके भी बीचमें नाम गिनाए हें तासूं. इतनी बात ओर भी विशेष यहां समझनो के याज्ञवल्क्यने जो ये शुद्धि बताई हे सो ही रसोई इत्यादिके जो पात्र होंय, पहले दिनके मजे भए, उनकूं भी दूसरे दिन धोयके उपयोगमें लेने. क्योंके वे बासी हें. एसें ही शाक इत्यादि बासी होंय उनकूं भी धोने चाहिये. ओर अनाज इत्यादि जिन पात्रनमें होंय उनकूं तो प्रोक्षण ही करनो. धान्यादिके प्रोक्षणको विचार अगाडी आवेगो.

सलेप पात्रनकी शुद्धि कहे हें. ''चरु(चरुस्थाली), स्रुक्, स्रुवा, सस्नेह पात्र(प्राशित्र हरणादि) इनकी उच्छिष्ट स्पर्शमें लेप रहितनकी शुद्धि ताते जलसूं होय हे'' एसो विज्ञानेश्वरको मत हे. ओर हमकूं ऐसो मालूम पडे हे के उच्छिष्ट न होय तो भी चरु(भात)को लेप इनमें होय तासूं ताते जलसूं धोमनो. क्योंके 'चरुस्रुक्' या श्लोकमें 'चरु' ये पद प्रथम ही धरो हे. तासूं वे पात्र चरुके लेपवारे ही चहियें. दूसरो कारण ये हे के ताते जलसूं शुद्धि बताई हे तासूं भी उनमें चरुलेप सिद्ध होय हे. तासूं जो विज्ञानेश्वरको मत हे के लेप रहितनकी उच्छिष्ट स्पर्शमें उष्ण जलसूं शुद्धि होय हे ये ही नहीं हे किन्तु उच्छिष्ट स्पर्श बिना भी चरु इत्यादिको लेप होय तासूं उष्ण जलसूं प्रक्षालन करनो चाहिये. मनुस्मृतिमें कह्यो हे के ''सुवर्ण मोती सीप शंख को पात्र, अनुपस्कृत राजत पात्र ये यदि लेपरहित होंय तो इनकी जलसूं शुद्धि होय हे''. या वाक्यमें लेपरहितनकी ही जलसूं शुद्धि बताई हे. तासूं जो लेप सहित होंय उनकी ही उष्णजलसूं शुद्धि होय हे ये पूर्वोक्त बात सिद्ध भई. अपरार्कमें भी एसेंई हे.

पूर्वोक्त मनुस्मृतिके वचनमें 'अनुपस्कृत राजत' एसें कह्यो हे ताको अर्थ ये हे के ''चांदीको पात्र अनुपस्कृत होय वाकी शुद्धि जलसूं होय हे''. 'अनुपस्कृत' पदको अर्थ विज्ञानेश्वरने एसो करो हे के ''पृथ्वीमें डाठ्यो न होय एसो चांदीको पात्र''. ''अत्यन्त न छूयो होय एसो चांदीको पात्र'' एसो अर्थ मेधातिथिने कर्योहे. ''ताम्रको जामे मेल न होय एसो चांदीको पात्र'' एसो अर्थ अपरार्कने करो हे. ''चित्रामन, रेखा

इत्यादि जामें न होय एसो चान्दीको पात्र'' एसो अर्थ 'मर्यादासिन्धु'में लिख्यो हे. ये ही अर्थ युक्त हे क्योंके जामें चित्रामन, गढेला इत्यादि होंय वाको लेप केवल जलसूं नहीं जाय सके तासूं. ये ही बात निर्णयामृतमें कही हे. ओर ''जिन पात्रनमें बहोत लेप होय उन तैजस पात्रनकी, मणिनकी, पत्थरके पात्रनकी शुद्धि भस्म, माटी, जलसूं करनी'' एसें मनुस्मृतिमें लिख्यो हे. यहां तैजसपात्रको अर्थ धातुके पात्र हे. एसो वाक्य हे के ''सोनो, चांदी, ताम्र, कांस्य, लोह्यो, त्रपु(राङ्ग), सीसक(सीसो) इन सबनको नाम 'तैजस' हे''. या वाक्यमें कांस्यको नाम हे तासूं पीतरको भी बोध होय सके हे.

क्योंके ब्रह्माण्डपुराणमें पीतरकूं भी तैजस बतायो हे. ओर कांसेको तथा पीतरको नाम सङ्ग लीनो हे तासूं यद्यपि यहां कांस्यको ही नाम लीनो हे पर लक्षणासूं वाको सङ्गी पीतर भी लेनो. ओर जसत तो राङ्ग अथवा सीसम को भेद हे तासूं वो भी तैजस कह्यो जाय है.

अब पूर्वोक्त मनुके ''भस्मनाद्भिर्मृदा चैव'' वाक्यमें भस्म, जल, माटी इन तीननको नाम हे. तासूं तहां जल तो अवश्य ही लेनो ओर माटी ओर भस्ममें विकल्प हे. अर्थात् माटी लेनी अथवा भस्म लेनी एसें विज्ञानेश्वरने तथा मर्यादासिन्धुकारने अर्थ करो हे. ओर मोकूं यहां एसो मालूम पडे हे के तामें पीतरके जरे भए पात्रनकूं तो माटीसूं शुद्ध करने साफ करकें नएसे करनो. तथा कांसेके पात्रनकी कारोंच भस्मसूं मिटावनो एसें माटी ओर भस्म इन दोनोनको उपयोग जुदे–जुदे पात्रनमें माननो तासूं विज्ञानेश्वरने तथा मर्यादासिन्धुमें जो कह्यो हे चाहे माटीलेनो चाहे भस्म लेनो सो ठीक नहीं हे. ताहीसूं ब्रह्मवैवर्तपुराणमें वैष्णव ब्राह्मण धर्मके कहवेके प्रकरणमें श्रीनन्दरायजी प्रति भगवद्वाक्य हे के ''नित्य नवीन पात्रनसूं रसोई करनी अथवा पन्द्रे दिन तांई उन ही पात्रनसूं रसोई करनी फिर उनकुं फेक देने. ओर नित्य पाकस्थानकुं लीपनो शुद्धि करनो''. यहां नित्य नवीन पात्रनसूं रसोई करनो कह्यो हे. अब माटीके पात्र तो नित्य फेंक दिये जांय पर पीतरके बासन केसें फेंके जांय? ओर भगवान्‌को वाक्य तो एसो हे के नित्य नवीन पात्रनसूं रसोई करनी. तासूं पीतरके बासननकूं माटीसूं खरोंच दूर करके साफ करनो तथा कांसेकेनकूं भस्मसूं साफ करनो. क्योंकि नित्यनवीन करवेकी शक्ति नहीं हे. ओर मनुमें माटीसूं तथा भस्मसूं शुद्धि बताई हे तासूं रसोईके पात्रनकूं साफ करनो तब वे नित्यनवीनसे ही होय जांयगे तासूं भगवद्वाक्य विरोध भी न होयगो. ये ही शुद्धि निर्लेप ताम्रादिकके पात्र होय तथा थोडे लेपवारे होंय बहोत लेपवारे होंय उनमें भी तथा उच्छिष्ट पुरुषके स्पर्शमें भी जाननी. ये बात सर्वसम्मत हे.

उच्छिष्टके दो भेद हें :

१. ऊर्ध्वोच्छिष्ट तथा

२. अधोच्छिष्ट.

तहां ऊर्ध्वोच्छिष्ट पुरुषके स्पर्शमें ये पहलें शुद्धि बताय आए. ऊर्ध्वोच्छिष्ट पुरुषको जूठन अङ्ग इत्यादि जो पात्रके लगे तो मृत्तिकासूं वा पात्रको शोधन करनो इतनो विशेष हे. नहीं तो केवल जलसूं. एसें ही अधोच्छिष्ट पुरुषको हाथ जा पात्रसूं लगे वा पात्रकूं माटीसूं मांजनो. ओर पात्रको अधोच्छिष्ट अङ्गसूं ही स्पर्श होय तब तो अमेध्यलिप्त शुद्धि जो आगें कहेंगे सो करनी एसें मोकूं दीखे हे.

चर्मके पात्रनमें कछु विशेषता हे सो स्मृतिसारमें बताई हे.

''चामके सूपकी शुद्धि गोमूत्रसूं तथा जलसूं करनी. चामकी कुप्पीनकी शुद्धि धूप देयवेसूं होय हे. ओर जो चर्म हें उनकी शुद्धि गोमूत्रसूं तथा सुपेद सरसोंसूं होय हे. कोई ऋषिको एसो भी मत हे के चर्मकी शुद्धि तीन दिन तांई भस्म-मृत्तिका-जलसूं करनो, फिर तीन दिन तांई त्रिफलासूं करनो, फिर तीन दिन तांई कषायसूं करनो तब शुद्धि होय हे''. ''भस्म दो टका भर लेनी, माटी चार टका भर लेनी, ६ टका भर त्रिफला लेनीं ओर ६ टका भर ही कषाय लेनो. 'कषाय'नाम आम जामुन आमरे पाकर पीपर गूलर बड को हे.

१६. जूठन पात्रनकी शुद्धि

शंख ऋषिको एसो मत हे के ''ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के जूठन पात्र मांजेसूं शुद्ध होय हें ओर शूद्रके जूठन पात्रनकूं ४ बेर मांजके फिर अग्निसूं तपायकें धुंए हाथसूं उठायके गायके सींगको स्पर्शकरावनो तब शुद्ध होंय हें''. ये शुद्धि कांसेकी नहीं समझनी. कासेंकी तो विशेष शुद्धि बताई जायगी.

दांतके तथा सींगके पात्रनकी शुद्धि कडवी खरसूं करनी. फलपात्र(तूम्बा इत्यादि) की शुद्धि गायकी पूंछसूं करनीं. सीप-शंखके पात्रनकी शुद्धि कडवी खरसूं होय हे. ये शुद्धि थोडे संसर्गमें समझनी. विशेष संसर्गमें तो सींगके पात्रनकूं छीलनो ही वायुपुराणमें कह्यो हे एसें 'मर्यादासिन्धु'में कह्यो हे.

अग्निसूं तथा जलसूं चांदी सोनेकी उत्पत्ति हे तासूं अग्नि-जलसूं ही उनकी शुद्धि करनो अत्युत्तम हे ये ही बात श्रुतिमें भी लिखी हे. ''ताम्र, लोह, कांस्य, पीतर, राङ्ग, सीसो इनकी लोन खटाई जलसूं शुद्धि यथायोग्य करनो''. हारीतने कह्यो हे के

''सोने, शंख, शुक्ति(सीप) की शुद्धि जलसूं होय हे. ओर उनमें गन्ध

आवती होय अथवा दाग लगो होय, चिकनाईसूं मेलापन होय तो जो, गेहूं, मटर, उईमसूर, मूङ्ग इनके चूनसूं तथा गोबरसूं शुद्धि होय हे. ताम्रपात्रनकी शुद्धि लोनखटाईसूं होय हे. कासेंके पात्रनकी शुद्धि भस्मसूं होय हे. उस्तरा, छुरी इनकी शुद्धि घिसवेसूं अथवा तेल लगायवेसूं होय है. पथ्थरेके पात्रनकी भी शुद्धि रेतीके घिसवेसूं होय हे. मणिमयपात्रनकी सुनारके सोने इत्यादि धिसवेके पथ्थरपे घिसवेसूं शुद्धि होय हे. काठके पात्रनकूं छीलके शुद्ध करनो. माटीकेनकूं फिर अवामें पकावनो तब शुद्धि होय हे. बांसके टोकरा इत्यादिनकी शुद्धि गोमूत्र गोबरसूं होय हे. तूम्बी, कमण्डलु इत्यादिनकी शुद्धि गीली गायकी पूछसूं होय हे. जल तो सर्वत्र लगे हे''.

पराशर, शातातप, आपस्तम्बने कांसेकी शुद्धि एसे बताई हे के कांस्य पात्र शूद्रके जूठन होंय अथवा गायके सूंघे भए होंय अथवा कुत्ता कौआके जूठन होंय तो दस बेर मांजवेसूं शुद्ध होय हें. ओर शंख ऋषिको एसो मत हे के जो कांसेको पात्र स्वावडवारीको जूठन होय अथवा मदिरा इत्यादिको लेपवारो होय तो इक्कीस बेर मांजनो. ओर पीतर इत्यादिको वासन जो एसो होय तो तपावनो तथा गेहूं इत्यादि जो सात पदार्थ पहलें कह आए उनसूं २१ बेर मांजनो. कांसेकूं तपावनो नहीं एसें अपरार्कको मत हे. ओर निर्णयामृतमें 'सूतिकोच्छिष्ट' या शंखवचनको एसो अर्थ लगायो हे के कोई भी पात्र स्वावडवारीके संसर्गके होंय अथवा मद्यके संसर्गके होंय उनकूं २१ बेर मांजनो तब शुद्धि होय हे. तपायवेकी जरूरत भी नहीं हे. जो गेहूं प्रभृति जो सात पदार्थ पहलें बताय आए उनमेंसूं एकेक पदार्थसूं सात-सात बेर मांजनो २१(४९?) बेर समझनो. ओर कांसेकूं तो तपावनो तथा मांजनो तब शुद्धि होय हे.

इन दोनों व्याख्यामें अपरार्कको मत ही युक्त हे. क्योंके स्मृत्यन्तरमें मद्यादिकके संसर्गमें तपानो बतायो हे एसो अपरार्कमत हे. निर्णयामृतकारको ये मत हे के मद्यादिकके संसर्गमें तपावनो बतायो हे उच्छिष्ट तो वासूं कम अशुद्ध हे. तासूं शूद्रोच्छिष्टमें कासेकूं ही तपावनो पीतर इत्यादिकूं केवल मांजनो. आदित्यपुराणमें लिख्यो हे के कांसे, लोहे, तांबे, पीतर, राङ्ग और सीसे के पात्र लेपरहित होंय वे तो इकेले जलसूं शुद्ध होंय हें ओर शूद्रोच्छिष्ट पात्र होंय उनकूं लोन-खटाई-जलसूं चार बेर वा दश बेर एकेक पदार्थसूं जुदे-जुदे मांजनो. ओर मर्यादासिन्धुमें ब्रह्माण्डपुराणको वचन लिखो हे के ''स्वावडवारी, मुर्दा, विष्ठा, मूत्र, रजस्वला इनको छूयो जो पात्र होय वाकूं लोन खटाई जल इत्यादिसूं पूर्वोक्त शुद्धि करके अग्निमें जितने तापसूं गले नहीं इतनो तपावनो''.

सबको सार ये हे के

१.त्रिवर्णमेसूं कोईको भी उच्छिष्ट पात्र मंजो भयो होय, लेप कछू न होय वाकी प्रोक्षण करेसूं शुद्धि होय हे.

२.जूठन मोढे कोई माटीके पात्रकूं छूय ले तो वाकी प्रोक्षणसूं शुद्धि होय हे.

३.ओर जो कछू चिकनाई इत्यादिको वामें दाग लग रह्यो होय तो अग्निमें तपावनो. क्योंके बृहत्पराशरको वचन एसो हे के ''निर्लेप माटीको १ पात्र अथवा बहोतसे पात्र होंय उनकी प्रोक्षणसूं शुद्धि होय हे. ओर लेपवारेनकी खूब तपायवेसूं होय हे. जूठन हाथसूं ही छूये अथवा उच्छिष्ट लग गयो होय तो खूब तपावेसूं होय हे''. ''जूठन हाथसूं ही छूये होंय अथवा उच्छिष्ट लग गयो होय तो खूब तपाने जासूं कि जूठनको संसर्ग रूप-रस-गन्ध इत्यादि सब दूर हो जाय'' एसें बौधायनको वचन हे.

४.ओर काष्ठके जो पात्र हें उनकूं जूठन मोढे छूए होंय तो दोष नहीं हे. अथवा प्रोक्षण करनो. ओर जूठन हाथसूं छूए होंय तो छीलनो. जूठन मोढे दूसरे हाथसूं भी छूए होंय पर वे पात्र लेपयुक्त होंय तो भी छीलनो. क्योंके पहलें याज्ञवल्क्यको एसो वाक्य हे तासूं.

५.बांसके पात्र तथा पंखा इत्यादिकी प्रक्षालनसूं शुद्धि होय हे. ओर जूठनको संसर्ग लग रह्यो होय तो गोमूत्र, गोबर, बिल्वफलसूं घिसकें धोएसूं शुद्धि करनी. एसे ही चर्मपात्र (झाबा इत्यादि)की शुद्धि वस्त्रवत् समझनी. अथवा अगाडी प्रकार बतावेंगे ता रीतिसूं समझनो.

काचपात्रनकी तथा कागजके पात्रनकी शुद्धि कहूं भी कोई ग्रन्थकारनने बताई नहीं हे. पर विष्णुधर्मोत्तरमें दूसरे काण्डमें द्रव्यशुद्धिके अध्यायमें काचपात्रनकी शुद्धि बताई हे के काचपात्रकी शुद्धि जलसूं करनो. कागजके पात्रनकी शुद्धि तो वहां भी नहीं कही हे पर यहां विचार कियो जाय हे.

चीनीके पात्रनकी शुद्धिविचार कहूं भी नहीं हे पर उनकी शुद्धि यहां लिखे हें. चीनीके पात्रनकी कोई लोक तो काचसूं उत्पत्ति बतावे हें, कोई माटीसूं बतावें हें, कोई कोडीसूं बतावे हें. यदि कोडीसूं बने होंय तो अब्जमें गिनती हे. तो पहलें कह आए ता प्रकारसूं थोडे संसर्गमें तो प्रक्षालनसूं ही शुद्धि करनो. ओर मध्यम संसर्ग अथवा वासूं भी बढती भयो होय तो त्याग करनो. क्योंके बहोत संसर्गमें अस्थिके पदार्थनको छीलनो

बतायो हे सो तो चीनीमें होय नहीं सके तासूं त्याग ही करनो. ओर जो माटीके अथवा काचके मानें तो जलसूं तथा तपायवेसूं करनो. बहोत अशुद्धि भई होय तो बढती अग्निको दाह लगावनो, जासूं वे फूट नहीं जांय एसो अग्निको ताप लगावनो. परन्तु शिष्ट लोक तो चीनीके पात्र नहीं स्वीकार करे हें. क्योंके उनकी उत्पत्ति खराब रीतिसूं होय हे. उत्पत्तिको प्रकार वैद्यकको ग्रन्थ रावणकृत अर्कप्रकाशमें लिख्यो हे के

> ''शिलाजीत जहां पेदा होतो होय वहां एक गढेला खोदनो, वामें पशुके तथा मनुष्यके पुराने हाड डारने, तामें सज्जीखार, महाखार, खारो, लोन अनेक तरहके पटकनो. गन्धकको तातो जल डारनो. नानाप्रकारके मूत्रडारने. फिर ६ महिना तांई पथ्थरकी माटी डारनो. फिर कंकपक्षीको हाड डारनो. फिर खूब आंचसूं वाकूं जरावनो. फिर तीन बरस पीछे वो सब इकट्टो पथ्थरसो बन जाय हे वाकूं निकासकें सबको चूरा करके अनेक पात्रनकूं बनावनो''.

एसें चीनीके पात्रनकी उत्पत्ति बहोत खराब रीतिसूं लिखी हें.

कागजके पात्रनकूं प्रोक्षणसूं, धोयवेसूं, सुखायवेसूं यथायोग्य करनी एसें मोकूं मालुम पडे हे. क्योंके कागज सनके बने हें. ओर की शुद्धि रेशमी वस्त्रकेसी मिताक्षरामें लिखी हे.

ओर भी जो अतैजस पात्र (तामे पीतर इत्यादि धातुसूं भिन्न) हें उनकी शुद्धि पूर्वोक्त याज्ञवल्क्य, हारीत प्रभृति ऋषिके वाक्यनसूं जाननी.

कांस्य भिन्न तैजसपात्रकूं जूठन मोढे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इनमेसूं कोई भी बिना जूठनके अङ्गसूं छूय लेतो दोष नहीं हे. ओर जूठन हाथसूं छूए तो एक बेर मांजेसूं शुद्धि हे.

त्रिवर्णकी रजस्वला तथा सूतिका के छूये पात्रकी २१ बेर माजेसूं शुद्धि होय हे. ओर रजस्वलाके जूठन होंय तो खूब तपावनो ओर इक्कीस बेर मांजनो.

ओर जूठन मोढे शूद्र छूए तो धोवनो. ओर शूद्रको जूठन पात्र होय तो चार बेर मांजके फिर खूब तपायके गोशृङ्गको स्पर्श करावनो तब शुद्धि होय हे.

पात्रकूं गाय सूंघजाय तो भी एसे ही शुद्धि करनी.

कांसेके पात्रकूं त्रिवर्ण जूठन मोढे छूएं तो धोवनो. ओर जूठन मोढे छूएं तो एक बेर मांजनो.

शूद्रको जूठन कांस्यपात्र दस बेर खारेसूं मांजनो तथा खूब तपावनो. ये ही शुद्धि गायके सूंघवेमें हूं करनीं.

शूद्रकी स्त्री तथा स्वावडवारीको जो उच्छिष्ट कांस्यपात्र हे वाकूं त्याग करनो.

कांसेके पात्रमें कुल्ला करे होय वा पांव धोए होय तो ६ महिना तांई पृथ्वीमें डाटनो फिर निकासकें खरसानपे ऊजरो करनो. एसे हीं पीतरके पात्रमें कुल्ला करे होंय तो वाकी हू शुद्धि करनो एसो मालूम पडे हें क्योंके या श्लोकमें कांस्यपद हे से पीतरके ग्रहणकरवेकी सूचना भी करे हे.

१७. अमेध्यस्पृष्ट पात्रकी शुद्धिको विचार

देवलऋषिने इनकूं अमेध्य कहे हें : ''मनुष्यको अस्थि, मुर्दा, विष्ठा, वीर्य, मूत्र, अटकावको लोही, वसा, मेदा, अश्रु, आंखको मेल, थूक–खखार तथा मद्य''. यहां मुर्दा कह्यो हे सो पशुसूं लेके मूसा–छापकी पर्यन्त सबको ही समझनो. छापकीसूं अगाडी तो कीडानमें क्षुद्र जन्तुनकी गिनती हे. विष्ठा–मूत्र बिलावपर्यन्तकी समझनी. क्योंकें मूसाकी मुसलेंडी अन्नमें पडी दीखे तो वितने ही ग्रासकूं उठायकें फेंक देनो कह्यो हे तासूं वाकेमें दोष नहीं हे. 'मद्य' शब्द करकें तो बारहे प्रकारके लेने. उनके १२ प्रकार ये हें : १.पनस(कटेर) २.दाख ३.मधूक(मुरेठी) ४.खिजूर ५.ताल ६.ईख ७.मधु(दोडी) ८.सैर ९.अरीठा १०.मेरेय(मिराओषधि) ११.नरियलकी सुरा तथा १२.सुरा. इन बारहेनमें सुरा बहोत अधम हे.

पीतर, तांबे इत्यादिके बासननकूं मूत्र, विष्ठा, वीर्यादि अमेध्यको अत्यन्त संसर्ग भयो होय तो गलानो चहिये. थोडो संसर्ग भयो होय तो खरसानपे चडामने, स्पर्शमात्र भयो होय तो भस्मसूं २१ बेर मांजनो तथा जो–गेहूं इत्यादिसूं भी मांजनो एसें अपरार्कमें तथा निर्णयामृतमें लिखो हे. ओर काठके, चामके, कागदके पात्र इत्यादिनको तो त्याग ही करनो. ओर शातातप ऋषिको एसो मत हे के ''सुवर्ण, रजत, ताम्र, राङ्ग, कारो लोह्यो, पीतर, सीसो, सुपेद लोह्यो इनकूं खूब पत्थरसूं घिसने तब शुद्धि होय हे''. स्मृत्यन्तरमें भी कह्यो हे के

> ''मद्यको जामें लेप न होय एसे कांस्यकी शुद्धि भस्मसूं होय हे. ओर जामें मद्य, विष्ठा, मूत्रको संसर्ग होय वाकूं तपायेसूं तथा खरसानपे छिलाएसूं शुद्धि होय हे. ओर ताम्रकी शुद्धि खटाईसूं होय हे. मांसके संसर्गवारे ताम्रकी खूब तापाएसूं खरसानपे छिलाएसूं होय हे. ताम्रकी शुद्धि खटाईसूं होय हे. मांसके संसर्गवारे ताम्रकी खूब तपाएसूं खरसानपे चढायेसूं होय हे. ताम्र–पीतर इत्यादिके पात्रनकूं मूत्र–विष्ठादि संसर्गमें माजनो–तपामनो, अधिक संसर्गमें गलानो''.

ये ही मत बौधायनको तथा विष्णुको भी हे. एसें ही चाण्डाल, स्वावडवारी, रजस्वला, पतित इत्यादिके अधिक संसर्गमें गलानो, थोडे संसर्गमें तपानो ओर २१ बेर भस्मादिकसूं मांजनो.

निर्णयामृतमें या विषयकी एसी व्यवस्था बांधी हे के पूर्वोक्त मलमूत्रादिको संसर्ग ताम्र, पित्तल इत्यादिके पात्रनकूं भयो होय तो सात दिना तांई गौमूत्रमें राखने. एसें करेसूं भी वाको लेप इत्यादि संसर्ग दूर न होय तो गलायकें नए बनानो ये बात भी युक्त हे. एसें ही बिलाव, छापकी इत्यादिके मूत्रादिको संसर्ग पात्रनकूं भयो होय तो शुद्धि करनी. थोडे संसर्गमें तपानो बहोतमें गलानो.

झीङ्गुर इत्यादि छोटे जीव शाक इत्यादिमें रंध गए होंय तो वाकूं पटकके वा पात्रकूं तपानो. ओर मूसा, छापकी इत्यादि रंध गए होंय तो वा पात्रकूं खरसानपे छिलवानो. मछली, जोख इत्यादि मरकें गिरें तो भी या ही प्रकारसों शुद्धि करनीं. जा पात्रमें रंधो होय वासूं जा पात्रको स्पर्श भयो होय वाकी भी एसी ही शुद्धि करनी. भोजनके पात्रमें वाको अल्प स्पर्श भयो होय तो मांजनो. साक्षात् स्पर्श भयो होय तो अधिक मांजनो.

दही–दूध तांबेके पात्रमें मद्यके समान होय जाय हें, कांसेंके पात्रमें शहद मद्य समान हे. अदरकमें जुड मिलो होय तो मद्य सम हे. अब जो ये मद्य समान हें सो जा पात्रमें धरे होंय वा पात्रकी शुद्धि माजवेसूं ही होय हे ओर कोई वाकी शुद्धि नहीं हे. ‘‘होमके समय, दोहके समय, पाक करवेमें, परिवेषणमें, स्नान–दान–तर्पणमें ताम्रपात्रमें दही–दूध धरवेमें दोष नहीं हे’’ एसो सदाचारचन्द्रोदयमें षट्त्रिंशन्मतको वाक्य लिखो हे. एसे ही दीयासूं छूए पात्रनकी शुद्धि मांजवेसूं होय हे. गायके सूंघे पात्रनकी शुद्धि १० बेर मांजवेसूं होय हे एसें पराशरादिऋषिके वाक्य पहलें लिख आए हें. शंखऋषिने कह्यो हे के कारे पक्षीके मुखसूं छूए भए पात्रनकूं खरसानपे धरकें छीलने. ओर पशुनके मुखसूं छूए पात्रनको उपयोग नहीं करनो. यहां मुखके छुएनकी अशुद्धि इतनी बताई हे तासूं मुख सिवाय ओर अङ्गको स्पर्श भयो होय तो मांजवेसूं शुद्धि होय हे. पशुमें भी बिलाव पवित्र हे क्योंके बिलाव, कडछी, पवन ये सदा शुद्ध हें एसो मिताक्षरामें वचन लिखो हे. ये ही बात योग्य हे.

ओर जहां बहोतसे पात्र इकठ्ठे धरे होंय वहां तो जाकूं मलादिको स्पर्श होय वो ही छूए हें ओरनकूं अशुद्धता नहीं हे एसें अपरार्कमें हारीत ऋषिको वचन हे. शंखऋषिको भी ये ही मत हे. ये जो शोधनप्रकार हे सो पहलें कह आये जो हारीतऋषिने ‘‘अद्भिः काञ्चनशंखशुक्तीनाम्’’ इत्यादि करकें जो शुद्धिविभाग बतायो

हे ताही प्रमाण समझनो.

ओर जिनकी शुद्धि स्पष्ट शब्दनमें शास्त्रमें नहीं दीखे हे ऊनकी शुद्धि शातातपने एसे बताई हे के जो पदार्थ अशुद्ध वस्तुके स्पर्शसूं अपवित्र भयो होय वो ही अपवित्र समझनो वासूं दूसरो लग्यो होय तो वो नहीं छूए. ये ही शुद्धि प्रकार सर्व वस्तुमें समझनो.

बौधायनऋषिको एसो मत हे के काष्ठके पात्रनकूं उच्छिष्टको संसर्ग भयो होय तो शस्त्रादिकसूं घिसकें शुद्धि करनीं. ओर उच्छिष्टको लेप लगो होय तो छीलने. ओर मलमूत्रादिस्पर्श भयो होय तो त्याग करनो. मर्यादासिन्धुमें तो एसे कह्यो हे के चाण्डाल, शव, विष्ठा इनको थोडो संसर्ग भयो होय तो भी खरसानपे चढायकें घिसवेसूं शुद्धि होय हे. कोईक ग्रन्थकारनने एसो कह्यो हे के विष्ठाको संसर्ग भयो होय तो वा पात्रकूं खरसानपे इतनो छिलवानो जासूं वाको गन्धलेप सब दूर होय ता पीछे वाकूं लेनो. शव आदिके स्पर्शमें माटी–जलसूं प्रक्षालन करनो. आसन, चोकी, पटा इत्यादिकूं कुत्ता छूय जाय तो धोने चहियें. ओर रसोईके उपयोगी पात्रनकूं पूर्वोक्त स्पर्श होय तो त्याग ही करनो एसें मालुम पडे हे. ओर सींगके पात्र तथा दांतके पात्रकी भी एसें ही शुद्धि करनो. ''मणिमय पात्र, पथ्थरके पात्र, शंख–शुक्ति प्रभृतिकूं मूत्रादिस्पर्श भयो होय तो सात दिन पृथिवीमें गाडने तब शुद्धि होय हे'' एसें विष्णुवचन हे. ओर दांतके, सींगके, शंखके, सीपके, मणीके, पात्रनकूं उच्छिष्ट स्पर्श भयो होय तो विनकी रेतीसूं घिसवेसूं शुद्धि होय हे एसें अपरार्कमें कश्यपको वाक्य हे. बांसके, बेंतके, नड(तृणविशेष)के, निचुल(स्थलवेतस)के वस्त्र इत्यादिनकी शुद्धि भी काष्ठवत् ही समझनीं. बांसकी अथवा बेंतकी पिटारी होय कपडा धरवेकी तो वाकूं धोनो तब शुद्धि होय हे क्योंके जो भोजनके उपयोगी होय वाकी अधिक शुद्धि करनीं. ओर एसे पात्रमें अशुद्ध गन्ध–लेप छुडायकें धोयवेसूं ही शुद्धि होय हे. ओर बांस इत्यादिकको पक्वान्न धरवेको पात्र होय वाकूं तो त्याग ही करनो. माटीके पात्रनकी जो पहलें शुद्धि बताई के उनकूं फिर अग्निमें पकायलेने तब शुद्धि होय हे सो ये शुद्धि भी कुत्ता इत्यादिके स्पर्शमें ही समझनो. ओर ''मद्य, मूत्र, विष्ठा, थूक, खखार, राध, लोही, अश्रु इत्यादिकको स्पर्श माटीके पात्रकूं भयो होय तो त्याग करनो'' एसें मनुस्मृतिमें लिखो हे. मर्यादासिन्धुमें मनुस्मृतिके श्लोकको पाठभेद हे पर अर्थभावसूं एक ही आवे हे.

चाण्डालादिके स्पर्शमें बहोत धान्य तथा वस्त्र होय तो ताकी प्रक्षालनसूं शुद्धि हे. ओर माटीके पात्रनको तो त्याग ही करनो एसें अपरार्कमें स्मृत्यन्तर वाक्य हे. फलपात्र(तूम्बा इत्यादि)की शुद्धि पहलें बताई हे जो उनकूं मलमूत्रादि स्पर्श होय तो

त्याग ही करनो. अपरार्कमें ब्रह्मपुराणके वचनसूं ओर प्रकार भी बतायो हे के रज्जु, छाल इनके पात्रनकी तथा चमस(यज्ञकी पात्रविशेष)की, तूम्बाकी, चर्मकी जलसूं तथा माटीसूं शुद्धि करकें गायके पूंछके बालनसूं घर्षण करकें शुद्धि करनो. ओर चर्मकी शुद्धि कश्यपने एसें बताई हे के तृणके, काष्ठके, रज्जुके, भोजपत्र, सनके, रेसम, लाखके, चर्मके, बांसके, तूम्बाके, पत्रके, छालके पात्र इत्यादिनकी वस्त्रवत् शुद्धि करनी. माटी, चाम, काष्ठ के पात्रनकूं बहोत संसर्ग भयो होय तो त्याग करनो. खराब स्थलमें धरे होंय तो धोनो. परोक्षमें आए होंय तो प्रोक्षण करनो. एसें ही काच्छप वलय(कछुआकी चामके कडा इत्यादि)की शुद्धि चर्मवत् करनीं. एसें ही ओरनकी शुद्धि भी समझनी.

१८. शय्याकी शुद्धिको विचार

बौधायन ऋषिको वाक्य हे के

''आसन, शय्या, यान, नौका, मार्ग, तृण, ईटके पंजाए इन सबनकी शुद्धि पवनसूं तथा सूर्यकी किरणसूं होय हें. अपनी शय्या, अपनो आसन, अपनो यान, अपनी स्त्री, अपनो पुत्रादिक, अपनी कमण्डलु ये सब शुद्ध हें. ओर ये ही चीज दूसरेकी अशुद्ध समझनो''.

हारीतने भी कह्यो हे के कोई एसें माने हें के यान, शय्या, शुद्ध हें पर ये बात योग्य नहीं हे क्योंकि धर्मशास्त्रमें ब्राह्मणादिक चार वर्णनमें उच्चता–नीचता हे तासूं ऊंचे वर्णकूं नीचे वर्णकी शय्यापे न बेठनो तथा नीचे वर्णकूं ऊंचेकी शय्यापे न बेठनो. कोई पातकी–उपपातकी होय ओर वाकी शय्यादिकमें शुद्ध बेठ जाय तो वाकूं भी संसर्गदोष लगे हे तासूं भी नहीं बेठनो. जेसें रोगीके संसर्गसूं अच्छेकूं भी रोग लग जाय हे तेसें ही पापीके शय्यादिकपे आरोहणसूं शुद्धकूं भी पाप लगे हे. तासूं शय्या, आसन इत्यादि पृथक्–पृथक् ही चहियें ओर पृथक् ही उनकी शुद्धि करनो अच्छी बात हे. ओर परदेशमें शैया अपनी न होय तब तो कम्बल इत्यादि पवित्र वस्त्र दूसरेकी शय्यापे बिछायकें वा शय्यादिकको उपयोग करनो. क्योंके वेसे ही पतितादिककी शय्याके स्पर्शमें सचैल स्नान शास्त्रमें लिखो हे एसें अपरार्कमें हारीतऋषिको वाक्य हे. एसें ही आसन, गादी, जाजम इत्यादिकी भी व्यवस्था समझनी. स्मृत्यन्तरमें तो एसें कह्यो हे के ''आसन, यान, शय्या तथा बहोतसी इकट्ठी चीज इनकूं जो चाण्डालादिक भी स्पर्श करें तो भी प्रोक्षणसूं ही शुद्धि होय हे''.

ओर गादी इत्यादिनकूं उच्छिष्टको स्पर्श भयो होय तो सब ग्रन्थनमें देवलऋषिको एसो वचन हे के ''गादी, तकिया, पुष्प, रङ्गीन कपडा इनकूं धूपमें

सुखायकें, हाथसूं मसलकें, जलके छीटा देनो तब शुद्धि होय हे. ओर बहोत मेले होंय तब तो धोने ही चहियें''.

ओर बृहत्पराशरको तो मत एसों हे के ''वस्त्रोपस्कर सहित शय्या, रङ्गीन कपडा, फूल इनकी प्रोक्षणसूं ही शुद्धि होय हे''.

१९. धान्यादिककी शुद्धिको विचार

''धान्य जो बहोत होय अर्थात् अनेक पुरुषनसूं उठसकें इतनो धान्य होय तथा बहोत वस्त्र होंय तब प्रोक्षणसूं शुद्धि होय हे ओर थोडेनकी धोएसूं शुद्धि होय हे''.

ये ही बात याज्ञवल्क्यऋषिने कही हे. या बातमें बौधायनऋषिकी सम्मति भी हे के जो इकठ्ठे काष्टादिक होंय उनकूं चाण्डालादिको स्पर्श होय तो धोयकें सुखाने तब शुद्धि होय हे. ओर एक पुरुषसूं न उठें इतने होंय तो काष्ठ तथा पथ्थर कूं भूमिके समान समझनो.

लौगाक्षिने भी कह्यो हे के ''चाण्डालादिकको स्पर्श भयो होय तो बहोत धान्यकूं तो प्रोक्षण करनो, थोडेकूं धोनो ओर छिलकाके चामर इत्यादि धान्य होंय उनको त्याग करनो''.

''बहोत चामर इत्यादिनकी जलके प्रोक्षणसूं शुद्धि होय हे. शाक, मूल, फल की शुद्धि जितने भागकूं स्पर्श भयो होय वाके त्यागसूं होय ह. और मूत्रादिसंसर्ग भयो होय तो जितनेमें संसर्ग होय वितनेकूं फेंक देनो. ओर अपवित्र धूल इत्यादिको संसर्ग भयो होय तो छिलका उतारेसूं शुद्धि होय हे''.

एसे बौधायनने कह्यो हे. कश्यपने एसें कह्यो हे के

धान(छिलकासहित चामर) जो, गेहूं इनकूं चाण्डालादिके स्पर्शमें अनेक पुरुषनसूं उठ सकें इतने होय तो प्रोक्षणसूं शुद्ध करनो. ओर यासूं थोडे होंय तो जरती लकडी चारों ओर फिरायके शुद्धि करनी. यासूं भी थोडे होंय तो धोयवेसूं शुद्धि होय हे. एसे ही जिनके छिलका उतारलीने हें एसे चामर इत्यादि होंय तो उनकूं खूब हाथसूं घिसने तब शुद्धि हे. ओर अनेक पुरुषसूं उठ सकें इतने होंय तो प्रोक्षणसूं शुद्धि होय हे. ओर मूंग इत्यादि एक आदमीसूं उठ सकें इतने होंय तो हाथसूं घिसवेसूं शुद्धि होय हे.

ओर वासूं थोडे होंय तो दरवेसूं शुद्धि होय हे. ओर अनेक पुरुषनपे उठें इतने होंय तो प्रोक्षणसूं शुद्धि होय हे. ओर बहोत ही थोडे होंय तो त्याग ही करनो.

आदित्यपुराणमें एसें कह्यो हे के जो घरमें आंच लगी होय ओर पशु, मनुष्य इत्यादि प्राणीको मरण भयो होय तो वा घरको धान्य(अनाज) खानो नहीं. ओर वा घरके पात्रादिक भी न लेने. माटीके पात्रमें धरे होंय अथवा पृथ्वीमें गडे होंय एसे जो यव, उर्द, तिल इत्यादिकनके स्वीकारमें दोष नहीं हे. ओर जहां अग्नि लगी होय ओर केवल घर जरो होय पर प्राणीकी हत्या न भई होय तो वा घरकी जो चीज बची होंय उनके लेवेमें दोष नहीं हे एसें अपरार्कमें हे.

ओर मिताक्षरामें ''प्रोक्षणं संहतानां च बहूनां धान्यवाससाम्'' याकी व्याख्यामें एसें लिख्यो हे के धान्यको अथवा वस्त्रनको ढेर हे तामेसूं थोडेनकूं चाण्डालादिकनने छूए हें, बहोतसे नहीं छूए हें तहां छुए भए वस्त्रनकूं धोनो ओर बिनाछूएनको प्रोक्षण करनो. एसे ही छुए भए धान्यकूं काढ डारनो बाकीको रहन देनो. ओर छुए भए अधिक होंय ओर अनछुए थोडे होंय तब भी वस्त्रनकूं धोनो ओर धान्यको त्याग करनो. ओर छुए तथा अनछुएनकी समानता होय तो प्रोक्षणसूं शुद्धि होय हे. इतनो छूयो, इतनो नहीं छूयो एसें निश्चय नहीं होय तो धोनो ही चहिये. अनेक पुरुषनसूं उठ सकें इतने वस्त्र तथा अनाज होंय तो प्रोक्षणसूं शुद्धि होय हे. या शुद्धिके बतायवेसूं परम्परासूं स्पर्श भयो होय तहां भी शुद्धि एसें ही समझनी.

ओर मर्यादासिन्धुमें एसें कह्यो हे के बहोत धान्यको अर्थ ये समझनो के आधे मनसूं अधिक होंय. ओर कोई एसें भी कहे हें के देश, काल, शक्ति इत्यादि देखकें 'बहोत' धान्य 'थोडो' धान्य एसे जहां पद होंय तहां अर्थ करनो. जेसे भिखारीकूं अकालमें पावसेर अनाज भी बहोत धान्य हे एसें कह्यो जाय हे. ये सब बात मर्यादासिन्धुमें हे सोही योग्य हे. क्योंके एकादशस्कन्धमें भगवान्‌को वाक्य भी एसो हे के सामर्थ्य देखकें शुद्धि-अशुद्धि माननीं. एसे ही अनेक पुरुषनसूं उठसकें वे वस्त्र बहोत कहावे हें. ओर तीनसूं अधिक होंय वे भी बहोत कहवामे हें पूर्वोक्तप्रकारसूं. नागदेवीयमें सङ्ग्रहकारने एसें कह्यो हे के ''सुपेद वस्त्र २० होंय तो वे बहोत कहावे हें. छींटके ११ होंय ते बहोत कहावे हें. ओर कसूम्भके रङ्ग ३ होंय तो भी बहोत कहावे हें''. ओर याज्ञवल्क्य ''प्रोक्षणं संहतानां च बहूनां धान्यवाससाम्'' या श्लोकेमें 'संहतानां' पदको अर्थ विज्ञानेश्वरने एसो कर्योहे के पहलें जिनकी शुद्धि बताय आए वे पदार्थ इकठ्ठे होंय उनको नाम संहत हे. ओर मर्यादासिन्धुमें 'संहत'को अर्थ एसो हे के

एक चीजसूं दूसरी चीज लग रही होय वासूं ओर लग रही होंय उनको नाम 'संहत' हे. अथवा 'संहत' नाम कठिन चीज, जेसें जमो भयो घी, गुड, आमिक्षा(बिना जमो दही) को हे. अथवा अङ्गिराऋषिने एसें कही हे के ''शय्या, आसन, यान, रोमके वस्त्र अर्थात् कम्बर इत्यादि इन सबनको नाम 'संहत' हे''.

अब ये 'संहत' शब्दके जितने अर्थ करे हें वे सब घट सके एसे हें क्योंकि एकादशके भगवद्वाक्यको प्रमाण पहलें दे चुके हें तासूं. जल सिवाय जितने घृत, तेल इत्यादि ढीले पदार्थ हें उनकी शुद्धि प्लवनसूं होय हे. 'प्लवन' नाम बहकें बाहर निकसनो. जेसें घीकी हांडी घीसूं पोंनी वा आधी भरी हें ओर कुत्ता-कौआसूं छूय गई होय तो वाके घीकूं तपानो ओर दूसरो घी तपायके वामें डारनो जब उभरकें थोडो जाय तब वा घीकूं शुद्ध समझनो एसें विज्ञानेश्वरने कह्यो हे. अमेध्य(अपवित्र थूक-खखार इत्यादि) सूं छूयो भयो पदार्थ घृतादिकसूं लग जाय तो भी एसें ही शुद्धि करनो. याहीको नाम 'उत्पवन' हे. क्योंके मनुने कह्यो हे के घी इत्यादि छूय जाय तो उनकी शुद्धि उत्पवनसूं करनीं. ओर 'उत्पवन'को अर्थ विज्ञानेश्वरने एसो करो हे के घी इत्यादिकूं दूसरे पात्रमें कपडा इत्यादि लगायकें छाननो ताको नाम 'उत्पवन' हे. जो उत्पवन(छाननो) न करो जाय तो बाल, माखी, मच्छर, चेंटी इत्यादि जीव नहीं निकस सकें. तासूं उत्पवन करनो. ओर कूल्लूकभट्टने 'उत्पवन'को अर्थ एसो बतायो हे के अपवित्र घीकूं तायकें दश अङ्गुलके दो कुश लेकें दोनों हाथनमें ''पवमानः सुवर्चनः'' या वेदके सगरे मन्त्रसूं वा घीकूं हलानो ताको नाम उत्पवन हे. अथवा विन कुशनसूं वामेंसूं थोडो घी निकास डारनो ताको नाम उत्पवन हे. ये बात सेरभर घी होय तबतांई करनी. ओर सेरसूं थोडो होय तब तो त्याग ही करनो. ये शुद्धि कुत्ता, कौआ छूएं तब की हे. ओर नीच जाति हांडीकूं छूएं तब तो पहले बताए जो तायकें, दूसरे पात्रमें करकें, थोडो घी ओर डारकें, थोडो उभरायकें पटकनो सो ही शुद्धि करनी एसो शिष्टाचार हे. बौधायनऋषिने कह्यो हे के संहत दूध-दही इत्यादि अपवित्र भए पे दूसरे पात्रमें करकें उभरायके उनकी शुद्धि करनी. शूद्रके पात्रमें पूर्वोक्त पदार्थ होंय तो भी ये ही शुद्धि करनी. ओर नीच जातिके हाथके घृत इत्यादिनकूं लेकें, तायकें दूसरे पात्रमें छाननो तब शुद्धि होय हे. ओर जेसी ये घृतादिककी शुद्धि बताई तेसी ही रसादिककी भी समझनी एसें शंखऋषिने कह्यो हे. शाकपत्रादिककूं अशुद्धता भई होय तो जितनो भाग दूषित होय वाकूं त्याग करकें शेषकूं अन्य पात्रमें करके जलमें उभरायकें शुद्धि करनी. मर्यादासिन्धुमें कह्यो हे के धान, चामर, शाक, मूल, फल इनकूं पात्रान्तरमें शुद्ध करनो. तासूं बृहत्पराशरने कह्यो हे के ''कच्चो मांस, घी, अंडी इत्यादिके तेल इतनी

वस्तु म्लेच्छके पात्रमेंसूं निकसेपे शुद्ध समझनीं''. ओर ''दूध, दहीं, घी ये ग्वालियानके पात्रमें रहें तब ताईं वा पात्रकूं शुद्ध समझनो. बेचवेके पदार्थ जितने दुकानमें होंय सो सब शुद्ध समझने. ओर कारीगरकी हाथकी चीज जितनी होंय सो सब शुद्ध हें''. म्लेच्छ यदि दूध–दही बेचतो होय तो वाके हाथके तथा वाके पात्रमें रहे भएनकूं न लेनो. क्योंके ''म्लेच्छसूं नीचो कोई नहीं हे''. दुकानकी चीज सब पवित्र हें एसें पहलें कह्यो हे तासूं शाक, फल, प्रभृति तो म्लेच्छसूं लेवेमें भी चिन्ता नहीं हे. ओर आम्रादिक फल बहोत दिन पर्यन्त धर राखने होंय तो उनको प्रोक्षण करके शुद्धि करनी. क्योंके धोयके राखवेमें बास आय जाय. ये सब शुद्धि कल्पना, युक्ति, प्रयोजन इनके बलसूं समझनी. जेसें शास्त्रमें कह्यो हे के ''कारीगरको होय शुद्ध हें'' तासूं ये बात सिद्ध भई के धोबी, दरजी इनकी छुई भई चीज शुद्ध समझनी. नीच जातिके कारीगर जा चीजकूं बनावें अथवा बनीकूं ही सुधारें तो वो वस्तु अशुद्ध नहीं होय हे. जेसें धोबी धोयकें सुधारके वस्त्र लावे वे शुद्ध हें. कोरिया, चमार इत्यादि जा चीजकूं बनामें वो वस्त्र, सूप इत्यादि सब शुद्ध हें. एसें हीं जा अन्नादिकके लगाए बिना वस्त्रादिककी उत्पत्ति अथवा उज्वलता नहीं होय वो अन्नादिक भी छूयकें कारीगर लगावें तो भी शुद्ध समझनो. जेसें कपडामें माढी हे. ताहीसूं शंखऋषिने कह्यो हे के ''कारीगरको हाथ जामें अनेक वस्तु पेदा होती होंय वे कार्यालय, साचें इत्यादि शुद्ध हें''. पैठीनसीने कह्यो हे के ''मद्यको कारखानो अर्थात् मद्यालयकूं छोडकें सब कार्यालय शुद्ध हें''. विज्ञानेश्वरने ये कह्यो हे के ''कारीगर इत्यादिनकूं सूतक होय तोहू उनको हाथ शुद्ध हे''. क्योंके स्मृत्यन्तरमें एसो वाक्य हे ''कारीगर, वैद्य, दासी, दास, राजा, राजभृत्य इनकी सूतकादिकमें हू सद्यः शुद्धि होय हे''.

२०. पक्वान्नकी शुद्धिको विचार

अपरार्कमें तथा सदाचारचन्द्रोदयमें यमको वचन हे के

''जा पक्वान्नमें माखी, कीडा, मुसलेंडी, बाल, पतंग इनमेंसूं कोई भी होय तो वो अशुद्ध होय हे. तासूं वामेसूं जो माखी इत्यादि पडी होंय वाकूं निकासकें वा अन्नपे थोडी राख लगानी अथवा जरती लकडिया चारों ओर फेरनीं अथवा सोनेके जलकें छींटा देनें अथवा वेसेई जलसूं प्रोक्षण करनो तब शुद्धि होय हे''.

एसे ही

''जाके उपर छींक भई होय अथवा जाकूं पल्लेसूं हलायो होय अथवा

जाकूं रजस्वलाने देख्यो होय ता पक्वान्नकी भी पूर्ववत् शुद्धि करनीं''.

यहां जो पहलें माखी बताई सो माखी नीलरङ्गकी समझनीं ओर रङ्गकी माखी पवित्र हे. तासूं बौधायनने कह्यो हे के ''नीलमाखी, मच्छर, खटमल, माथेकी जूआं, कपडाकी जूआं ये पक्वान्नमें पडें तो पूर्वोक्त शुद्धि करनीं''. सदाचारचन्द्रोदयमें कह्यो हे के ''माखी, डांस, मच्छर, घुन, छोटी चेंटी, मांसको कीडा ये सब भोज्यपदार्थ सिवाय सर्वत्र पवित्र हें''. बौधायनने कह्यो हे के बाल, कीडा, नख, रोम, मुसलेंडी ये अन्नमें दीखें तो वितने अन्नकूं पटककें प्रोक्षण कर भस्म लगाय ब्राह्मणके वचनसूं वाकूं स्वीकार करनो, तीन व्याहृतिके जो पद हें उनको ध्यान करके फिर खानो चहिये. सदाचारचन्द्रोदयमें तथा बौधायनके वाक्यमें त्वक्(चाम)को भी पाठ दीखे हे एसो ही याज्ञवल्क्य वाक्य हे. कोई शंका एसी करे के गौतमने कह्यो हे के पक्वान्न, बाल, कीडा इत्यादिसूं दूषित भयो होय तो नहीं खानो ताको समाधान निर्णयामृतमें तथा मिताक्षरामें एसो हे के बार कीडा इत्यादि रंध गए होंय तब अन्नकूं न खानो एसें गौतमऋषिको वचन लगानो तब विरोध नहीं आवे हे. ये ही बात योग्य हे, अन्यथा ओर वाक्यनसूं विरोध आवेगो.

गायने अन्नकूं सूंघ लीनो होय तब भी ये ही शुद्धि करनी एसें मार्कण्डेयपुराणमें तथा याज्ञवल्क्यमें वचन हे. तासूं कुत्ता-कौआ इत्यादि जा पक्व अन्नकूं छूय जांय ताकी शुद्धि पराशरने एसें बताई हे के जो आधे मनसूं अधिक पक्वान्न होय ओर जो कुत्ता-कौआनने छूयो होय तो ब्राह्मणसूं वाकी शुद्धि पूछनी. जेसें वे कहें तेसें करनी. ओर कुत्ता-कौआकी लार जितनेमें होय वितने अन्नकूं फेंककें अष्टोत्तरसहस्र गायत्रीके पवित्र जलसूं प्रोक्षण करके जरती लकडी चारों आडीसूं फेरकें खायवेमें दोष नहीं हें. जमदग्निने भी कह्यो हे के जो पक्व अन्न अध मन होय तामें जो बाल अथवा क्षुद्र जन्तु रंध गए होंय अथवा कुत्ता-कौआको स्पर्श भयो होय तो पूर्ववत् वाकी शुद्धि जाननी. एसें ही खरीदो भयो जो पक्वान्न हे ताकी शुद्धि भी करनी. ओर दो बेर पकायो होय अथवा बासी होय इत्यादिक जो कोई अपवित्र अन्न हे ताकी ये शुद्धि अर्थात् अष्टोत्तर सहस्र गायत्रीके मन्त्रसूं शुद्धि बताई सो नहीं हें किन्तु वाकी शुद्धि अल्प हे. केश-कीट के रंधवेसूं अन्न छूए हे एसो जो गौतमको वचन कह आए हैं वो थोडो अन्नकी अशुद्धि बतावे हे, बहोत अन्न तो नहीं छूए हे एसे समझनो.

अपरार्क मर्यादसिन्धु हेमाद्रिमें यम ओर मनु को वचन हे के देवद्रोणी (देवयात्रा अथवा बडो कढा)में, विवाहमें, यज्ञमें, उत्सवमें अन्नकूं कुत्ता-कौआ छूय जांय तो वितनो अन्न फेंकके बाकीकेकी शुद्धि करके उपयोगमें लेनो. जमे भए

पदार्थनकी प्रोक्षणसूं शुद्धि करनी ओर ढीले पदार्थनकी तपायवेसूं शुद्धि करनी. बकरीके मुखके स्पर्शसूं भी शुद्धि होय हे.

२१. घी–दूध इत्यादिकी शुद्धि

''घी, पायस(दूधकी चीज दही इत्यादि), दूध, गन्नेको रस, गुड, शूद्रकी भण्डेरीमें रह्यो मठा, सहत ये सब वस्तु पवित्र समझनीं''. ओर जो इन वस्तुनको आधारपात्र दूषित होय तो दूसरे पात्रमें ठलाएसूं शुद्धि करनीं एसें शंखऋषिने कह्यो हे.

सन्धिनी(गर्भवती) गायको दूध नहीं पीनो क्योंके वा बेर वो ऋतुमती हे तासूं. ब्याहें जाकूं दश दिन अथवा सात दिन नहीं भए हें वा गायको दूध भी नहीं पीनो क्योंके वाको रज निवृत्त नहीं भयो हे तासूं. बछडा जाकूं मर गयो हे एसी गायको दूध भी नहीं पीनो क्योंके वो शोकयुक्त है. ओर बछडाके शोककूं भूल गई होय तब भलें पीनो.

ओर दूधके लोभसूं बछडाकुं पिवाये बिना दूध निकार्योहोवे सो दूध अपवित्र होवे हे, क्योंके खातेके हाथमेंसूं जैसें कोर छिनायकें खाय तेसें बिना बछडा दूध काढ्यो हे. 'विनावत्सात्' को अर्थ मोकूं एसो भी प्रतीत होय हे के दुही भई गायके दूध पीवेको अधिकार बछडा सिवाय ओरनकूं नहीं हे. अर्थात् दुहे पीछे तो बछडा ही पीए.

१. तुरत व्याही गायको दूध सात दिन न पीनो,

२. दश दिन नहीं पीनो,

३. महिनाभर नहीं पीनो, महिनाके पीछे वो अमृत हे.

ये जो तीन पक्ष हें सो रजोनिवृत्तिकी सूचना करवे वारे हें. जो सात दिनमें ही रजोनिवृत्ति निश्चय होय तो तब ही पीनो. ओर दशमें होय तो तब ओर महिनामें तो नि:सन्देह हेई. पर आजकाल दशदिन पीछे ही पीवेको शिष्टाचार हे. एसें ही ग्याभन भएपे सन्धिनी(कामुकी)के दूध पीवेकी चिन्ता नहीं हे. एसे हीं मृतवत्सा जो गाय हे वो खर भूसी इत्यादि खवायवेसूं मरो भयो जो बछडा हे वाकूं सूंघे नहीं ओर वाके शोककूं भूलजाय तो वाके दूध पीवेमें भी चिन्ता नहीं हे. ओर बछडाकूं भी दूध इतनो राखनो जासूं वाकी तृप्ति होय. क्योंके पहलें बछडा लगायो ओर दूध सगरो दोहवेमें आयो फिर बछडाकूं दूध पीवेकूं न मिले तो वो दूध अशुद्ध होय हे. तासूं बछडाकूं दूध अवश्य राखनो चहियें.

एसे हीं स्यन्दिनी ओर यमसू गायके दूध पीवेमें दोष हें एसें गौतमने कह्यो हे. 'स्यन्दिनी' नाम वाको हे के जाकें थनके हाथ लगाएसूं दूध झरवे लगे. दूध पीवेमें ये

दोष हे के स्यन्दिनीको दूध दुहे तो वाके थन खाली होय जांय तो वाकूं पीडा होय तासूं.

एसें ही यमसू(दो बछडा जाके होंय) गायके दूध पीवेमें देष हे. क्योंके दूध काढवेमें वाके दोनो बछडानको पोषण नहीं होय तासूं. यद्यपि शास्त्रमें स्यन्दिनी ओर यमसूं के दुग्ध पीवेको निषेध मात्र हे पर कारण नहीं बतायो हे पर हमने जो ये कारण लिख्यो हे सो ही उचित मालूम पडे हे. मिताक्षरामें कह्यो हे के दूधको निषेध करो हे तासूं दूधसूं जो चीज बनी होंय दही इत्यादि उनको भी दोष हे. गोमूत्र, गोबर लेवेमें तो दोष नहीं हे एसें मिताक्षरामें कह्यो हे पर जा गोबर–गोमूत्रमें भी रजको अंश दीखे वाकूं तो न लेनो एसें मोकूं मालुम पडे हे.

> ''ऊंटको दूध, एकशफ(गधी इत्यादि)को दूध, स्त्रीको दूध, अरण्यके पशुनको दूध, भेडको दूध नहीं पीनो''. ब्रह्मपुराणमें कह्यो हे के ''दाखको रस, गन्नेको रस ताजो होय तो पवित्र हे''.
>
> ''ब्रह्मचारी, सक्क्यासी, सन्तान होयवेकी इच्छावारो, यज्ञ करवेकी इच्छावारो, रस्तागीर, सर्वस्व जाने देदीनो वो पुरुष, गुरु–माता–पिताकी सेवा करवेवारो, विद्याध्ययन करवेवारो, रोगी इन सबनकें हाथमें आई जो भिक्षा हे वो पवित्र समझनी''.

अर्थात् पूर्वोक्त ब्रह्मचारी इत्यादिनकूं अपनी उदरपूर्त्ति लायक भिक्षा जब ताईं न मिले तब ताईं मार्गमें चलवेसूं वो भिक्षा अशुद्ध नहीं होय हे. ओर उदरपूर्तिसूं अधिक भिक्षा मांगे तो मार्गमें अनेक अपवित्रनको स्पर्श होय तासूं वा भिक्षाकूं धरके आचमन करे तब शुद्धि होय हे. ये आचमन थोडी अशुद्धि में समझनो. विशेष संसर्गमें तो भिक्षात्यागपूर्वक स्नान करनो चहिये. एसें ही परिवेषणके समयमें परोसवेको भक्ष्य पदार्थ होय तब उच्छिष्टको स्पर्श होय तो आचमन करनो. ओर खायवेकी चीज हाथमें न होय पर वस्त्रादिक हाथमें होय तब तो वा चीजकूं हाथमें राखकें ही आचमन करेसूं शुद्धि होय हे एसें मनुस्मृतिमें कह्यो हे. ब्रह्मपुराणमें कह्यो हे के ''हाथमें जाके खायवेके पदार्थ हें एसो परोसवेवारो जो उच्छिष्ट मुखवारे शूद्रसूं छूय जाय तो वा हाथकी चीजकूं देदेनीं पर खानीं न चहिये''. यासूं ये मालुम पडे हे के शूद्र सिवाय ओर कोई ब्राह्मणादिक उच्छिष्टमुख होय वासूं परोसवेवारो छूए तो दोष नहीं हे. सदाचारचन्द्रोदयमें वशिष्ठ तथा मानव वाक्य लिखकें ये कही हे के जो पदार्थ अङ्गपे राखिवेलायक होय वाकूं तो राखकें आचमन करनो ओर अङ्गपे राखवेलायक न होय तो धरतीमें धरकें वाको स्पर्श करके आचमन करनो. यद्वा जा उच्छिष्टमुख पुरुषके स्पर्शमें शास्त्रमें आचमन लिखो हे ताके स्पर्शमें खायवेकी चीज हाथमें होय तो वाकूं पृथ्वीपे धरके

आचमन करके वा चीजको प्रोक्षण करके स्वीकार करनो. या कहवेसूं ये सिद्ध होय हे के जो जूठन मोढेवारेसूं छूए वाकूं ही दोष लगे हे पर हाथकी चीज अपवित्र नहीं होय हे.

एसे ही खायवेकी चीज रेशमी वस्त्रादिकमें लिपेटकें दूसरे घरमें भेजी होय अथवा देशान्तरमें भेजी होय तो भी वो शुद्ध हे. ओर लेजायवे वारेकूं मार्गमें अमेध्य(थूक, खखार)को स्पर्श होय तो त्याग ही करनो एसो शिष्टाचारसूं मालुम पडे हे. क्योंके विष्णुपुराणमें कह्यो हे ''शूद्रको भी अन्न घरमें आयो होय तो वाकी प्रोक्षणसूं शुद्धि करनी''. तो यासूं ये भी प्रमाण मिलोके दूसरे घरमें लेजायवेमें चिन्ता नहीं हे ओर अमेध्यके स्पर्शमें तो त्याग ही करनो.

सदाचारचन्द्रोदयमें ओर भी बात कही हे के ''अरण्यमें, निर्जनस्थानमें, रात्रिमें, चोरसिंहादिकको जहां भय होय वा रस्तामें चीज कछु हाथमें होय ओर मलमूत्र त्याग करे तो भी दोष नहीं हे''. पक्वान्नादिक भी पास होंय तब वाकूं धरतीपे धरकें अपने मलमूत्राङ्गकी शुद्धि करकें वा पदार्थको प्रोक्षण करे तब शुद्धि होय. ये ही बात हारीतने कही हे. ओर पुष्पादिक अथवा तृणादिक अथवा घृत प्रभृति जो मलमूत्रादि त्याग करते समें होय तों उनकी प्रोक्षणसूं शुद्धि होय हे. मार्कण्डेयऋषिने तो ये कह्यो हे के मलमूत्रादिके त्याग समयमें घृतपक्व पक्वान्न भी हाथमें होय तो वाकूं धरतीमें न धरनो ओर अङ्गमें ही वाकूं राखकें देहशुद्धि करकें आचमन करकें वा अन्नको प्रोक्षण करकें सूर्यकूं वो पक्वान्न उठायके दिखानो, वामेंसूं ग्रास एक धरतीपे फेंकनो फिर वो अन्न शुद्ध समझनो. अब या कहवेसूं ये सिद्ध भयो के मलमूत्रादि त्यागमें विपत्तिमें पक्वान्न नहीं छुए तो उच्छिष्ट मुखके छुएसूं तो पक्वान्न नहीं ही छूए ये सिद्ध होय हे. पहलें जो पक्वान्नको अर्थ घृतपक्व पक्वान्न करो ये बात भी योग्य हे क्योंके ग्रहणमें पक्वान्नको त्याग करनो एसो वचन हे, ताके ऊपर फिर एसो वाक्य हे के ''कांजी, दूध, मठा, दही तैलपक्व, घृतपक्व मणिक नामक यज्ञपात्रमें रह्यो पानी ये नहीं छुए हें''. तो यहां घृतपक्वकूं शुद्ध बतायो हे एसे हीं मलादि त्याग समयमे भी अर्थ लेनो ऐसे वायुपुराणमें चातुर्मासमाहात्म्यमें कह्यो हे.

तथा अपरार्कमें आपस्तम्बको वचन हे के

''अशुद्ध आदमी जा अन्नकूं लायो होय वो अन्न अशुद्ध हे पर अभोज्य नहीं हे. ओर अशुद्ध शुद्र जा अन्नकूं लावे वो अन्न अभोज्य हे. जा अन्नमें बाल पडो होय, अमेध्यसंसर्ग होय, अमेध्यको कीडा होय, मुसलेंडी होय, पांव लग गयो होय, पल्लो पडो होय, कुत्ताने देखो होय,

अपात्रने देखो होय, दासीको लायो भयो होय, रात्रिमें लायो भयो होय, जेमतेमें शूद्रने छूयो होय तो, वाकी पातरको अन्न अयोग्यनने छूयो होय वो, जेमतेनमें बिना उठें उच्छिष्ट परोस देवे, आचमन लेले वो, निन्दा करके दियो भयो हे वो, सूंघो होय वो ओर भी जो कोई अमेध्य हें उनके संसर्गको अन्न अभोज्य नहीं हे पर अपवित्र हे''.

तासूं वा अन्नकी शुद्धि अग्निसम्बन्धसूं अथवा प्रोक्षणसूं अथवा सुवर्ण स्पर्शसूं अथवा बकरीके मुखके स्पर्शसूं करनीं.

अब यहां जो पहलें कह आए के जो अशुद्ध शूद्र हे वाको छुयो भयो पक्वान्न अभोज्य हे अर्थात् शुद्ध जो शूद्र हे वाको स्पृष्ट पक्वान्न भोज्य हे एसें यद्यपि यहां बात निकसे हे तथाऽपि भगवत्प्रसाद होय वो ही तो घृतपक्व शूद्रके हाथको खानो, ओर नहीं खानो एसो शिष्टाचार हे. कलियुगमें स्मृतिसूं भी शिष्टाचार बलवान् हे.

२२.घृतादिपक्व पदार्थके भक्ष्याभक्ष्यको विचार

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें कह्यो हे के ''शूद्रके हाथसूं घृतपक्व, तैलपक्व, मिष्टान्न भुनो भयो सतुआ इतने पदार्थ नहीं खाने चहियें''. सुमन्तु, अङ्गिरा, हारीत, शंख इन ऋषिनको एसे जो वचन हे के

''दही, दूध, सतुआ, तैलपक्व, तिलकूट, अपूप, दूधकी करी भई वस्तु, भाडमें भुनी वस्तु, दहीमिलेमां सतुआ, धानकी खील, मठा, घी, मधु इत्ते पदार्थ शूद्रके हाथके खायवेमे हूं चिन्ता नहीं हे''.

ये सब वचन आपत्कालमें समझने. क्योंके शूद्रान्न भोजनको जो निषेध हे तासूं विरोध आवे हे. ओर शंखको एसो वचन हे दुकानकी बिकती चीज नहीं खानीं ताको भी विरोध आवे हे एसें अपरार्कमें लिख्यो हे. ओर सदाचारचन्द्रोदयमें तो शूद्रान्न भोजनके विधिनिषेध वाक्य लिखके कह्यो हे के पूर्वोक्त पदार्थ शूद्रसूं लेकें वाके घरसूं बाहर निकसकें नदी तटादिकपे जायकें भोजन करवेमें दोष नहीं हे क्योंके पराशरने कह्यो हे ''शूद्रान्नकूं भी ब्राह्मण नदीतटपे जायकें भोजन करे तो दोष नहीं हे'' तासूं कोईने एसें कह्यो हे के तैलपक्वादिक पदार्थ लवणरहित होंय तो सच्छूद्रके हाथसूं भोजन करवेमें दोष नहीं हे. निर्णयामृतमें एसें कह्यो हे के शूद्रके हाथसूं पक्वान्न भोजन न करनो ताको ये निषेध हे. दिनकरोद्योतमें एसें कह्यो हे के शूद्रान्न भोजनको जो निषेध हे सो कलिवर्ज्य प्रकरणमें गिन्यो हे तासूं कलियुगमें शूद्रके हाथको पक्व अन्न गृहस्थी ब्राह्मणादिकनकूं नहीं खानो चहिये. ओर ब्रह्मचारीकूं तथा यतिकूं तो कलियुगमें भी दोष

नहीं हे. ओर शूद्रके घरमें ब्राह्मणादिकनने ही अन्न पक्व करो होय तो गृहस्थकूं भी खायवेमें चिन्ता नहीं हे. एसें ग्रन्थकारनने शूद्रान्नभोजनके विधि निषेध वाक्यनकी व्यवस्था बांधी हे.

पर मोकूं तो ओर मालूम पडे हे. यथा

देवल ऋषिने कह्यो हे ''स्वदास(अपनो दास), नाऊ, ग्वालिया, कुम्हार, कृषीवल(खेती करवेवारों) इन पांचजनेनको अन्न खायवेमें दोष नहीं हे''.

याज्ञवल्क्यने भी कह्यो हे के ''शूद्रनमें भी स्वदास, ग्वालिया, कुलमित्र(पितृपितामहादि क्रमसूं अपने घरमें रह्यो होय वो), खितहर, नापित इनके अन्न भोजन करवेमें दोष नहीं हे''.

हारीतने भी कह्यो हे के ''कुलमित्र, कुलपुत्र, भिक्षादेवेवारो, अपनो शिष्य, मित्र, भयसूं रक्षाकरवेवारों, जहां खायवेमें मन प्रसन्न होय इन पूर्वोक्त शूद्रनके अन्न खायवेमें दोष नहीं हे''

–एसें यद्यपि शूद्रान्नको खायवो प्राप्त होय हे. ओर कलिवर्ज्यमें तो दास, ग्वालिया, कुलमित्र, कृषीवल ये चार ही गिनाए हें तासूं इन शूद्रनके अन्न खायवेमें यद्यपि शास्त्रसूं दोष नहीं हे तथापि लोकविरुद्धता हे तासूं पूर्वोक्त शूद्रको पक्वान्न नहीं खानो चहिये. शास्त्रमें कह्यो हे ''धर्म भी होय, परलोक विरुद्ध होय तो नहीं करनों''. तासूं इन पूर्वोक्त वाक्यनमें अन्न पद हे तहां पक्वान्नको ग्रहण हे तासूं पक्वान्न सिवाय दूधकी चीज, गुड, मिश्री, खांड, फलादिक शूद्रके हाथसूं लेवेमें भी दोष नहीं हे. ताहीसूं मनुस्मृतिमें भी कह्यो हे के शूद्रको पक्वान्न ब्राह्मणादिकनकूं नहीं खानो चहिये. ओर खायवेकूं नहीं होय तो एक दिनके खायवेलायक आमान्न शूद्रसूं लेनो.

ओर एक व्यवस्था ये भी हे के ''अपवित्र जल जब ताईं नदीमें मिलो न होय तब ताईं वो अशुद्ध गिनो जाय हे नदीमें मिलेपे वो अपवित्र जल भी शुद्ध ही कह्यो जाय हे'' तैसे हीं शूद्रान्न इत्यादि तथा जलादिक ब्राह्मणादिकनके पात्रमें आए पीछें शुद्ध हें ऐसें अपरार्कमें स्मृत्यन्तर वाक्य हे. सदाचारचन्द्रोदयमें भी कह्यो हे के ''जेसें जहां-तहांसूं आए भए जल जब ताईं नदीमें नहीं मिलें तब ताईं अशुद्ध कहे जाय हें. नदीमें मिलेपे शुद्ध कहावे हें तेसे हीं शूद्रन्न भी ब्राह्मणके घर शुद्ध हे ओर ब्राह्मणादिकके हाथको स्पर्श भयो ओर वो अन्न शुद्ध हे''.

सार ये हे के सच्छूद्रको अन्न सच्छूद्रके घरमें ब्राह्मणने पक्व कियो होय ओर फिर वो अन्न शुद्ध रीतिसूं ब्राह्मणके पात्रमें धरो होय तो वो अशुद्ध नहीं हे. ओर सतुआ, धानकी खील ये शूद्रने हूं पक्व करी होंय तो लेवेमें दोष नहीं. ऐसे ही

अभोज्यान्न(जिनके अन्न लेवेमें दोष हे वे)के घरमें उनसूं आमान्न लेकें अपने पात्रमें वा अन्नकूं ब्राह्मण पक्व करके ग्रहण करे तो दोष नहीं हे. सच्छूद्रको लक्षण सदाचारचन्द्रोदयमें बृहत्पाराशरने कह्यो हे के

''जो उत्तम कुलमें उत्पन्न भयो होय, मद्य-मांस न खातो होय, ब्राह्मणादिकनमें भक्ति राखतो होय, वैश्यवृत्ति करतो होय वो सच्छूद्र हे''.

जा शूद्रने अपनो घर ब्राह्मणकुं निवेदित कियो होय वाके घरमें तो अपने हाथसूं ब्राह्मणपाक करे तो सर्वथा दोष नहीं हे. क्योंके निवेदनोत्तर उतने समय ब्राह्मणकी भी वहां सत्ता रहे हे.

२३.जलकी शुद्धिको विचार

मनुस्मृतिमें कह्यो हे के

''एक गायकी तृप्ति जा जलसूं होय वो जल पृथ्वीपे होय अथवा शिलापे होय पर पवित्र हे जो वामें मलमूत्रादि संसर्ग न होय, रङ्ग न फिरो होय बास नहीं आवती होय तो''.

एसे हीं

''नदीप्रभृतिमेसूं शुद्ध पात्रमें जो जल निकासो होय वो पवित्र हे ओर जो पात्रमें धरकें रात्रि एक भी निकसी होय वो जल अपवित्र होय हे. ओर विशेष जल होय तो अपवित्र नही होय हे''

एसें पारिजातमें कह्यो हे. परन्तु ये बात ताजो जल न मिल सके तब समझनीं. ओर तीर्थको जल तथा चरणामृत ये तो बासी होंय तो भी पवित्र हें. अपरार्कमें देवलको वचन हे के

''बहते जलमें मलादिकको संसर्ग होय तो भी वे पवित्र हें ओर जो थोडो जल होंय अथवा निकासे भए जल होंय उनमें पूर्वोक्त संसर्ग होयवेमें दोष हे. बहोत जलवारे तलाव, नदी इत्यादिमें भी जा घाटपे मल-मूत्र-चाण्डालादिको स्पर्श भयो होय वा घाटकूं छोडकें अन्यत्रसूं जलको उपयोग करनों''.

पैठीनसि ऋषिने कह्यो हे के बहोत भी जल होय पर जामें दुर्गन्ध इत्यादि आवती होय तो वो अपवित्र हे.

अब जो उद्धृत-निकासे जलमें विशेषता यमने बताई हे :

''अरण्यमें हू जो प्याऊको जल होय वो नहीं पीनो. कूआपे भवनके

भरवेके तांई जो घडा होय वाको भी पानी न पीनो, कोठीको जल न पीनो, चामको जल न पीनो. शूद्रकूं तो पूर्वोक्त जल पीवेमें दोष नहीं हे. ओर आपत्कालमें तो ब्राह्मणादिक भी वा जलकूं पृथ्वीमें डारकें पीवें तो दोष नहीं हे''.

हारीतने ऐसें कह्यो हे के आपत्तिकालमें भी प्याऊ इत्यादिमेंसूं पृथ्वीपे जो डारो भयो जल हे वहां चाण्डालादि अधम आय जांय तो वा जलकूं नहीं पीनो.

२४. जलाशयकी शुद्धिको विचार

देवलने कह्यो हे

''कुत्ता, स्यारिआ, गधा, ऊंट, मांस खायवेवारो पशु इनमेंसूं कोई भी कूआ, बावडी, तलाव इत्यादि जलाशयमें मरो होय तो सब जलकूं निकासनों, पहलें मृतशरीरकूं निकासनों, पांच पिण्ड माटीके वामेंसूं निकासकें फेंकने. ओर पञ्चगव्य मन्त्रपूर्वक वा जलाशयमें डारनों तब शुद्धि होय हे. ओर थोडे जलवारो जो जलाशय होय वाकूं तो ईंट पथ्थर लगायकें जरामनों तब शुद्धि होय हे. ओर विशेष जललावारो जलाशय होय तो ३०, ६० अथवा १०० घडा जलके निकासने''.

विष्णुने कह्यो हे

''कूआमें पांच नखवारो पशु मरें तो सब जल निकासकें कुदारसूं वा कूआकूं खोदकें ईंटनसूं वाको दाह करकें पञ्चगव्य डारनों फिर नए जल आयवेसूं शुद्धि होय हे. एसे ही प्रवाहरहित जो जलाशय हे ताकी शुद्धि करनी. कूआमें भी जो बहोत जल होय तो १०० घडा पानी निकासवेतें शुद्धि होय हे''.

जलाशयमें जोडा, थूक, खखार, विष्ठा, मूत्र, अटकावको लोही ओर भी कोई अपवित्र पदार्थ पडो होय तो साठ घडा जल निकासकें शुद्धि करनीं एसो आपस्तम्बऋषिको मत हे.

जा जलाशयमें कुत्ता, गधा इत्यादि प्राणी मरकें छिन्न-भिन्न मिलकें एकरूप होय गए होंय वाको जल सब निकासकें साफ करकें शुद्धि करनीं. ओर विशेष जल होय तो जो मरो प्राणी हे वाकूं निकासकें १०० घडा पानी निकासवेसूं शुद्धि होय हे.

सबको सार ये हे के थोडे जलमें बहोत शुद्धि करनीं. ओर विशेष जल होय तहां थोडी शुद्धि करनीं. ओर बहोत जङ्गी तलाव इत्यादिमें जो पशु-पक्षी मरो भी होय

तो वा घाटकूं छोडकें ओर सब घाट शुद्ध हें. एसे हीं जलाशयमें अल्पजन्तु मरे तो थोडी अशुद्धि हे बडो मरे तो विशेष अशुद्धि हे. ऐसें सर्वत्र विचार करकें सब ऋषिनके वाक्यनकी व्यवस्था करनी.

३० घडा, ६० घडा तथा १०० घडा निकासनों बतायो सो भी जलाशयकी अल्पता, महत्तासूं समझनों.

बहोत जलवारो जो कूआ हे तामें मूसाप्रभृति सूक्ष्म प्राणी मरो होय, जलमें कछू दुर्गन्ध भी होय पर दृढ निश्चय जन्तुमरणको न होय तो जल निकासे पहले भी वा कूआके जलसूं स्नान सन्ध्यादिक करवेमें दोष नहीं हे. जन्तुमरणको ज्ञान होय ता पीछें तो वा जलको माटीके पात्रनमें संसर्ग होय तो विन पात्रनको त्याग करनों. ओर तामें – पीतरके बासन होंय तो विनकूं खूब बरायकें, लोन खटाई इत्यादिसूं मांजनो चहिये ऐसें मोकूं मालुम पडे हे.

बृहस्पतिने कह्यो हे के जूठन, मलिन, क्लिन्न, विष्ठादिलिप्त जो पदार्थ हें उनकी शुद्धि करवेवारो तो जल हे. पर जलकी शुद्धि केसें होय? तहां ये उत्तर हे के जलकी शुद्धि सूर्य–चन्द्रामाकी किरण पडवेसूं, पवनसूं, गोमूत्र–गोबरसूं होय हे.

यमने कह्यो हे प्रसववारी स्त्री, बकरी, गाय, भेंस, ब्राह्मणी, पृथ्वीपे पडो नवीन जल इनकी शुद्धि दशरात्रके अनन्तर होय हे. बृहत्पराशरने भी जलशुद्धि एसे हीं मानी हे.

आपस्तम्बऋषिने कह्यो हे के म्लेच्छके खुदवाए भए जलाशयमें जाङ्घसूं नीचो पानी होय तो अपवित्र हे वाकूं अनजाने पीओ होय तो रात्रिमें भोजन करनों. ओर जानकें पीओ होय तो आठ पहरको उपवास करनों. ओर जांघसूं ऊंचो पानी होय तो शुद्ध समझनों एसें मर्यादासिन्धुमें जलशुद्धि बताईं हे.

२५. पृथ्वीकी शुद्धिको विचार

मर्यादासिन्धुमें तथा अपरार्कमें देवलऋषिको वचन हे के

> ''अशुद्ध पृथ्वी ३ प्रकारकी हे : अमेध्य, दुष्ट तथा मलिन पृथ्वी. जहां स्वावड भई होय, मनुष्य मरो होय, चण्डाल जहां रहे होय, मुर्दा जहां धरो गयो होय, जहां मलमूत्र होय एसी भूमिकी शुद्धि दहन, खनन, लेपन, वापन, मेघवृष्टि इन पांचनसूं करनी''.

दहन = जलानों. खनन = खोदनों. लेपन = गोबर, माटी, गोमूत्रादिकसूं लीपनों. वापन = दूसरी माटी डारकें वा जगेकूं भरनों. 'धावन' जहां पाठ हे तहां धोनों

एसो अर्थ करनों. मेघवृष्टि = वर्षाको जल पडनों. इन पांच तरहेसूं अमेध्य पृथ्वीकी शुद्धि करनीं. ओर मेघवृष्टि न होय तो ४ प्रकारसूं ही शुद्धि करनीं.

अपरार्कमें एसें कह्यो हे के श्मशानकी पृथ्वीकी शुद्धि दहनादिक ५ प्रकारसूं करनीं ओर वा सिवाय अमेध्य पृथ्वीकी शुद्धि ४ प्रकारसूं ही करनीं. अशुद्ध पृथ्वीको दूसरो भेद दुष्टपृथ्वी हे. दुष्टपृथ्वी वाको नाम हे के जामें कीडानके पाव पडे होंय, थूक-खखार जहां जम गयो होय, उल्टीकी जगे होय, उच्छिष्ट जहां पडो होय, जहां काऊको वध भयो होय, कुत्ता सूहर गधा ऊंट पभृतिननें जा पृथ्वीको स्पर्श करो होय. ऐसी दुष्ट पृथ्वीकी शुद्धि दहन-खनन-लेपनसूं अथवा दहन-खननसूं ही करनी.

अपरार्कमें एसें कह्यो हे जो बहोत दिन ताई पृथ्वी दुष्ट भई होय तब तो दहनादिक ३ प्रकारसूं शुद्धि करनीं ओर थोडे कालसूं दुष्ट भई होय तो वा पृथ्वीकूं खुरचनीं ओर दग्ध करनीं.

अशुद्ध पृथ्वीको तीसरो भेद मलिनपृथ्वी हे. मलिन पृथ्वी वाको नाम हे जहां नख, दांत, रोम, त्वचा, तुस, धूर, रज, मल, भस्म, कीच, घास, अङ्गारो, अस्थि इत्यादिक होय. वा पृथ्वीकी शुद्धि खुरचवेसूं होय हे. तुरत ही मलिन भई होय तो लीपवेसूं, धोयवेसूं, वृष्टिके बरसवेसूं शुद्ध होय हे.

लेपन ओर मार्जन ये तो सर्वत्र समझनों एसो विज्ञानेश्वरको मत हे.

यमने पृथ्वीकी शुद्धि सात प्रकारसूं बताई हे ''१.खोदनों २.पूरनों ३.जरामनों ४.मेघवृष्टि पडनों ५.लीपनों ६.गायनकों फिरामनो ७.बहोत समयको निकसनो''.

याज्ञवल्क्यने ''मार्जन, दाह, काल, गायनको पांव पडनों, गोमूत्रादिकको प्रोक्षण करनों, खुरचनों, लीपनों'' ये सात प्रकार भूमि शुद्धिके बताए हे.

मनुस्मृतिमें एसें कह्यो हे के ''पृथ्वीकी शुद्धि बुहारी देवेसूं, गोबरके लीपवेसूं, जलके प्रोक्षणूसूं, खुरचवेसूं, एकरात्रि गायनके राखवेसूं करनी चहिये''.

ये जो ५ प्रकार मनुमें कहे हें उनकी व्यवस्था मर्यादासिन्धुमें एसें करी हे के जो निर्लेप भूमि होय वहां सेक करनों तथा गायनकूं राखनों. ओर अमेध्य लिप्तभूमिमें मार्जनादि ३ प्रकार करने एसें मेधातिथिने कह्यो हे. जा भूमिमें मलमूत्रादिकको लेप होय वहां बुहारीसूं झाडनो, खुरचनों चहिये ओर नदीपुलिन - वनादिकमें प्रोक्षण करनों. ओर जहां अस्थि होय ताकूं पटककें वा स्थानकूं खोदकें वा गढेलामें दूसरी माटी भरनों. ओर श्मशानादिककी पृथ्वीके तो पूर्वोक्त पांचो ही प्रकार करने चहिये.

बौधायनने या प्रसङ्गमें विशेष कह्यो हे के जो पृथ्वी बहोत दृढ होवे वाकी लीपवेसूं शुद्धि होय हे. छिद्रवारी भूमिकी शुद्धि खुरचवेसूं होय हे. मलमूत्रादिसूं गीली

भूमिकी शुद्धि मलमूत्रादि पटककें दूसरी अच्छी माटी विछायवेसूं होय हे. ऊपरमाऊं जो मुर्दाको स्पर्श होय तो वा भींतकूं भी छीलनों अथवा सूर्यकी किरण वहां डारनों अथवा अग्निज्वालाको स्पर्श करानों. गायके रहवेसूं, खननसूं, दहनसूं, वृष्टिसूं, लेपनसूं, कालसूं, पृथ्वीकी शुद्धि हे.

कालसूं शुद्धि वाको नाम हे जेसे जहां मलमूत्रादिक हें वहां अपने आप थोडे काल गप्ये पे मलमूत्रादि लेप मिटकें स्वच्छता होय हे तो वो कालकृत शुद्धि कहावे हे. यमने कह्यो हे के जहां गली न होय वो पृथ्वी शुद्ध हे. तथा ग्राममें हू कहू - कहू पृथ्वी शुद्ध हे. ओर जहां लेप न होय वो पृथ्वी सर्वत्र शुद्ध हे.

ब्रह्मपुराणमें कह्यो हे के ''ग्रामसू सो दण्ड बाहर निकसे पे पृथ्वी शुद्ध हे. ओर शहरसूं चारसे दण्ड बाहर निकसेपे पृथ्वी शुद्ध हे. जहां लेप न होय वो पृथ्वी सर्वत्र शुद्ध हे''.

भविष्यपुराणमें कह्यो हे ''जितनेमें लीलके खेत होंय वो भूमि १२ बरसताईं अशुद्ध रहे हे फिर शुद्ध होय हे. ब्राह्मण जहां रहते होंय, देवमन्दिर होय, गाय रहती होंय वो भूमि गोबर इत्यादिसूं लेपन करे बिना भी शुद्ध हे''.

बौधायनने कह्यो हे के ''अनेक मनुष्यनसूं उठसके इतनों बडो काष्ठ तथा पत्थर ये पृथ्वीसमान हें''. अर्थात् पृथ्वीकी जेसी शुद्धि बताई एसी ही इनकी भी चाण्डालादि स्पर्शमें करनीं एसें अपरार्कमें हें. चूनासूं जडी भई जो ईंटें हें अथवा वर्णसंकरननें जो बाधी ईंट हे उनकी भी पृथ्वीवत् शुद्धि करनीं एसें मर्यादासिन्धुमें हे.

२६. गृहकी शुद्धिको विचार

मर्यादासिन्धुमें मनुस्मृतिको वचन हे के गृहकी शुद्धि मार्जन(बुहारीसूं साफ करनो तथा धूंआ अन्धकारादिककूं निकासनो)सूं तथा धरतीकूं गोबरसूं लीपनो, भीतनकूं सुपेदीसूं पोतनो तासूं होय हे. ये लीपनो-पोंतनो शव चाण्डालादिके संसर्गमें हे. याज्ञवल्क्यने तो पृथ्वीकी शुद्धि कहते समयमें गृहकी भी शुद्धि मार्जन - लेपनसूं बताई हे तासूं नित्य ही अपने घरकी भूमि बुहारनी-लीपनी ये प्राप्त होय हे. घरमें कोई आदमी मरो होय तो वाकी शुद्धि संवर्त्तने बताई हे के

> ''जा घरमें आदमी मरो होय ता घरके माटीके पात्र सब फेंक देने ओर सिद्ध जो अन्न-पक्वान्न इत्यादि होंय वाको भी त्याग करनो. पृथ्वीकूं गोबरसूं लीपकें बकरीकूं वहां फिरानो. ब्राह्मणनसूं वेदके मन्त्र पढवायकें सुवर्णके जलसूं - कुशजलसूं सर्वत्र प्रोक्षण करामनो तब शुद्धि होय हे''

म्लेच्छादिक घरमें मरे होंय तो बृहद्यमने शुद्धि बताई हे के

"जा घरमें कुत्ता, शूद्र, महापातकी, म्लेच्छ, चाण्डाल मरे होंय वा घरमें ४ महिना ताईं न रहनो. ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य के मरवेमें ३ दिन ताईं घर अशुद्ध रहे हे. ओर बाहरकी भूमिमें ये तीन वर्ण मरें तो एक दिनमें शुद्धि होय हे. दहनसूं, प्रोक्षणसूं, लेपनसूं शुद्धि होय हे. यथायोग्य शुद्धि करे पीछें मन्त्र प्रोक्षण तो अवश्य करनो".

चाण्डालादिक घरमें रहे होंय तो लघुपराशरने ये शुद्धि बताई हे के चाण्डाल जाके घरमें रहे तब खबर पडे पे पीतर, ताम्बो, कांसो इनके जो पात्र होंय उनकूं गलायकें नए बनामने तब शुद्धि होय हे. वस्त्रनकूं धोने, माटीके पात्रनकूं फेंकने. कसूम्भ, गुड, लोन, रूई, दही, घी, अनाज इन सब चीजकूं घरके दरवाजेपे धरकें घरमें अग्नि लगामनीं. जब अग्निकी ज्वालाको स्पर्श होय तब वो घर शुद्ध होय हे एसी मनुकी आज्ञा हे.

धोबिन, चमारी, जीवहिंसा करवेवारी, बांसके पात्र बनायवेवारी, भङ्गिन इनमेसूं कोई भी ब्राह्मणादि चतुवर्णके घरमें अनजाने रहें तो धर्मशास्त्रमें वाको जो प्रायश्चित्त होय सो करनो. यहां वा प्रायश्चित्त लिखवेकी जरूरत नहीं हे तासूं नहीं लिख्यो हे. ओर चण्डालके रहवेमें जो शुद्धि पूर्व बताई वासूं आधी शुद्धि इन धोबिन प्रभृतिके रहवेमें भी करनी. गृहदाहमात्र न करनो.

ओर चण्डाल घरमें आवे तो घरसूं बाहर निकासके मृत्तिकाके पात्र फेंकनो. गुड-लोन प्रभृति रस जिन पात्रनमें होय वे पात्र तथा वे वस्तु नहीं छूएं. दूध, दही, मठाव, इत्यादि रस छूय जाय हें. गोबरसूं सब घरकूं लीपनो.

जातित्यक्त पतित ओर ब्राह्मणनसूं जो प्रायश्चित्त पूछ चुको हे वो यदि घरपे आवे तो चाण्डालवत् वाकी अशुद्धि न समझनीं. ये जो पूर्वोक्त शुद्धि हे सो चारों वर्णनकूं समान समझनीं.

च्यवन ऋषिने कह्यो हे के "चण्डालको संसर्ग जो घरमें मिले तो घरको दहन करनो. माटीके वासनकूं फेंकनो, काठके पात्रनकूं छीलनो, शंख सीप चांदी इत्यादिके पात्रनकूं तथा वस्त्रनकूं धोमने, कांसे-तामेके पात्रनकूं गलायकें नए बनामने, कांजी दूध दही मठा इनकूं फेंकने. इन सिवाय गुडादिक रसकूं राखने".

मरीचि ऋषिने कह्यो हे के "चाण्डाल यदि घरमें आ जाय तो घरकूं लीपनो ओर घरमें अजाने रहें तो गृहको दहन करनो. ओर धान्य, सर्वबीज, गुडादिक रस, कसूम्भ, रूई इत्यादिककी जलप्रोक्षणसूं तथा अग्नि उनके चारो आडीं फिरायवेसूं शुद्धि

होय हे. ऐसें ही देवालयमें वा अपने घरमें पशुकी हिंसा भई होय अथवा दुष्ट लोक रहे होंय तो पूर्वोक्त दहन–खननादि पांच प्रकारकी गृहशुद्धि करकें फिर पावमानी प्रभृति वेदके मन्त्रनसूं तथा सुवर्ण कुशके जलसूं गोमूत्रादिकसूं घरको प्रोक्षण कर ब्राह्मणभोजनादिक यथाशक्ति करावने''.

ओर मोकूं एसो मालूम पडे हे के पराशरने कह्यो हे जो ''चण्डाल देवालयमें अथवा घरमें वास कर जाय तो ३० गाय और एक बेल को दान ब्राह्मणनकूं करके पीछे पुनर्वास और देवायतन करनो.

२७. रस्ता–गली प्रभृतिकी शुद्धिको विचार

पराशरने कह्यो हे के ''गलीकी कीच, गलीको पानी, नवीन मार्ग, घास ये दिनमें सूर्यसूं ओर पवनसूं शुद्ध होवे हें तथा रात्रिमें चन्द्र–तारान–पवनसूं शुद्ध होवे हें''.

याज्ञवल्क्यने भी ''गलीकी कीच, जल, पक्के मकान, इनकूं नीच जाति, कुत्ता, कौआ भी छूयलें तो वे पवनसूं ही शुद्ध होय हें भलेई वा कीचपानीमें गोबर कांकरी मिली होंय तो भी पवनसूं ही शुद्ध हे''.

पहलें जो कह आए के ''प्रोक्षणं संहतानां तु'' इकठ्ठी चीज होंय तो उनको प्रोक्षण करनो सो ईंटके घर इत्यादिमें वो वाक्य नहीं लगे किन्तु उनकी शुद्धि तो पवन मात्रसूं ही होय हे. ओर पहले जो ''अरथ्यावसुधामेध्या'' कहे आए हें ताको भाव ये हे के भोजनादिक कर्ममें गली पवित्र नहीं हे ओर भोजनादि सिवाय दूसरे कालमें गली शुद्ध हे. तासूं परस्पर विरोध न समझनो.

२८. प्रकीर्ण शुद्धिको विचार

मर्यादासिन्धुमें शंख ऋषिको वचन हे के ''स्त्रीनको मुख रतिसमयमें शुद्ध हे. बछडाको तथा बालकनको मुख दूध पीवेमें शुद्ध हे. विष्ठाके खायवे वारे जो काकादिक हे उनसूं भिन्न जो पक्षी हें उनको मुख फलके खायवेमें शुद्ध हे. कुत्तानको मुंह शिकारके समयमें शुद्ध हे''. जूठन करवेमें लार जो लगे हे वो अपवित्र इन पूर्वोक्त स्थलमें न समझनीं ये भाव शुद्धता कहवेको हे.

मनु – विष्णुने कह्यो हे के ''कारीगरको हाथ सदा शुद्ध हे यदि हाथमें मलमूत्रादि न लगे होंय तो. दुकानमें बेचवेकेताईं फेलाई भई वस्तु पवित्र हे. अर्थात् सेंकडान मनुष्य वामें हाथ लगामें हें ताको दोष नहीं हे. दुकानदारके या ओरके घरकी चीज अशुद्ध हे. ब्रह्मचारीके हाथकी भिक्षा शुद्ध हे. कपडा इत्यादि अनेक वस्तु जिनमें

बने हें वे कारखाने पवित्र हें''.

बौधायनने कह्यो हे के ''जलकी सतत धारा, पवनसूं उडे रज, गाय, घोडा, जलबिन्दु, छाया, माखी, टिड्डी, बकरा, बकरी, रणमें हाथी, छत्र, सूर्यचन्द्रमाकी कान्ति, पृथ्वी, अग्नि, रज, पवन, जल दही, घी, दूध इतने पदार्थ स्पर्श करवेमें शुद्ध हें''. अर्थात् इन पूर्वोक्त पदार्थनकूं अशुद्धको स्पर्श होय तो हू शुद्ध ही समझने. यद्यपि यहां गाय-बकरीकी समानता बताई हे पर याज्ञवल्क्यको एसो वचन हे के बकरी, घोडाको मोढो शुद्ध हे ओर गायको मोढो अशुद्ध हे. तासूं पात्रादिकमें जो गायको मोढो लगे तो वो पात्र अपवित्र होय हे ओर घोडा-बकरीको मोढो लगे तो वो पात्र शुद्ध होय हे इतनो भेद समझनो.

एसे हीं यहां जलबिन्दुनकूं पवित्र बताए हें पर वे जलबिन्दु ''नखाग्रके, केशके, कपडा पछांटवेके, कपडाके छेडा निचोडवेके होंय तो अपवित्र हें, अलक्ष्मीकर हें'' ऐसें लिङ्गपुराणमें वाक्य हे. अपरार्कमें एसें कह्यो हे के जलबिन्दुकूं पवित्र बताए हें ताको आशय ये हे के शुद्ध जलके जो बिन्दु हें वे पवनसूं उडके चाण्डालादिकनसूं छूयके भी जो अपने अङ्गकूं स्पर्श करे तो भी दोष नहीं हे. ओर याज्ञवल्क्यने जो कह्यो हे के ''मुखके थूकके बिन्दु तथा आचमनके बिन्दु पवित्र हें'' तामें इतनो विशेष समझनो के ''मुखके बिन्दु अङ्गपे पडें तो अशुद्ध हें'' एसो वशिष्टवाक्य हे. मनुने कह्यो हे ''आचमनके बिन्दु जो पायपे भी पडें तो उनसूं अशुद्धि नहीं होय हे''. वसिष्ठवाक्यमें कह्यो के थूक अङ्गपे पडे तो अशुद्ध हे तासूं ये भी सिद्ध होय हे के भगवान्के भोगके ताईं जो समाग्री करी जाय वामें भी मोढेके छींटा उडके पडें तो वो सामग्रीप्रभृति अशुद्ध होय हे. ताहीसूं श्रीजगन्नाथरायजी प्रभृति महास्थलनमें पाकादिक सेवा करवेवारे सब मुडबन्दा बांधकें ही सेवा करे हें एसो आद्याऽपि शिष्टाचार हे.

अब पहले जो कह आए के छाया शुद्ध हे सो छाया चाण्डालभिन्न चहिये. क्योंके ''चाण्डाल पतित श्वपाक की छाया, दीआ ओर खाट की छाय, रातमें पीपरकी छाया, नीच मनुष्यकी छाया अपवित्र हे. इन छायानके पडवेसूं स्नान करनो चहिये'' इत्यादिक यम-अङ्गिरा ऋषिके वचन हें. ये छाया निषिद्ध हें तासूं चन्दोआकी डेरा-तम्बूनकी छायामें भोजन करवेमें दोष नहीं हे. ब्रह्मपुराणमें जो एसो वचन हे के ''चाण्डाल-पतितकी छायाके स्पर्शमें दोष नहीं हे'' ताको भाव ये हे के अजानमें वा छायापे पांव पडे तो दोष नहीं. अथवा चार युग(सोल्हे हाथसूं) अधिक छाया होय तो दोष नहीं हे.

ओर अग्नि शुद्ध हे एसें जो पहले कह्यो सो चाण्डाल-शव इनसूं भिन्न जो हें

उनको ही अग्नि पवित्र समझनो. ऐसें ही पृथ्वी, दही, जल प्रभृतिकी भी व्यवस्था समझनीं.

ओर रज भी पवनसूं उडो शुद्ध हे पर ''बकरी, गधा भेड, कुत्ता, बुहारी, वस्त्र, कौआ, ऊंट, घुघ्घू, सूहर, गामके पक्षी इन सबनकी उडायो रज अपवित्र हे. आयुष्य, लक्ष्मी इत्यादिकनकूं नाश करवेवारो हे. तासूं वो रज जो शरीरपे पडो होय तो पोंछ डारनो'' एसें विज्ञानेश्वरने कह्यो हे एसें शातातप, स्मृत्यन्तरको वचन मिताक्षरमें हे. पवित्र रज मर्यादासिन्धुमें गरुडपुराणके वचनसूं बताए हें. ''हाथी, घोडा, रथ, धान्य, गाय, पुत्राङ्ग इनको रज अत्यन्त पवित्र हे''. अपरार्कमें शंखऋषिको एसो वचन हे के ''पवनसूं उडाए भए अग्नि, रज धूंआ ये पवित्र हें''.

अब पहलें जो कह आएके मक्षिका पवित्र हे सो अकेली मक्षिका ही न समझनीं किन्तु डांस, माछर, चेंटी इत्यादि भी समझने एसें अपरार्कमें लिख्यो हे.

ओर पवन जो शुद्ध पहलें कह्यो सो चलतो पवन शुद्ध समझनो. कपडा इत्यादिसूं करो पवन अशुद्ध हे. लिङ्गपुराणमें कह्यो हे के वस्त्रके छेडाको पवन, सूपको, हाथको, मुखको पवन स्पर्शसूं ही पूर्वजन्मके पुण्यकूं हरवेवारे हें.

बृहस्पतिने कह्यो हे के

> ''द्राक्षाको यन्त्र, इक्षुको यन्त्र, बडो कारखानो अथवा खान, कारीगरको हाथ, दूध दोहवेकी दोहनीं ये सब शुद्ध हें. थोडे अपवित्र एसे बालक तथा स्त्रीन ने करे भए जो कार्य हें वे शुद्ध हें. गोबर अच्छे स्थानमेंसूं उठायो भयो शुद्ध हे. श्मशानमें भी अच्छी जगे गोबर पडो होय तो शुद्ध हे. गामके बाहरकी माटी शुद्ध हे जो वामें मल-मूत्रको संसर्ग न होय तो''.

ओर भी वचन स्त्रीप्रभृतिनकी शुद्धिके मर्यादासिन्धुप्रभृति ग्रन्थमें लिखे हें पर उनको उपयोग यहां नहीं हें तासूं नहीं लिखे हें.

२९. आत्मशुद्धिको विचार

आत्माकी शुद्धि क्षेत्रज्ञकूं ईश्वरके ज्ञानसूं होत हे ऐसे याज्ञवल्क्यने कह्यो हे. ''ज्ञान, तप, अग्नि, योग्य आहार, मृत्तिका, मन, जल, पवन, कर्म, सूर्य, काल ये सब पदार्थ देहीकी शुद्धि करवेवारे हें''. मनुस्मृतिमें भी कह्यो हे के श्रवण-मननादि रूप ज्ञानसूं आत्मकी शुद्धि होत हे.

> भगवान्‌की एकादशस्कन्धमें एसी आज्ञा हे के ''शुद्ध विद्वान् मेरे स्मरणसूं आत्माकी शुद्धि करे''.

तृतीयस्कन्धमें भी कह्यो हे के ''भगवन् नामके श्रवण–कीर्तनसूं, नमनसूं चाण्डाल भी पवित्र होय हे. ओर दर्शनकी महिमा तो कहा कहनो''.

द्वादशस्कन्धमें भी कह्यो हे के ''विद्या, तप, प्राणायाम, सर्व प्राणीनसूं मैत्री, तीर्थस्नान, व्रत, दान, जप इन सबनके करेसूं वेसो आत्मा शुद्ध नहीं होय हे जेसो भगवान् हृदयमें आवे हें तब शुद्ध होय हे''.

षष्ठस्कन्धमें श्रीशुकदेवजीने भी आज्ञा करी हे के ''कोई एक महात्मा तो केवल भगवद्भक्तिसूं ही सर्वदोष दूर करे हें. जेसें सूर्यके प्रकाशसूं नीहार(कोहरा) दूर होय हे तेसें. कृच्छचान्द्रायणादिक करेसूं आत्मा वेसो शुद्ध नहीं होय हे जेसो भगवान्कूं सर्वस्व समर्पण करवेसूं तथा भगवद्भक्तनकी सेवासूं शुद्ध होय हे''.

तासूं आत्माकी शुद्धि करवेमें भगवद्भक्ति ही दृढ उपाय हे.

कदाचित् कोई एसी शंका करे के आत्माकी शुद्धि ज्ञानसूं भी होय सके ओर भक्तिसूं भी होय सके एसें विकल्प हे. तहां समाधान ये हे के विकल्प नहीं हे, भक्ति ही आत्माशोधक हे. क्योंके ये पूर्व वाक्यनमें भक्तिकूं ही मुख्यता बताई हे. ओर दृष्टान्त भी दीनो हे के जेसें सूर्य अन्धेरेकूं दूर करे हे तेसें भक्ति पापकूं दूर करे हे. ओर ज्ञान पापकूं केसें दूर करे हे जेसें बांसके वनकूं अग्नि जरावे हे. सूर्यके प्रकाश भएपे अन्धकार निःशेष नष्ट होय हे. अग्नि लगेपे वनमेंसूं कोई बांस बच भी रहें हे. जो बच रहें हें उनमेंसूं पुनः अनेक बांस होय सके हें. तासूं भक्तिमें सूर्यको दृष्टान्त हे. तासूं भक्ति ही मुख्य हे. ओर ये भी शास्त्रमें रीति हे के पहलें साधारण साधन कहनो छेली बेर मुख्य साधन सिद्धान्त बतानो. तासूं भागवतमें पहलें ज्ञान बतायकें फिर भक्तिके महिमा बतायो हे. ओर फिर वाके पोषणके तांई अजामिलको उपाख्यान बतायो हे. वा उपाख्यानमें शिवभक्त अगस्त्यकी सम्मति बताई हे के या आख्यानकूं मलायपर्वतमें भगवान्की पूजा करते समयमें अगस्त्यऋषिने कह्यो हे तासूं ज्ञानसूं भी भगवद्भक्तनकूं तो भक्ति ही अधिक हे.

ओर लिङ्गशरीरकी शुद्धि आहारकी शुद्धिसूं होय हे, सो शुद्धि ज्ञानोपयोगी हे.

‘‘शुद्ध आहारसुं अन्तःकरण शुद्ध होत हे. अन्तःकरणकी शुद्धि होयवेपे ध्रुवा स्मृति होते हे’’. ओर भी छान्दोग्यउपनिषद्में कह्यो हे के ‘‘मन हे सो अन्न मय हे, प्राण हे सो जलमय हे, वाणी हे सो तेजोमय हे’’. अर्थात् अन्नसूं ही मन, प्राण, वाणी इनको पोषण होत हे और ये सब अन्नको ही परिणाम हे. अन्नकी शुद्धि अपने-अपने वर्णाश्रमकी वृत्तिसूं अन्नकूं सम्पादित करिके, वा अन्नकूं सिद्ध करीके वाकूं भगवान्कूं समर्पित करीके महाप्रसादके रूपमें भोजन करिवेसूं होत हे. ये बात ब्रह्माण्डपुरारके वचनसूं हरिवल्लभसुधोदय निबन्धमें सिद्ध करी हे : ‘‘भगवत्प्रसादी जल तथा अन्नकूं लेनो चहिये तब सर्व मनोरथ सिद्ध होंय हें’’. पद्मपुराणमें कह्यो हे के ‘‘जो भगवत्प्रसादी अन्नकूं खाय हें उनकूं एकेक कोरमें सो-सो चान्द्रायण करवेसूं भी अधिक फल मिले हे. अन्य देवको प्रसाद खायवेपे द्विजकूं चान्द्रायण व्रत करनो. भगवत्प्रसादकूं खायवेतें सर्व पाप दूर होंय हें’’.

तासूं ज्ञानपक्षमें भी स्मरणादिरूप भक्ति उपकार करवेवारि हे तासूं अवश्य करनी चहिये ओर वो सहज होय सके एसी हे. तासूं सेवोपयोगी आत्माकी शुद्धिके अर्थ भी भगवत्स्मरणादि ही करने.

एसें या ग्रन्थमें श्रीवल्लभाचार्यजीके चरणारविन्दकी कृपासूं बाह्यशुद्धि ओर आभ्यंतरशुद्धि अनेक ग्रन्थके आशय देखकें प्रकाशित करी हे.

इति श्रीमन्मथुरावास्तव्य-तैलङ्गद्विज-शास्त्रिरमेशमदात्मज-
शीघ्रकवि-नन्दकिशोरविरचिता
द्रव्यशुद्धिदीपिकाकी व्रजभाषाटीका सारदर्शिनी नाम्नी समाप्ता.

।। દ્રવ્યશુદ્ધિઃ ।।

અર્થબોધિની ગુજરાતીભાષાટીકા

અનુક્રમણિકા

ગોસ્વામી શ્રીપુરુષોત્તમચરણ વિરચિતા

।। દ્રવ્યશુદ્ધિઃ ।।

અર્થબોધિની ગુજરાતીભાષાટીકા

(મંગલાચરણમ્)

શ્રીઆચાર્યોને પ્રણામ કરીને શ્રીહરિની સેવામાં ઉપકાર કરનારી બહારની અને અન્દરની બે પ્રકારની પદાર્થોની શુદ્ધિનો આ ગ્રન્થમાં વિચાર કરવામાં આવે છે।।૧।।

જો કે બીજા ગ્રન્થોમાં દ્રવ્યશુદ્ધિ વિસ્તારપૂર્વક કહેલી છે તો પણ હમણાં મન્દબુદ્ધિ લોકોની સમજમાં આવતી નથી તેથી તેમને જણાવવા માટે આ મારો પ્રયત્ન છે।।૨।।

૧. સ્નાનાચમન નિમિત્ત વિચાર

પ્રાયશ્ચિત્તમિતાક્ષરમાં યાજ્ઞવલ્ક્યઋષિનું વચન છે કે

> ''રાજસ્વલા, શબ, ચાણ્ડાલ, મહાપાતકી, સૂતિકા અને મૃતકસૂતકી (મરેલા માણસનું સૂતક પાળનાર) એઓની સાથે સ્પર્શ કરનાર માણસે સ્નાન કરવું અને તેઓનો સ્પર્શ કરનારનો સ્પર્શ કરવાથી આચમન કરવું અને ''આપોહિષ્ઠા'' ઈત્યાદિ ત્રણ મન્ત્રનો જપ કરવો અને ગાયત્રી મન્ત્રનો પણ એકવાર જપ કરવો''.

'વિજ્ઞાનેશ્વર' નામના મહાપણ્ડિત પણ આ પ્રમાણે જ લખે છે. અને વળી લખે છે કે, મૂળ શ્લોકમાં બહુવચન છે તેથી એકવચનનો પ્રયોગ બહુવચન સાથે સમ્બન્ધ ન રાખે. બહુવચન, બહુવચન સાથે જ સમ્બન્ધ રાખનારું હોય છે. (સ્નાયાત્) એ એકવચન અને (તૈઃ) એ બહુવચનમાટે ઉપરના શ્લોકનો સારાંશ એવો છે કે રાજસ્વલા વિગેરેનો સ્પર્શ કરનાર માણસ સિવાય બીજાના સ્પર્શમાં જ ફક્ત આચમન કરવું. આ પ્રમાણે અર્થ કરવાથી બહુવચનના પ્રયોગનો સમાવેશ થાય છે. એટલે રજસ્વલા, શબ, સૂતકી, ચાણ્ડાલ, મહાપાતકી અને સૂતિકા એઓનો સ્પર્શ થવાથી સચૈલ (વસ્ત્રસહિત) સ્નાન કરવું. 'અપરાર્ક' નામના ગ્રન્થમાં અને મનુ વાક્યથી પણ

> ''ચાણ્ડાલ, રાજસ્વલા, મહાપાતકી, સૂતિકા (પ્રસવ થવાથી શુદ્ધિકાલને પ્રાપ્ત ન થયેલી સ્ત્રી.), શબ અને શબનો સ્પર્શ કરનાર, આ ઉપર કહેલાઓનો જો સ્પર્શ થાય તો તે ઘડીએ

સચૈલસ્નાન કરવું''.

જો કે ઉપરના શ્લોકમાં ફક્ત સ્નાન જ કરવાને લખ્યું છે. પરન્તુ અમને એમ ભાસે છે કે સચૈલસ્નાન કરવું એ સર્વસમ્મત વાત છે. અને વળી 'મર્યાદાસિન્ધુ' નામના ગ્રન્થમાં પણ સચૈલ સ્નાન કરવાને કહ્યું છે. વળી ચ્યવનૠષિનું પણ આ પ્રમાણે મત છે કે

''કૂતરું, ચાણ્ડાલ, શબનો ધૂમાડો, દેવદ્રવ્યથી આજીવિકા કરનાર, આખા ગામનો યાજક (કર્મ કરાવનાર), સોમનામની ઔષધિનો વેચનાર, ચિતા, ચિતાનું કાષ્ઠ, મદિરા, મદિરાનું પાત્ર, મનુષ્યનું તરતનું હાડકું, શબનો સ્પર્શ કરનાર, મહાપાતકી અને શબ આટલા પદાર્થોમાંથી કોઈ એકનો જો સ્પર્શ થાય તો, વસ્ત્રસહિત જલમાં ઉતરી સ્નાન કરવું. પછી અગ્નિનો સ્પર્શ કરી, એટલે અગ્નિ તાપીને આઠસો વાર ગાયત્રીમન્ત્રનો જપ કરવો. પછી જરા ઘી ખાઈ સ્નાન કરી, ત્રણવાર આચમન કરવું''.

આ પ્રમાણે ચ્યવનૠષિનું વચન છે. ત્યારે આથી એમ ભાસે છે કે રજસ્વલા, શબ, ચાણ્ડાલ, પતિત, સૂતિકા અને તેનો સ્પર્શ કરનાર મૃતકાશૌચી (મરેલાનું સૂતક પાળનાર) તેને અડકનાર અને તેનો સ્પર્શ કરનારનો જો સ્પર્શ થાય તો સચૈલસ્નાન કરવું અને આ સિવાયના બીજાઓના સ્નાન કરવાલાયકના સ્પર્શમાં આચમન કરવું એમ સિદ્ધ થાય છે અને તે સ્નાન કરવા લાયકની ગણના 'વિજ્ઞાનેશ્વર' નામના ગ્રન્થકારે કરેલી છે તે આગળ કહેવાશે. હમણાં તો રજસ્વલા વિગેરેના સ્પર્શમાં બીજો પણ કાંઈ વિશેષ કહેવામાં આવે છે. 'મર્યાદાસિન્ધુ' નામના ગ્રન્થમાં પરાશરનો મત એવો છે કે

''બહાર બેઠેલી સ્ત્રીના અનનો સ્પર્શ થાય અથવા તેના કપડાનો સ્પર્શ થાય તો પણ, સચૈલસ્નાન કરવું અને સર્વ જાતની રજસ્વલા સ્ત્રિયો દોષથી સમાન જ સમજવી''.

મોટા-મોટા વિદ્વાન બ્રાહ્મણો પણ એમ જ પ્રતિપાદન કરે છે કે રજસ્વલાના અનનો તથા વસ્ત્રનો સ્પર્શ સમાન જ ગણવો.

૨. વસ્ત્ર વિગેરેથી રજસ્વલાદિકનો સ્પર્શ થવાથી સ્નાનાદિક કરવાનો વિચાર

'પૃથિવીચન્દ્રોદય' નામના ગ્રન્થમાં લખ્યું છે કે વસ્ત્રાદિક વચમાં હોય એટલે જેમ કે એક માણસને એક રજસ્વલાના અનનો નહીં પણ તેણે ધારણ કરેલા કપડાનો સ્પર્શ થયો તો તે સ્પર્શને પણ સાક્ષાત્ સ્પર્શ સમજવો. અર્થાત્ રજસ્વલાનો સ્પર્શ થવાથી જે કાંઈ કરવું પડે તે જ તેના કપડાનો સ્પર્શ થવાથી પણ સાક્ષાત્ સ્પર્શ જેવું જ સમજવું એ રીતે પ્રચેતાનું વચન છે.

પરાશર ૠષિનું વચન જે સ્પર્શ કરનારનો સ્પર્શ કરવાથી સ્નાન કરવાને લખ્યું છે તેનો જો કાષ્ઠાદિકથી સ્પર્શ કરવામાં આવે તો આરોહણ (શબને ઉપાડનાર) માફક તે સ્પર્શને

ન સમજવો. એટલે જેમ કોઈ માણસે શબનું આરોહણ કરેલ છે, એટલે શબને ઉપાડેલ છે, પછી તેને બીજો માણસ અડયો, બીજાને ત્રીજાનો સ્પર્શ થયો અને તે ત્રીજાનો ચોથાને સ્પર્શ સાક્ષાત્ નહીં પણ કાષ્ઠાદિકથી કરવામાં આવ્યો હોય, તો પણ તે સ્પર્શથી સ્નાન નહીં પણ, આચમન કરવાથી એટલે હાથ-પગ ધોઈ ભગવત્સ્મરણ કરી આચમન કરવાથી શુદ્ધિ થાય. કારણ કે મનુએ ગણેલા ઉપર જણાવેલા પાંચ જણામાં શબના સૂતકીનું ગ્રહણ નથી કર્યું માટે આ ઉપરથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે ચાણ્ડાલ વિગેરે પાંચનો તો જો વચમાં વસ્ત્ર કાષ્ઠાદિક હોય અને સ્પર્શ થાય તો પણ, તે સ્પર્શને સાક્ષાત્ સ્પર્શ સમજીને સચૈલ સ્નાનાદિક કરવું જ પ્રાપ્ત છે. પરન્તુ સૂતકી જે અડકી ગયો હોય તેને જો કાષ્ઠાદિકથી જાણી જોઈને અડવામાં આવે તો આચમન કરવું એટલે હાથ-પગ ધોઈ, ભગવત્સ્મરણ કરી આચમન કરવું. કારણ કે સૂતક દિવસે-દિવસે ઘટતું ચાલ્યું જાય છે.

હવે ચેતન(સજીવ) પદાર્થ વચમાં આવવાથી થતા સ્પર્શમાટે વિશેષ વિચાર : સંવર્ત્ત ઋષિનો એવો મત છે કે અજાણતાં ઉપર કહેલા રજસ્વલા વિગેરેનો કોઈ સ્પર્શ કરે તો તે સચૈલસ્નાન કરે. પણ જો તેનો સ્પર્શ બીજો કરે તો તે પણ સચૈલસ્નાન કરે પણ તેનો સ્પર્શ જો ત્રીજો કોઈ કરે તો તે આચમન કરે. આમ પદાર્થોને માટે પણ સમજવું. અર્થાત્ અપવિત્ર પદાર્થનો અજાણતાં સ્પર્શ થવાથી ત્રીજા પદાર્થનું પ્રોક્ષણ (જલથી છાંટવું) કરવાથી પવિત્રપણુ માનવું. બે પદાર્થ સુધી તો તે પદાર્થને ધોઈ નાખવો. હવે જો જાણી જોઈને સ્પર્શ થયો હોય તો તેની શુદ્ધિ ગૌતમઋષિ કહે છે કે

''પતિત, ચાણ્ડાલ, રાજસ્વલા, શબનો સ્પર્શ કરનાર,
તેનો સ્પર્શ કરનારનો સ્પર્શ કરવામાં આવે તો સચૈલસ્નાન કરવું
તથા ચોથા માણસે હાથ-પગ ધોઈ આચમન કરવું''.

સારાંશ આ છે કે ઉપર ગણાવેલી ચીજોમાંથી કોઈ એક અપવિત્ર ચીજ જેમકે રજસ્વલા સ્ત્રી છે તેનો કોઈ માણસને સ્પર્શ થયો, તે માણસનો બીજા માણસને સ્પર્શ થયો અને તે માણસનો ત્રીજા માણસને સ્પર્શ થયો તો, તે ત્રીજાનો જો ચોથા માણસને સ્પર્શ થાય તો ચોથા મનુષ્યે હાથ-પગ ધોઈ આચમન કરવું. એટલે તે ચોથો શુદ્ધ થાય. પરન્તુ ત્રીજા સુધી તો સચૈલસ્નાન જ કરવુ જોઈએ. આ પ્રમાણે 'મર્યાદાસિન્ધુ' નામના ગ્રન્થમાં દેવલઋષિનું પણ વચન છે. તેજ પ્રમાણે બીજા પણ ગ્રન્થકારોનાં વચનો ઘણાં છે.

જો કે પ્રથમ સ્પર્શ કરનારનો સ્પર્શ અજાણતાં થયો છે અને બીજા-ત્રીજાનો જાણી જોઈને થયો છે; અથવા પહેલાનો બુદ્ધિપૂર્વક સ્પર્શ થયો છે અને બીજા-ત્રીજાનો અજાણતા થયો છે; આવી બાબતમાં શાસ્ત્રકારોએ કાંઈ વિશેષ ક્યાંય પણ કહ્યું નથી. તો પણ દોષની પ્રાપ્તિની કલ્પના દરેકને બુદ્ધિમાં જ થાય છે, માટે અમોને એમ ભાસે છે કે ત્રીજા સુધી તો સ્નાન જ કરવું, ચોથાએ આચમન કરવું. અને ત્યારે પછી પાચમાં-છઠ્ઠા વિગેરે માણસોએ કાંઈ પણ ન કરવું જોઈએ. કારણ કે ચાર પુરુષ પછી અશુદ્ધિ આવવાનો અસમ્ભવ છે. હવે આનો આ વિચાર પદાર્થોને માટે પણ સમાન સમજી રાખવો. બાકી કાંઈ

પ્રકાર કહેવાનો છે. તે અપવિત્ર પદાર્થના સ્પર્શથી પાત્રોની શુદ્ધિ કહેવાશે ત્યાં કહીશ.

હવે સ્પર્શ થયા બાદ સ્નાન કરવું તે કેમ કરવું તે બાબતમાં 'મર્યાદાસિન્ધુ' માં કહેલો વિશેષ વિચાર.

૩. ઠંડા-ગરમ જલથી સ્નાન કરવાનો વિચાર

ઉપર કહેલા અસ્પૃશ્ય (ન સ્પર્શ કરવાલાયક) નો જો સ્પર્શ થાય તો તીર્થાદિકમાં ઠંડા જલથી સ્નાન કરવું. વૃદ્ધમનુનું પણ આમ જ કહેવું છે કે જેના સ્પર્શથી સ્નાન કરવું પડે તેવાઓનો જો સ્પર્શ થાય અને નહાવું પડે તો ઠંડાજલથી જ નહવું. જો તીર્થ વિગેરે ન હોય તો ગરમ જલથી સ્નાન કરવું. કેટલાંક નિત્ય કાર્ય છે જેમ કે બ્રાહ્મણાદિને સન્ધ્યાવન્દન, કેટલાંક નૈમિત્તિક કાર્ય છે જેમ કે પિતૃશ્રાદ્ધ, કેટલાંક કામ્યકર્મ છે જેમ કે સ્વર્ગમાં જવાની ઈચ્છા રાખનાર માણસે અમાવાસ્યા વિગેરે તિથિઓને દિવસે યજન કરવું, કોઈ વખતે કાર્યની અનભૂત ક્રિયામાં સ્નાન કહેલું હોય છે જેમ કે યજ્ઞની સમાપ્તિમાં 'અવભૃથ' નામનું સ્નાન. માટે કહેવાનો મતલબ એવો છે કે જુદા-જુદા કારણે જુદી-જુદી રીતથી સ્નાન કરવાને શાસ્ત્રમાં કહેલું છે. ક્યાંક ગરમ જલથી, ક્યાંક શીત જલથી અને ક્યાંક પરોદકથી ('પરોદક' એટલે એક પાત્રમાં પ્રથમ ઠંડુ જલ નાખવું તે પછી ગરમ ત્યાર પછી વળી ઠંડુ જલ નાખવું. આવું જે જલ તેને 'પરોદક' નામનું જલ કહેવામાં આવે છે.) માટે જેવું નિમિત્ત તે પ્રમાણે કાર્ય કરવું. જેમ કે રાત્રિએ સ્નાન કરવાનો કોઈ પ્રસન આવ્યો તો રાત્રિએ જ સ્નાન કરી લેવું.

૪. રાત્રિમાં સ્નાન કરવાનો વિચાર

યમ કહે છે કે રજસ્વલા, ચાણ્ડાલ વિગેરેનો સ્પર્શ રાત્રિમાં થાય તો રાતનાં જ સ્નાન કરવું, તેમને તેમ સૂઈ ન રહેવું. કારણ કે જો રાત્રિના સ્નાન કરવામાં ન આવે તો પાપ સવારના સો ગણું થાય છે. પરાશરઋષિ કહે છે કે ''સૂર્ય અસ્ત પામ્યા પછી ચણ્ડાલ, પતિત, રજસ્વલા કે સૂતિકા નો જો સ્પર્શ થાય તો સ્નાન કરીને અગ્નિ, સુવર્ણ તેમજ નક્ષત્રમણ્ડલ નું બ્રાહ્મણની આજ્ઞાથી દર્શન કરવું એટલે શુદ્ધ થાય છે''. જલાશયમાં સ્નાન કે આચમન રાત્રિના કરવું નહીં. સ્નાન કે આચમન કરવું પડે તો દિવસમાં લઈ આવેલા જલથી જ કરવું. રાત્રિમાં જલાશયમાં જઈ સ્નાન-આચમન થતું નથી. સ્નાન કરવાની બાબતમાં બીજો પણ એક વિશેષ દેવલઋષિએ કહ્યો છે. તે આ છે કે ''દિવસમાં મંગાવેલું જલ કોઈ નિમિત્ત પ્રાપ્ત થવાથી જો સ્નાનમાટે ઉપયોગમાં લેવું પડે તો તેમાં સુવર્ણ નાંખી અગ્નિની સાક્ષિથી લેવું. દિવસમાં મંગાવેલું જલ શબ અથવા શબનો સ્પર્શ કરનારનો જો સ્પર્શ થયો હોય તો સ્નાન કરવામાટે કામ ન આવે એમ જાણવું''. વૃદ્ધ શાતાતપ ઋષિ કહે છે કે

> ''દિવસમાં જે જલ લઈ આવવામાં આવ્યું હોય તે
> જલથી સર્વ પ્રકારે શુદ્ધિ પવિત્રતા થાય છે. પરન્તુ શબના સ્પર્શનો
> ત્યાગ કરીને રાત્રિમાં શબના સ્પર્શથી સ્નાન અથવા શબનો સ્પર્શ

કરનારનો સ્પર્શ કરવાથી સ્નાન કરવું હોય તો મજ્જન (એક દમ ઘણાજલમાં સર્વ અનનું બુડાડવું. અથવા જેને ડુબકી મારી નાહાવું કહે છે તે) કરવાથી જ શુદ્ધિ. થાય છે અને જો શબ યા તત્સ્પર્શ સિવાય બીજાનો સ્પર્શ થયો હોય તો ઘરના જલથી શુદ્ધિ થાય તેમ જાણવું. કદાચિત ઘરમાં જલ જ ન હોય તો અગ્નિને સળગાવી નદી અથવા હોજમાં સ્નાન કરવું. કદાચિત અગ્નિ ન હોય તો હાથમાં સોનાની વીટીં ધારણ કરીને સ્નાન કરવું અથવા અગ્નિની સાક્ષીથી સ્નાન કરવું''.

૫. રાત્રિમાં નદી વિગેરેના જલમાં સ્નાન કરવાનો વિચાર.

કાત્યાયન ઋષિ કહે છે કે રાત્રિમાં જલ ભરવું નહીં. જલમાં પ્રવેશ કે સ્નાન કરવું નહીં. જો કદાચિત્ જરૂર પડે તો તૈત્તિરીય શાખામાં કહેલા મન્ત્ર : **''ધામ્નો-ધામ્નો રાજન્નિતો વરુણનો મુઞ્ચ, યદાપો અધ્યા ઈતિ વરુણેતિ શપામહે તતો વરુણનો મુઞ્ચ''** નો ઉચ્ચાર કરીને સ્નાન કરવું. રાત્રિમાં જલ ન ભરવામાટે 'મર્યાદાસિન્ધુ' ગ્રન્થમાં લખ્યું છે કે સૂર્ય અસ્તનત થયા બાદ જલ ગ્રહણ ન કરવું એમ કેટલાક મહાત્મા ઋષિઓનું વચન છે અને વળી ગ્રહણ કરવું એમ પણ કોઈનું કહેવું છે. પરન્તુ જેટલા પ્રમાણમાં જલ લેવામાં આવે તેટલા પ્રાણાયામ કરવા ઈત્યાદિ વિચાર કરેલો છે. તેથી એમ જાણવું કે ન કરવાલાયકનો સ્પર્શ અથવા તત્સ્પર્શ જો દિવસમાં થાય તો દિવસમાં જ તીર્થ વિગેરેમાં શીતલ જલથી સ્નાન કરવું. તીર્થ વિગેરે ન હોય તો ગરમ જલથી અથવા 'પરોદક' (નીચે ઉપર ઠંડુ વચમાં ગરમ) નામક જલથી સ્નાન કરવું. અને જો રાત્રિમાં તેવો સ્પર્શ થાય તો તીર્થમાં જઈ અગ્નિને સળગાવી આગળ કહેવાઈ ગયેલો ''ધામ્નો'' એ મન્ત્રનો પાઠ કરી ત્યાર પછી મજ્જન પણ કરવું. મજ્જન એ નામનો એક જાતનો સ્નાનનો પ્રકાર છે જેનો અર્થ આગળ કહેવાઈ ગયો છે. અને જો મજ્જન પણ બની શકે તેમ ન હોય તો દિવસમાં ભરી રાખેલું ઘરનું જલ ગરમ કરાવીને અથવા 'પરોદક' નામક જલથી અગ્નિને સન્મુખ રાખી, જલમાં સુવર્ણ નાખીને સ્નાન કરવું. કદાચિત્ અગ્નિ પણ ન મળે તો, હાથમાં સુવર્ણ ધારણ કરીને સ્નાન કરવું. અને તેમ પણ ન બને તો પછી રાત્રિમાં જલ બહાર કાઢી જેમ બને તેમ પ્રથમ કહેલા પ્રકારે સ્નાન કરવું અને સ્નાન કર્યા પછી પ્રાણાયામ કરવા. કદાચિત્ કાંઈ પણ ન બની શકે તેમ હોય તો પછી શ્રીહરિનું સ્મરણ કરતાં જેમ બની શકે તેમ પણ સ્નાન તો કરવું જ, એમ ને એમ બેસી રહી રાત્રિ કાઢવી નહીં. શબનો તથા તેના સ્પર્શ કરનારનો સ્પર્શ થયો હોય તો-તો મજ્જનથી જ શુદ્ધિ થાય છે. એમાં પણ કદાચિત્ મજ્જનલાયક જલ ન મળે તો પછી શ્રીહરિનું સ્મરણ કરતાં-કરતાં સ્નાન કરવું એમ અમને ભાસે છે. પણ એમ ને એમ બેસી તો ન જ રહેવું. અને પછી સૂર્યોદય થાય ત્યારે બીજી વાર સ્નાન કરવું.

૬. રાત્રિમાં જન્મ-મરણ તથા અટકાવ આવે તો તે બાબત કાલવિભાગનો વિચાર

મિતાક્ષરમાં કશ્યપઋષિનું વચન છે કે

૧. સૂર્યનો ઉદય થતાં સ્ત્રીયોને અટકાવ આવે અથવા કોઈનો જન્મ થાય યા મરણ થાય તો જો દિવસ હોય તો દિવસ લેખવો. રાત્રિ હોય તો રાત્રીથી ગણના કરવી. અર્ધ રાત્રિ સુધી પ્રથમ દિવસ પછી બીજો દિવસ ગણાય છે.
૨. રાત્રિના ત્રણ ભાગ કરવા. તેમાં પ્રથમના બે ભાગ પૂર્વ દિવસમાં ગણવા અને ત્રીજો ભાગ આવતા દિવસ સાથે ગણવો.
૩. રાત્રિમાં મરણ યા અટકાવ અથવા સૂતક પ્રાપ્ત થાય તો સૂર્યોદય થતાં પહેલાં સુધી પ્રથમ દિવસ જ ગણવો.

અહીં સદાચારથી વ્યવસ્થા જાણવી. એટલે જે રીત શિષ્ટોતરફથી ચલાવવામાં આવતી હોય તેમ ચાલવું. ઉપર કહેલી બાબતમાં તિથિનું મુખ્યપણું ન સમજવું.

વારથી ગણના કરવી. જે વારને રોજ સૂર્યનો ઉદય થયો તે વારથી રોજ ગણાય. પણ તિથી જો ગણવા જાય અને પછી તિથી વધ-ઘટ હોય તો પછી ઘણી અડચણ આવે માટે સૂતકાદિના વિષયોમાં વારથી ગણના કરવી યોગ્ય છે.

તેમજ રાત્રિની ગણત્રી પણ પ્રોક્ત પ્રકારથી જ કરવી. એટલે બે પક્ષ સમજવા.

૧. એક તો અર્ધ રાત્રિપર્યન્ત પ્રથમ દિવસ ગણાય.
૨. બીજો પક્ષ રાત્રિના ત્રણ ભાગ કરવા, તેમાં બે ભાગ સુધી પ્રથમ દિવસ. ત્રીજે ભાગે આવતો દિવસ જાણવો.

પરન્તુ નીચ જાતિમાફક રાત્રિની ગણના ન કરવી. 'શુદ્ધિમયૂખ' નામના ગ્રન્થમાં પણ રાત્રિના ત્રણ ભાગ કરવાનો પક્ષ શિષ્ટ મનુષ્યોએ સ્વીકારેલો છે, એમ લખેલું છે.

૭. રાજસ્વલા સ્ત્રીની શુદ્ધિનો વિચાર

'મિતાક્ષરા' ગ્રન્થમાં સ્મૃત્યન્તરમાં લખે છે કે ''રજસ્વલા સ્ત્રી ચોથે દિવસે સ્નાન કરી સાધારણ શુદ્ધ થાય છે''. એટલે દેવ-પિતૃ સમ્બન્ધી કર્મમાં યોગ્યતાવાળી થતી નથી. સહજ કામકાજ કરવાને શુદ્ધ થાય છે. પરન્તુ યથાયોગ્ય શુદ્ધ તો પાંચમે દિવસે જ થાય છે. ''પાંચમો દિવસ રજની નિવૃત્તિ થવામાટે જાણવો. અર્થાત્ પાંચમે દિવસે રુધિરનો સ્ત્રાવ બંધ થઈ જાય છે માટે રજની નિવૃતિથી સ્નાન કરી, પતિવ્રતા સ્ત્રી સર્વ કાર્યોમાં લાયક સમજવી''. એટલે ''દૈવ-પિત્ર્ય વિગેરે કાર્યોમાં તે આવી શકે છે'' એમ મનુ વિગેરે ગ્રન્થકારો પણ લખે છે.

સારાંશ આટલો નિકળે છે કે રજોદર્શન બંધ થયા પછી પણ ચોથે દિવસે સ્નાન કરવાથી સ્પર્શાદિકમાં શુદ્ધિ થાય છે પરન્તુ દૈવ-પિત્ર્ય કાર્યોમાં તો રજોદર્શન રહિત જ પાંચમે દિવસે યોગ્યતા સમજવી. વૃદ્ધમનુ લખે છે કે ''ચોથે દિવસે સ્નાન કર્યા પછી વ્યવહાર(સ્પર્શાદિ)માં શુદ્ધ થાય છે. એટલે શાક, લોટ વિગેરેના સ્પર્શમાં યોગ્ય થઈ શકે છે;

પરન્તુ રસોઈ વિગેરે કાર્યોમાં યોગ્ય થઈ શકાતું નથી. કદાચિત્ શુદ્ધિ થયા પછી કંઈ કામકાજ કરતાં ધારણ કરેલાં વસ્ત્રમાં રજનો સમ્બન્ધ જાણવામાં આવે તો તરત અનાદિકની શુદ્ધિ કરી બીજું વસ્ત્ર ધારણ કરવું. તેમાં દોષ નથી એમ ગ્રન્થકારોના વચનોથી સિદ્ધ થાય છે.

૮. નિયમિત દિવસો પછી પાછું રજોદર્શન થાય તે બાબતનો વિચાર

તે બાબતમાં અત્રિ ઋષિ કહે છે કે

> ''જો સ્નાન કરી શુદ્ધ થયેલી રજસ્વલા સ્ત્રી પાછી રજસ્વલા અઢારદિવસથી પ્રથમ થાય તો અપવિત્રતા ન પાળવી. ઓગણીસમે દિવસે એક દિવસ અપવિત્રપણું. અને વીશ દિવસ પછી પૂરેપૂરું એટલે ત્રણ રાત્રિ અપવિત્રપણું પાળવું. સારાંશ કે જે દિવસે રજોદર્શન થાય તે દિવસથી માંડીને પાછું સત્તર દિવસની અંદર ફરીથી રજોદર્શન થાય તો અપવિત્રપણું સમજવું નહીં. અને જો અઢારમે દિવસે થાય તો એક દિવસથી શુદ્ધિ, ઓગણીશમે બે દિવસથી શુદ્ધિ અને વિશમેથી ત્રણ દિવસે શુદ્ધિ જાણવી''.

કોઈ સ્મૃતિમાં એમ લખેલું છે કે ચૌદ દિવસો પહેલાં અપવિત્રપણું નથી હોતું. તો તેનો અર્થ એમ સમજવો કે સ્નાન વગેરે કરી લેવું. આ નિર્ણય તે સ્ત્રીની બાબતમાં કહેવાયો છે કે જેને સામાન્ય રીતે વીશ દિવસ પછી જ રજોદર્શન થતું હોય.

વિજ્ઞાનેશ્વર કહે છે કે ''જે સ્ત્રીને અઢાર દિવસ પહેલાં પાછું રજોદર્શન ઘણું કરીને થાય તો તે સ્ત્રીએ તો અઢાર દિવસ પહેલાં પણ પૂરેપુરું એટલે ત્રણ રાત્રિ અપવિત્રપણું પાળવું''. જો પહેલે દિવસે રજોદર્શન થયું તેમ જણાયું અને બીજે દિવસે-ત્રીજે દિવસે નથી જણાતું તો પણ પૂરેપુરું અપવિત્રપણું પાળવું. કારણ કે કશ્યપ ઋષિનું વચન છે કે રજસ્વલા સ્ત્રીએ અંજન વિગેરે કરવું નહીં, તો તે નિષેધ ઉપરથી જ સિદ્ધ થાય છે કે ચોથે દિવસે જ શુદ્ધિ થાય; તે પહેલાં શુદ્ધ ન થાય. અને કદાચિત્ રજોદર્શન થયું હોય પણ તેની ખબર ન પડી હોય તો તે બાબતમાં 'નિર્ણયસિન્ધુ' ગ્રન્થમાં 'પ્રજાપતિ' કહે છે કે

> ''જો રજોદર્શનથી મલિન થયેલું કપડું માલુમ પડે અને રજોદર્શન થવાની ખબર નથી, ફક્ત કપડા ઉપરથી રજોદર્શન થયું એમ માત્ર જણાય તો ઘરમાં કરેલું કામકાજ સર્વ દોષવાળું સમજવું અને ત્યાર પછી ત્રિરાત્રથી શુદ્ધિ જાણવી''.

આ પરથી એમ દેખાય છે કે મલરૂપ દોષની વસ્ત્રાદિકમાં રહેલી સત્તા જ અપવિત્રપણાને ઉત્પન્ન કરનારી છે. 'કર્મતત્વપ્રકાશિકા' તથા 'ધર્મપ્રવૃત્તિ' નામના ગ્રન્થોમાં 'કૃષ્ણભટ્ટ' કહે છે કે ''અટકાવ જાણ્યા પછી દોષ લાગે છે, જાણ્યા પહેલા દોષ હોવાનો સમ્ભવ નથી''. અને તેમ 'યમ' નામના ગ્રન્થકાર પણ જણાવે છે કે

> ''કોઈ જાતના વ્યસનને લીધે, કામકાજના પ્રસનને લીધે

અથવા નિદ્રાસમ્બન્ધી વિસ્મરણને લીધે થયેલું રજોદર્શન જાણવામાં ન આવ્યું હોય તો ત્યાં સુધી તે સ્ત્રી પવિત્ર કહેવાય અને જ્ઞાન થયા બાદ જો કોઈ પદાર્થોનો સ્પર્શ કરે તો, જો તે માટિનાં વાસણ હોય તો તેને ફેંકી દેવાં; ઘી-તેલને ગરમ કરી બીજા પાત્રોમાં ભરી લેવાં, લાકડાંનાં વાસણ વિગેરેને ઘસાવી લેવાં. શીંગડાંનાં તથા દાંતના પણ તેમજ અથવા સો વાર રાખથી માંજી લેવાં. ગોબર માટી જલથી ઘર લિપાવી કાઢવું. અનાજ હોય તો પ્રોક્ષણ કરી લેવું. આ પ્રમાણે શુદ્ધિ કરવી. નહીં કહેલા અશુભ પણ દોષો જાણેલા હોય અથવા ન જાણેલા હોય તો પણ બ્રાહ્મણોની આજ્ઞા લઈ પુણ્યાહવાચન કરાવવું. એટલે સર્વની શુદ્ધિ થઈ જાય છે''.

સન્દેહવાળા રજોદર્શન બાબત પ્રજાપતિએ સ્નાન કરવાનું કહેલું છે. તે ઉપરથી એમ સમજવું કે જ્ઞાનથી જ અપવિત્રપણું પેદા થાય છે. 'સ્મૃત્યર્થસાર' નામના ગ્રન્થમાં લખવામાં આવ્યું છે કે રજસ્રાવ પ્રથમ ન જાણવામાં આવ્યો હોય અને પછી ચાર દિવસમાં જાણવામાં આવે તો અપવિત્રપણું પ્રાપ્ત થાય જ છે. જનનાશૌચ વિગેરેમાં પણ જાણવાથી જ અપવિત્રપણું થાય છે, ન જાણવામાં આવે તો પવિત્રપણું જ સમજવું. એ પ્રમાણે જે કાંઈ પાપનું નિમિત્ત થાય તે પોતાની સત્તાથી જ પાપને સમ્પાદન કરનારું સમજવું. રજોદર્શન વિગેરેમાં પોતાની સત્તાને લઈને જ પાપ ઉત્પન્ન થાય છે, માટે આરમ્ભકાલનું અનુમાન કરીને સ્પર્શ દોષ લાગુ થાય છે અથવા નષ્ટ થાય છે એમ જાણી રાખવું. અને જો આરમ્ભકાલનું અનુમાન જ ન થઈ શકે તો અપવિત્રપણું પણ કેમ જ આવી શકે? માટે આરમ્ભકાલનું અનુમાન કારણભૂત માનવું.

અહીં શંખા થાય કે કહેલા સમયમાં જેમ કે પાંચમે દિવસે અથવા કોઈ વખતમાં કોઈ બાબતનો સન્દેહ થયો તો તે બાબતમાં કેમ કરવું એ ખાતે કાંઈ નિર્ણય કર્યો નથી. પરન્તુ ''સન્દિગ્ધમાત્રે સ્નાનં સ્યાત્'' આ વચનથી જે સ્ત્રીને સન્દેહ પેદા થાય તેણે સ્નાન કરવું અને તે સન્દેહવાળી સ્ત્રીએ સ્પર્શ કરેલાં વસ્ત્રાદિને ધોઈ નખાવવા અને ગોમૂત્ર, સુવર્ણ તથા જલ થી ''અપવિત્રઃ પવિત્રો વા'' ઈત્યાદિ મન્ત્રોએ કરીને બીજા પદાર્થોની ઉપર પ્રોક્ષણ કરાવવું. જે ઘરમાં ઘણી સ્ત્રીઓ હોય અને મલમાત્રનું જ ફક્ત જ્ઞાન થાય, રજસ્વલા સ્ત્રીનું જ્ઞાન ન થાય તો પણ દિવસોની ગણનાથી જે સ્ત્રી રજોદર્શનને લાયક હોય તે સ્ત્રીએ ઉપર પ્રમાણે કરવું. કદાચિત્ એ બાબતમાં પણ સન્દેહ પેદા થાય તો, તે ઘરમાં જેટલી સ્ત્રીઓ હોય તે સર્વ સ્ત્રીઓએ ઉપર પ્રમાણે કરવું અને એવી બાબતમાં પુણ્યાહવાચન કરાવવું તથા જાણેલા ન જાણેલા સર્વ પદાર્થો ઉપર પૂર્વોક્ત વાક્યથી બધે ઠેકાણે પ્રોક્ષણ કરાવવું. આ સિવાય બીજી શુદ્ધિ જણાતી નથી. અથાણા અને પાપડ નો પણ ત્યાગ કરવો. યાજ્ઞવલ્ક્યઋષિ પણ જણાવે છે કે ''છોવાયેલી સ્ત્રીદ્વારા અભડાયેલ સંઘુષ્ટ અન્ન અને

પર્યાય અન્ન નો ત્યાગ કરવો''. અથાણા-પાપડ પણ અન્ન કહેવાય છે તેથી તેઓનો ત્યાગ કરવો એમ ગ્રન્થકાર કહે છે એમ ભાસે છે.

૯. રાજસ્વલાને કોઈ બીજો અપવિત્ર સ્પર્શ કરે અથવા એક રજસ્વલા બીજી રજસ્વલાનો સ્પર્શ કરે તે બાબત વિચાર

'અપરાર્ક' નામના ગ્રન્થમાં અનેક વચનો લખ્યાં છે તેનો અર્થ અહીં કહિએ છીએ.

રજસ્વલા અને સુવાવડી સ્ત્રીને શબ તથા ચાણ્ડાલ નો સ્પર્શ થાય તો તેઓએ ત્રણ રાત્રિ પર્યન્ત ઉપવાસ કરવો. ચાણ્ડાલ અથવા શ્વપચ નો સ્પર્શ થાય તો પઞ્ચગવ્ય પણ ખાવું એટલું અધિક શાતાતપે કહ્યું છે. કશ્યપઋષિ કહે છે કે શુદ્ધ થયા બાદ તેમ કરવું. અને તે રાત્રિ પછી તો બકરીથી સુંઘાડવું એમ કશ્યપે જણાવ્યું છે. બૃહસ્પતિ તો એમ કહે છે કે કોઈ માહાપાતકી તથા શ્વપાક જાતિના ચાણ્ડાલનો પહેલે દિવસ સ્પર્શ થાય તો ત્રણ દિવસ ઉપવાસ, બીજે દિવસે સ્પર્શ થાય તો બે દિવસ ઉપવાસ અને ત્રીજે દિવસે થાય તો એક દિવસ ઉપવાસ કરવો. તે પછી થાય તો 'નક્તભોજન' એટલે કે સાજે ભોજન કરવું, એ પ્રમાણે રજસ્વલા સ્ત્રીએ કરવું. પરન્તુ શુદ્ધિ થયા બાદ કે તેમ કરવું શક્ય ન બને શકે તો શાતાતપ નામના ઋષિ કહે છે કે રજોદર્શનના દિવસથી ઉપવાસ સ્નાનના દિવસપર્યન્ત કરવા, સ્નાન કર્યા પછી સમયથી તેની શુદ્ધિ થાય છે. એ પણ કદાચ ન બને તો, પરાશર ઋષિ કહે છે કે અહોરાત્ર ઉપવાસ કરવો, પઞ્ચગવ્યનું (પઞ્ચગવ્ય એટલે દૂધ, દહીં, ઘી, ગોબર અને ગોમૂત્ર સમજવાં.) લેવું, બને તેટલું સુવર્ણનું દાન કરવું અને બ્રાહ્મણ ભોજન યથાશક્તિ કરાવવું.

હવે પરસ્પર રજસ્વલા એક બીજાનો સ્પર્શ કરે તે બાબતમાં કેમ કરવું તેનો ખુલાસો કરવામાં આવે છે. એક ગોત્રવાળી રજસ્વલાઓ પરસ્પર સ્પર્શ કરે તો સ્નાન કરવું. ભિન્ન-ભિન્ન ગોત્રવાળી પણ સવર્ણ રજસ્વલા સ્ત્રી એક-બીજાનો સ્પર્શ કરે તો એક રાત્ર ઉપવાસ કરવો. ક્ષત્રિય રજસ્વલા સ્ત્રીનો સ્પર્શ થાય તો બ્રાહ્મણી રજસ્વલા સ્ત્રીને ત્રિરાત્ર, વૈશ્યજાતિની સ્ત્રીના સ્પર્શમાં પઞ્ચરાત્ર અને શૂદ્રજાતિની સ્ત્રીના સ્પર્શમાં છ રાત્ર ઉપવાસ કરવા એ પ્રમાણે વૃદ્ધવશિષ્ટ ઋષિનો મત છે.

રજસ્વલા સ્ત્રી કોઈ પેશાબ કરતી બીજી સ્ત્રીને અડકી જાય તો પેશાબ કરનારી સ્ત્રીએ અહોરાત્ર ઉપવાસ કરવો. ભોજન કરતી સ્ત્રીને રજસ્વલાનો સ્પર્શ થાય તો ભોજન કરનારી સ્ત્રીએ ત્રણ રાત્રિ સુધી જલનું પાન કરીને રહેવું.

રજસ્વલા સ્ત્રીને કુતરા, શીયાળ કે ગર્દભ વિગેરે જાનવરનો સ્પર્શ થાય તો અથવા રજસ્વલા સ્ત્રી ઉપર કહેલા જાનવરનો જાતે સ્પર્શ કરે તો સ્નાન કરી તારા ઉગે ત્યાં સુધી ઉપવાસ કરે અને પઞ્ચગવ્યનું ભક્ષણ કરે. એ પ્રમાણે ધર્મશાસ્ત્રમાં ઘણું કહેલું છે.

૧૦. રજસ્વલા સ્ત્રીના સ્નાનાદિકનો વિચાર.

રજસ્વલાના સ્નાનને દિવસે તેલ વિગેરેથી થયેલાં તથા મસ્તકથી થયેલાં મલીન વસ્ત્રો સર્વ ધોઈ નાખવાં. 'કૃષ્ણભટ્ટીય' નામક ગ્રન્થમાં પરાશર ઋષિ કહે છે કે

> ''રજસ્વલા સ્ત્રીએ ત્રિરાત્ર પૂર્ણ થાય એટલે સનવ (સનવ એટલે પ્રાતઃકાલ પછી ત્રણ મુહૂર્તનો વખત.) નામક ચોથા દિવસના સવારના સમયમાં મલને ધોઈ નાંખી, ૬૦ વખત મૃત્તિકાથી દંતધાવન કરવું. પછી મલત્યાગ કરી, શરીરને ગોબરના જલથી ધોઈ, સચૈલ સ્નાન કરવું. પરન્તુ ઘેર સ્નાન કરવું નહીં. તળાવ યા નદી વિગેરે જલાશયમાં સ્નાન કરવું''.

અહીં ઘેર સ્નાન ન કરવું અને જલાશયમાં જઈ સ્નાન કરવું એનું કારણ એમ દેખાય છે કે વિના જલાશય યથાયોગ્ય મલ ન ધોવાય તથા તૈલ વિગેરેની ચીકાશ સાફ ન થઈ શકે. ગોબરના જલથી સર્વની શુદ્ધિ કરવી ઈત્યાદિ લેખ ઉપરથી માલમ પડે છે કે જલાશયમાં જઈ સ્નાન કરવું. અત્રિ ઋષિ પણ કહે છે કે

> ''રજસ્વલા સ્ત્રી ચોથે દિવસે વારંવાર સાઠ વખત માટી લઈ પોતાના દાંતોની શુદ્ધિ કરે અને 'સનવ'નામક સમયમાં તીર ઉપર જઈ, સચૈલ સ્નાન કરે. તે સ્નાનમાં રાખ, ગોબર અને મૃતિકા થી ઉપયુક્ત થવું. સ્નાન કર્યા બાદ પવિત્ર વસ્ત્ર ધારણ કરી ચન્દન પુષ્પાદિકથી સુશોભિત થઈને આચમન કરી પુષ્પોથી સૂર્યનું પૂજન કરે અને પ્રાર્થના કરે કે ''હે પ્રભો! ઈન્દ્રના જેવો મારો પતિ મને અર્પણ કરો''. એ પ્રમાણે પ્રાર્થના કરી ઈન્દ્રભાવથી પોતાના પતિની પ્રાર્થના કરવી. જે સ્ત્રી ઋતુનું સ્નાન કર્યા પછી જેને સ્નેહપૂર્વક જુવે છે તેવો તેને પુત્ર પ્રાપ્ત થાય છે''.

આ પ્રમાણે 'સ્મૃત્યર્થસાર' નામક ગ્રન્થમાં સનવ સમયમાં ફક્ત સ્નાન કરવાને જણાવ્યું છે, પરન્તુ સ્થાનમાટે નિર્ણય યથાયોગ્ય કર્યો નથી. તેથી ઘરમાં પણ સ્નાન થાય. ૬૦ વખત માટીથી બ્રાહ્મણી સ્ત્રીએ, ૧૨૦ વખત માટીથી વિધવા સ્ત્રીએ તથા ક્ષત્રિયાદિકની સ્ત્રીઓએ સાઠના ચોથા-ચોથા ભાગની ન્યૂનતાથી અપવિત્રપણું દૂર કરવું. બીજા પ્રાચીન-અર્વાચીન ગ્રન્થોમાં ચોથે દિવસે રજસ્વલાને સ્નાનમાત્ર જણાવ્યું છે. પરન્તુ, તે સ્નાન ક્યાં અને ક્યે વખતે અને કેમ કરવું ઈત્યાદિ વૃત્તાન્ત જણાવ્યું નથી. પરન્તુ સદાચાર એવો છે કે સૂર્યોદય પછી ચોથે દિવસે પ્રથમ કહી ગયા તે પ્રકારથી ઘરમાં પણ સ્નાન

થઈ શકે, વ્યાસસ્મૃતિના બીજા અધ્યાયમાં એમ લખ્યું છે કે રજસ્વલા સ્ત્રીએ ત્રણરાત્રિ પૂર્ણ થાય એટલે સૂર્યોદયમાં ચોથે દિવસે સચૈલ સ્નાન કરવું અને પછી ધર્મપૂર્વક ભર્ત્તાનું મુખદર્શન કરવું.

શાસ્ત્ર અને સદાચાર થી આ પ્રમાણે દેશકાલથી વ્યવસ્થા યોગ્ય ભાસે છે. જો કે તળાવ, નદી વિગેરેમાં સ્નાન કરવું સર્વસમ્મત જેવું છે તો પણ, દેશકાલ તપાસતાં કેટલીક બાબતોમાં સહાયતા પૂર્ણ નથી બની શકતી. કોઈ એકલી ઘરમાં સ્ત્રી હોય તો તે સ્ત્રીએ યથાયોગ્ય પોતાની શુદ્ધિ કરવામાં અશક્યતાને પ્રાપ્ત થવું પડે અને આ અતિદુષ્ટ કલિયુગમાં લાજવાળી તરુણ સ્ત્રીમાટે ઘરથી બહાર યથાયોગ્ય સ્નાનાદિક કરવા અશક્ય થઈ પડે. માટે આ બાબતમાં પણ દેશકાલ જોવા જરૂરી છે. એ પ્રમાણે ઘરમાં પણ રજસ્વલા સ્ત્રીએ સ્પર્શ કરેલી ભીની ભૂમી તથા ઘર પણ યથાયોગ્ય પવિત્ર કરવું. ''વ્યસનથી અથવા કાર્યભારથી'' એ પ્રમાણે આગળના નિર્ણયમાં યમના વચનનું પ્રમાણ આપી ગયા છીએ કે કાંઈ પણ અપવિત્રપણું જાણવામાં આવે તો જાણ્યા પછી પદાર્થની શુદ્ધિ વિલેપનાદિથી કરવી જોઈએ. તે પ્રમાણે રજસ્વલાએ સ્પર્શિત ભૂમીને શુદ્ધ કરવી. રજસ્વલાએ સ્પર્શેલ જલનો ત્યાગ કરવો. 'મર્યાદાસિન્ધુ' માં દેવલનું વચન છે કે અક્ષુબ્ધ (અક્ષુબ્ધ એટલે નદી તળાવનું જલ.) અને પ્રસૃત (પ્રસૃત જલ એટલે વિસ્તારવાળું જલ.) જલનો રજસ્વલા સ્પર્શ કરે તો તે જલ અપવિત્ર થતું નથી. અર્થાત્ નદીમાં જઈ યા તળાવમાં જઈને રજસ્વલા તળાવ-નદીના ઘણાં જલનો સ્પર્શ કરે તો તે જલ અપવિત્ર થતું નથી. અર્થાત્ કૂપાદિથી બહાર કાઢેલું જલ તથા થોડું જલ રજસ્વલાના સ્પર્શથી અપવિત્ર થાય છે એમ સમજવું. અને અપવિત્ર પદાર્થના સમ્બન્ધથી સ્થાન પણ અપવિત્ર થાય છે એમ પણ સાથે જ સમજવું. મૂલ ગ્રન્થમાં રજસ્વલા વિગેરેનો સ્પર્શ એમ લખ્યું છે તે ઉપરથી ચાણ્ડાલાદિનો સ્પર્શ સમજી લેવો. અર્થાત્ તેના સ્પર્શથી પણ કૈમુતિકન્યાયે ચાણ્ડાલ, સૂતકી, સૂતિકા, રજસ્વલા વિગેરેએ સ્પર્શ કરેલું જલ અપવિત્ર થાય છે એમ જાણવું. કેટલાક ગુજરાતી લોકો રજસ્વલાએ અડકેલા જળનો ત્યાગ કરતા નથી તે અનાચાર છે એમ જાણવું. વળી ત્રીજે દિવસે મલને દૂર કરવામાટે સારસ્વત બ્રાહ્મણ તથા ક્ષત્રિય વિગેરેની સ્ત્રીઓ મધ્ય દેશમાં સ્નાન કરે છે તે પણ સર્વથા અયોગ્ય જ છે.

રજસ્વલાની માફક શબનો સ્પર્શ કરનારે યા શબના આશૌચવાળા મનુષ્યે મસ્તકનું વસ્ત્ર વિગેરે ધોઈ મૃત્તિકા તથા ભસ્મ થી સ્નાન કરવું. જો કે આ બાબતમાં માટી કેટલી વાર લઈ સ્નાન કરવું વિગેરે લખ્યું નથી. તો પણ સદાચારને લીધે તેમ કરવું યોગ્ય છે. કારણ કે મરણાશૌચ મોટી બાબતવાળું છે માટે તે લોકોએ અડકેલ જલનો ત્યાગ કરવો.

હવે રજસ્વલા વિગેરે રોગી હોય તો તેમણે કેમ સ્નાન કરવું તે વિષે વિચાર કરીએ છીએ. સ્નાન કરનાર માણસ રોગી હોય એટલે સ્નાન ન કરી શકે તેમ હોય તો બીજો નિરોગી મનુષ્ય દશ વાર વારંવાર રોગીનો સ્પર્શ કરી-કરીને સ્નાન કરે તો તેમ કરવાતી રોગી માણસ શુદ્ધ થાય છે. શુક્રાચાર્ય પણ તાવના રોગવાળી સ્ત્રી જો રજસ્વલા થાય તો કેવી રીતે

શુદ્ધિ કરવી એ બાબત જણાવે છે કે ચોથે દિવસે બીજી સ્ત્રી તે રજસ્વલાનો સ્પર્શ કરે, વારંવાર સ્પર્શ કરતી જાય અને સ્નાન કરે, એમ દશ વખત યા બાર વખત કરી વારંવાર આચમન કરતી જાય અને પછી છેલી વખતે તે કપડાંનો પણ ત્યાગ કરે ત્યારે તે રોગી રજસ્વલા સ્ત્રી શુદ્ધ થાય છે. ત્યાર બાદ યથાશક્તિ દાન દે અને પુણ્યાહવાચન કરાવે. તેમ કરવાથી રજસ્વલાની શુદ્ધિ થાય છે.

જો રજોદર્શનના દિવસોમાં વચમાં ગ્રહણ આવે તો 'નિર્ણયસિન્ધુ'માં સ્નાન કરવાનું લખ્યું છે. સૂતિકા વિગેરેને ગ્રહણમાં, હોમ જપાદિકમાં ઘરમાં સ્નાન કરતાં દોષ નથી. રજસ્વલા સ્ત્રી પણ તીર્થમાંથી જલ મંગાવી સ્નાન કરે. 'ભાર્ગવાર્ચનદીપિકા'માં તથા સૂર્યોદયનિબન્ધ વચનથી માલમ પડે છે. નૈમિત્તિક એટલે કાંઈ નિમિત્તથી આવેલું સ્નાન કરવામાં રજસ્વલા સ્ત્રી પણ લાયક છે એમ પરાશરનું વચન પણ પ્રમાણમાં જાણવું. ત્રણ દિવસની અંદર જો ગ્રહણ આવે તો પણ સ્નાન કરી, આંજણ આંજ્યા વિના પાછું અપવિત્રપણું પૂર્ણ કરવું. અર્થાત્ રજસ્વલાવ્રત પૂર્ણ કરવું. એમ જ ગ્રહણ નિમિત્ત સ્નાન પ્રાપ્ત થાય તો જો ગ્રસ્ત થયેલ ચન્દ્ર યા સૂર્ય નો મુકાવાના વખતમાં ઉદય થાય તો ગ્રહણ નિમિત્ત સ્પર્શકાલીન સ્નાન પ્રાપ્ત છે, છતાં તે વખત ન આવે અને શુદ્ધ ચન્દ્રબિમ્બ અથવા શુદ્ધ સૂર્યબિમ્બનો જ ઉદય માલમ પડે તો સ્નાન કરવામાં 'દૃષ્ટ્વા સ્નાયાત્' એ વચનથી વિરોધ આવે. કારણ કે તેનો એવો અર્થ છે કે ગ્રસ્ત થયેલ ચન્દ્રાદિને જોઈને સ્નાન કરવું. પરન્તુ તે વખત ન આવવાને લીધે અવકાશના અભાવથી માર્જન પૂર્વક દાન કરી મોક્ષ સ્નાન કરવું એ અમને યોગ્ય ભાસે છે.

હવે બાલક વિગેરેને રજસ્વલાનો સ્પર્શ થાય તો શું કરવું તેનો નિર્ણય 'શુદ્ધિમયૂખ'માં હરિહર ભાષ્યમાં શાતાતપ આ પ્રમાણે કહે છે કે રજસ્વલાનો સ્પર્શ શિશુ (શિશુ એટલે જેને અન્નપ્રાશન નથી થયું તેવું બાલક.) કરે તો તેને જળ છાંટવું. અને રજસ્વલાનો સ્પર્શ બાળક (જેના વાળમોવાળા ઉતરેલ ન હોય) તે કરે તો તેને આચમન કરાવવું. જો કુમાર (જેને યજ્ઞોપવિત નથી થયું) તે જો કરે તો તેને સ્નાન કરાવવું.

રજસ્વલા વિગેરેએ જોયેલા અન્નની શુદ્ધિ કેમ કરવી તે બાબતમાં શાતાતપ આજ્ઞા કરે છે કે જીવ અભિશાપિત (નિન્દિત), મહાપાતકી, સૂતિકા, રજસ્વલા અને નાસ્તિક એઓએ જોયેલા અન્નનો નિર્ણય એમ સમજવો કે તે અન્નને પ્રોક્ષણ કરી તેમાંથી જરાક કાઢી નાખી, નિઃશંક થઈ પછી ભક્ષણ કરવું. અથવા ભસ્મથી સ્પર્શ કરી યા ઉમ્બાડીયાથી સ્પર્શ કરી અથવા સુવર્ણ રજતથી અડકી યા બકરાથી સુંઘાવી ભક્ષણ કરવું. આ ઉપરથી સ્પષ્ટ માલમ પડે છે કે ઉપર કહેલાં રજસ્વલા વિગેરેએ જોયેલું જલ છોવાતું નથી. આ પ્રમાણે અત્યન્ત અપવિત્ર પદાર્થ બાબત વિચાર કર્યો છે.

૧૧. ઉપર કહેલા સિવાયના સ્પર્શાદિકથી સ્નાન કરવા વિગેરેનો વિચાર.

પરાશર ઋષિ કહે છે કે

''ખરાબ સ્વપ્ન આવ્યે, સ્ત્રીસમ્ભોગ કરવા પર, ઓકી કાઢેલ પદાર્થનો સ્પર્શ થાયે, મલત્યાગ કરવા પર, હજામત કરાવ્યે, ચિતા તથા પૂય નો સ્પર્શ કર્યે, સ્મશાનમાં જવા પર, સ્મશાનમાં હાડકાનો સ્પર્શ કરવા પર સ્નાન કરવું''.

અહીં મૈથુન કરનારને સ્નાન જણાવ્યું છે તે ઋતુકાલ સમ્બન્ધી મૈથુન વિષયમાં જાણવાનું છે તેમ મનાઈ કરેલા સમય વિષયકને સ્નાન છે એમ જાણવું. ઋતુ વિના જ્યારે સ્ત્રીની પાસે જવામાં આવે ત્યારે મૂત્ર-મલના ત્યાગથી જેમ અપવિત્રપણું થાય છે તેમ અપવિત્રપણું થાય છે એમ જાણવું. આઠમ, ચૌદશ તથા દિવસમાં પર્વણીમાં જો મૈથુન કરવામાં આવે ત્યારે સચૈલસ્નાન કરવું અને ''વારુણીભિશ્ચ'' એ મન્ત્રોથી શરીર ઉપર માર્જન કરવું એમ મિતાક્ષરામાં તથા 'સ્મૃત્યન્તર'માં 'અપરાર્ક' નામક ગ્રન્થકાર જણાવે છે.

'મર્યાદાસિન્ધુ'માં જણાવ્યું છે કે ભોજન બાદ તરત જો વમન થાય તો સ્નાન કરવું નહી. તે જ પ્રમાણે ભોજન કરતાં-કરતાં આર્દ્ર હાથે જો વમન કરવામાં આવે તો પણ સ્નાન ન કરવું. પણ જો બીજા વખતમાં વમન થાય તો સ્નાન કરવું. શોક અને અશ્રુપાત માં તેમ પણ જાણવું એમ આપસ્તમ્બનું વચન છે. અર્થાત્ શોકમાં અશ્રુપાત થાય તો સ્નાન કરવું એમ અર્થ જાણવો.

દસ્તવાળો માણસને દશ વખત જ્યારે વિરેક થાય ત્યારે સ્નાન કરવું એમ 'ગોવિન્દરાજ' નામક ગ્રન્થકાર કહે છે. હરડે વિગેરે ખાવાથી તથા વ્યાધિયુક્ત થવાથી આઠ વખત ઉપર વિરેક થાય તો સ્નાન કરવું એમ મેધાતિથિનું વચન છે. તથા મૈથુન, દુઃસ્વપ્ન, વમન અને વિરેક માં સ્નાન કરવું એમ વિષ્ણુનું વચન છે. આ નિમિત્તથી ઉત્તરદિશાના રહેનારા લોકોનું કથન છે એમ ત્રણ મત છે.

પૂયના સ્પર્શમાં સ્નાન કરવું કહ્યું છે. પરન્તુ વગર કારણે જ્યારે તેનો સ્પર્શ થઈ જાય ત્યારે એમ જાણવું. ''વગર કારણે કોઈ માણસ પૂયનો સ્પર્શ કરે તો સ્નાન કરવાથી શુધ્ધ થાય છે'' એમ લિનપુરાણમાં વચન છે.

હાડકાના સ્પર્શમાં મનુએ વિશેષ નિર્ણય કહ્યો છે ''બ્રાહ્મણ જો મનુષ્યના સ્નેહવાળાં અસ્થિનો જો સ્પર્શ કરે તો સ્નાન કરવાથી શુધ્ધ થાય છે. અને જો સ્નેહવિનાના અસ્થિનો સ્પર્શ થાય તો આચમન કરી પૃથ્વીનો સ્પર્શ કરતાં સૂર્યદર્શન કરવું''. સ્નેહવાળું એટલે માંસ-મજ્જા વિગેરેના સન્દેહવાળું. બ્રહ્મપુરાણમાં પણ લખ્યું છે કે ''માણસના સ્નેહવાળા અથવા સ્નેહવિનાના હાડકાનો સ્પર્શ કરવામાં આવે તો સ્નાન કરવું. પૃથ્વીનો અથવા ગાયનો સ્પર્શ કરી સૂર્યનું દર્શન કરવું અને વિષ્ણુનું સ્મરણ કરવું''. અર્થાત્ સુકાં અસ્થિનો સ્પર્શ થાય તો પણ સ્નાન કરવું. પરન્તુ તે જાણી જોઈને સ્પર્શ કરવાની બાબતમાં જાણવું.

યમ કહે છે કે ''અજીર્ણમાં, વાન્તિમાં, સૂર્યાસ્તમાં, દુઃસ્વપ્નમાં, દુર્જનના સ્પર્શમાં સ્નાનમાત્ર કરવું જોઈએ''. અજીર્ણના અપગમમાં સ્નાન કરવાને દેવપૂજન

વિગેરેમાં જણાવ્યું છે તે દેવપૂજનનો અધિકાર સિદ્ધ થવામાટે મર્યાદાસિન્ધુમાં જણાવ્યું છે. તેમજ સૂર્યોદય તથા સૂર્યાસ્ત માં નિદ્રા કહેવામાં આવી છે એમ અપરાર્કમાં જણાવ્યું છે. કશ્યપનું વચન એવું છે કે

> ''ઉદયમાં અને અસ્તમાં રેતઃપાત થાય તો, નેત્ર ફરકે તો, ચીંશ થાય તો, ચિન્તામાં આરોહણ થાય તો, પૂયનો સ્પર્શ થાય તો સચૈલસ્નાન કરી ''પુનર્મનઈતિ'' એ મન્ત્રનો જપ કરવો. અને મહાવ્યાહૃતિએ કરીને સાત ઘીની આહુતિથી અગ્નિમાં હોમ કરવો''.

સ્મૃત્યન્તરમાં પણ જણાવવામાં આવે છે કે

> ''ચિતા, ચિતાનું કાષ્ઠ, પૂય, ચાણ્ડાલ અને દેવલક (પૈસો લઈ ત્રણ વર્ષ પર્યન્ત દેવપૂજા કરે તેનું નામ દેવલક કહેલું છે અને તે હવ્ય-કવ્યમાં નિન્દિત છે.) નો સ્પર્શ થાય તો વસ્ત્રસહિત જલમાં પ્રવેશ કરવો''.

મિતાક્ષરામાં બ્રહ્માણ્ડપુરાણમાં પણ લખેલું છે કે

> ''શૈવ, પાશુપત (કોઈ જાતનો શિવમાર્ગી), લોકાયતિક(નાસ્તિક) તથા શુદ્ધ નાસ્તિક, ન કરવાના કર્મમાં આસક્ત બ્રાહ્મણ અને શૂદ્ર ઈત્યાદિનો સ્પર્શ થાય તો વસ્ત્રસહિત જલમાં પ્રવેશ કરવો''.

'અપરાર્ક' નામક ગ્રન્થમાં બૌદ્ધનો પણ સ્વીકાર કરેલો છે. કોઈ બીજી સ્મૃતિમાં પણ લખેલું છે કે

> ''નગ્ન, પાશુપત, બૌદ્ધ, કાલ(મરણ કરનાર), કૌલ(પતિત જાતિ) અને દિશશ્ચર(દિશાઓમાં ફરનાર) ઈત્યાદિને જોઈને સૂર્યનું દર્શન કરવું તથા સ્નાન કરવું''.

મર્યાદાસિન્ધુમાં હારિત કહે છે કે

> ''બૌદ્ધ, પાશુપત, જૈન, લોકાયતિક, કાપાલિક (એટલે મનુષ્યના મસ્તકની તુમ્બલી ધારણ કરનારાઓ), ન કરવાના કર્મ કરનારા દ્વિજ તથા શૂદ્રો ને સ્પર્શ કરવાથી વસ્ત્રસહિત જલપ્રવેશ કરવો''.

''કાપાલિકનો સ્પર્શ થયે વધારે એક પ્રાણાયામ કરવો'' એમ હારીતનામના ઋષિ કહે છે. 'પાશુપત' એટલે વેદધર્મથી બહાર ગયેલા એમ વ્યાખ્યા કરી છે. અપરાર્કમાં અનિરા કહે છે કે ''શ્વપાક એટલે કૂતરાને પકાવી ખાનાર એક જાતના ચાણ્ડાલની છાયામાં આવવાથી સ્નાન કરવું અને ઘીનું પ્રાશન કરવું''. બીજીપણ ઘણી જાતો ત્યાં કહેલી છે. હંમેશ નિત્ય કર્મનો કરનારો એક પક્ષ પછી અસ્પૃશ્યતા (સ્પર્શ ન કરવાપણું)ને પ્રાપ્ત થાય

છે. એમ જાતિબાહાર કરેલો પણ સમજી લેવો. તથા

> ''પુલ્કસ (એક જાતનો ચાણ્ડાલ), મ્લેચ્છ(અનાર્ય), ભિલ્લ, પારસિ વિગેરે, સાવિકા સ્ત્રી, શ્વપાલ(કૂતરાનો ધણી), ઉન્મત્ત, શૂદ્રનું એઠું, ઉચ્છિષ્ટ મનુષ્ય, શૂદ્ર, કુતરું, વિષ્ઠા, સૂવર, ઉંટ, ખર, નાઈડો, શિયાળ, વાનર, કાક, કૂકડો, ગીધ, ઘૂવડ વગેરેના સ્પર્શની બાબતમાં પણ ઉપર પ્રમાણે સમજી લેવું''.

> ''ભાસ, કાગડો, વાનર, માર્જાર, ખર, ઊંટ, કૂતરું, વિષ્ઠા અને સૂવર એઓને અપવિત્રપણું જાણવું''.

> સદાચારચન્દ્રોદયમાં મોરને પવિત્ર ગણવામાં આવેલ છે.

> ''ચિતાની જગામાં થયેલું વૃક્ષ, ગળી, ગળીના કાંઈ વિકારો, ચાણ્ડાલ, મહાપાતકીની છાયા, શિવ નિર્માલ્ય, પઞ્ચનખ પશુ (ભક્ષ્યવર્જિત પઞ્ચનખ પશુનો નિષેધ મનુએ લખ્યું છે, તે જોઈ લેવો.), શબ, પરકીય વસા, વિષ્ઠા, રજ, મૂત્ર, રેત, મજ્જા અને રુધિર ઇત્યાદિનો સ્પર્શ થાય તો સચૈલસ્નાન કરવું''.

અહીં જેની મનાઈ કરી છે એ પક્ષિઓ સિવાય બીજા પક્ષીઓના વાયુથી ઉડેલાં પીંછાનો સ્પર્શ થાય તો તેમાં કોઈ જાતનો દોષ ન માનવો એમ અમને ભાસે છે. અને અહીં જેના સ્પર્શથી સ્નાન કરવાને જણાવ્યું છે તેવા સ્પર્શ કરેલા મનુષ્યનો જો સ્પર્શ થાય તો સ્પર્શ કરનારે આચમન કરવું.

> 'મર્યાદાસિન્ધુ'માં શાતાતપ કહે છે કે

> ''કપડાં રંગનાર, મોચી, પારાધી, માછીમાર, વણકર, નટ, નાટક વિગેરેને જાણનારો, મુખમાં વીર્ય ધારણ શીલ, શ્વાન, સર્વ વર્ણની સ્ત્રી, ચક્રનાં ચિન્હવાળો, ઘાંચી, જલ્લાદ, ગામનો કુકડો તથા સૂવર; એટલાઓમાંથી કોઈના પણ મસ્તકસિવાય બીજા અંગનો સ્પર્શ કરે તો જલથી તે અંગ ધોઈ નાખવું. અને આચમન કરવાથી શુદ્ધ થવાય છે''.

આપસ્તમ્બ શાખાવાળાઓનું આ બાબતમાં એવું કહેવું છે કે ઉપર કહેલામાંથી જો કોઈ ઉચ્છિષ્ટનો સ્પર્શ કરે તો એક રાત્રિ જલપાન કરે અને ઉપર કહેલા ઉચ્છિષ્ટ જો કોઈ ઉચ્છિષ્ટ મનુષ્યનો સ્પર્શ કરે તો ત્રણ રાત્રિપર્યન્ત ઘૃતપ્રાશન (ઘીનું ભક્ષણ) કરવાથી શુદ્ધ થવાય. બૃહત્પરાશર કહે છે કે

> ''મ્લેચ્છના તથા કાપણી કરનારના (એટલે અન્ન, વૃક્ષ, ઘાસ વિગેરેનો કાપનાર), અર્થાત્ લીલાં વૃક્ષ તૃણાદિનું છેદન કરનારના આસનનો જો સ્પર્શ ક્ષેત્રમાં અથવા ઘરમાં થાય તો આચમન કરી મસ્તક ઉપર જલથી પ્રોક્ષણ કરવાથી મનુષ્ય શુદ્ધ થાય છે''.

'શંખ'નામક ઋષિ કહે છે કે ''ઉચ્છિષ્ટ મનુષ્યનો સ્પર્શ થયે અથવા ખાવાના

ઉચ્છિષ્ટ પદાર્થનો સ્પર્શ થયે હાથ-પગ ધોઈને આચમન કરવાથી શુદ્ધ થવાય છે''.

હાથવગેરે ધોતાં નીચે પડેલા જલથી ભીની-અપવિત્ર થયેલી જમીનને અડકવામાં આવે તો જે અનને તેનો સ્પર્શ થયો હોય તે અન ધોઈ નાખવું તથા આચમન કરવાથી શુદ્ધ થવાય છે. યમ કહે છે કે

> ''વર્ષાદના દિવસોમાં ગારાવાળા ગામના ઉકરડાનો જો સ્પર્શ થાય તો પગને છ વખત માટી લઈ ધોઈ નાંખવા. અને જાસ્રને ત્રણ વાર માટીથી ધોઈ નાંખવી. આ પ્રમાણે શુદ્ધિ કરવી''.

બીજાં પણ નિમિત્તો શાસ્રમાંથી જોઈ લેવાં. જેમકે સ્નાન કરીને જો જલપાન કરવામાં આવે તો, છીંક આવે તો, શયન કરવામાં આવે તો, રસ્તામાં જઈ આવ્યા તો, ભોજન કરીને, કપડાં પહેરીને પણ આચમન કરવું જોઈએ. પિતૃકાર્યમાં તેમજ સર્વદા પણ અધોવાયુનો ત્યાગ કરતાં, આક્રન્દ કરતાં, ક્રોધ કરતાં, છીક આવતાં, બિલાડી તથા ઉંદર નો સ્પર્શ કરતાં, થુકતાં, હાસ્ય કરતાં, અસત્ય બોલતાં અવશ્ય આચમન કરવું.

૧૨. સ્પર્શમાં દોષ ન થવા બાબત વિચાર

મર્યાદાસિન્ધુમાં બૃહસ્પતિ કહે છે કે

> ''તીર્થમાં, વિવાહમાં, યાત્રામાં, સઙ્ગ્રામમાં, દેશના વિપ્લવમાં, નગરનો અથવા ગામડાનો દાહ થતો હોય તેમાં સ્પર્શાસ્પર્શનો વિચાર દોષવાળો ન સમજવો. અર્થાત્ દોષ લાગતો નથી. એમજ પરમકષ્ટરૂપ આપત્તિમાં, રોગના ભયમાં, પીડામાં, માતા-પિતા-ગુરુની આજ્ઞામાં દોષ પ્રાપ્ત થતો નથી''.

શાતાતપ ઋષિ કહે છે કે

> ''ગોકુલમાં (પશુ સમ્બન્ધી સમુદાયમાં) કંદોઈની શાળામાં(અથવા પવા-દાળીયા વિગેરે શેકનારની શાળા.), તૈલયન્ત્ર તથા શેરડી ના રસના યન્ત્રમાં, સ્રીયોમાં, રાજકુલમાં પવિત્રતાનો વિચાર કરવાનો નથી''. અર્થાત્ ઉપર કહેલી બાબતોમાં અપવિત્રતા દોષાવહ થતી નથી.

અત્રિસ્મૃતિમાં પણ લખે છે કે ''સ્રીયો તથા રોગી સમ્બન્ધી અપવિત્રતા દોષને ઉત્પન્ન કરનારી થતી નથી''.

પૃથ્વીચન્દ્રોદયમાં પણ પરાશરઋષિ કહે છે કે ''વિવાહ, ઉત્સવ, યજ્ઞ, સઙ્ગ્રામ, જનસમુદાય, વન કે ભય'ર અરણ્યમાં ભાગવું હોય ત્યારે સ્પર્શાસ્પર્શનો દોષ લાગુ થતો નથી''.

'ષડ્ત્રિંશન્મત' માં પણ લખે છે કે ''દેવયાત્રા, વિવાહ, મોટા-મોટા યજ્ઞો અને

સર્વ ઉત્સવોમાં સ્પર્શાસ્પર્શનો દોષ લાગુ થતો નથી''. અર્થાત્ સ્પર્શાસ્પર્શ થાય તો દોષ લાગતો નથી.

સ્મૃત્યન્તરમાં પણ લખે છે કે ''દેવાલયની સમીપમાં રહેલા દેવયાત્રામાટે આવેલા ચાણ્ડાલ અને પતિત નો જો સ્પર્શ થાય તો પણ સ્નાન ન કરવું. અને જો સ્નાન કરે તો સ્નાન કરનારે દેવદ્રોહ કર્યો એમ કહેવાય''.

સ્મૃત્યર્થસારમાં 'સ્પર્શાસ્પર્શ' શબ્દનો અર્થ એવો લખ્યો છે કે સ્પર્શ જેનાથી જાણવામાં આવે છે એવી 'ત્વક્' (ચાંમડી) નામની ઈન્દ્રિયને બીજીઓ એટલે નેત્ર, કર્ણ, મુખ, કર, પાદ ઈત્યાદિ ઈન્દ્રિયને સ્પર્શ થાય તો તે ઠેકાણે સ્પર્શ થયો એમ કહેવાય. અને જો સ્પર્શ ન થાય તો અસ્પર્શ એમ વ્યવહાર થાય છે. અર્થાત્ ઉપર કહેલી બાબતોમાં જો સ્પર્શ થવામાં આવે તો પણ તે સ્પર્શજન્ય દોષ ધર્મશાસ્ત્રના વચનોને આધારે લાગુ પડતો નથી એમ સમજવું. પછી તે સ્પર્શ આપણા તરફથી કરવામાં આવ્યો હોય અથવા તે અપવિત્ર પદાર્થ તરફથી કરવામાં આવ્યો હોય તો પણ એમ સમજી લેવું જોઈએ. અર્થાત્ તેના તરફથી યા આપણા તરફથી તે દોષ લાગતો નથી.

૧૩. શુદ્ધ થયેલને પાછું અપવિત્રપણું પ્રાપ્ત થવાના કારણો અને પછી પાછી તેની શુદ્ધિ કેમ થાય છે તેનો વિચાર

તે બાબતમાં જેના સ્પર્શથી સ્નાન કરવાને જણાવ્યું છે તેનો સ્પર્શ થાય તો સ્નાન કરવું અવશ્ય પ્રાપ્ત છે જ એમાં કાંઈ પણ સન્દેહ જ નથી. અને જેના સ્પર્શથી આચમન કરવાને જણાવ્યું છે તેના પણ સ્પર્શમાં સ્નાન જ કરવું યોગ્ય છે. જેમકે સદાચારચન્દ્રોદયમાં લખે છે કે

> ''કુતરું, કાગડો, ઊંટ, ગધેડો, ઘૂવડ, સૂવર અને ગામનાં
> બીજાં પક્ષીઓ, દીવો, સુપડું અને શૈયા, પાદત્રાણ, સાવરણી
> આટલા પદાર્થનો જે માણસ સ્નાન કર્યા પછી સ્પર્શ કરે તો ફરીથી
> સ્નાન કરવાથી શુદ્ધ થવાય છે''.

બૃહસ્પતિ પણ કહે છે કે જે બીજા કેટલા એક આચમન કરવાથી શુદ્ધ થવાય એવા પદાર્થોનો સ્નાન પછી સ્પર્શ થાય તો પણ સ્નાન કરવું પ્રાપ્ત છે અને બીજા પણ તેવા પદાર્થોના સ્પર્શમાં સ્વતઃસિદ્ધ સ્નાન જ પ્રાપ્ત થાય છે. જેમ સાથવાનો હોમ કરવાને જ્યાં શાસ્ત્રમાં કહ્યું છે ત્યાં, હોમ કરનાર પોતાની અંજલી પોહોળી કરીને જેમ હોમ કરે છે તેમ, યોગ્યતાના બળથી અહીં પણ ઉપર કહેલા જાનવરોના સ્પર્શમાં યોગ્યતાના બળથી સ્વતઃસિદ્ધ સ્નાન જ પ્રાપ્ત છે. ''નાભીની ઉપર જો પક્ષીનો સ્પર્શ, હાથને છોડીને, થાય તો સ્નાન કરવું. અને જો બીજા અનનો સ્પર્શ કરે તો ધોઈ નાખવાથી શુદ્ધિ થાય છે'' એમ સદાચારચન્દ્રોદયમાં લખેલું છે. મને તો બીજી જ કાંઈ બાબત ભાસે છે. તે એ કે શાસ્ત્રમાં દીવા વિગેરેનો જો સ્પર્શ કરવામાં આવે તો તે સ્પર્શથી સ્નાન કરવું જોઈએ એમ લખ્યું છે.

પરન્તુ તે દીવા વિગેરે લૌકિક દીવા સમજવાં. જેમ કે લખ્યું છે કે "બકરીની રજ, ગધેડાની રજ અને સાવરણીની રજ તથા દીવાની છાયા અને મઞ્ચક (પલંગ વિગેરે) ની છાયા પૂર્વકાળમાં કરેલા પુણ્યનો નાશ કરે છે". અને વળી કહેલું છે કે "સૂપડાનો પવન, નખના અગ્રભાગનું જલ, સ્નાનવસ્ત્રથી અનનું માર્જન, સાવરણીની રજ તથા કેશનું જલ આટલા પદાર્થો પુરાકૃત પુણ્યનો નાશ કરે છે" એમ અત્રિસ્મૃતિમાં પુણ્યનો નાશ કરનારા પ્રોક્ત પદાર્થો છે એમ જણાવ્યું છે. પરન્તુ, તે લૌકિક પદાર્થો જાણવા, અલૌકિક નહીં. કારણ કે દાનમાટે પાસે રાખેલા તે પદાર્થોના સ્પર્શમાં સ્નાન કરવું યોગ્ય નથી. કેમકે શ્રાદ્ધ વિગેરેમાં દીપદાન કરવાને જણાવ્યું છે, કાર્તિક વિગેરે માસમાં પરમેશ્વરને દીપ અર્પણ કરવાને જણાવ્યું છે. એમજ સૂપડામાં સૌભાગ્ય દ્રવ્ય રાખી અર્પણ કરવું તથા શૈયામાં વિષ્ણુની મૂર્તિનું સ્થાપન કરવું અને ગુરુપાદુકાદિનો સ્પર્શ કરવો તથા ભગવાન્ના મન્દિરમાં માર્જન વિગેરે કરવું ઈત્યાદિ ધર્મશાસ્ત્રમાં કરવાને કહેલું છે. તો પછી પરસ્પર વિરોધ પ્રાપ્ત થશે. કારણ કે સ્નાનોત્તર ઉપર કહેલા દીપ શૂર્પાદિનો સ્પર્શ કરવાથી સ્નાન લખેલું છે અને દાનાદિ કરવાથી પુણ્ય લખેલું છે તો પછી પરસ્પર વિરોધ આવશે. માટે સ્નાન કર્યા પછી પણ અલૌકિક દીપ શૂર્પ સમ્માર્જની પાદુકા વિગેરેનો સ્પર્શ થાય તો સ્નાન ન કરવું એમ સમજવું. લૌકિક દીપ શૂર્પ સમ્માર્જનીનો જો સ્પર્શ થાય તો અવશ્ય સ્નાન કરવું એમ સમજી લેવું. આ ઠેકાણાનાં વચનો દાનખણ્ડમાં સદાચારચન્દ્રોદય, વિષ્ણુભક્તિચન્દ્રોદય, હરિવલ્લભસુધોદય ઈત્યાદિ ગ્રન્થોમાં સ્પષ્ટ તપાસી જોવાં.

ગુરુપાદુકા વિગેરેનું પૂજ્યપણું શ્રીમદ્ભાગવતમાં પણ જણાવવામાં આવ્યું છે. ભગવાને કૃષ્ણાવતારમાં ઉદ્ધવને, રામાવતારમાં ભરતજીને પોતાની પાદુકાનું અર્પણ કરેલું જ છે. એમજ 'શ્વેતાશ્વતર' ઉપનિષદ્માં પણ કહ્યું છે કે "જે માણસ દેવની માફક પોતાના ગુરુની ભક્તિ કરે છે તે ગુરુભક્તિ કરનાર માહાત્માને સર્વ પુરુષાર્થો સિદ્ધ થાય છે". માટે દેવમાફક ગુરુભક્તિ કરવી સ્વતઃસિદ્ધ હોવાથી ગુરુપાદુકાદિનો સ્પર્શ પ્રત્યુત પવિત્ર કરનારો છે એમ જાણવું. અર્થાત્ ગુરુપાદુકાના ઉપરના ભાગનો સ્પર્શ કરવાથી અપવિત્રપણું પ્રાપ્ત થતું નથી કે જેથી સ્નાન કરવું પડે. નૃસિંહપુરાણમાં પણ પોતાના દૂતોને યમરાજાએ જણાવ્યું છે કે "હે દૂતો! જે માણસ વિષ્ણુના મન્દિરમાં સમ્માર્જન (સાવરણીથી વાશીંદુ કરવું) અને ગોબરથી ઉપલેપન (લીપવુ) કરે છે તે માણસના ત્રણ કુલનો તમારે ત્યાગ કરવો". અર્થાત્ આ પરથી ભગવાન્ના મન્દિરની રજ પણ મહાપવિત્ર સ્પષ્ટરીત્યા માલમ પડે છે ત્યારે ભગવન્મન્દિરની સાવરણીના સ્પર્શથી અપવિત્રતાની વાત જ ક્યાં રહી! સારાંશ કે સમ્માર્જની(સાવરણી) તો મહાપવિત્ર છે. પરન્તુ તે ભગવન્મન્દિરમાંની, બીજી લૌકિક નહીં. ઉપલેપન કરવાને પણ શ્રીભાગવતમાં સ્પષ્ટ જણાવવામાં આવ્યું છે માટે એમ નિશ્ચય થાય છે કે લૌકિક સમ્માર્જની, દીપ, શૈયા, સૂર્પ વિગેરેની સ્પર્શ કરવામાં મનાઈ છે. અલૌકિકની નહીં જ.

બીજું એમ લખેલું છે કે સ્નાન કરવા પછી નાભીના નીચે જો જોડાનો સ્પર્શ થાય

તો સ્નાન કરવું નહીં, તે અન ધોઈ નાખવું. એ બાબતમાં એમ સમજવાનું છે કે તીર્થાદીમાં સ્નાન કરી પગરખાં પેહરી ઘેર આવતાં અપવિત્રપણું પ્રાપ્ત થતું નથી. કારણ કે દૂરથી આવતાં રસ્તામાં અનેક અપવિત્ર પદાર્થો પડેલા હોય છે અને તેનો સ્પર્શ ક્યાંક પણ થઈ જ જાય માટે તે બાબત અશક્ય જેવી છે. તેથી શાસ્ત્રમાં લખેલું છે કે બ્રાહ્મણના ચરણ નિરન્તર પવિત્ર જ રહે છે. માટે ઘરે આવી પગ ધોઈ નાખવા. સારાંશ આ છે કે જો પગમાં પગરખાં પહેરેલાં હોય તો રસ્તાના અનેક અપવિત્ર પદાર્થોનો સ્પર્શ ન થાય અને ઘેર આવી પગરખાંનો ત્યાગ કરી પગ ધોઈ નાખવા વધારે ઉત્તમ છે. અનેક અપવિત્ર પદાર્થોના સ્પર્શ કરતાં એક પગરખાંનો સ્પર્શ કરવો જ વધારે ઉત્તમ છે. શાસ્ત્રમાં લખ્યું છે કે પાદુકા (ખડાઉ) અથવા ચાંખડીયુ ઉપરના ભાગથી પવિત્ર કહેવાય છે અને પગરખાં પણ ઉપરના ભાગમાં પવિત્ર કહેવાય છે. માટે સ્નાન કર્યા બાદ ઘેર આવવામાં એવા જોડાં પહેરવા કે જેને મૂત્ર વિગેરેના ત્યાગમાં ધારણ કરેલા ન હોય. તેથી આ બાબતમાં સમ્પ્રદાયની રીત પ્રમાણે આચાર પાળવો. સદાચારચન્દ્રોદયમાં તથા બીજી સ્મૃતિમાં પગરખાં મળ-મૂત્રનો ત્યાગ કરતી વેળાએ ધારણ નહીં કરવાં એમ જણાવેલું છે. પરન્તુ હાલ વર્તમાન કાળમાં સર્વ દેશમાં તે વખતે પગરખાં પહેરવાનો ચાલ ચાલે છે, માટે તે ઉપરથી અપવિત્રપણું સ્પષ્ટ માલમ પડે છે. કેટલાક શિષ્ટ મનુષ્યો તો એમ કહે છે કે પગરખાંનો સ્પર્શ ગુલ્ફ(ઘુંટી)ની નીચે અપવિત્ર ન જાણવો. કલિયુગમાં સ્મૃતિ કરતાં સદાચાર વધારે પ્રબલ ગણવામાં આવે છે. માટે પગરખાનું ધારણ અસાધારણપણાને પ્રાપ્ત કરે છે.

'મર્યાદાસિન્ધુ' નામના ગ્રન્થમાં દેવલઋષિ કહે છે કે શરીરમાં પ્રવાહી માર્ગોથી મલાદિકનો પ્રવાહ થવો અથવા સ્રાવ થવો તેથી અને અન્ન વિગેરેના પ્રવેશથી અપવિત્રપણું પ્રાપ્ત થાય છે. પતિત, અશુચિ અને અપવિત્ર પદાર્થોના સ્પર્શથી અપવિત્રપણું પ્રાપ્ત થાય છે. જેમ કે શયન પછી, કપડાં ધારણ કર્યા પછી, (એક વસ્ત્રનો ત્યાગ અને બીજાનું ધારણ) પછી, રસ્તામાં ચાલી આવવા પછી અને અસત્યને સત્ય તરીકે યા ક્રૂર તરીકે કહેવાથી, છાશ નાખ્યા પછી ન મળેલાં અર્થાત્ દહીપણાને પ્રાપ્ત ન થયેલા દૂધના છાંટા ઉડવાથી અથવા જ્ઞાનથી આચમન કરવું. ત્યાર પછી શુદ્ધ થવાય છે. એટલે જો શરીર ઉપર લેપ કરવો પડે અને તૈલ વિગેરેથી મર્દન કરવું પડે અને કોઈ ગન્ધવાળા પદાર્થો શરીર ઉપર લગાડવા પડે તો, પછી પવિત્ર થવામાટે માટી, જલ અને ગોબર થી પવિત્ર થવું. લેપમાં સ્નેહમાં અને ગન્ધમાં શુદ્ધ થવામાટે માટી, જલ અને ગોબર થી શુદ્ધ થઈ પછી આચમન કરવાથી શુદ્ધ થવાય છે. શરીરમાંથી નિકળતા મલો બાર પ્રકારનાં છે. તે મનુ તથા વિષ્ણુ એ આ પ્રમાણે જણાવ્યા છે. વસા(છાતીનો મેદ) (છાતીનો મેદ એટલે કફ સમજવો.)) શુક્ર(પુરુષ વીર્ય તથા સ્ત્રીનું રજ) અસૃક્(પરૂ સ્નાયુ માંસ વિગેરે) મજ્જા, મૂત્ર, વિષ્ઠા, કાનનો મેલ, નખ, કેશ(રૂવાટાં વિગેરે), મુખમલ થૂક વિગેરે, શ્લેષ્મા(સળખમ થવાથી નાસિકાદ્વારા નિકળતું જલ) આંસુ, આંખના ચિપડા અને સ્વેદ એટલે અવયવનો મલ. આ બાર પ્રકારના મલોનું નિઃસ્પન્દ(થોડું નીકળવું) થાય. અથવા નિઃસ્રવ(વારંવાર નીકળવું) થાય તો અને પ્રથમ કહી

ગયા છીએ તેમ, અન્ન વિગેરેના પ્રવેશથી અશુદ્ધિ થાય છે તો તે ઠેકાણે અન્નાદિ શબ્દથી જલ, દૂધ, ઔષધ વિગેરે જાણી લેવાં. સારાંશ આ છે કે ઉપર કહેલા દ્વાદશ મલોનું થોડું નીકળવું થાય યા વારંવાર નીકળવું થાય અથવા અન્નાદિનો પ્રવેશ થાય તો અપવિત્રપણું પ્રાપ્ત થાય છે અને કર્મકાલના સમયમાં વિશેષ અપવિત્રપણું પ્રાપ્ત થાય છે. આ ઉપરના બાર મલોની બાબતમાં સારાંશ એ સમજવાનો છે કે પ્રથમ વસા(છાતીનો મેદ) થી આરમ્ભી વિષ્ઠાપર્યન્તના જે છ મલો તેમાંથી કોઈનું જરાપણ નીકળવું થાય તો ઘણી જ અશુદ્ધિ જાણવી. અને બાકીના બીજાં છ મલો જે કાનના મેલથી લઈને તે સ્વેદપર્યન્તનામાથી જો કોઈનો નિઃસ્રવ(વારંવાર નીકળવું) થાય તો પણ ઘણી જ અશુદ્ધિ જાણવી એમ સમજી રાખવું જોઈએ. બૌધાયન નામક ગ્રન્થકાર કહે છે કે બાર મલમાંથી પહેલાનાં જે છ મલો તેનાથી જો શુદ્ધ થવું હોય તો માટી અને જલ થી શુદ્ધ થવું. અને બાકીના બીજા જે છ મલો રહ્યા તેનાથી જો શુદ્ધ થવું હોય તો ફક્ત જલથી જ શુદ્ધ થવાય છે. એ પ્રમાણે વ્યવસ્થા જાણવી. આજે શુદ્ધિ કહી છે તે પોતાના મલ બાબત સમજવી. પારકા બાર મલમાંથી જો કોઈનો સ્પર્શ થાય તો સ્નાન કરવાને પ્રથમ જ જણાવી ગયા છીએ, તેનું સ્મરણ રાખવું. જો કદાચિત્ કર્મસમ્બન્ધી સમયમાં પહેલાના છ મલોમાંથી કોઈનું નીકળવું થાય તો સ્નાન કરવું. બીજા બાકીના છ મલોનું પણ ઘણું વારંવાર નીકળવું થાય તો પણ સ્નાન જ કરવું સિદ્ધ થાય છે. મનુએ તો બાર મલમાંથી કોઈનું પણ નીકળવું થાય તો માટી અને જલ નો ઉપયોગ કરવો એમ લખેલું છે. અને કુલ્લૂકભટ્ટની વ્યાખ્યામાં ગોવિન્દરાજ લખે છે કે દેવસમ્બન્ધી તથા પિતૃસમ્બન્ધી કર્મના વખતમાં તે કર્મયોગ્ય સિદ્ધ થાય માટે માટી તથા જલ લેવું યોગ્ય છે એમ જણાવેલું છે. 'મર્યાદાસિન્ધુ' નામક ગ્રન્થમાં એમ લખે છે કે બાર મલમાંથી છેલાં છ મલમાટે કેવલ જલથી ગન્ધવાળા લેપનો બિલકુલ નાશ નથી સમ્ભવતો. માટે જલ અને માટી યથાસમય બેયનો ઉપયોગ કરવો યોગ્ય છે. ઉપાધિથી અપવિત્ર થયેલ પદાર્થ જેમ કે એક ઉચ્છિષ્ટ. તો તે ઉપાધિથી ઉચ્છિષ્ટ થાય છે. એમ જ કોઈ પદાર્થ એવો હોય છે કે સ્વભાવથી જ અપવિત્ર હોય છે. જેમ કે દેવલ ઋષિએ કહેલું છે કે ''માણસનું હાડકું શબ, વિષ્ઠા, વીર્ય, પેશાબ, સ્ત્રીનું રજ યા આર્તવ, વસા(હૃદયનો મેદ) મેદ, રૂધિર, ચીપડા, સળખમનું જલાદિ, મજ્જા આટલી ચીજો અપવિત્ર કહેવાય છે''. માટે આટલી ચીજમાંથી હર કોઈનો સ્પર્શ થાય તો અપવિત્રપણું સ્પષ્ટ સમજી લેવું. અહીં અથવા બીજે કોઈ ઠેકાણે પણ દૂધની મલમાં ગણત્રી કરી નથી. માટે સ્તનમાંથી કદાચિત્ દૂધનો સ્રાવ થાય તો પણ અપવિત્રતા લાગુ પડતી નથી. આ ઉપરથી એમ ન સમજવું કે તે સ્તનમાંથી નિકળતું દૂધ સર્વથા સર્વકાલ પવિત્ર જ છે. કારણ કે એમ લખેલું છે કે સ્ત્રીનું દૂધ દ્વિજો પાન કરે તો અર્થાત્ પીએ તો ફરીથી સંસ્કારને પ્રાપ્ત થાય છે. માટે સર્વદા તે પવિત્ર નથી. અર્થાત્ સ્તનમાંથી જો સ્રાવ થાય તો તેનાથી અશુદ્ધિ નથી એમ જાણવું. અશુદ્ધિ લખી છે તે પાન કરવામાં લખી છે, બીજે ઠેકાણે નહીં અને જો એમ ન હોય તો શાસ્ત્રમાં લખ્યું છે કે હાથોહાથઅન્ન આપે તો, પ્રત્યક્ષ હાથોહાથલૂણ આપે તો અને માટીનું ભક્ષણ કરે તો, ગોમાંસ ખાવા બરોબર

બને છે. ત્યારે તે પ્રમાણે કરનારના સ્પર્શમાં પૂર્ણ અપવિત્રપણું પ્રાપ્ત થવું જ જોઈએ, પરન્તુ તેમ નથી. હવે શયન ખાતે દક્ષે અપવિત્રપણું જણાવેલું છે. તે આ પ્રમાણે કે નવ છિદ્રવાળો અત્યન્ત મલિન આ દેહ દિવસ-રાત્રિ મલને સ્રવ્યા કરે છે. અર્થાત્ મલિન થાય છે. માટે પ્રાતઃકાલમાં સ્નાન કરવું, એ પરમશુદ્ધિ છે. નિદ્રા કરનાર માણસની ઈન્દ્રિયો ગન્ધ-પરશેવાવાળી થાય છે અને મલોથી ઝર્યા કરે છે. ઉત્તમ તથા અધમ અનો સર્વ સમાનતાને પ્રાપ્ત થઈ જાય છે. અહીં પ્રસુપ્ત (સારી રીતે સુતેલો) એ શબ્દથી બેઠેલો અથવા ચાલતો જે માણસ હોય છે તેની ઈન્દ્રિયોમાંથી લાળ, પરસેવો વિગેરેનો અભાવ હોય છે તેથી સુતેલા મનુષ્ય સમાન દોષ લાગુ પડતો નથી. માટે તેવા માણસે આચમન કરવું અને જો બેઠેલો માણસ અથવા ચાલતો માણસ હોય અને લાળ વિગેરેનો સ્રાવ થાય તો સ્નાન કરવું. જો કે દક્ષે પ્રાતઃસ્નાનને લઈને શયન પર્યન્તનો દોષ કહ્યો છે, તો પણ નિદ્રાવસ્થામાં ગમે તે વખતે દોષનું તુલ્યપણું છે. માટે નિદ્રાવસ્થામાં તે દોષ લાગુ છે એમ સમજવું.

હવે કપડા બદલાવ્યા હોય તો આચમન કરવું. કારણ કે અલ્પદોષ લાગુ પડે છે. માટે જ સદાચારચન્દ્રોદયમાં પરાશર લખે છે કે

> ''થૂકવામાં, શયનમાં, કપડાં પહેરવામાં અને આંસુ પડવામાં આમ કર્મ કરનાર મનુષ્યને જો ઉપર કહેલી બાબતોમાંથી કાંઈ પણ બને તો આચમન કરવું અથવા જમણા કાનનો સ્પર્શ કરવો''.

તે જ પ્રમાણે બેઠાં-બેઠાં અથવા ચાલતાં-ચાલતાં પણ તેમ કરવું પ્રાપ્ત છે એમ સમજી લેવું. કારણ કે પ્રોક્ત યુક્તિથી સ્પષ્ટ જણાય છે. માટે ઉપર કહેલું શ્રોત્રાચમન (દક્ષિણ કર્ણનો સ્પર્શ) ત્યારે કરવો કે જ્યારે આચમન બની ન શકે. સદાચારચન્દ્રોદયમાં લખે છે કે ''આચમન કરવું અથવા ગાયના પાછલા ભાગનો સ્પર્શ કરવો અથવા સૂર્યનું દર્શન કરવું અથવા દક્ષિણ કર્ણનો સ્પર્શ કરવો''. માર્કણ્ડેય ઋષિ પણ કહે છે કે ''જો આચમન ન બને તો ગાયના પાછલા ભાગનો સ્પર્શ કરવો. તે પણ ન બની શકે તો સૂર્યદર્શન કરવું અને તે પણ ન બની શકે તો દક્ષિણ કર્ણનો સ્પર્શ કરવો''. દક્ષિણ કર્ણનો સ્પર્શ યાજ્ઞવલ્યક્યઋષિએ પણ વખાણેલો છે : ''ગંગા દક્ષિણ કર્ણમાં વસે છે, અગ્નિ નાસિકામાં વસે છે, માટે બેયનો જો સ્પર્શ કરવામાં આવે તો તત્કાલ મનુષ્ય શુદ્ધ થાય છે''.

હવે મુખમાંથી પડેલા થોડા પણ બિન્દુ વસ્ત્ર વિગેરે ઉપર પડે તો તે જલબિન્દુઓ પવિત્ર છે એમ જાણવું; પરન્તુ વસ્ત્ર વિગેરે ઉપર પડ્યા હોય તો જ, શરીર ઉપર પડે તો પવિત્ર ન સમજવા. તે બાબત ગૌતમ કહે છે કે ''મુખસમ્બન્ધી જલના બિન્દુઓ જો પડે તો ઉચ્છિષ્ટ થતું નથી, પરન્તુ તે શરીર ઉપર પડવા ન જોઈએ. વસ્ત્ર ઉપર પડે તો અપવિત્રપણું થતું નથી''.

હવે જો કોઈને શુક્ત વચન (કઠોર અથવા અસમ્બદ્ધ) વચન કહેવામાં આવે તો તથા 'દ્રપ્સાવિદ્ધ' એટલે અત્યન્ત ઘાટા કફાદિથી શરીર લિપ્ત થાય તો પવિત્ર થવામાટે

વિધિ કહેવાય છે. સર્વ શરીરની શુદ્ધિ માટે આચમન કરવાનો પ્રકાર કહ્યો છે. જેમ કે ''સ્નાન કરીને, પાન કરીને, છીંક આવવાથી, શયન પછી, ભોજન કરીને, રસ્તામાં ફરી આવવાથી આચમન કરેલા માણસે પણ ફરીથી આચમન કરવું અને કપડાં બદલાવીને પણ આચમન કરવું'' એ પ્રમાણે લખાયેલું છે. 'છન્દોગપરિશિષ્ટ' નામના ગ્રન્થમાં કહેલું છે કે

> ''પિતૃસમ્બન્ધી મન્ત્રના ઉચ્ચારણમાં, ન જોવાલાયક વસ્તુ જોવામાં, અપાન વાયુના ત્યાગમાં, અત્યન્ત હસવામાં, અસત્ય ભાષણ કરવામાં, માર્જાર તથા મૂષક નો સ્પર્શ કરવામાં, ક્રોધથી પેદા થનારી ગાળમાં ઇત્યાદિ સર્વ નિમિત્તોમાં કર્મ કરનાર મનુષ્યે જલનો સ્પર્શ કરવો તથા હૃદયનો સ્પર્શ કરવો''.

ભગવત્સેવામાં જો અપાન વાયુનો ત્યાગ કરવામાં આવે તો સ્નાન કરવું પ્રાપ્ત છે, એ પ્રમાણે શાસ્ત્રમાં લખેલું છે. અશ્લીલ ભાષણ(ન બોલવાના બોલો બોલવા તેને સંસ્કૃત ભાષામાં અશ્લીલ એમ કહે છે.), અધોવાયુ (અપાનવાયુ)નો ત્યાગ કરવો એ બેય બાબત કરવાની મનાઈ છે. વારાહપુરાણમાં ભગવાન્ આજ્ઞા કરે છે કે

> ''મારો સ્પર્શ કરતાં-કરતાં જે માણસ અધોવાયુનો ત્યાગ કરે છે તે માણસ વિષ્ઠાસહિત પવનનું પાન કરે છે એમાં સંશય નથી. તે પાંચ વર્ષ માખી થાય છે, સાત વર્ષ ઉંદર, ત્રણ વર્ષ કૂતરો અને નવ વર્ષ પર્યન્ત કાચબો થાય છે''

એ પ્રમાણે તેની અપરાધોમાં ગણના કરવામાં આવી છે તથા તે બાબતસર ફલ કહેવામાં આવ્યું છે.

અજીર્ણ થયું હોય તો સ્નાન કરવાનું કહેલું છે. કારણ કે અધોવાયુ ઘણું કરીને અજીર્ણથી જ ઉત્પન્ન થાય છે. માટે ભગવત્સેવામાં અધોવાયુનો ત્યાગ થવાથી સ્નાન કરવું યોગ્ય છે.

મીંદડીનો સ્પર્શ થાય તો સ્નાન કરવાને કહ્યું છે તેમાં એમ સમજવાનું છે કે વ્યક્તિ જાતે જો માર્જારને સ્પર્શ કરે તો તેણે સ્નાન કરવું. ''ગામનો કૂકડો, કાગડો, મીંદડો, ગધેડો, ઊંટ, કુતરું અને સુવર આટલાં અપવિત્ર જાનવરોનો સ્પર્શ થાય તો વસ્ત્રસહિત જલમાં પ્રવેશ કરવો'' એમ અનિરાઋષિએ સ્પર્શની બાબતમાં અપવિત્રતા જણાવી છે. પણ જો માર્જાર પોતે મનુષ્યનો સ્પર્શ કરે તો તે સ્પર્શ દૂષિત ગણવામાં આવતો નથી. કારણ કે જો આવું ન માનીએ તો શાસ્ત્રમાં જે એમ લખ્યું છે કે ''માર્જાર, કડછી તથા પવન સદા પવિત્ર છે'' તે વચન બાધિત થાય. માટે જો આપણે માર્જારનો સ્પર્શ કરીએ તો સ્નાન પ્રાપ્ત થાય છે, નહીં તો નહીં. અથવા એવો પણ અભિપ્રાય લઈ શકાય કે બિલાડી જો વાસણ વિગેરેનો સ્પર્શ કરે તો તે પવિત્ર જ રહે છે પણ જો શરીરનો સ્પર્શ કરે તો સ્નાન કરવું. દક્ષિણી પણ્ડિતોના ગ્રન્થોમાં તો એમ લખ્યું છે કે ''ભોજનમાં તથા પૂજાદિ કર્મોમાં માર્જારના પૂંછનો સ્પર્શ થાય તો સ્નાન કરવું. એ સિવાયના બીજા સ્થળોમાં પવિત્રપણું છે''. 'રત્નાવલી' નિબન્ધમાં

કહ્યું છે કે ''માર્જારના પૂંછનો સ્પર્શ ભોજન તથા કર્મકાલમાં બ્રાહ્મણ કરે તો સ્નાન કરવાથી શુદ્ધ થવાય છે. આજ સનાતનકાલની વિધિ છે''.

એમજ ન્હાયેલ વ્યક્તિ સ્નાન ન કરેલનો– સ્નાન કરેલ મનુષ્યને વસ્ત્ર વિગેરે વચમાં હોય અને તેના સ્પર્શથી –સ્પર્શ કરે તો, પ્રચેતાના વચનથી, સ્પર્શ કરનારે સ્નાન કરવું જોઈએ. પરન્તુ જો કાષ્ઠ વિગેરેનો વચમાં અન્તરાય હોય અને જો સ્પર્શ થાય તો ફક્ત આચમન કરવું. તેમજ ઊની કાપડ, કમ્બલ, રેશમી વસ્ત્ર વિગેરેથી જો સ્પર્શ થાય તો પણ આચમન જ કરવું.

૧૪. વસ્ત્ર વિગેરેનો શુદ્ધિવિચાર

''વસ્ત્ર બાબતમાં અહત(સંચામાંથી નિકળેલું) જે વસ્ત્ર તેની શુદ્ધિ પ્રોક્ષણ કરવાથી થાય છે'' એમ 'અપરાર્ક' તથા 'વાયુપુરાણ' જણાવે છે. અને 'પૃથ્વીચન્દ્રોદય' ગ્રન્થજણાવે છે કે 'અહત' કપડું સર્વ કર્મમાં શુદ્ધ છે. તેનું લક્ષણ પૃથ્વીચન્દ્રોદયમાં પુલસ્ત્ય તથા શાતાતપ અને સદાચારચન્દ્રોદયમાં કાત્યાયન ઋષિ પણ કહે છે કે ''એક વાર ધોબીએ ધોયેલું જે કપડું તે''. પૃથ્વીચન્દ્ર કહે છે કે ''ફક્ત જલથી જ ધોયેલું કપડું તે અને નવું સફેદ તથા સદશ, કોઈએ ધારણ કરેલું નહીં એવા લક્ષણવાળું જે કપડું તેને 'અહત' નામ આપવામાં આવે છે. અને તે સર્વ કર્મમાં પવિત્ર ગણવામાં આવે છે''. સદાચારચન્દ્રોદયમાં કહે છે કે ''આઠ હાથનું નવીન સફેદ અને સદશ તથા અધારિત જે કપડું હોય તે 'અહત' કહેવાય છે અને તે સર્વ કર્મમાં પાવન તરીકે ગણવામાં આવે છે''. આ ધર્મશાસ્ત્રનાં વચનોની બાબતમાં શ્રીપુરુષોત્તમજી મહારાજ આજ્ઞા કરે છે કે મને એમ ભાસે છે કે આચારતિલકમાં ''વીર્ય, રુધિર, ઉલટી, શ્લેષ્મ, મૂત્ર, પુરીષ(વિષ્ઠા), ચિકણાઈ, દુર્ગન્ધી પદાર્થ અને જીર્ણપણું'' આ નવ દોષ કપડામાં કહેલા છે. માટે આ દોષથી રહિત જે વસ્ત્ર તે વસ્ત્રને 'નવીન' તરીકે કહેવામાં આવે છે. નહીં તો ''ધારણ કરેલું'' એ શબ્દ ઉપરથી વ્યર્થતા સિદ્ધ થાય. માટે લક્ષણમાં ધારણ ન કરેલું એમ લખ્યું છે. લક્ષણમાં વળી લખે છે કે સફેદ અર્થાત્ બીજા રનવાળું નહીં એમ નિર્ણય થાય છે. એટલે નિષિદ્ધ વર્ણવાળું નહીં એમ સમજવું. ''વસ્ત્ર તથા ઉપસ્કરવાળી શૈયા, લાલ કપડાં અને પુષ્પો આટલા પદાર્થો પ્રોક્ષણ કરવાથી શુદ્ધ થાય છે એ બાબતમાં સંશય નથી'' એમ 'મર્યાદાસિન્ધુ' નામના ગ્રન્થમાં બૃહત્પરાશરનું વચન છે. માટે હવે બીજા વાક્યમાં આઠ હાથનું એમ લખેલું છે અને શ્રુતિમાં પણ ''અહત વસ્ત્રને ધારણ કરે'' એ પ્રમાણે અહતવસ્ત્રનું ધારણ જણાવ્યું છે તેથી એમ જણાય છે કે 'અહત' વસ્ત્ર ધારણમાં યોગ્ય છે તે ઉપરથી અહતવસ્ત્રનું લક્ષણ સિદ્ધ થઈ શકતું નથી. ફક્ત અહતવસ્ત્ર ધારણ કરવા લાયક છે એમ સમજવાનું છે.

'અહત' નામક વસ્ત્ર ચાર પ્રકારનું જાણવું તે આ પ્રમાણે :

૧.એક નહીં ધારણ કરેલું અને જરા ધોયેલું

૨.બીજું નહીં ધારણ કરેલું અને નવીન

૩.ત્રીજું નહીં ધારણ કરેલું અને સફેદ

૪.ચોથું નહીં ધારણ કરેલું અને સદશ (છેડાવાળું).

આ પ્રમાણે 'અહત' કપડું ચાર પ્રકારનું થાય છે. તેથી જુદાં-જુદાં કર્મોમાં તેનું-તેનું પવિત્રપણું સુખથી સમ્ભવે છે. જેમ કે ચાર જાતમાંથી પહેલી જાતનું અહત વસ્ત્ર યજ્ઞ વિગેરે કર્મોમાં કામ આવે છે. બીજી જાતનું અહત વસ્ત્ર ઓઢાડવા વિગેરેમાં ઉપયોગી થાય છે. બીજી જાતનું અહત વસ્ત્ર ચિત્ર-વિચિત્ર કસુમ્બા વિગેરેથી રનેલું સુવાસિનીઓમાટે તથા શ્રીરાધા-દામોદરને અર્પણ કરવામાટે યા દાનાદિમાટે ઉપયુકત થાય છે. તથા ચોથી જાતનું 'અહત' વસ્ત્ર ગુજરાતના મનુષ્યો વિવાહમાં કન્યાને પહેરવામાંમાટે ઉપયુક્ત કરે છે.

હવે નવું અને વગર ધોયેલું વસ્ત્ર ભગવાન્‌ને ઉપયુક્ત થતું નથી. વારાહપુરાણમાં ભગવાન્ કહે છે કે ''જે માણસ ગળીથી રનેલું વસ્ત્ર મને અર્પણ કરે છે તે માણસ તથા નવીન અક્ષાલિત(વગર ધોયેલું) વસ્ત્ર અર્પણ કરનારો અવશ્ય 'રૌરવ' નામના નરકમાં જાય છે''. આ પ્રમાણે ગળીનું રનેલું નવું તથા વગર ધોયેલું કપડું અર્પણ કરવામાટે નિંદા લખી છે. સારાંશ આ છે કે સર્વ જાતનાં નવીન કપડાં તથા મનુષ્યોએ વગર ધારણ કરેલાં ધોયેલાં, રંગબેરંગી, લાલ અને નિર્મલ વસ્ત્રોનો સ્પર્શ થાય તો પ્રોક્ષણથી શુદ્ધિ થાય છે અને ભગવત્સમ્બન્ધી કર્મમાં તેવાં કપડાનો સ્પર્શ દોષને ઉત્પન્ન કરનારો થતો નથી.

વળી 'મર્યાદાસિન્ધુ' નામના ગ્રન્થમાં લખ્યું છે કે મેધ્ય(પવિત્ર પદાર્થ) ચાર પ્રકારનો છે એમ દેવલઋષિએ કહ્યું છે તે ચાર પ્રકાર આ પ્રમાણે. એક શુચિ, બીજું પૂત, ત્રીજું સ્વયંશુદ્ધ અને ચોથું પવિત્ર. આ પ્રમાણે મનુએ પણ પ્રજામાટે જણાવ્યું છે.

શુચિ : નવીન અથવા નિર્મલ પદાર્થ હોય 'શુચિ' તરીકે કહેવાય છે.

પૂત : નિર્મલ પદાર્થ જ્યારે સંસ્કાર આદિથી કર્મલાયક થાય ત્યારે પૂત આ પદાર્થ છે એવી રીતે ઓળખાય છે

સ્વયંશુદ્ધ : જે પદાર્થ પોતે જાતે જ ફક્ત મેધ્યતા(પવિત્રપણા)ને પ્રાપ્ત થાય છે, પછી તે પદાર્થ સ્થાવર હોય અથવા જનમ હોય તો, તે પદાર્થ સ્વયંશુદ્ધ તરીકે કહેવાય.

પવિત્ર : અને બીજા પદાર્થોથી પોતે દૂષિત થતો નથી અને જો તેનો બીજા પદાર્થને સ્પર્શ થાય તો તેને શુદ્ધ કરી આપે અને દેવ પિતૃના કાર્યમાં પરમ પૂજ્ય તે પદાર્થ પવિત્ર તરીકે જાણવો.

આગળ નવીન અથવા નિર્મલ જે પદાર્થ તે 'શુચિ' કહેવાય છે એમ કહ્યું. એ ઠેકાણે 'નવીન' શબ્દનો અર્થ તરતનું પેદા થયેલું અર્થાત્ બીજાએ ધારણ કરેલું નહીં એમ સમજવું. અને નિર્મલ એટલે મલાદિ વિનાનું એમ સમજવું. અહીં 'શુદ્ધ' શબ્દ અને 'સ્વયંશુદ્ધ' શબ્દ એ બન્ને 'શુચિ'શબ્દના પર્યાય છે એમ જાણવું. અને 'શુચિ'શબ્દ છે તે પોતે જ કારણને લઈને પૂત વિગેરે નામોને ધારણ કરે છે. અહીં પવિત્ર પદાર્થો ગ્રન્થકારોએ કેટલા ગણેલા છે તે ગણાવીએ છીએ તે આ પ્રમાણે છે : સર્વ જાતનાં અનાજ, સર્વ જાતના પદાર્થો(વસ્ત્ર વિગેરે), આભરણો(દાગીના) સર્વથા વર્જિત પદાર્થોથી જાણવામાં આવે ત્યારે

પવિત્ર તરીકે ગણવાં. નિર્મલ જે પદાર્થ જેને અપવિત્ર પદાર્થનો સંસર્ગ નથી થયો ત્યારે તે નિર્મલ પદાર્થ 'શુચિ' નામે ઓળખવામાં આવે છે. અને તેજ જ્યારે કર્મલાયક થાય છે ત્યારે પૂત પદાર્થ તરીકે ઓળખાય છે. (ક્યારે કે જ્યારે તે પદાર્થનો ઉપભોગ થયો નથી અને કોઈ દૈવી કર્મમાટે જ્યારે તેની ઉપર પ્રોક્ષણ વિગેરે કરવામાં આવે. સારાંશ કે કંઈ સંસ્કાર કરવામાં આવે ત્યારે). પૂત એવું દ્રવ્ય (પદાર્થ)નું નામ ક્યારે પડે છે તે આ પ્રમાણે. જે પદાર્થ શુદ્ધ છે પરન્તુ કર્મમાં લેવા લાયક નથી તો તેને 'શુચિ' એમ કહેવાય. નિર્મલ છે, સંસ્કારવાળું છે એવું જે દ્રવ્ય (પદાર્થ) તે હર કોઈ જાતની ક્રિયામાટે 'પૂત' તરીકે કહેવાય છે. હવે સ્વયંશુદ્ધ પદાર્થ કેને કહેવો તે જણાવે છે. જે દ્રવ્ય(ઘર વગેરે) અપવિત્ર, લેપવિનાનું છે અને અશુચિ પદાર્થના સ્પર્શ માત્રથી જ દૂષિત છે અને પોતે એટલે તે પદાર્થ જાતે જ પુરુષવ્યાપાર સિવાય પવન માત્રથી જ શુદ્ધપણાને પ્રાપ્ત થાય તો તે પદાર્થ સ્વયંશુદ્ધ(પોતે સ્વાભાવિક શુદ્ધ) તરીકે કહેવાય. દા.ત. ઘર, અગ્નિહોત્ર વિગેરેમાં હોમ કરનારનાં પાત્રો, રથવિગેરે યાન, ઘોડા, હાથી વિગેરે વાહન, ખડ્ગ (ખડ્ગ શબ્દનો અર્થ લોકો તલવાર તરીકે કહે છે, પરન્તુ એક ધાર કરવત જેવી અને બીજી તલવાર જેવી હોય તે ખડ્ગ.) વિગેરે હથિયાર, સજીયો, વહાણ અને આસન. આટલા પદાર્થો સ્વયંશુદ્ધ સમજવા. તે જ પમાણે પશુઓ, ઋતુવિનાની સ્ત્રિઓ(બ્રહ્મહત્યાદિ સ્ત્રિઓને ઋતુકાલમાં જ લાગુ પડે છે), પદાર્થોના ઢગલાઓ, વ્યાપારિઓએ ખરીદેલું કાંઈ પણ પણ્ય(વેચવાની ચીજ) તથા અદૃષ્ટ (એટલે જે પદાર્થને અપવિત્રપણાનો સ્પર્શ થયો છે વિગેરે બાબતો જાણવામાં ન હોય તે), વાણીથી જ જે યોગ્ય હોય તે –આટલા પદાર્થો સ્વયંશુદ્ધ તરીકે સમજવા. અદૃષ્ટ, વાણીથી પ્રશસ્ત અને સ્વયંશુદ્ધ આ ત્રણ પદાર્થો ભગવાન્ મનુ કહે છે કે પરમ શુદ્ધ તરીકે જાણવા. અર્થાત્ બીજા પદાર્થનો સ્પર્શ થાય તો શુદ્ધ થાય એમ પણ એને જરૂર નથી કારણ કે તે જાતે જ પોતે–પોતાની મેળે શુદ્ધ છે.

હવે મેધ્ય(પવિત્ર) પદાર્થોની ગણના કરવામાં આવે છે : ''બકરી અને ઘોડો એ બે જાનવરો મુખથી પવિત્ર છે, ગાયો વાંસાથી પવિત્ર છે, પુષ્પવાળાં વૃક્ષો તથા બ્રાહ્મણો પણ પવિત્ર તરીકે ગણવા, ભસ્મ, મધ, સુવર્ણ, દર્ભસહિત તલ, નેપાલ દેશના ધાબળા, અઘાડો, સરસડો, આકડો, પદ્મપુષ્પ, આમળાં, મણિ, પુષ્પો, સરશવ, દૂર્વા, પ્રિયનવ(ધાન્ય વિશેષ અથવા ઘઉલા, સુગન્ધી) અક્ષત(ચોખા) વેળુ, રાતી–પીળી હળદર, ચન્દન, જવ, ખાખરો, ખેર, પીપળો, તુલસી, ધાવણી, વડ આટલા પદાર્થો પવિત્ર છે એમ જાણવું અને હવ્ય–કવ્યમાં બ્રહ્મતત્વને જાણનારા અથવા વેદને જાણનારા બ્રાહ્મણો પવિત્ર છે એમ સમજવું. મનુષ્યોના મલનો નાશ કરનારા શોધન દ્રવ્યોમાં પુષ્ટિ આપનારાં દ્રવ્યોમાં જલ, ગોબર અને માટી વિશેષે કરીને પવિત્ર ગણાય છે. સર્વ પ્રકારની અપવિત્રતા દૂર કરવામાટે સર્વને સર્વદા ઉપર કહેલા પદાર્થો કહ્યા છે''. માટે નવીનપણાએ તથા નિર્મલપણાએ કરીને પવિત્ર વસ્ત્રાદિની શુદ્ધિ કરવામાટે શંખના જલથી પ્રોક્ષણરૂપ સંસ્કારે કરીને પવિત્રપણું પ્રાપ્ત થાય છે. માટે તેવા પદાર્થોનો ભગવત્સેવામાં સ્પર્શ દોષ

લાગુ પડતો નથી.

કર્મઠ લોકો(આચાર પાળવામાં કુશલો) એમ કહે છે કે ખારા વિગેરેથી કપડાના ધોનારા ધોબીઓ કપડાં ધોઈ આપે છે અને પછી તે કપડાં જલમાં ધોઈ નાખીએ તો પણ કપડામાં દોષ રહે છે. કારણ કે ધોબીએ ધોયેલાં કપડાં ખારા વિગેરે મેલને દૂર કરનારા પદાર્થોથી નિર્મલ થયાં છે તો પણ તે અપવિત્ર તરીકે ગણવાં. 'તૈત્તિરીય' ઉપનિષદ્‌માં એમ લખ્યું છે કે 'દાક્ષાયણ' નામનો યજ્ઞ કોઈ જાતની કામના બાબતમાં કરવામાં આવે છે તો તે બાબતમાં તેવાં કપડાં ઉપયુક્ત થતાં નથી અને જો ઉપયોગ કરે તો કર્ત્તાને તે દોષ લાગુ પડે, બીજાને નહીં. તે દાક્ષાયણ યજ્ઞનું વ્રત એવી જાતનું છે કે ''ખોટું ન બોલવું, માંસ નહીં ખાવું, સ્ત્રી પાસે જવું નહીં અને વ્રત કરનાર યજમાન પવિત્રપણાથી પવિત્ર વસ્ત્ર ધારણ કરે તો પછી દેવતાઓ ઈચ્છિત ફલ આપનારા થાય છે''. તો કપડાની અત્યન્ત પવિત્રતા તે ઠેકાણે તે યજ્ઞકર્ત્તા યજમાનમાટે જણાવેલી છે. માટે તે અથવા તેવાં બીજાં વ્રતોમાં તેમ કરવું યુક્ત છે.

વળી એકાદશસ્કન્ધ શ્રીમદ્‌ભાગવતમાં કહ્યું છે કે પદાર્થની શુદ્ધિ અથવા અશુદ્ધિ પદાર્થથી અથવા વચનથી થાય છે. અથવા સંસ્કારથી યા સમયથી, મોટાપણાથી અથવા અલ્પપણાથી થાય છે, અને શક્તિથી અશક્તિથી, અથવા બુદ્ધિથી અને સમૃદ્ધિથી, તથા દેશ અવસ્થાના અનુસરણથી પાપ આત્માને પ્રાપ્ત થાય છે'' આ પ્રમાણે ભગવાન્‌નાં વચન છે. વળી શ્રીધર કહે છે કે ''દેશ, કાલ, આત્મા, દ્રવ્ય, દ્રવ્યનું પ્રયોજન, ઉત્પત્તિ અને અવસ્થા ઈત્યાદિને જાણીને શુદ્ધિ કરવી''. બૌધાયનનું પણ વચન છે કે ''પોતાની શક્તિ સમૃદ્ધિ વિગેરે, દ્રવ્યનું સ્વરૂપ, દ્રવ્યનું પ્રયોજન(જરૂરી) વિગેરે બરોબર જોઈ તપાસી પદાર્થની અપવિત્રતાની કલ્પના કરવી. તેમ શાસ્ત્રની આજ્ઞાનો પણ સાથે વિચાર કરવો. માટે તેવા પદાર્થના સ્પર્શમાં દોષ લાગતો નથી''. આ પરથી ચન્દરવા તથા પડદા(ટેરા) વિગેરે નવા બનાવવાની અશક્તિ હોય તો ચાલે, અર્થાત્ દોષ ન લાગે.

આગળ ભગવાન્‌નાં વચનો કહી ગયા છીએ તેનો આ પ્રમાણે અર્થ કરવો :

દ્રવ્ય એટલે પાત્ર વસ્ત્ર વિગેરેની શુદ્ધિ જલ વિગેરેથી અને અશુદ્ધિ મૂત્ર વિગેરેથી પ્રાપ્ત થાય છે.

વચનથી શુદ્ધિ અને અશુદ્ધિ : ''આ પદાર્થ શુદ્ધ છે કે અશુદ્ધ છે'' એવો સન્દેહ પેદા થાય તો ''આ પદાર્થ શુદ્ધ છે'' એવું બ્રાહ્મણનું વચન પ્રમાણ તરીકે જાણવું અને ''શુદ્ધ નથી'' આવા વચનથી તેની અશુદ્ધિ જાણવી.

પ્રોક્ષણાદિરૂપ સંસ્કારથી પુષ્પાદિની શુદ્ધિ જાણવી અને અવઘ્રાણ(સુંઘવા)થી અશુદ્ધિ ગણવી.

કાલથી શુદ્ધિ અને અશુદ્ધિ : દશાદિ દિવસોથી નવીન જલ વિગેરેની શુદ્ધિ સમજવી અને વિપરીતપણાથી અશુદ્ધિ સમજવી. દા.ત. વર્ષાકાળમાં વરસાદ આવે તો ત્રણ દિવસ સુધી તે જલ અગ્રાહ્ય(ન લેવા લાયક) જાણવું અને વિના વખત જો વરસાદ આવે તો

તે જલ દશ દિવસ પર્યન્ત અશુદ્ધ જાણવું, અર્થાત્ દશ દિવસ પછી શુદ્ધિ થાય છે.

તેમજ પિરશવામાં ન આવેલાં અન્નાદિની શુદ્ધિ જાણવી અને વિપરીત(પિરશવામાં આવેલાં) અન્નાદિની અશુદ્ધિ જાણવી.

મોટાપણાથી તથા નાનાપણાથી અશુદ્ધિ તથા શુદ્ધિ આ પ્રમાણે સમજવી. ચાણ્ડાલ વિગેરેએ સ્પર્શ કરેલા તળાવ વિગેરેના જલની મોટાપણાથી શુદ્ધિ અને અલ્પપણાથી અશુદ્ધિ માનવી.

શક્તિ અને અશક્તિ થી શુદ્ધિ અથવા અશુદ્ધિ આ પ્રમાણે છે. સૂર્ય-ચન્દ્રના ગ્રાસમાં(ગ્રહણમાં) તથા સૂતક વિગેરેમાં જે માણસ સમૃદ્ધિવાળો હોય તેને અન્ન વિગેરેમાં અશુદ્ધિ જાણવી. અને અસમર્થના અન્ન વિગેરેમાં શુદ્ધિ જાણવી.

બુદ્ધિથી શુદ્ધિ : પુત્રના જન્માદિથી દશ દિવસ ઉપર જો ખબર પડે તો શુદ્ધિ, નહીં તો અશુદ્ધિ.

સમૃદ્ધિથી શુદ્ધિ અને અશુદ્ધિ : જીર્ણ થયેલું તથા મેલવાળું કપડું સમૃદ્ધિવાળાને અશુદ્ધિવાળું છે એમ જાણવું અને અસમર્થને માટે શુદ્ધિવાળું જાણવું.

તેમાં પણ વિશેષ કહે છે કે ઉપર કહેલા પદાર્થો તથા વચનો પદાર્થની અશુદ્ધિદ્વારા આત્માને પાપયુક્ત કરે છે. પણ ક્યારે કે દેશ-અવસ્થાના અનુસારે કરીને સર્વપણાથી નહીં. જેમકે જે ઠેકાણે ભય ન હોય તે ઠેકાણે સ્થાન વિગેરેની શુદ્ધિ કરવામાં આવે પણ જ્યાં ચોર વિગેરેનો ઉપદ્રવ હોય ત્યાં તેમ નથી બની શકતું. તેમજ રોગ વિગેરેથી રહિત યુવાવસ્થામાં મનુષ્યો પાપ કરે છે. પરન્તુ બાલ્યાવસ્થામાં અથવા રોગયુક્ત અવસ્થામાં નથી કરતાં. તેમ ઉપર પણ સમજી લેવું. અને બ્રહ્મપુરાણમાં એમ કહ્યું છે કે હંમેશા દેવ-પિતૃસમ્બન્ધી કર્મમાં ધોયેલું કપડું ધારણ કરવું અને લિનપુરાણમાં પણ કહે છે કે દેવકાર્યમાં જેનો ઉપયોગ થાય તેવા કપડાં હમેશ ધોઈ નાંખી પવિત્ર ધારણ કરવાં. પરન્તુ, આ લખાણ વર્ષાઋતુને છોડી બીજા વખતમાટે છે એમ જાણવું. કારણ કે વરસાદના દિવસમાં બીજા દિવસે ધોવામાં આવેલા કપડાંઓને કર્મલાયક કરવા માટે પ્રોક્ષણ કરવું એ જ પવિત્રતાનો ઉપાય છે. અને તે જ ઉપાય રાજાધિરાજ પ્રભુની પૂજામાટે પણ જાણવો.

કાલથી થયેલો દોષ પ્રોક્ષણ કરવાથી નાશ પામે છે. તેમજ વગર સ્નાન કરેલા માણસે કાષ્ઠ વિગેરેથી ધોયેલા કપડાનો સ્પર્શ કરવામાં આવે તો તેમાં દોષ નથી. જેમ ઉપાકર્તવ્ય(યજ્ઞમાં મારવાલાયક) પશુનો સ્પર્શ કરવાના સમયમાં જો તે પશુનો પછવાડેથી સ્પર્શ કરવામાં આવે તો યજમાનનું મરણ થાય અને તેમ ન કરવામાં આવે તો યજમાનની સ્વર્ગલોકથી હાનિ થાય, આ બેય દોષો દેખાડી આગળ લખે છે કે વપાશ્રપણી(ચરબી કાઢવામાટે બે મુખવાળું યજ્ઞસમ્બન્ધી પાત્ર)થી પછવાડાના પશુના અનનો સ્પર્શ કરવો. વપાશ્રપણીથી જો સ્પર્શ કરવામાં આવે તો સ્પર્શ કર્યો પણ કહેવાય અને ન કર્યો પણ કહેવાય. માટે બેય દોષમાં સ્પર્શરૂપ ન્યાયને દોષ લાગુ પડતો નથી. તે જ પ્રમાણે ધોયેલાં કપડાંને વગર સ્નાન કરેલો માણસ જો લાકડી વિગેરેથી લઈ લે તો તેમાં ઉપરનાં

દષ્ટાન્તાનુસાર સ્પર્શ કર્યો પણ કહેવાય અને ન કર્યો પણ કહેવાય, માટે તેમ કરવામાં અડચણ નથી. અહીં એમ ન સમજવું કે પ્રચેતાના વચનનો વિરોધ આવશે. કારણ કે પ્રચેતાનું વચન બીજી બાબતનું છે.

કોઈ એમ કહે છે કે ઉનના કપડાથી વીટાયેલું, રેશમી કપડાથી વીંટાયેલું અથવા કાળા મૃગચર્મથી વીંટાયેલું વસ્ત્ર પ્રોક્ષણ કરવાથી શુદ્ધ થાય છે. આથી પ્રચેતાના વચનનો વિરોધ આવતો નથી. કારણ કે બેય વચનો ભિન્ન-ભિન્ન વિષયનાં છે. 'અપરાર્ક' નામક ગ્રન્થમાં સ્મૃત્યન્તરથી તથા મર્યાદાસિન્ધુમાં દેવલ ઋષિએ અપવિત્ર પદાર્થના ચાર વિભાગ કર્યા છે તે આ પ્રમાણે છે : ૧.દૂષિત ૨.વર્જિત ૩.દુષ્ટ અને ૪.કશ્મલ. તેની વ્યવસ્થા આ મુજબ જાણવી :

<u>દૂષિત</u> : જે પવિત્ર પદાર્થને અપવિત્ર પદાર્થનો સ્પર્શ થતાં તે પવિત્ર પદાર્થ અપવિત્ર થઈ જાય તે પદાર્થ દૂષિત કહેવાય.

<u>વર્જિત</u> : ખાવા-પીવામાં જેની મનાઈ કરી છે તે 'વર્જિત' નામનો અપવિત્ર પદાર્થ કહેવાય તેમજ કર્મથી કોઈ પદાર્થ વર્જિત તરીકે કહેવાય છે જેમકે "વ્યન(અનહીન) પાતકી, ચાણ્ડાલ, ગામનાં કૂકડાં તથા સૂવર, કૂતરું આ છ પદાર્થો કર્મથી વર્જિત છે. કોઈ કાળથી વર્જિત પદાર્થો હોય છે, જેમકે વ્રણ(છિદ્ર) વાળો માણસ, સૂતકી, સૂતિકા(સુવાવડી), મત્ત(કેફી), ઉન્મત્ત(ગાંડો), રજસ્વલા, મૃતબન્ધુ(જેનો ભાઈ ગુજરી ગયો છે તે), અશુદ્ધ –આટલા પદાર્થો પોતાના કાલથી વર્જિત છે એમ જાણવું".

<u>દુષ્ટ</u> : હવે 'દુષ્ટ' નામનો અપવિત્ર પદાર્થ ક્યો તે જણાવે છે. "પરશેવો, આંસુનાં ટીપાં, ફીણ, કાઢી નાખેલાં નખ-રૂંવાટાં, લીલું ચર્મ(ચામડું) અને લોહી ––આટલા પદાર્થોને પણ્ડિતો દુષ્ટ તરીકે કહે છે".

<u>કશ્મલ</u> : હવે 'કશ્મલ' નામનો ચોથો અપવિત્ર પદાર્થ તે આ પ્રમાણે છે "માણસનું હાડકું, ચરબી, વિષ્ઠા, વીર્ય, પેશાબ, આર્તવ(અટકાવનો રૂધિર) અથવા સ્ત્રીનું રજ, શબ, દુર્ગન્ધિ પદાર્થ, પરૂ વિગેરે પદાર્થો 'કશ્મલ' પદાર્થ તરીકે કહેવાય છે". બીજા પદાર્થોથી દૂષિત થયેલા પદાર્થોની પ્રોક્ષણ કરવાથી શુદ્ધિ થાય છે. કશ્મલ પદાર્થનો ત્યાગ કરવો શુદ્ધિરૂપ બને છે. કોઈ ઠેકાણે 'વ્યન'ને બદલે 'ત્યક્ત' એવો પાઠ છે તો ત્યાં નાતબહાર રાખવામાં આવ્યો હોય તે માણસ સમજવો.

સારાશં એ છે કે વગર સ્નાન કરેલો માણસ ઉપર કહેલી બીનાઓમાં લખવામાં અથવા ગણવામાં નથી આવ્યો માટે તે ઠેકાણે દોષ નથી એમ સમજવું. એટલે અસ્નાત માણસ કાષ્ઠાદિથી ધોયેલું કપડું લઈ લે તો સ્પર્શદોષ લાગુ થતો નથી એમ જાણવું.

વળી આશ્વલાયન સ્મૃતિમાં લખ્યું છે કે પહેરવા અને ઓઢવા માં ધોળું કપડું 'પ્રશસ્ત' તરીકે જાણવું. અને જો મળી આવે તો બ્રાહ્મણને વધારે સારું રેશમી કપડું કહેલું છે. ઉનનું કપડું તથા ત્રેવડું કપડું પહેરવામાં ન રાખવું, ઓઢવામાં તે પ્રશસ્ત ગણેલું છે. તેવા કપડાનો સ્પર્શદોષ લાગુ પડતો નથી. ત્રેવડા કપડાને ધારણ કરનારો માણસ જો ભોજન

અથવા મલનો ત્યાગ કરે તો ધોઈ નાખવાથી ત્રેવડું કપડું શુદ્ધ થાય છે. અને રેશમી વસ્ત્ર તો સર્વદા પવિત્ર તરીકે જ ગણવામાં આવે છે. ઉનનું કપડું વીર્ય, શવ, પેશાબ, વિષ્ઠા કે રજસ્વલા ના સ્પર્શવાળું થયું હોય તો પણ તે આવિક (બકરા-ગાડર વિગેરે)ની ઉનનું કપડું અપવિત્ર થતું નથી, અર્થાત્ સર્વદા પવિત્ર જ રહે છે. આ પ્રમાણે ઉનના કપડામાટે અનિરા ઋષિએ કશ્મલ પદાર્થનો સ્પર્શ થાય તો પણ તે અપવિત્ર થતું નથી એમ લખ્યું છે. જો આવું હોય તો પછી ઉનનાં કપડાથી વીંટાયેલા બીજા કપડાના સ્પર્શમાં તો દોષ ક્યાંથી જ લાગુ પડે! ન જ પડે. માટે જે સદાચાર છે તેને દુષ્ટ ન ગણવો એમ નિશ્ચય સમજવો.

મૂત્ર વિગેરેનો વસ્ત્રને જો સ્પર્શ થાય તો તે તો દૂષિત જ થાય છે તેમ 'અપરાર્ક' ગ્રન્થમાં 'યમ' કહે છે. જો પેશાબ, વિષ્ઠા, વીર્ય અથવા રુધિર થી વસ્ત્ર દૂષિત થાય તો જલથી તે કપડું ધોઈ નાખવું. જો ધોઈ નાખવાથી શુદ્ધ ન થાય તો તેટલા ભાગને કાપી નાખવો અથવા બાળી નાખવો. એમજ મદ્ય(મદિરા) વિગેરેના સ્પર્શમાં પણ સમજી લેવું. એઠાના સ્પર્શમાં તે કપડું ધોઈ નાખવું એ બાબત અર્થથી જ સિદ્ધ થાય છે.

યાજ્ઞવલ્ક્ય ઋષિએ બીજાં કેટલાંએક વચનો લખેલાં છે જેમાં વસ્ત્રોની શુદ્ધિ જણાવેલી છે. જેમકે ''ખારો, જલ તથા ગોમૂત્ર થી ઉનનું કપડું તથા 'કૌશિક' નામનું કપડું શુદ્ધ થાય છે. શ્રીફલ(બિલાં) થી 'અંશુપદ' નામનું કપડું શુદ્ધ થાય છે અને અરીઠાથી નેપાલ દેશના ધાબળાઓ શુદ્ધ થાય છે. ધોળા સરસવથી 'ક્ષોમ' નામનું કપડું શુદ્ધ થાય છે''. આ પ્રમાણે જણાવ્યું છે, પરન્તુ હાલમાં તે-તે કપડાના ધોનારાઓ તે-તે કપડાને ધોઈ આપે છે. માટે તે વચનોનો આહીં સઙ્ગ્રહ કરવામાં આવતો નથી.

શ્રીમદ્ભાગવતના એકાદશસ્કન્ધમાં લખ્યું છે કે અપવિત્ર પદાર્થથી જે કપડું લેપવાળું થાય અને તે લેપ જે પદાર્થથી નષ્ટ થઈ વસ્ત્ર પાછું પોતાની પ્રકૃતિ(સ્વરૂપ)ને પ્રાપ્ત થાય ત્યારે તે પવિત્ર તરીકે ગણવું. આ પ્રમાણે ફલના તુલ્યપણાનો ભગવાને આદર જણાવેલો છે માટે તે કપડાંને ધોવા પછી પ્રોક્ષણાદિ કરવું યોગ્ય જ છે. વળી અનિરાઋષિ કહે છે કે ઘણી કીમ્મતનાં ઉનનાં કપડાં વાયુ, અગ્નિ, સૂર્ય-ચન્દ્રમાના કિરણોથી પવિત્ર થાય છે. એમજ દોરી-દોરડાંની પણ વસ્ત્રમાફક જ શુદ્ધિ કરવી. જેમકે વ્યાસજી કહે છે કે ''કપડું જલથી તથા માટીથી પવિત્ર થાય છે. અને દોરી-દોરડાં તથા છાલ, પાન, પંખા વિગેરે કપડારૂપ તે પણ તેનાથી જ શુદ્ધ થાય છે''. દોરી વિગેરે જો અતિદુષ્ટ થઈ ગયું હોય તો તેટલા ભાગનો ત્યાગ કરવો. લોકમાં જેને 'નવાર'(ખાટલાની દોરી) કહેવામાં આવે છે તે પણ એક જાતનો દોરીનો પ્રકાર છે માટે તેને માટે પણ તેમજ કરવું.

૧૫. પાત્ર વિગેરેનો શુદ્ધિ વિચાર

યાજ્ઞવલ્ક્ય ઋષિ કહે છે કે ''સોનાનું પાત્ર, રૂપાનું પાત્ર, અબ્જપાત્ર(મોતી શંખ છીપનું પાત્ર), ઊર્ધ્વપાત્ર (યજ્ઞસમ્બન્ધી ખાંડનીઓ વિગેરે પાત્ર), ગ્રહપાત્ર (યજ્ઞમાં સોમરસ સ્થાપન કરવાનું પાત્ર), પથ્થરનાં પાત્ર, વાસ્તુક વિગેરે શાક, રજ્જુ (બાંધવામાટે

તથા છોડવામાટે દોરી) તથા આદુ વિગેરે ફળ, આંબા વિગેરેનાં ફળ, વસ્ત્ર, વાંસ વિગેરેનાં પાત્ર, બકરી વિગેરેનાં ચામડાં, છત્ર વિગેરે બીજાં લૌકિક પાત્રો, યજ્ઞસમ્બન્ધી 'ચમસ' પાત્રો. આ બધા પત્રોની શુદ્ધિ જળથી થાય છે''. આ ઉપર કહેલાં સુવર્ણ વિગેરેનાં પાત્રો, વિના લેપવાળાઓને, જો એઠા થાય તો જલથી ધોઈ નાખવાથી શુદ્ધિ થાય છે અને જો એઠાનો સ્પર્શ ન થાય તો ધોવાની કાંઈ જરૂર નહીં. આ શુદ્ધિ લૌકિક અને વૈદિક સાધારણ છે એમ જાણવું.

ઉપર કહેલાં વચનોમાં શાક વિગેરેનું પણ ગ્રહણ છે તેથી એમ સમજવું કે પાકાદિ માટે અન્ન વિગેરેથી ભરેલાં પાત્રોનું તથા શાક વિગેરેનું પીરસવાપણાની નિવૃત્તિમાટે ધોઈ નાખવાનું વિધાન કૈમુતિક ન્યાયથી પ્રાપ્ત થાય છે એમ ગ્રન્થકાર શ્રીપુરુષોત્તમજી મહારાજ કહે છે. સમુદાયથી ભરેલા પાત્રો પ્રોક્ષણ કરવાથી શુદ્ધ થાય છે, કારણ કે ધાન્ય વિગેરેને માટે પ્રોક્ષણ કરવું કહેલું છે માટે.

હવે લેપવાળાં પાત્રોની શુદ્ધિ કહે છે કે ''ચરુ, સ્રુક્, સ્રુવ (યજ્ઞસમ્બન્ધી પાત્ર), ઘી-તેલની ચીકાશવાળાં હોય તો ગરમ જળથી ધોઈ નાખવાં એટલે શુદ્ધ થાય છે'' એમ વિજ્ઞાનેશ્વર કહે છે. એઠાં ન હોય અને જરા લેપવાળાં હોય તો પણ તે પ્રમાણે શુદ્ધિ કરવી. પ્રથમ ચરુ શબ્દનું ગ્રહણ કર્યું છે તે લેપવાળાપણું જણાવવામાટે છે. અને જો લેપવિનાનાં પાત્રો હોય તો ગરમાશવાળાં જલનું પ્રયોજન રહે નહીં. ''લેપવિનાનું સોનાનું પાત્ર જલથી શુદ્ધ થાય છે. અને મોતી શંખ છીપ ના વાસણ તથા પથ્થરનું પાત્ર અને રૂપાનું વાસણ અનુપસ્કૃત(લેપાદિરહિત) કેવલ જલથી શુદ્ધ થાય'' આ પ્રમાણે મનુનું વચન છે. તેથી એમ જણાય છે કે કેવલ પાત્ર તેણે કહ્યાં છે એ પ્રમાણે અમને (ગ્રન્થકાર કહે છે) ભાસે છે. અપરાર્ક પણ એમજ કહે છે કે મનુનું વચન જે છે તેનો એવો અર્થ છે કે લેપાદિરહિત જેમાં કાંઈ પણ નાખેલું નથી એવું પાત્ર, એમ અર્થ જણાવ્યો છે. મેધાતિથિકહે છે કે અત્યન્ત 'અનુપહત' એટલે પદાર્થના બિલકુલ સ્પર્શવિનાનું પાત્ર એમ અર્થ સમજવો. પાણિની ઋષિએ સૂત્રમાં 'વૈકૃત' શબ્દ ગણેલો છે તે ઉપરથી પણ એવો અર્થ માલમ પડે છે કે ચિત્રવિચિત્ર રેખા વિગેરેથી રહિત પાત્ર. તે પણ યોગ્ય છે. કારણ કે જે પાત્રમાં કાંઈ રેખાઓ અથવા ખાડા-ખપચા વિગેરે હોય તો તેમાં અન્નાદિ ભરાઈ રહે તો પછી કેવલ જલથી તે પાત્ર સાફ થઈ શકતું નથી. માટે પાણિનીએ પણ કહેલો અર્થ ઉચિત જ છે.

'નિર્ણયામૃત' ગ્રન્થમાં પણ એમજ લખ્યું છે કે જે પાત્ર ઘણા લીંપાઈ ગયા હોય તે બાબતમાં મનુ કહે છે કે ''તૈજસ પાત્રો અને મણીનાં પાત્રો અને પથ્થરનાં પાત્રો રાખ, જલ તથા માટી થી શુદ્ધ થાય છે''. વિદ્વાનો કહે છે કે અહીં 'તૈજસપાત્ર' એટલે ધાતુનાં પાત્રો સમજવાં. જેમકે સોનું, રૂપું, કાંસું, લોઢું, કલઈ, સીસું આટલા ધાતુઓને 'તૈજસધાતુ' તરીકે કહે છે. માટે આ ઉપરથી તેના પાત્રો એમ સમજવું. અહીં 'કાંસું' એ શબ્દથી પીતલ પણ સમજી લેવું. કારણ કે બ્રહ્માણ્ડપુરાણમાં કાંસું તથા પીતલ એ બેયનો ધાતુપાત્રોમાં પાઠ લીધેલો છે. 'જસત' ધાતુ સીસાનો જ એક ભેદ છે. (ગ્રન્થકાર કહે છે કે)

મને અહીં એમ ભાસે છે કે બ્રહ્મવૈવર્તપુરાણમાં એમ લખ્યું છે કે

> ''હંમેશ નવીન વાસણથી રસોઈ કરવી. અથવા એક પખવાડીયું પૂર્ણ થાય ત્યાં સુધી નવીન પાત્રથી જ રસોઈ કરવી અને પછી તે પાત્રોને નાખી દેવાં અને સ્થાન શુદ્ધ કરી પૂજા કરનારે પાકથી નિવૃત્ત થવું''.

આ પ્રમાણે ભગવાને શ્રીનન્દજીને વૈષ્ણવબ્રાહ્મણનાં ધર્મોમાં હંમેશ રસોઈનાં વાસણો રસોઈ કરી કાઢી નાખવાને જણાવ્યું છે. પરન્તુ માટી સિવાય બીજી જાતનાં વાસણો હંમેશ ત્યાગવા અશક્ય છે, તેવાં વાસણો અગ્નિની જવાલાથી મેશવાળાં થાય છે માટે તેને દૂર કરવી. એમ કરવાથી તે વાસણ નવીન થયું ગણવામાં આવે છે એવો એક પક્ષ છે. અને સદાચાર પણ તેવો જ છે તેથી માલમ પડે છે માટે માટીથી અથવા રાખથી તે વાસણની મશકાઢી નાખવી. કાંસાના પાત્રનો લેપ રાખથી દૂર થાય છે માટે ત્યાં રાખ જ લેવી. લેપવિનાનાં પાત્રોની, થોડા લેપવાળાં પાત્રોની અને ઝાઝા લેપવાળાં પાત્રોની શુદ્ધિ ઉચ્છિષ્ટ લેપવાળાં પાત્રોની બરાબર જ છે એમ સમજવું. અને એ જ સદાચાર સમ્મત છે.

ઉચ્છિષ્ટનો સ્પર્શ બે પ્રકારનો બને છે એક નીચલા અનમાં તથા બીજા ઉપરના અનમાં. ઉપરના અનને ઉચ્છિષ્ટનો સ્પર્શ થયો હોય તો જે અન એઠું થયું હોય તે અન માટીથી ધોઈ નાખવું. તેમજ નીચલા અનને જો એઠાંનો સ્પર્શ થયો હોય તો અથવા એઠા માણસના હાથનો સ્પર્શ થાય તો જે અનને ઉચ્છિષ્ટનો સ્પર્શ થાય તે અપવિત્ર પદાર્થથી લીંપાયેલા અનની જેમ શુદ્ધિ કરવી ઘટે તેમ તે ઠેકાણાની શુદ્ધિ કરવી એમ મને ભાસે છે.

ચાંમડાની બાબતમાં યાજ્ઞિકદેવવિરચિત સ્મૃતિસારમાં કહ્યું છે કે ''ગોમૂત્રના જલથી શૂર્પ(સુપડું) શુદ્ધ થાય છે. ધૂપથી તેલ વિગેરેની કુપિયો શુદ્ધ થાય છે અને ગોમૂત્ર તથા ધોળા સરસવથી ચામડું શુદ્ધ થાય છે''. વળી બીજું પણ કહ્યું છે કે ''ત્રણ દિવસ રાખ માટી અને જલ થી, ત્રણ દિવસ ત્રિફળા(હરડાં બેડાં આમળાં)થી અને સાત રાત કષાય(કાઢા)થી ચર્મની શુદ્ધિ કરવી. એક પલ (બે અથવા ચાર તોલાં) રાખ, તેથી બમણી માટી અને તેથી ત્રણગણો કાઢો અને ત્રણગણી ત્રિફળા લેવી. આંબો, જાંબુ, આમળી, પીપર, પીપળો, ઉંબરો, વડ આ સાત વૃક્ષના કાઢાથી ચર્મ શુદ્ધ કરવું''. આ શુદ્ધિ અલ્પ ઉપઘાત વિષયક જાણવી.

૧૬. ઉચ્છિષ્ટના સ્પર્શવાળા પાત્રનો શુદ્ધિવિચાર

શંખ કહે છે કે

> ''બ્રાહ્મણ, ક્ષત્રિય અને વૈશ્ય ના ઉચ્છિષ્ટ સ્પર્શથી એક વાર માંજી નાખવાથી પાત્રની શુદ્ધિ થાય અને શૂદ્રના ઉચ્છિષ્ટ સ્પર્શથી ચાર વખત માંજવાથી શુદ્ધ થાય છે, એટલે અગ્નિમાં તપાવી હાથધોઈ યત્નથી તે પાત્રને ધોવું અને પછી ગાયના

શીંગડાનો સ્પર્શ કરાવવો. ત્યારે તે પાત્ર પવિત્ર થાય''.

આ પાત્ર કાંસ્યપાત્ર સિવાયનું સમજવું. કારણ કે કાંસાના પાત્રની આગળ વધારે શુદ્ધિ કહેવાશે માટે. 'મર્યાદાસિન્ધુ' નામક ગ્રન્થમાં પાત્રોની શુદ્ધિ બાબત એમ લખ્યું છે કે 'શંખ' નામક ગ્રન્થકાર કહે છે કે

> ''દાંત તથા શીંગડા નાં પાત્રોની શુદ્ધિ સરસવના કલ્ક(સરસવ વાટેલાનો પીડો)થી કરવી. ફલ તથા પાત્રો ની ગાયના વાળથી શુદ્ધિ કરવી અને હાડકાં કે તેનાં પાત્રોની શીંગડાના પાત્ર માફક શુદ્ધિ કરવી''.

આ શુદ્ધિ અલ્પસંસર્ગ માટે છે એમ સમજવું. અધિક સંસર્ગ થયો હોય તો વાયુપુરાણમાં શીંગડાનાં પાત્રોમાટે ઘસાવી નાખવાથી શુદ્ધિનો વિધિ લખ્યો છે તેમ જાણવું.

વળી મનુ કહે છે કે ''અગ્નિ અને જલ ના સંયોગથી સુવર્ણ અને રજત(રૂપું) બને છે(શોભે છે). માટે તે બેનો સંયોગ ઘણા ગુણવાળો જાણવો''. વેદમાં એમ લખ્યું છે કે ''અગ્નિએ વરૂણની સ્ત્રીની કામના કરી'' આ બાબત જ્યાં લખી છે તે અર્થવાદમાં સોના-રૂપાની જલ અગ્નિના સંયોગથી પેદાશ કરી છે માટે તેની શુદ્ધિ તેના કારણથી વધારે ઉત્તમ જાણવી. વળી ત્રાંબું, લોઢું, કાંસું, પીતળ, કલઈ, સીસું આટલા ધાતુઓનું પવિત્રપણું ખાર, ખટાશ અને જલ થી યથાયોગ્ય કરવું. હારીતઋષિ તો એમ કહે છે કે

> ''કાંચન, શંખ અને છીપ તેની શુદ્ધિ જલથી કરવી અને તેલ, ઘી વિગેરે ચીકાશ તથા બીજા પદાર્થોવાળાં તે પાત્રોની શુદ્ધિ જવ, ઘઉં, મટર, અડદ, મસૂર, મગના લોટથી તથા ગોબરથી ધોઈ નાખવાથી થાય છે. ખટાશ અને ખાર થી ત્રાંબાનાં પાત્રોની શુદ્ધિ થાય છે. રાખથી કાંસાનાં પાત્રોની શુદ્ધિ થાય છે. કીટોડો ચડી ગયેલાં લોઢાનાં પાત્રોની શુદ્ધિ કાનસ તથા તેલ ઘસાવાથી થાય. પથ્થરનાં પાત્રોની શુદ્ધિ રેતી ઘસવાથી થાય. મણિમય પાત્રોની શુદ્ધિ પથ્થરના ઘસવાથી માંજવાથી થાય છે. કાષ્ઠનાં પાત્રોની શુદ્ધિ ઘસાવાથી થાય છે. અને માટીનાં પાત્રોની શુદ્ધિ બીજી વાર અગ્નિમાં પકાવવાથી થાય છે. પાંદડાં વિગેરેનાં પાત્રો(જેમ કે સાદડી, ફડાના પંખા, ઘાસની ઝાંપી, ઝાંપા કંડણી કરંડીયા ઈત્યાદિ પાત્રો)ની શુદ્ધિ ગોમૂત્ર, ગોમય અને બીલી ના ફળથી થાય છે. અને વળી એમ પણ લખ્યું છે કે જલવાળી ગાયના વાળની દોરીથી ફલોની યા ફલપાત્રોની કમણ્ડલૂ વિગેરે યોગીયોનાં પાત્રોની શુદ્ધિ કરવી એમ જાણવું''.

શુદ્ધિ કરવી એટલે જે પદાર્થ તે પાત્રમાં નાખવામાં આવ્યો હોય તે પાત્રની શુદ્ધિ કરવી. એટલે એમ સમજવું કે તે ચીજનો તેમાંથી સ્પષ્ટ ગન્ધ દૂર થઈ જાય ત્યારે તે શુદ્ધ થયું

કહેવાય એમ જાણવું. આગળ કહી ગયા છીએ કે ''સ્નેહવૈવર્ણ્યોપહત'' એટલે ઉચ્છિષ્ટ વિગેરેની ચીકાશવાળું તે પાત્ર એમ અર્થ સમજવો. આગળ કહી ગયા કે જવ વિગેરેનો લોટ લઈ સાફ કરવું. અટલે એમ સમજવાનું છે કે ઉપર કહેલાં અન્નનો લોટ લેવો, તેમાંથી જેનો મળે તે લેવો એમ અર્થ સમજવાનો છે. ઉપર કહી ગયા કે લોહપાત્રની શુદ્ધિમાટે કાનસ ઘસવું. એ ઠેકાણે એમ સમજવાનું કે સજીયો, છુરી વિગેરે હથીયારો શોધવામાટે તે કાર્ય કરવું. પણ કડાયાં કે કડાઈ ની શુદ્ધિ કરવી હોય તો-તો રેતી લઈને ઘસવાથી શુદ્ધિ થાય છે એમ જાણવું. પથ્થરનું ઘસવું તથા માંજવું, આ બે કાર્ય સોની વિગેરે લોકો જાણે છે કે જે પથ્થરના ઘસવાથી તે પાત્ર ઉજ્જવલ થઈ જાય છે એમ જાણવું.

કાંસાનાં વાસણમાટે ઉપર કહી ગયા તેથી વધારે પણ શુદ્ધિ લખી છે તે પરાશર, શાતાતપ અને આપસ્તમ્બ કહે છે કે

''પશુ અથવા ગાય-બેલોએ સુંઘેલાં કાંસાનાં પાત્રો અને
શૂદ્રનાં એઠાં થયેલાં કાંસાનાં પાત્રો દશખારથી શુદ્ધ થાય છે. અને
તે પાત્રો કાગડા કૂતરાંના સ્પર્શવાળાં હોય તો પણ દશ વાર માંજી
સાફ કરવાથી શુદ્ધ થાય છે''

એમ નિર્ણયામૃત તથા અપરાર્ક પણ કહે છે. 'શંખ' નામના ગ્રન્થકાર આ બાબતથી પણ વધારે કહે છે કે જે કાંસાનું પાત્ર સૂતિકાએ ઉચ્છિષ્ટ કર્યું છે અથવા મદ્ય વિગેરે(દારૂ)ના સ્પર્શવાળું છે તો પણ તેને તાવ દેવો નહીં, ફક્ત એકવીશ વાર માંજવાથી શુદ્ધ થાય છે. કાંસાના પાત્ર સિવાય બીજા તૈજસ ધાતુનાં વાસણો જો સૂતિકાનાં એઠા વિગેરેના થોડા સ્પર્શવાળાં થયાં હોય તો જવ વિગેરેના લોટથી એકવીશ વાર માંજવાથી શુદ્ધિ થાય. પરન્તુ કાંસાના પાત્રને તપાવવું નહીં. એમ અપરાર્કના કથનથી જણાય છે. નિર્ણયામૃતનો એવો મત છે કે શોધક પદાર્થમાં સાત પદાર્થ ગણેલા છે. તો એક પદાર્થેથી ત્રણ-ત્રણ વાર શુદ્ધિ કરવી. એટલે સાત તેરી એકવીશ વાર માંજવાથી તૈજસ પાત્રથી શુદ્ધિ કરવી. પરન્તુ કાંસ્યપાત્રની શુદ્ધિ તો માર્જન(માંજવું) તથા તાપનથી થાય. આ બાબતમાં અપરાર્કનું કથન યુક્ત છે. સ્મૃત્યન્તરમાં એમ લખ્યું છે કે કાંસાને મદ્યનો લેપ કરવામાં આવ્યો હોય તો તાપ આપવો. એટલે કાંસાપાત્રમાં મદ્ય ભરવામાં આવ્યું હોય તો તાપ આપવો. પરન્તુ ઉચ્છિષ્ટની અપવિત્રતા મદ્ય કરતાં અલ્પ છે. માટે જરૂર પડતા જ તાપ આપવો યુક્ત છે. અપરાર્ક તથા નિર્ણયામૃત માં આદિત્યપુરાણમાં પણ કહ્યું છે કે

''સુવર્ણ, રૂપું, પથ્થર, છીપ, રત્ન, કાંસ્ય, લોહ, ત્રાંબુ,
પીતલ કલઈ, સીસું આટલા ધાતુનાં પાત્રો લેપ વિનાનાં કેવલ
જલથી શુદ્ધ થાય. અને જો શૂદ્રના એઠાના સંસર્ગવાળા હોય તો
ખાર ખટાઈ અને જલથી શુદ્ધ થાય છે''.

માંજવું યથાયોગ્ય કરવું. ચૌદ વખત અથવા દશ વખત કરવું, આ પ્રમાણે વચનાન્તર છે માટે તેમ કરવું.

મર્યાદાસિન્ધુમાં બ્રહ્મપુરાણમાં ખાર, ખટાઈ અને જલ થી શુદ્ધિ કરવી એમ કહીને આગળ જણાવ્યું છે કે

> "સૂતિકા, શબ, વિષ્ઠા, પેશાબ અને રજસ્વલા આટલાનાં સ્પર્શવાળાં કાંસાના પાત્રો શુદ્ધિમાટે અગ્નિમાં નાખવાં, પરન્તુ અગ્નિ જેટલો સહન કરી શકે તેટલો જ દેવો".

પ્રથમ તે પાત્રને ધોઈ નાખવું. પછી જેટલો અગ્નિ સહન કરી શકે એટલે કે જેટલા અગ્નિથી તે પાત્રનો નાશ ન થાય તેટલો અગ્નિ આપવો. આ પ્રમાણે સર્વ વ્યાખ્યાકારોએ વ્યાખ્યા કરી છે.

આનો આ સાર છે કે

> "બ્રાહ્મણ, ક્ષત્રિય અને વૈશ્ય નાં ઉચ્છિષ્ટ પાત્રો અને લેપવિનાનાં માટીનાં વાસણો ઉચ્છિષ્ટ પુરુષના સ્પર્શથી પ્રોક્ષણ કરવાથી શુદ્ધ થાય છે. અને લેપવાળું પાત્ર અવચૂડન(અગ્નિસંયોગ) કરવાથી શુદ્ધ થાય છે. લેપવગરનું માટીનું વાસણ અથવા પાત્રસમુદાય, પ્રોક્ષણ કરવાથી શુદ્ધ થાય છે અને સલેપ માટીનું વાસણ અગ્નિસંયોગ કરવાથી શુદ્ધ થાય છે".

એમ બૃહસ્પરાશરનું વચન છે.

એઠા હાથવિગેરેનો સ્પર્શ થાય તો પણ અગ્નિસંયોગ, એટલે તે માટીના પાત્રનું રૂપ વિગેરે બદલી જાય એવો અગ્નિસંયોગ કરવો. લાંકડાં વિગેરેનાં પાત્રોને ઉચ્છિષ્ટ પુરુષનો સ્પર્શ થાય તો હરકત નહીં. અથવા તે પાત્રો ઉપર પ્રોક્ષણ કરવું. લેપવાળાં પાત્રો હોય તો ઘસાવવું અને એઠાં લેપવાળાં પાત્રોનો અથવા એઠાં લેપવાળા હાથવિગેરેથી પાત્રનો સ્પર્શ થાય તો તે કાષ્ઠનાં વાસણો અથવા શીંગડાનાં વાસણો ઘસાવી નાખવાં. તેમજ વૈદલપાન વિગેરેના પંખા વિગેરેઓને પ્રક્ષાલન કરવાથી શુદ્ધતા પ્રાપ્ત થાય છે. ગોમૂત્ર, ગોબર(બિલાં વિગેરે)ના ઘસવા પૂર્વક જલથી ધોઈ નાખવું.

અહીં જો કે કાચ તથા કાગળ ના વાસણોની શુદ્ધિ ક્યાંય લખાયેલી નથી તેથી લખી નથી. છતાં વિષ્ણુધર્મોત્તરના બીજા કાણ્ડના દ્રવ્યશુદ્ધિના અધ્યાયમાં કાચના વાસણની શુદ્ધિ કહી છે. કાચના વાસણોની શુદ્ધિ કેવળ જલથી થાય છે. કાગળનાં વાસણની શુદ્ધિ તો ત્યાં પણ કહી નથી.

ચીનાઈ પાત્રને કોઈ એમ કહે છે કે કાચ વિશેષ છે અથવા માટીનો વિકાર છે. કોઈ કહે છે કે કોઈ જાતનાં કોડાનો વિકાર છે. જો કોડાંનો વિકાર માનીએ તો મોતી, શંખ, છીપ વિગેરેનો વિકાર માનવો જોઈએ. જો એમ માનીએ તો, અલ્પઅપવિત્રતા થઈ હોય તો જલથી શુદ્ધિ જાણવી. મધ્યમ અથવા અત્યન્ત અપવિત્રતા પ્રાપ્ત થાય તો ત્યાગ કરવો યોગ્ય છે. હાડકાનાં માનવામાં આવે તો તક્ષણ (અગ્નિસંયોગ) કરવાથી શુદ્ધિ શક્ય છે.

પરન્તુ તે તક્ષણ કરવું અશક્ય છે. માટીના કે કાચના માનતાં જલથી અને અગ્નિસંયોગથી શુદ્ધિ જાણવી. પરન્તુ ચીનાઈ વાસણો શિષ્ટ લોકો સ્વીકારતા નથી. કારણ કે તેની પેદાશ ઘણી જ હલકી તરેહથી થાય છે. તેની ઉત્પત્તિનો પ્રકાર 'અર્કપ્રકાશંખ નામના વૈદ્યકગ્રન્થમાં રાવણે આ પ્રમાણે જણાવ્યો છે :

> ''શિવજી કહે છે કે હે પ્રિયા પાર્વતી! જુના હાડકાની માટી કરવાનો પ્રકાર કહું છું તે સાંભળ. શિલાજીતને ઠેકાણે એક મનોહર ખાડો કરવો. તે ખાડામાં જાનવરોના હાડકાના ઢગલા નાખવા. તેમાં સાજીખાર, માહાખાર, માટીનો ખાર, લૂંણ, ગન્ધક અને ગરમ જલ નાખવા. અને નાનાપ્રકારના મૂત્રો તેમાં નાખવા. એ પ્રમાણે છ માસ સુધી પથ્થર તથા માટી રાખી તેની ઉપર હાડકાં નાખવાં. અને તે ઉપર અગ્નિની ભઠ્ઠી કરવી. એમ ત્રણ વર્ષ કરવાથી સર્વ પથ્થરમય એક ભાગ થઈ જાય છે. પછી તેમાંથી તે ચૂર્ણ બહાર કાઢી તેનાં પાત્રો બનાવવાં''.

આ પ્રમાણે તે પાત્રોની બનાવવાની રીત છે.

કાગળનાં પાત્રોનું યથાયોગ્ય શોધન, પ્રોક્ષણથી, ધોવાથી તથા શોષણથી કરવું. કારણ કે સણપણું તે પાત્રોને હોય છે માટે. મિતાક્ષરામાં ક્ષૌમવસ્ત્ર માફક સણની શુદ્ધિ કહી છે. માટે મને (ગ્રન્થકાર કહે છે કે) એમ ભાસે છે કે બીજા તૈજસ ધાતુવિનાનાં પાત્રોની શુદ્ધિ પ્રથમ કહેલાં યાજ્ઞવલ્ક્ય, હારીત વિગેરેનાં વચનોથી જાણવી.

લેપ વિનાનું કાંસા સિવાયના ધાતુના પાત્રને ઉચ્છિષ્ટ એવા બ્રાહ્મણ, ક્ષત્રિય, વૈશ્યો એ અનુચ્છિષ્ટ અન(વગર એઠાં અન)થી સ્પર્શ કર્યો હોય તો તે પાત્ર દૂષિત થતું નથી. એઠા હાથવિગેરેથી સ્પર્શ કરવામાં આવે તો એકવાર માંજવાથી શુદ્ધિ થાય. ત્રિવર્ણની સૂતિકા તથા રજસ્વલા ના સ્પર્શથી અપવિત્ર થયેલું પાત્ર એકવીશ વાર માંજવાથી શુદ્ધ થાય છે. અને સૂતિકા તથા રજસ્વલા ના એઠાથી અપવિત્ર થયેલું પાત્ર યોગ્ય અગ્નિ દીધા બાદ પૂર્વોક્ત રીતિથી માંજવાથી શુદ્ધ થાય છે. એમ રજસ્વલાના સ્પર્શમાં પણ સમજી લેવું.

ઉચ્છિષ્ટ શૂદ્રના સ્પર્શમાં ધોઈ નાખવાથી શુદ્ધિ થાય છે. શૂદ્રોચ્છિષ્ટ પાત્રને ચાર વાર માંજવાથી તથા યોગ્ય અગ્નિ દીધા બાદ ગાયના શીંગડા સ્પર્શ કરાવવો. ગાયના સુંઘવામાં પણ એમ જ સમજવું.

કાંસાનું પાત્ર ત્રિવર્ણનું ઉચ્છિષ્ટ થયેલું માંજી નાખવાથી શુદ્ધ થાય છે. એઠા અનના સ્પર્શમાં એક વાર માંજવાથી શુદ્ધિ થાય છે. અને શૂદ્રનું એઠું હોય તો દશ વાર ખારથી માંજવું તથા અવચૂડન કરવું. તે અવચૂડન જેટલું સહન થઈ શકે તેટલું કરવું. ગાય-બેલના સુંઘવામાં પણ એમજ. શૂદ્રની સ્ત્રી અથવા સુવાવડી સ્ત્રીનું એઠું થયેલું કાંસાનું પાત્ર કાઢી નાખવું. એટલે ઉપયોગમાં ન લેવું. અનિરા ઋષિ કહે છે કે કાંસાના વાસણમાં જે માણસ કોગળા કરે અથવા પગ ધોય તો છ માસ પર્યન્ત જમીનમાં રાખી તે પાત્રને પાછું પૂર્વે

જેવું ઉજ્વલ હોય તેવું કરી લેવું. અહીં કાંસાનું વાસણ જ નહીં પણ પિતલના વાસણમાટે પણ સમજી લેવું એમ અમને(ગ્રન્થકારને) જણાય છે.

૧૭. અપવિત્ર પદાર્થનો કોઈને સ્પર્શ થાય તો તેની શુદ્ધિ કરવાનો વિચાર.

અમેધ્ય એટલે અપવિત્ર વસ્તુ દેવલઋષિએ આ પ્રમાણે ગણેલી છે : માણસનું હાડકું, શબ એટલે કે પશુ વિગેરેનું એટલે ઉંદર, અંધીચીચી પર્યન્તનું શબ જાણવું. કદાચિત્ ઉંદર, ચીચી સિવાયના પ્રાણીના શબમાટે સન્દેહ થાય તો અલ્પપ્રાણીની કીટમાં ગણના છે માટે પ્રોક્ત વિષય યુક્તિ યુક્ત છે એમ જાણવું. અર્થાત્ અહીં ઉપર પ્રમાણે શબનો અર્થ સમજી લેવો. વિષ્ઠા એટલે માર્જાર પર્યન્તની વિષ્ઠા અને મૂત્ર પણ સમજી લેવું. વીર્ય, આર્તવ, વસા, મેદ, અશ્રુ(આંસુ), આંખના ચીપડાં, સળખમ અથવા કફ અને મદ્ય આટલાં પદાર્થો અપવિત્ર તરીકે ગણવામાં આવ્યા છે. ઉંદરની વિષ્ઠા અન્નમાંથી કાઢી દૂર કરવું તેમ કરવાથી અત્યન્ત દોષપણું દૂર થઈ જાય છે. હવે મદ્ય(દારૂ) બાર પ્રકારનું શાસ્ત્રમાં કહેલું છે તે પુલસ્ત્યઋષિ આ પ્રમાણે જણાવે છે

> ''પાનસ(ફણસનું મદ્ય), દ્રાક્ષ(ધ્રાખનો દારૂ), માધૂક(મહુડાનો દારૂ), ખજૂરનું મદ્ય, તાલનું, શેરડીના રસનો દારૂ, મધનું મદ્ય, [1]તૈર નામનું મદ્ય, અરિષ્ટ નામનું મદ્ય, મૈરેય નામનું મદ્ય, નાળીયેરનું મદ્ય અને માહા નીચમાં નીચ બારમું સુરા નામનું મદ્ય. એ પ્રમાણે બાર પ્રકારનાં મદ્ય ગણેલાં છે''.

તેમાં બીજા અગીયાર મદ્ય તો સમાન છે પણ બારમું સુરા નામનું મદ્ય સર્વ મદ્યમાં અધમ ગણેલું છે એમ જાણવું.

હવે તૈજસ પાત્રો એટલે સુવર્ણ, ત્રાંબું, રૂપું, કાંસ્ય, લોહ, કલઈ અને સીસું આટલી ધાતુનાં પાત્રો તે તૈજસ પાત્ર સમજવાં. તે તૈજસ પાત્રોને પૈશાલ વિગેરેથી [2]ઉપઘાત થાય ત્યારે તેની શુદ્ધિ અપરાર્ક તથા નિર્ણયામૃતમાં બૌધાયને આ પ્રમાણે કહેલી છે :

> ''તૈજસ પાત્રોને મૂત્ર, વિષ્ઠા, વીર્ય, રૂધિર, શબ અને મદ્ય નો અત્યન્ત સ્પર્શ થાય તો આવર્તન(અગ્નિના તાપથી રસ કરાવી નવીનતા કરવી) કરવું. અને જો અલ્પ સંસર્ગ થાય તો પરિલેખન(એટલે ચોતરફથી શસ્ત્રોવડે અવયવપાત્રના ઘસાવી નાખવારૂપ કર્મ) કરવું. અને ફક્ત સ્પર્શ જ જો થાય તો એકવીશ વાર રાખથી ચોતરફથી માંજી નાખવું. અને તૈજસ સિવાયના બીજા પાત્રોને જો તેવો સ્પર્શ થાય તો ઉત્સર્ગ(ત્યાગ) કરવો''.

પાત્રોને માંજી નાખવાની બાબતમાં 'હારીત' નામના ગ્રન્થકારે તથા શાતાતપે આ પ્રમાણે કહ્યું છે કે ''સોના, રૂપા, ત્રાંબા, કલઈ, કીટોળાવાળું લોઢા, પીતળ, સીસા અને સાધારણ લોઢા નું પાત્ર, પથ્થરના ઘસવાથી પવિત્ર થાય છે''. તેમજ બીજી સ્મૃતિમાં પણ

કહ્યું છે કે કાંસાનું વાસણ મદ્યથી ઉપલિપ્ત (લેપવાળું) થતું નથી તે પાત્ર રાખથી પવિત્ર થાય અને જે કાંસાનું પાત્ર મદ્ય અથવા મૂત્ર યા વિષ્ઠાથી લેપવાળું થાય તે કાંસાનું પાત્ર તાપ અને ઘસાવવાથી પવિત્ર થાય છે. અને જો ત્રાંબાનું પાત્ર અપવિત્ર થયું હોય તો તે ત્રાંબાનું પાત્ર ખટાશથી પવિત્ર થાય છે, પરન્તુ જો તે પાત્ર માંસના લેપવાળું ન થયું હોય તો અને જો માંસના લેપવાળું થયું હોય તો, દાહ કરવાથી શુદ્ધ થાય છે.

બૌધાયનની માફક વિષ્ણુ પણ કહે છે કે વિષ્ઠા, મૂત્ર, વીર્ય, શબ, રૂધિર ના લેપવાળાં [૩]તૈજસ પાત્રો [૪]આવર્તન કરવાથી, ઉલ્લેખન(ઘસવાથી), તાપ આપવાથી અને એકવીશ વાર રાખથી માંજવાથી પવિત્ર થાય છે. તૈજસ પાત્રોને વીર્ય, વિષ્ઠા, મૂત્ર, રુધિર તથા શબ વિગેરેનો ઘણો સંસર્ગ થાય તો અને ચાણ્ડાલ, સુવાવડી સ્ત્રી, રજસ્વલા, પતિત વિગેરેનો પણ જો ઘણો સ્પર્શ થાય તો, આવર્તન(અગ્નિના તાપથી ગાળી નખાવવું) કરવું. અને ઉપરનાઓનો જો થોડો સ્પર્શ થાય તો પ્રતાપન(બરોબર તપાવવું). અને જો ઉપર કહેલાઓનો સ્પર્શ જ માત્ર થાય તો એકવીશ વાર રાખ વિગેરેથી માંજી નખાવવું.

'અપરાર્ક' નામના ગ્રન્થકાર કહે છે કે એકવીશ વાર માંજવું અને ધોવું એમ વારંવાર કરતું જાવું. એ પ્રમાણે એકવીશ વાર કરવાથી શુદ્ધ થાય છે એમ એમનો મત છે. નિર્ણયામૃતમાં પણ એમજ કહ્યું છે. તૈજસ પાત્રોને મૂત્ર વિગેરેનો સ્પર્શ થાય તો ફરીથી નવું કરાવવું. અથવા એમ ન બને તો ગોમૂત્રમાં રાખવું એ પણ યુક્ત છે. એમજ માંજાર, પલ્લી વિગરેના મૂત્રાદિકનો અત્યન્ત સ્પર્શ થાય તો ઉપર કહેલ પ્રમાણે જ શુદ્ધિ કરવી.

તેમજ તમરા વિગેરે હલકા જીવો શાક વિગેરેમાં પડી રંધાઈ ગયા પછી જાણવામાં આવે અને પછી પાકના પાત્રમાં તે જાનવરના અવયવો લેપરૂપે જોવામાં આવે તો તે પાત્રને તપાવવું. અને [૫]અંધીચીચી, ઉંદર વિગેરે જાણવામાં આવે તો તે પાત્ર ઉલ્લેખન(ચોતરફથી અવયવનું ઘર્ષણ) કરાવવું. માછલી તથા જલજીવ વિગેરેના શબના સંસર્ગમાં પણ એમજ સમજી લેવું. તેમજ સ્પર્શ કરેલા પાત્રો જો ભોજનના પાત્રો હોય તો અલ્પ સ્પર્શ થવાથી રાખ વિગેરેથી માંજી નાખવું, સાક્ષાત્ જો સ્પર્શ થાય તો વધારે વખત માંજી નાખવું જોઈએ એમ જાણવું.

વળી ત્રાંબાના વાસણમાં દૂધ, દહીં રાખવામાં આવે અને કાંસાના પાત્રમાં મધ રાખવામાં આવે અને ગોળ અને આદુ ભેળું થાય તો તે મદ્ય જેવું અથવા મદ્ય જ સમજવું. પરન્તુ તેમાં ઘી ભેળું ન થવું જોઈએ એમ સ્મૃતિઓમાં વચનો છે. આવી જાતના અલ્પ અપવિત્રતાના સંસર્ગમાં તે પાત્રની માંજવાથી શુદ્ધિ થાય છે. માટે જ સદાચાર ચન્દ્રોદયમાં ષટ્ત્રિંશન્મતમાં લખે છે કે હોમ કાર્યમાં, દોહન કરવામાં, રાંધવામાં, પીરસવામાં અને સ્નાન, તર્પણ અને દાન માં ત્રાંબાના પાત્રમાં રાખેલું ગવ્ય (દૂધ, દહીં, ઘી, ગોબર, ગોમૂત્ર) દોષવાળું થતું નથી. એમજ દીવાના ફક્ત સ્પર્શમાં પણ જાણવું. તથા ગાય, બેલ વિગેરેના સુંઘેલાં પાત્રો દશ વખત માંજવાથી પવિત્ર થાય છે એમ પરાશર વિગેરેના વાક્યોમાં શુદ્ધિ જણાવી છે. 'શંખ' નામના ગ્રન્થકાર કહે છે કે કાળા પક્ષીના મુખના સ્પર્શવાળું પાત્ર

ઘસવાથી શુદ્ધ થાય, પરન્તુ કેવલ માંજવાથી શુદ્ધ થતું નથી. કોઈ 'શ્વાપદ' નામના જાનવરના મુખના સ્પર્શથી અપવિત્ર થયેલું પાત્ર ઉલ્લેખન કરવાને યોગ્ય છે એવો પણ મત છે. કારણ કે તેનો નિષેધ શંખ જ જણાવે છે. માટે મૂલમાં 'મુખ' શબ્દ લખ્યો છે તે પરથી ઉપર પ્રમાણે શુદ્ધિ સાબિત થાય છે. અનાન્તરના સ્પર્શમાં પણ તેમજ જાણી લેવું. 'શ્વાપદ' નામનું જાનવર માંજારથી કોઈ બીજી જાતનું જાણવું. 'વિજ્ઞાનેશ્વર' લખે છે કે માંજાર, દર્વીઅને પવન હંમેશ પવિત્ર જ છે. એજ યુક્ત પણ છે.

પાત્રસમુદાય હોય તો જે પાત્રને અપવિત્ર પદાર્થનો સ્પર્શ થાય તે જ પાત્ર અપવિત્ર થાય, બીજા નહીં, તે બાબત અપરાર્કમાં હારીત કહે છે કે સંહત પાત્રોમાં(પાત્ર સમુદાયમાં) જે એક પાત્રને અપવિત્રતાનો દોષ લાગુ પડે તેજ પાત્રને શુદ્ધ કરવું. પરન્તુ તે અપવિત્ર પાત્ર જેને અડ્યું હોય તેવાં બીજાં પાત્રોને શુદ્ધ કરવાની જરૂરી નથી. 'શંખ' નામક ગ્રન્થકાર પણ લખે છે કે પોતાના અથવા પારકાના સંયોગથી પેદા થનારો દોષ જે પાત્રનો જેણે કરીને જાય તો તેનું શોધન કરવું કહેલું છે. તે શોધન દ્રવ્યની શુદ્ધિ કરનારું સામાન્ય જાણવું. શોધનની રીત પૂર્વોક્ત હારીતના વચનને અનુસરનારી જાણવી.

જેની શુદ્ધિ શાસ્ત્રવચનોથી ન જણાય તેઓની શુદ્ધિ મર્યાદાસિન્ધુમાં શતાતપ કહે છે કે જે અપવિત્ર પદાર્થને જે એક સ્પર્શ કરે તો તે જ દૂષણને પ્રાપ્ત થાય છે અને તેને બીજો સ્પર્શ કરે તો તે દોષવાળો થતો નથી. આ વિધિ સર્વ પદાર્થો માટે સમજી લેવી. આ પરથી કાષ્ઠ વિગેરેમાં [૭]ચીવરાદિનો સંસર્ગ થાય તો તે સંસર્ગનું સ્વરૂપ વિચારી અશુદ્ધિની કલ્પના કરવી. માંજારની વિષ્ઠા વગેરેના સંસર્ગમાં તો એમ સમજવું કે તે વિષ્ઠા અપવિત્ર છે માટે તેને જો કોઈ બીજો પદાર્થ અડકે તો તે પણ અપવિત્ર બને, કારણ કે સદાચાર પણ તેવો જ છે માટે એમ જાણવું. બૌધાયન કહે છે કે લાકડાનાં પાત્રો એઠાંનાં કામમાં આવ્યાં હોય તો તે પાત્રોને ઘસાવવાં અને એઠાંના લેપવાળાં થયાં હોય તો તેને છોલાવવાં અને મૂત્ર, વિષ્ઠા, વીર્ય વિગેરેના દોષવાળાં થયાં હોય તો ત્યાગ કરવો. અહીં 'અવલેખન' શબ્દથી શસ્ત્ર અથવા વસ્ત્ર થી કાષ્ઠનાં પાત્રોને ઘસવું એમ સમજવું, 'તક્ષણ' એટલે છોલવું એ શબ્દ જુદો લખ્યો છે માટે 'મર્યાદાસિન્ધુ' ગ્રન્થમાં લખ્યું છે કે શબ, ચાણ્ડાલ અને વિષ્ઠા નો જો અલ્પ સંસર્ગ થાય તો પણ ઘર્ષણ(ઘસવું) કરવું. કોઈ એમ કહે છે કે વિષ્ઠાનો જો પાત્રને સંસર્ગ થયો હોય તો જ્યાં સુધી ગન્ધનો નાશ ન થાય ત્યાં સુધી છોલાવવું. અને શબ વિગેરેના સ્પર્શમાં માટી–પાણીથી ધોઈ નાખવું. કૂતરાં વિગેરેનો સ્પર્શ થયો હોય તો ચટાઈ આસન વિગેરેને ધોઈ નાખવાં એવો મત છે. તે ઠેકાણે પણ રસોઈ કામમાં આવતા પાત્રોનો તો ત્યાગ જ કરવો એમ અમને (ગ્રન્થકારને) ભાસે છે. શીંગડાં, દાંત, હાડકાના પાત્રોની પણ તેજ પ્રમાણે વ્યવસ્થા જાણવી. મણિમયપાત્રોને માટે મૂત્ર વિગેરેનો સંસર્ગ થાય તો વિષ્ણુ કહે છે કે મણિમયપાત્રો, પથ્થરનાં પાત્રો, અબ્જપાત્ર(છીપ, મોતી વિગેરેનાં)ને સાત રાત્રિ પર્યન્ત જમીનમાં ડાટી રાખવાં અને એઠાંનો સંસર્ગ થયો હોય તો કશ્યપ કહે છે કે રેતીથી દાંતનાં, શીંગડાંનાં, શંખનાં, છીપનાં, મણિનાં પાત્રોની શુદ્ધિ કરવી. અપરાર્કનો પણ મત એમ જ

છે. એમજ વાંસનાં, લાકડીનાં, નેતરનાં અને નિચૂલ(પનસ) વિગેરેનાં પાત્રોની શુદ્ધિ કાષ્ઠપાત્ર માફક કરવી. તેમાં પણ જો વાંસ, લાકડીનાં પાત્રોમાં કપડાં રાખવામાં આવતાં હોય તો પ્રયોજન(કાર્ય જરૂરી)નો વિચાર કરી ગન્ધ લેપનો જેવી રીતથી યોગ્ય નાશ થાય તેવી રીતે ધોઈને શુદ્ધિ કરવી. પાકેલાં અન્ન જો રાખવામાં આવતાં હોય તો તે પાત્રોનો ત્યાગ જ કરવો ઉચિત છે. માટીનાં વાસણની તો ફરીથી પકાવવાથી જ શુદ્ધિ થાય છે. અને તે પણ શુદ્ધિ કૂતરાં વિગેરેના સ્પર્શ દોષમાં જ કરવી, બીજાં સાધારણ દોષોમાં નહીં. તે બાબત મનુ કહે છે કે મદ્ય, મૂત્ર, વિષ્ઠા, કફ, દુર્ગન્ધિપદાર્થ, રૂધિર, આંસુ ના સ્પર્શથી થયેલું અપવિત્ર માટીનું વાસણ શુદ્ધ થતું નથી. પરન્તુ જો ફરીથી તેનો પાક થાય તો શુદ્ધ થાય છે. મર્યાદાસિન્ધુમાં પણ લખ્યું છે કે થૂંક, રૂધિર વિગેરેના સ્પર્શવાળું માટીનું પાત્ર ત્યાજ્ય છે અને જો બીજા સાધારણ દોષવાળું જો તે પાત્ર થયું હોય તો જેમ-તેમ ચાલે, પરન્તુ ચાણ્ડાલાદિનો સ્પર્શ થયો હોય ત્યારે તો ત્યાગ જ કરવો. અપરાર્કમાં સ્મૃત્યન્તરથી લખે છે કે ચાણ્ડાલોએ સ્પર્શ કરેલું ધાન્ય અથવા કપડું તે ધોઈ નાખવાથી શુદ્ધ થાય છે, પરન્તુ માટીના વાસણનો તો ત્યાગ જ કરવો.

ફલના પાત્રોની શુદ્ધિ કહી જ છે. પરન્તુ અત્યન્ત અપવિત્ર પદાર્થનો સંસર્ગ થાય તો ત્યાગ જ કરવો યોગ્ય છે. વળી અપરાર્કમાં કહ્યું છે કે માટી તથા જલ થી શુદ્ધિ કરવી. એમ કહીને આગળ લખે છે કે દોરી વલ્કલપાત્રોની તથા ચમસ(યજ્ઞપાત્ર), તૂંબડાં, ચામડાં એઓની શુદ્ધિ કરી પછી ગાયના વાળની દોરીથી ઘસવું, ત્યારે શુદ્ધ થાય છે. ચામડાંમાટે કશ્યપ કહે છે કે ઘાસ, કાષ્ઠ, રજ્જુ, ભોજપત્ર, શણ, રેશમ, જન્તુ (કોઈ જાતનું પાંદડાંનું પાત્ર યા વસ્ત્ર, ચાંમડું, વાંસ, પંખા, ફલ, પત્ર, વલ્કલ વિગેરેની વસ્ત્રમાફક શુદ્ધિ કરવી. માટી, કાષ્ઠ, ચાંમડાં અત્યન સંસર્ગવાળાં થયા હોય તો ત્યાગ કરવો. [७]અસંસ્કૃત જમીનમાં રાખવામાં આવ્યાં હોય તો તે પદાર્થો ધોઈ નાખવા. પરોક્ષ મંગાવેલા પદાર્થોની ઉપર જલથી પ્રોક્ષણ કરવું. એમજ હલકી જાતની સમિધાઓ પણ જો અપવિત્ર પદાર્થ વિગેરેના સંસર્ગવાળા થયાં હોય તો પણ પ્રોક્ષણ કરવું. પરન્તુ તે સમિધાઓ એક પુરુષથી ઉપડી શકે તેટલાં હોય તો તેમ કરવું. કાચબાના કડાં વિગેરેની શુદ્ધિ ચર્મ(ચામંડા) પ્રમાણે કરવી એમ સમજવું. એમજ બીજાઓને માટે પણ સમજી લેવું.

૧.તૈર નામનું એક જાતનું મદ્ય હોય છે. ૨.સ્પર્શ. ૩.સોનું, રૂપું, ત્રાંબુ, કાંસું, લોઢું, કલઈ સીંસાનાં પાત્રો સમજવાં. ૪.અગ્નિના તાપથી ગાળી નાખવું. ૫.અથવા ઢેઢગરોડી પણ લોકો કહે છે. ૬.ચીથરાં વિગેરે. ૭.સંસ્કારવિનાની.

૧૮. શૈયા વિગેરેની શુદ્ધિનો વિચાર

આ બાબતમાં બૌધાયન કહે છે કે

''આસન, શયન, યાન(રથગાડી વિગેરે), વાહાણો, માર્ગ, ઘાસ, આટલા પદાર્થો અને પાકેલી ઈંટોનો ઢગલો

પવનથી તથા સૂર્યથી પવિત્ર થાય છે. પોતાની શૈયા, આસન, યાન, (રથાદિ) સ્ત્રી, છોકરું, કમણ્ડલું આટલી ચીજો પોતાની પવિત્ર જાણવી અને પારકી હોય તો અપવિત્ર જાણવી''.

આ બાબતમાં 'હારિત' નામક ગ્રન્થકાર કહે છે કે યાન-શયન બીજાના ત્યાગ કરવા લાયક છે. અર્થાત્ તે બની શકે છે. એમ માનવામાં આવે છે. તે ઠેકાણે કહે છે કે નહીં એમ યોગ્ય નથી કારણ કે જુદા-જુદા વર્ણો કહ્યા છે. માટે પવિત્ર-અપવિત્રના સંસર્ગ દોષથી પાપના સંસર્ગનો સમ્બન્ધ બને છે માટે જુદી-જુદી જાતની પવિત્રતા કલ્યાણ કરનારી હોય છે. અહીં અર્થ એમ સમજવાનો છે કે ધર્મશાસ્ત્રમાં ચારે વર્ણોમાટે ઉત્તમતા, અધમતા જણાવેલી છે. તેમજ પાપ-ઉપપાતકને કરનારા મલિન લોકો(પાતકી લોકો) તેની સાથે પાપરહિત લોકો જો તેના સમાન આસન અથવા શૈયામાં શયન વિગેરે કરે તો, પાતકીનો તે પાપરહિત લોકોએ સંસર્ગ કર્યો ગણાય તેથી તેઓને પ્રાયશ્ચિત્ત કરવાને જણાવેલું છે અને એમજ પાપરહિત માણસને જો પાતકીનો સમ્બન્ધ થાય તો જેમ રોગીનો સંસર્ગ રોગરહિતને બને તેની માફક પાતકીનો સંસર્ગ જો નિષ્પાપને થાય તો પાપ લાગે અને પ્રાયશ્ચિત્ત કરવું પડે માટે જુદી-જુદી શૈયાઓ જુદાં-જુદાં આસન કરવાથી જુદી-જુદી જાતનું પવિત્રપણું શ્રેયસ્કર છે. એમ જાણવું.

ત્યારે પોતાની શૈયા અથવા આસન ન મળે તો શું કરવું. આ બાબતમાં ફરીથી હારીત કહે છે કે પોતાની શૈયા વિગેરે ન મલી શકે તો પવિત્ર ધાબળા વિગેરેથી અન્તર્ધાન કરી એટલે તેની ઉપર બિછાવી અથવા ધાબળાથી ઢાંકી ધાબળાની અંદર તે શૈયાને રાખી તે શૈયાનો ઉપયોગ કરવો. કારણ કે પતિત (પાતકી) વિગેરેની શૈયા વિગેરેનો જો સ્પર્શ થાય તો સચૈલ(કપડા શીખે) સ્નાન કરવાને અપરાર્કે જણાવ્યું છે. આ શૈયાની બાબત ઉપરથી ગાદી, તકિયા, આસન વિગેરે માટે સમજી લેવું. વળી એમ પણ લખ્યું છે કે શયન(બિછાનું), આસન, યાન(રથાદિ) અને સમુદાયવાળો દ્રવ્યસમૂહ, આટલા પદાર્થો ચાણ્ડાલ વિગેરેના સ્પર્શવાળા થાય તો પણ પ્રોક્ષણ કરવાથી પવિત્ર થાય છે. વળી ગાદી, તકિયા વિગેરેને એઠાંનો સ્પર્શ થાય તો સર્વનિબન્ધમાં દેવલઋષિ કહે છે કે

''ગાદી, ગાદલું, ઓશિકું યા તકિયો, પુષ્પ, લાલ વસ્ત્ર, આટલા પદાર્થોને છાંયામાં જરા સુકાવી જરાક હાથથી ઝાટકી નાખવા. એટલે સાફ કરવાં યા જલથી સાફ કરવાં. પછી ફરીથી જલ છાંટી કામમાં લગાડવાં અને જો તે અતિમલીન થયાં હોય તો યથાયોગ્ય શુદ્ધ કરવાં''.

બૃહત્પરાશર કહે છે કે વસ્ત્ર, ઉપસ્કરસહિત શૈયા, લાલ કપડાં અને પુષ્પો પ્રોક્ષણ કરવાથી શુદ્ધ થાય છે એમાં સંશય નહીં એમ શાસ્ત્રમાં કહ્યું છે.

૧૯. ધાન્ય વિગેરેની શુદ્ધિ કરવાનો વિચાર.

મનુ કહે છે કે ''ઘણુ અન્ન હોય તો અથવા ઘણા વસ્ત્ર હોય તો જલ છાંટવાથી તેની શુદ્ધિ થાય છે અને જો થોડાં હોય તો જલથી ધોઈ નાખવાથી શુદ્ધિ થાય છે''. યાજ્ઞવલ્ક્ય પણ કહે છે કે ''સમુદાયવાળાં ઘણાં વસ્ત્રો અથવા ધાન્યો પ્રોક્ષણ કરવાથી શુદ્ધિ થાય છે''.

અહીં સમુદાયપણું યા બહુપણું સ્વરૂપથી થયેલું ન સમજવું. કિન્તુ બહુપણું એટલે અનેક માણસોથી ઉપાડી શકાય તેનું નામ બહુપણું એમ અર્થ સમજવો. એમ 'અપરાર્ક' નામક ગ્રન્થકાર કહે છે. અને એ કથન યોગ્ય જણાય છે કારણ કે એક મુઠી ભરીને અનાજ હોય તો તે પણ દાણે-દાણે અન્ન એવું નામ ધારણ કરશે જ. અને બહુ પણ કહેવાશે. અથવા ત્રણ દાણા અનાજ હોય તો તે પણ બહુ એમ તો કહેવાશે. કારણ કે એકથી વધારે અનેક જેમ કહેવાય છે તેના માટે બહુ નામના વિશેષણને વ્યર્થતા પ્રાપ્ત થાય માટે ઉપરનો અર્થ યોગ્ય છે. આ બાબતમાં 'બૌધાયન' નામના ગ્રન્થકારની પણ સમ્મતિ આ પ્રમાણે છે.

> ''સમુદાયવાળાં કાષ્ઠ વિગેરેને જો ચાણ્ડાલાદિનો સ્પર્શ થાય તો અને એક પુરુષ ઉપાડી શકે તેનાથી ઓછા હોય તો તેને જલથી ધોઈ નાખી પછી સુકાં કરી લેવાં અને અનેક પુરુષો ઉપાડી શકે તેવાં અને તેટલાં હોય તો તે કાષ્ઠોને જમીન બરાબર સમજવાં''.

એમ 'લૌગાક્ષિ' નામના ગ્રન્થકારનો મત છે.

ચાણ્ડાલ વિગેરેએ સ્પર્શ કરેલી જાજી ચીજ હોય તો પ્રોક્ષણ કરવાથી શુદ્ધ થાય અને અલ્પ હોય તો જેમકે કાંઈક ધાન્ય હોય તો ધોઈ નાંખવું. અને જો ચોખા હોય તો તેનો ત્યાગ કરવો. અહીં ચોખા આ શબ્દથી ફોતરાં વિનાનાં ધાન્યનું ગ્રહણ છે એમ સમજવું અને ત્યાગ કરવો તે પણ જો તો ધાન્ય થોડું હોય તો કરવો કારણ કે જાજા અનાજની શુદ્ધિ બીજી આગળ કહેવાની છે માટે. તે બાબતમાં બૌધાયન કહે છે કે

> ''શાળ, શાક, મૂલ અને ફલ આટલી ચીજો પ્રોક્ષણ કરવાથી પવિત્ર થાય છે અથવા જેટલો ભાગ અપવિત્ર થયો હોય તેટલા ભાગનો ત્યાગ કરવાથી, અથવા માથેથી ફોતરાં કાઢી નાખવાથી પવિત્ર થાય છે. અનેક પુરુષથી ઉપડી શકે તેવાં શાળ ધાન્યને જો ચાણ્ડાલ વિગેરેનો સ્પર્શ થાય તો પ્રોક્ષણ કરવાથી શુદ્ધ થાય અને મૂત્ર વિગેરેનો સંસર્ગ થયો હોય તેટલા ભાગનો ત્યાગ કરવાથી શુદ્ધ થાય, અથવા અપવિત્ર રજ વિગેરે દ્રવ્યનો સંયોગ થાય તો તે ધાન્યને ફોતરાંરહિત કરવાથી શુદ્ધિ જાણવી''.

કશ્યપ કહે છે કે

> ''અનેક પુરુષોથી ઉપાડી શકાય તેવાં શાળ વિગેરે ધાન્ય એટલે શાળ, જવ અને ગોધૂમ(ઘઉં) તેઓને પ્રોક્ષણાદિ કરવું એટલે શાળને પ્રોક્ષણ કરવું. જવને પર્યગ્નિકરણ(બળતું ઉબાળિયું ઉપર ફેરવવું). કરવું અને ઘઉંને ધોઈ નાખવાં અને શાળ વિગેરે ચોખા થોડા હોય તો વિમર્શન(હાથથી ચોળી નાખવાં) કરવું અને અનેક પુરુષોદ્ધાર્ય (અનેક પુરુષથી ઉપડી શકે તેવાં) ધાન્ય, શાળ કે ચોખા હોય તો પ્રોક્ષણ કરવાથી શુદ્ધિ થાય. કાંતો ખાંડવાથી ઉજ્વલ કરવું. શમીધાન્ય (કોશીધાન્ય) એટલે જેની ફળીયું થાય છે તેવું ધાન્ય. જેમકે મગ, અડદ, વિગેરે તે જો એક પુરુષથી ઉપડી શકે તેટલું હોય તો હાથથી ચોડી નાખવું અને જો અતિ અલ્પ હોય તો દળી નાખવું અને અનેક પુરુષધાર્ય હોય તો પ્રોક્ષણ કરવું''.

અહીં નિઘર્ષણ એટલે પ્રથમ કહી ગયેલું વિમર્શન એટલે ચોખું કરી વીણી ચોળી સાફ કરવું એમ જાણવું. અને જો અત્યન્ત અલ્પ હોય તો ત્યાગ કરવો.

આદિત્યપુરાણમાં લખ્યું છે કે ''ઘરમાં આગ લાગી હોય અને પશુ માણસો મરણ પામે તો તે ઘરમાં રહેલી શાળ તથા ધાતુ-દ્રવ્યનો સઙ્ગ્રહ અને માટીના વાસણમાં રહેલાં જવ, અડદ, તિલ વિગેરે દોષવાળાં થતાં નથી''. એમ મનુએ કહ્યું છે. ત્યાર પછી ''ઘરમાં અગ્નિ વધવા લાગે અને ઠેકાણે-ઠેકાણે બળવા લાગે અને કોઈ પ્રાણીનો નાશ ન થાય ફક્ત ઘર જ બળી જાય તો ઘરમાં રહેલાં સર્વ પદાર્થો વિચાર ન કરતાં લઈ લેવા''. આ પ્રમાણે અપરાર્કમાં પણ લખ્યું છે તે જાણવું. મિતાક્ષરામાં વિજ્ઞાનેશ્વર કહે છે કે

> '' બહુપણું એટલે શું કે જે ઠેકાણે ઘણું ધાન્ય પડેલું છે અને ઘણાં કપડાં પડેલાં છે એટલે અનાજ કપડાના ઢગલા પડે છે તેવામાં આવીને તેને ચાણ્ડાલનો સ્પર્શ થાય તે વખતે એમ બને કે ચાણ્ડાલનો સ્પર્શ કેટલાએકને થયો છે અને કેટલાએક મોટા ભાગને નથી થયો, તો તેવે ઠેકાણે એમ કરવું યોગ્ય છે કે જે કપડાઓને સ્પર્શ થયો છે તે કપડાં સર્વે ધોઈ નાખવાં. અને બીજાં કપડાંને પ્રોક્ષણ કરવું અને અનાજમાટે પણ તેટલો ભાગ અનાજનો જેને ચાણ્ડાલનો સ્પર્શ થયો છે તે કાઢી નાખવો. બાકીના ઉપર પ્રોક્ષણ કરવું અને જો જાજો ભાગ અપવિત્ર થયો હોય તો તે ભાગને ધોઈ નાખવો. અને જો બન્ને ભાગ સરખાં હોય તો પ્રોક્ષણ કરવું. આટલો ભાગ પવિત્ર છે અને આટલો ભાગ અપવિત્ર છે એ બાબતના અવિવેકમાં તો ધોઈ નાખવાથી

જ શુદ્ધિ થાય. અને અનેક પુરુષધાર્યપણામાં તો સ્પર્શ કરેલાને પણ પ્રોક્ષણ કરવું''.

આ પરથી પરમ્પરા બાબતનો સ્પર્શ પણ આવી જ જાય છે. 'મર્યાદાસિન્ધુ' નામના ગ્રન્થમાં એમ લખ્યું છે કે ''દ્રોણથી (દ્રોણ શબ્દનો અર્થ આઠ હજાર બસો છપ્પન પલ જાણવો. પલ એટલે ચાર તોલા) વધારે જે પદાર્થ હોય એટલે જો દ્રોણથી વધતું અનાજ હોય તો તેને બહુપણું લાગુ થાય છે તે ઠેકાણે દેશકાલ જોઈને શુદ્ધિ કરવી''. એમ બૌદ્ધાયનનું કહેવું છે. અને બીજા પણ લોકો કહે છે જેમકે ''દુકાળની વખતે હલકી ગતિવાળા એટલે જેને અન્ન ખાવા નથી મળતું તેવા માણસને એક અડધો શેર અન્ન હોય તો તે બહુ તરીકે કહી શકાય છે અને તેવા વખતમાં યુક્ત જ છે''. એમજ વસ્ત્રોમાટે પણ બહુપણું અનેક પુરુષધાર્ય હોય તો જાણવું અને ત્રણ કપડાથી વધારે કપડા હોય તેને બહુપણું પણ પૂર્વોક્ત રીતથી તેવા વખતમાં જાણી લેવું જોઈએ. નાગદેવ વિરચિત સઙ્ગ્રહમાં લખ્યું છે કે ''વીશ ધોળાં કપડાં, અગીયાર ચિત્ર-વિચિત્ર કપડાં અને ત્રણ કસુંબલ કપડાં, બહુ તરીકે કહેવાય છે''.

હવે **સંહત**પણું એટલે વિજ્ઞાનેશ્વર કહે છે કે ''જેની એટલે જે પદાર્થની શુદ્ધિ કરવી કહી છે તે પદાર્થના અવયવોને પરસ્પર સંહત તરીકે કહેવાય છે''. મર્યાદાસિન્ધુકાર એમ કહે છે કે ''સંહતપણું એટલે કઠિનપણું સમજવું. તેણે કરીને ઠંડું ઘી, ગોળ, શેરડીનો રસ વિગેરેને સંહત તરીકે કહેવાય''. અંગિરા એમ જણાવે છે કે ''શયન, આસન અને યાન આટલી ચીજો જો રોમવાળા એટલે ઉનના કપડામાં બંધાયલી હોય એટલે તે કપડાં રોમબદ્ધ થયાં હોય તો તે સંહત તરીકે કહેવાય''. અહીં રોમબદ્ધ શબ્દથી ધાબળાનું ગ્રહણ કરી શકાય છે. અહીં જેમ યોગ્ય શુદ્ધિ કરવી ઘટે તેમ કરવી પ્રાપ્ત છે.

જલવિનાના રસોની શુદ્ધિ **પ્લાવન** કરવાથી થાય છે. પ્લાવ એટલે સમાન પદાર્થથી વાસણ ભરવું અને તે પાછું જરાક જેણે કરીને નીકળે તેનું નામ પ્લાવ અથવા પ્લાવન એમ વિજ્ઞાનેશ્વર કહે છે. સારાંશ એ છે કે એક વાસણમાં ઘી વિગેરે કાંઈપણ રસ ભર્યો હોય અને તેટલું તેવી જાતનું બીજું દ્રવ્ય તે વાસણમાં ભરવામાં આવે એટલે ભરેલામાં બીજી તેવી જાતની ચીજ ભરવામાં આવવાથી ઉભરાઈ જાય એમ અર્થ જાણવો. એમજ અપવિત્ર પદાર્થના સ્પર્શથી અપવિત્ર થયેલ બીજા રસાદિની તેજ પ્રમાણે એટલે આપ્રમાણે જ શુદ્ધિ કરવી. આનું જ નામ **ઉત્પવન** જાણવું. મનુ પણ સર્વ દ્રવ્યો (પાતળા પદાર્થો) ની શુદ્ધિમાટે ઉત્પવન કરવાને જણાવે છે. અહીં 'ઉત્પવન' એટલે બીજા પાત્રમાં આડું કપડું રાખી ગળી નાખવું. વિજ્ઞાનેશ્વર લખે છે કે એમ જો ન કરવામાં આવે તો કીટ વગેરે તે ચીજમાંથી ન નીકળી શકે માટે તેમ કરવું અવશ્ય પ્રાપ્ત છે. આ પ્રમાણે કેશ, કીટ, માંખી, વિગેરેવાળી ચીજમાટે કરવું એમ જાણવું. કુલ્લૂકભટ્ટવિરચિત મનુની ટીકામાં એમ લખ્યું છે કે ''પ્રાદેશમાત્ર (અંગુઠાના અગ્રભાગથી તે તર્જનીના અન્તપર્યન્ત) પ્રમાણવાળાં બે દર્ભનાં કટકાના અગ્રભાગથી 'પવમાનઃ

સુવર્જનઃ' એ અનુવાક(વેદમન્ત્ર)થી ઉત્પવન કરવું અથવા સ્પર્શ કરેલા અંશનું દૂરીકરણ કરવું''. આ પ્રમાણે પ્રોક્ત સ્થલમાં લખ્યું છે અને આ ઉત્પવન એક શેર પદાર્થ હોય તો કરવું પણ જો અલ્પ હોય તો-તો ત્યાગ જ કરવો. આ પણ કૂતરા, કાગડાના સ્પર્શમાં જાણવું. નીચવર્ણના વાસણનો સ્પર્શ થયો હોય તો તે ચીજ પાતલો પદાર્થ રસમય બીજા વાસણમાં પૂર્વોક્ત પ્રકારથી સિંચનરૂપ કરી, જેટલા પ્લાવથી તે રસ બહાર નિકળે તેટલો પ્લાવ કરી બાકીનો રહેલો ભાગ શિષ્ટલોકો (પ્રતિષ્ઠિત લોકો) છોડી આપે છે. ''મધ અથવા મધુપર્કનું જલ અથવા મધ અને જલ, દૂધ અને દૂધના વિકારો દહીં, છાશ વિગેરે એક પાત્રથી બીજા પાત્રમાં લઈ જવાથી શુદ્ધ થાય છે'' એમ બૌદ્ધાયનનું વચન છે.

એમજ શૂદ્રના વાસણમાં હોય તો પણ આ પ્રમાણે જ શુદ્ધિ કરવી અને નીચ વર્ણના હાથથી પ્રાપ્ત થયેલાઓને તો એક પાત્રથી બીજા પાત્રમાં લઈ જવું અને ફરીથી પ્લવન પ્રથમ કહી ગયા છીએ તે પ્રમાણે કરવું. 'શંખ'નામક ગ્રન્થકાર કહે છે કે ખાવાલાયક ઘૃતવાળા પદાર્થો હોય તો તેઓને ફરીથી પ્લવન કરવું. એમજ તેલ વિગેરેને અને રસોને પણ એજ પ્રમાણે કરવું. શાક વિગેરે માટે જેટલો ભાગ દૂષિત હોય તેટલો કાઢી નાખી બાકીનો હોય તેમનું આપ્લાવન કરવું એટલે શુદ્ધિ થાય છે.

મર્યાદાસિન્ધુમાં અને બ્રહ્મપુરાણમાં પણ જણાવ્યું છે કે ''સસ્ય ધાન્યના અંકુર અથવા નવીન ધાન્ય, ફોતરાવાળાં અનાજ અથવા શાળ, શાક, મૂલ, ફલ આટલા પદાર્થોમાં જેટલો ભાગ દૂષિત થયો હોય તેનો ત્યાગ કરી જલથી બીજા અવશિષ્ટ ભાગને ધોઈ નાખવો એટલે તેની તે શુદ્ધિ થઈ એમ સમજવું''.

મ્લેચ્છ વિગેરેના વાસણમાં રહેલાં હોય તો પરાશર કહે છે કે

> ''કાચું માંસ, ઘી, મધ, તેલ, ફળ અથવા ફલનો સમ્ભવ જેમાંથી થાય એમ હોય તે પદાર્થ આટલા પદાર્થો મ્લેચ્છના વાસણમાં રહેલા હોય ત્યાં સુધી અપવિત્ર અને બાહાર કાઢવામાં આવે ત્યારે પવિત્ર થાય છે એમ જાણવું''. તેમજ ''આભીર(ભરવાડ, ગોવાળ વિગેરે)ના વાસણમાં રહેલા દૂધ, દહીં અને ઘી પણ ત્યાં સુધી પવિત્ર કહેવાય કે જ્યાં સુધી તેમાં તે રહે છે. જેટલા પદાર્થો વેચવાલાયક હોય છે તે સર્વ કારીગરનાં હાથમાં જ્યાં સુધી રહે ત્યાં લગી પવિત્ર તરીકે સમજવાં''.

અહીં મ્લેચ્છના વાસણમાં રહેલા ચાર પદાર્થોની શુદ્ધિ કહીને આગળ બીજા વચનમાં દૂધ-દહીંને ભરવાડ-ગોવાળના વાસણનાં પણ શુદ્ધ તરીકે કહ્યાં. આ ઉપરથી એમ સમજવું કે જો ભરવાડ-ગોવાળ મ્લેચ્છ હોય તો તેના વાસણમાં રહેલાં દૂધ અથવા દહીં ન લેવા જોઈએ. કારણ કે 'મ્લેચ્છથી બીજો કોઈ નીચ છે જ નહીં' એમ વચન છે. ''વેચવાલાયક બજારમાં આવેલી બધી ચીજો પવિત્ર સમજવી'' એમ કહ્યું છે. આ પરથી પાકેલાં ફલો વિગેરે તો મ્લેચ્છ પાસેથી પણ લઈ શકાય છે એમ જાણવું. આંબા વિગેરેના

ફળો ઘણા દિવસે ઉપયુક્ત થઈ શકે છે માટે તે લોકોથી પક્વ પણ લઈ પ્રોક્ષણ કરવું એટલે શુદ્ધ થાય છે. ધોઈને રાખી મુકવાથી તેમાં ગન્ધ પેદા થાય છે. માટે જે પદાર્થની શુદ્ધિ કરવી જેમ યોગ્ય ઉપપત્તિ થાય તેવાં પ્રયોજનના બલથી જાણી લેવું.

કારીગરના હાથમાં રહેલી ચીજો પવિત્ર લખી છે. આ પરથી ધોબી, વણકર વિગેરેના સંસર્ગથી થયેલી અશુદ્ધિ પૂર્વોક્ત પવિત્રતાની અપવાદ તરીકે સમજવી. આ પરથી હલકી જાતના કારીગરોનું બનાવવાની ક્રિયામાં, પદાર્થોની ઉત્પત્તિમાં તથા સંસ્કારમાં લાગેલું પ્રત્યવાયનું કારણપણું નિવારણ કરવામાં આવે છે એમ જાણવું. અને ધોબી, નોકરો વિગેરેએ સંસ્કાર કરેલાં વસ્ત્ર વિગેરેનું વણકર યા દરજી, ઘાંચાં વિગેરેએ પેદા કરેલા પદાર્થોનું પવિત્રપણું છે જ એમ વાક્યનો અભિપ્રાય છે એમ સમજવું. તેથી કારીગરે સ્પર્શ કરેલ અન્ન વિગેરે પદાર્થવિના પદાર્થની ઉત્પત્તિ અને સંસ્કાર ન થાય તો તે પણ શુદ્ધ જ છે. જેમ વસ્ત્રની ઉત્પત્તિમાં ખળીમાટે જ શંખ કહે છે કે કારીગરનો હાથપવિત્ર છે. આકર દ્રવ્યો (પદાર્થની ઉત્પત્તિનું ઠેકાણું તથા પદાર્થો) પણ પવિત્ર જ છે. પૈઠીનસિ ઋષિ કહે છે કે દરેક આકરો(પદાર્થની ઉત્પત્તિના સ્થાનો), સુરા(મદ્ય)ના આકાર સિવાય, પવિત્ર જાણવાં. આ બાબતમાં અપરાર્કનો પણ મત છે. વિજ્ઞાનેશ્વર કહે છે કે કારીગરોને સૂતક વિગેરે હોય તો પણ તેના હાથથી બનતી કારીગરીમાં તેના હાથને પવિત્રપણું જાણવું. આ બાબતમાં પણ શાસ્ત્રનું વચન છે કે ''કારીગરો, વૈદ્યો, દાસી, દાસો, રાજાઓ, રાજાના નોકરો તરત પવિત્ર જ કહ્યા છે એમ જાણવું''. આ બેય બાબતો યોગ્ય જ છે.

૨૦. પાકેલા અન્નની શુદ્ધિનો વિચાર

આ બાબતમાં અપરાર્કમાં તથા સદાચારચન્દ્રોદયમાં યમ કહે છે કે

> ''અન્નમાં માખી અથવા કીટ(કીડો) જો જોવામાં આવે, અથવા ઉંદરની લીંડી, જોવામાં આવે યા છીકવામાં આવે અથવા 'અવધૂનિત' એટલે જેની ઉપર કપડું ધુણાવવામાં યા હલાવવામાં અથવા કપડાથી ફટકારવામાં આવ્યું હોય તેવું અન્ન જો થાય તો રાખથી તે અન્નનો સ્પર્શ કરી જલથી પ્રોક્ષણ કરવુ અને પછી તે અન્ન ખાવાના કામમાં લેવું''.
>
> ''જે અન્ન ઉપર છીક ખાવામાં આવી હોય તથા કેશ પડેલા હોય, પતંગીયું પડેલું હોય, કીડાઓ પડેલા હોય, રજસ્વલાએ જોયેલું હોય, યા પતિત માણસે(મહાપાપ કરનારે) જોયેલું હોય તો અલાત(ઉમ્બાડીયું) રાખ, જલ તથા [1]સોનાના જલથી સ્પર્શ કરી ભક્ષણ કરવા લાયક તે અન્ન થાય છે''

એમ મનુ કહે છે. અહીં 'માખી' શબ્દથી કાળી માખી સમજવી. બૌધાયન કહે છે કે ''હવિના દેષોમાં કાળી માંખી, શાતિકા નામની માખી, માંકડ, વસ્ત્ર, મસ્તકની જુ આટલા

પદાર્થો ગણેલા છે'' આમ અપરાર્ક પણ કહે છે. માટે સદાચારચન્દ્રોદયમાં વાક્ય છે કે ''મક્ષિકા(માખી) વિગેરેને અદુષ્ટપણું છે. માખી, દંશ(ડાંસ), મચ્છર, ઘુણ(કાષ્ઠનો કીડો), ઝીણી-ઝીણી કીડીયો અને સડેલા માંસનો કીડો આટલા પદાર્થો દોષને પેદા કરનારા થતા નથી'' એમ કહ્યું છે. અપરાર્ક એમ કહે છે કે અપવિત્ર પદાર્થમાં ફરનારો કીડો એમ અર્થ કરવો. બૌધાયન કહે છે કે

> ''કેશ, કીટ, નખ, રૂવાડાં, ઉંદરની વિષ્ઠા આટલા પદાર્થ અન્નમાં જો જોવામાં આવે તો તેટલો ભાગ અન્નનો ત્યાગ કરી બાકી રહેલા અન્ન ઉપર જલથી પ્રોક્ષણ કરવું. અને ભસ્મથી સ્પર્શ કરી પ્રશસ્ત વચનથી ગ્રહણ કરી 'ભૂર્ભૂવઃ સ્વ'' આ શબ્દો મુખથી બોલી ધ્યાન કરવું. પછી તે અન્નથી ભોજન કરવું''

એમ કહેલું છે. સદાચારચન્દ્રોદયમાં ચામડી અને કેશ આ બે બાબત વધારે કહી છે. એમજ યાજ્ઞવલ્ક્યનું પણ કથન છે. ગૌતમ કહે છે કે કેશ, કીટ સાથે પાકેલું અન્ન સર્વથા ભોજન કરવા લાયક નથી એમ નિર્ણયામૃતમાં કહેલું છે. મિતાક્ષરમાં પણ એમ જણાવેલું છે. એ યુક્ત પણ છે. કેમકે જો એમ ન હોય તો પરસ્પર વચનનો વિરોધ આવે.

ગાયે સુંઘેલા અન્નની પણ એજ વ્યવસ્થા જાણવી. માર્કણ્ડેયપુરાણમાં લખ્યું છે કે ''ગાયે સુંઘેલું હોય તથા કેશ, માખી અને કીટ થી દૂષિત હોય તો તે અન્નની શુદ્ધિ જલથી, રાખથી, માટીથી કરવી''. યાજ્ઞવલ્ક્યે પણ એમજ જણાવેલું છે. પરાશર કહે છે કે

> ''પાકેલું અન્ન [૨]દ્રોણભારથી વધારે હોય અને કૂતરાં-કાગડાના સ્પર્શવાળું હોય તો પણ તે અન્નનો ત્યાગ કરવો નહીં અને તેની શુદ્ધિમાટે બ્રાહ્મણોને પ્રશ્ન કરવો. અને જેમ તેઓ કહે તેમ કરવું. અને જો કૂતરાં, કાગડા વિગેરેનું ચાટેલું હોય તો તથા લાળવાળું હોય તો તેટલો ભાગ છોડી દઈ આઠ હજાર ગાયત્રીમન્ત્રથી પવિત્ર થયેલા જલથી પ્રોક્ષણ કરી અને મન્ત્રથી ચોતરફ અગ્નિ ફેરવી પછી તે અન્ન ભક્ષણ કરવા લાયક થાય છે એમ જાણવું''.

આ બાબતમાં જમદગ્નિ કહે છે કે દ્રોણ ભાર માત્ર(આઠ હજાર બસો છપન પલ) પાકેલું અન્ન કૂતરું-કાગડો વિગેરેએ સ્પર્શ કરેલું અને કશ-કીટવાળું પણ અન્ન આ પ્રમાણે શુદ્ધ થાય છે. એમજ વેચાણથી લીધેલું હોય તો પણ વિદ્વાનો કહે છે કે આજ પ્રમાણે શુદ્ધિ કરવી. પરન્તુ બે વાર પાકેલું તથા પીરવામાં આવ્યું હોય તેવું અન્ન [૩]શુક્તાદિ ક્યારે પણ પવિત્ર થતું નથી. અહીં 'દ્રોણ' શબ્દનો અર્થ આઠ હજાર બસો છપ્પન (૮૨૫૬) પલ સમજવો. ગૌતમઋષિ કહે છે કે અપરાર્ક, મર્યાદાસિન્ધુ, હેમાદ્રિ ગ્રન્થોમાં યમ અને મનુ કહે છે કે [૪]દેવદ્રોણીમાં, વિવાહમાં, યજ્ઞમાં, ઉત્સવોમાં કાગડા-કૂતરાઓએ

સ્પર્શ કરેલું જે અન્ન તે અન્નનો ત્યાગ કરવો નહીં. જેટલા અન્નને દૂષિતપણાનો દોષ લાગુ પડ્યો હોય તેટલા અન્નનો ત્યાગ કરી બાકીના અન્નને સંસ્કાર કરી શુદ્ધ કરવું. ઘાટા પદાર્થોને પ્રોક્ષણ કરવાથી શુદ્ધિ કરવી. પાતળા પદાર્થોની તાપ આપી શુદ્ધિ કરવી. જલની અગ્નિ તથા ઘી ના સ્પર્શથી શુદ્ધિ કરવી. છાગના(બકરાના) મુખનો સ્પર્શ થવાથી પવિત્ર થાય છે એમ જાણવું. 'દેવદ્રોણી' શબ્દથી દેવયાત્રા એવો અર્થ કરવો એમ અપરાર્કનું કથન છે અથવા પૂર્વોક્ત અર્થ મર્યાદસિન્ધુમાં લખ્યો છે આ અર્થથી ઘણું અન્ન એવો અર્થ દેખાડવામાં આવે છે. મર્યાદસિન્ધુમાં 'પ્રકૃત' એ શબ્દનો અર્થ ઉત્સવ એમ કર્યો છે.

(૧.સુવર્ણના સ્પર્શવાળું જલ. ૨.દ્રોણ શબ્દથી આઠ હજાર બસો છપન પલ સમજવા. પલ એટલે ચાર તોલા. ૩.સ્વભાવથી મીઠા રસો હોય અને કાલે કરી ખાટા થઈ જાય તે. ૪.દેવતાના નૈવેદ્યમાટે જે સ્થલમાં ઘણુંક અન્ન રાંધવામાં આવે તે.)

૨૧. ઘી, દૂધ વિગેરેની શુદ્ધિ કરવાનો વિચાર :

"ઘી, દૂધનો વિકાર એટલે દૂધની કાંઈ પણ ચીજ બાસુંદી વિગેરે, દૂધ, શેરડીનો રસ, ગોળ, શૂદ્રના વાસણમાં રહેલી છાશ તથા મધ આટલી ચીજો દૂષિત થતી નથી". ઉપર કહેલી ચીજો પવિત્ર ખરી પણ જે પાત્રમાં તે રાખવામાં આવે તે જો પાત્ર જ અપવિત્ર હોય તો તે પાત્ર બાબત જુદી શુદ્ધિ કરવી. તે શુદ્ધિ આટલી જ કે જે પાત્રમાં તે ચીજ હોય તેમાંથી બીજા પાત્રમાં તે ચીજ નાખવી.

આધાર દોષની બાબતમાં શંખ કહે છે કે દ્રવ(પાતળો પદાર્થ રસાદિ) એક પાત્રમાંથી બીજા પાત્રમાં નાખવો. તે ચીજો એ કે ઘી, દૂધનો કાંઈ વિકાર, દૂધ, શેરડીનો રસ, ગોળ.

ભક્ષ્ય-અભક્ષ્ય બાબત લખ્યું છે કે "બેલપાસે જવાની ઈચ્છા કરનારી ગાયનું તથા વાછડાવિનાની ગાયનું દૂધ નહી લેવું જોઈએ. એમજ ઉંટણીનું દૂધ એક ડાબલાવાળા જનાવરનું દૂધ, સ્ત્રીનું દૂધ, અરણ્યના જાનાવરોનું દૂધ તથા ગાડરનું દૂધ લેવું નહીં".

યાજ્ઞવલ્કયે સામાન્યપણાથી ઉપર કહેલાં દૂધનો નિષેધ કરેલો છે. છતાં પણ હારીત કહે છે કે

> "જે ગાયને બેલપાસે જવાની ઈચ્છા હોય તે ગાયનું અથવા જે ગાયે ગર્ભ ધારણ કર્યો હોય તેનું દુગ્ધ પાન કરવું નહીં. રૂતુપણાવાળી હોવાથી હતવત્સા(જેનો વાછડો મરી ગયો છે તેવી ગાય)નું પણ દૂધ તે ગાય વાછડાના શોકવાળી હોવાથી લેવું ન જોઈએ. તેમજ દુઝણી ગાય વાછડા વિનાની હોય તો પણ તેનું પણ દૂધ પીવાના કામમાં લેવું ન જોઈએ. જેમ કોઈ ખાવા બેઠેલા માણસ પાસેથી તેનું અન્ન ઝૂંટી લઈ કોઈ ખાય તેની માફક વાછડા વિનાની ગાયનું દૂધ પણ સમજવું. એમજ નવીન પ્રસૂતા થયેલી

> ગાયનું પણ દૂધ ન લેવું. કારણ કે રજોદોષવાળું તે હોય છે. માટે
> સાત રાત પછી તે નવપ્રસૂતાનું દૂધ લેવું એમ કોઈનો મત છે. દશ
> રાત્રિ પછી દૂધ કામમાં આવે એમ બીજા કોઈ કહે છે એક માસ
> પછી અમૃતરૂપ થાય છે એમ ધર્મના જાણનારાઓ કહે છે''.

આમ હારીતનું વચન છે. આ વચનની વ્યાખ્યા 'શ્રાદ્ધહેમાદ્રિ' નામના ગ્રન્થમાં લખી છે. મૂલ ગ્રન્થમાં 'વૃષસ્યન્તી' પદ છે આ ઉપરથી જ જે ગાયને મૈથુનની ઈચ્છા મટી ગઈ હોય તેવી ગાયનું દૂધ લેવાને હરકત નથી એમ જાણવું. જે ગાયનો, ભૂલી જવાથી, વાછડાનો શોક મટી ગયો હોય તેવી ગાયનું દૂધ પીવામાં અડચણ નથી. જીવતો વાછડો હોય અને દૂધ દોવા ટાણે દૂધના લોભથી એક બાજુ તેને બાંધી રાખે અને દૂધ બધૂં દોઈ લેવામાં આવે તો તે દૂધ વાછડાલાયક ન થવાને લીધે ઉપયુક્ત થતું નથી, કારણ કે લોભી માણસ હોય તે વાછડાનો ભાગ દૂધનો રાખતો નથી. માટે તે દૂધ અપવિત્ર છે એમ જાણવું. તેમાં દૃષ્ટાન્ત જેમ કે કોઈ માણસ જમતો હોય અને હઠથી તેનું અન્ન લઈ લેવામાં આવે અને પોતે જમી જાય તેમ તે જાણવું. તેમજ નવીન પ્રસૂતા થયેલી ગાયનું પણ દૂધ લેવાય નહીં. કારણ કે રૂતુપણું હોય છે માટે નવીન પ્રસૂતા થયેલી ગાયમાટે ઉપર લખ્યા ત્રણ પક્ષો જણાવ્યા છે. તે પક્ષોમાં જે પક્ષમાં રજોનિવૃત્તિનો નિશ્ચય થાય તે પક્ષનો સ્વીકાર કરવાથી તે દૂધનો ઉપયોગ કરવામાં ધર્મની હાનિ થતી નથી. જે ગાયનો વત્સ નષ્ટ થયો હોય તે ગાયને ખોળ વિગેરે ખવરાવવાથી જો વત્સના શોકની નિવૃત્તિ માલુમ પડે અને મરી ગયેલા વાછડાને લીધે જો તે તેને સુંઘે કરે નહીં એમ જો બને તો તે ગાયનું દૂધ શુદ્ધ સમજવું. અને નવીન પ્રસૂતા ગાયને દશ દિવસ જ્યારે થાય ત્યારે ઘણું કરીને હમણા શુદ્ધિનો અનિકાર કરવામાં આવે છે પરન્તુ સાત રાત સુધી ગાયના દૂધનો અનીકાર કરવામાં આવતો નથી, પરન્તુ સાત રાત પછી જ્યારે રજની નિવૃત્તિનો સંસર્ગ નષ્ટ થાય ત્યાર પછી શુદ્ધ જાણવું, માસ પૂર્તિની કાંઈ જરૂર નહીં.

વાછડા વિનાનું જે દોહન કરવું તે બાબતમાં તો એમ જાણવું કે જ્યાં સુધી વાછડું દૂધની ઈચ્છા કરે છે, ઘાસ વિગેરે ખાતાં નથી આવડ્યું અને દૂધ વિના બીજા પદાર્થથી તૃપ્ત થતું નથી તો પછી તે વાછડાને માટે યોગ્ય આહાર રાખી તે પછી દોહન કરવામાં આવે તો તે દૂધ શુદ્ધ છે એમ સિદ્ધ થાય છે.

તેમજ એકી સાથે બે પ્રજાને ઉત્પન્ન કરનારી ગાયનું દૂધ પણ ગૌતમ કહે છે કે લેવું યોગ્ય નથી. તેમાં કોઈ હેતુ ગ્રન્થકાર જાણાવતા નથી. એમજ ગર્ભવતી ગાયનું દૂધ લેવામાં દુગ્ધના સ્રાવને લીધે આંચળોમાં પીડા થતી હોય છે માટે તેમજ જોડલાને પેદા કરનારી ગાયના દૂધમાટે એવું કારણ દેખાય છે કે જો દૂધ કાઢી લેવામાં આવે તો બે વાછડાંની ભૂખ પૂર્ણપણે શાન્ત ન થાય માટે તે દૂધ ઉપર વાછરડાંની સત્તા છે માટે દોષ લાગતું હશે એમ અમને ભાસે છે.

જે ગાયના દૂધની મનાઈ છે તો તે ગાયના બીજા પણ પદાર્થો ન લેવા એમ

મિતાક્ષરામાં લખેલું છે. છતાં ગોમૂત્ર તથા ગોબર ની મનાઈ ન હોવી જોઈએ. જો કે મિતાક્ષરામાં એમ લખ્યું છે તો પણ અમને એમ ભાસે છે કે જ્યાં સુધી રજોદોષ હોય ત્યાં સુધી ગોમૂત્રાદિકનો નિષેધ માનવો જોઈએ.

બ્રહ્મપુરાણમાં લખ્યું છે કે ''દ્રાક્ષા(ધ્રાખ)નો રસ, શેરડીનો રસ પહેલે દિવસે તરતમાં શુદ્ધ રહે છે. તેમજ યતિ બ્રહ્મચારીએ માંગેલી ભિક્ષા પણ પવિત્ર જાણવી''. તે બાબતમાં અપરાર્કમાં મનુએ જણાવ્યું છે કે ''બ્રહ્મચારીએ માંગેલી ભિક્ષા નિત્ય પવિત્ર છે એમ સ્થિતિ છે''. અહીં 'બ્રહ્મચારી' શબ્દથી જેને ભિક્ષા માગવાને શાસ્ત્રમાં આજ્ઞા કરેલી છે તેવો બ્રહ્મચારી જાણવો. ભિક્ષાના અધિકારીઓ મનુએ ગણેલા છે તે આ પ્રમાણે છે :

> ''સાન્તાનિક(સન્તાનમાટે જ વિવાહ કરનાર), યજન કરનાર, રસ્તામાં ચાલનાર, સર્વવેદસ(સર્વ આપી દેનાર એટલે જેણે સર્વ ઘરની ચીજો ઘર વિગેરે બીજાને જેણે પરમેશ્વર પ્રીત્યર્થ આપી દીધેલ છે તેવો માણસ), ગુરુ, માતા, પિતા, સ્વાધ્યાયમાટે ભિક્ષા માગનારો, રોગી –આટલા ધર્મને માટે ભિક્ષા માગનારા બ્રાહ્મણોને સ્નાતક તરીકે કહેવાય છે માટે તેઓની ભિક્ષા દૂષિત થતી નથી''.

રસ્તામાં ફરવા વિગેરેથી જ્યાં સુધી ભિક્ષા પૂર્ણ ન થઈ હોય ત્યાં સુધી અપવિત્રના સંસર્ગથી પણ બ્રહ્મચારીની ભિક્ષા અપવિત્ર થતી નથી. માટે જ એ બાબત વિના વશિષ્ટ શુદ્ધિ કહે છે.

ખાવાલાયક પદાર્થોમાં ફરતાં કદાચિત્ ઉચ્છિષ્ટનો સ્પર્શ થાય તો હાથમાં જે પદાર્થ હોય તે જમીન ઉપર રાખીને આચમન કરી ફરીથી ફરવા જવું. અહીં અપવિત્રના સંસર્ગથી આચમન કરવારૂપ શુદ્ધિ લખી છે તે 'ઉચ્છિષ્ટ'શબ્દથી કહેવામાં આવે છે. ખાવાલાયક પદાર્થો એ શબ્દથી દરેક ભિક્ષામાં તેમ નહીં સમજવું. ત્યારે પિરસવાની બાબત વિગેરેમાં જાણવું. અર્થાત્ પીરસતાં-પીરસતાં જો એઠાનો સંસર્ગ થઈ જાય તો પીરસવાની ચીજ બાજુ ધરી આચમન કરવું. પછી પુનઃ કાર્ય શરૂ કરવું એમ સમજવાનું છે. વળી મનુ કહે છે કે ''હાથમાં કાંઈ ચીજ હોય અને જો એઠાનો સ્પર્શ થાય તો તે હાથમાં રહેલી ચીજ પણ ન છોડી દેતાં એટલે જમીન ઉપર ન રાખતાં આચમન કરવાથી તે માણસ પવિત્ર થાય છે''. પરન્તુ આ વચન વસ્ત્ર વિગેરેથી જુદી-જુદી ચીજો હાથમાં હોય તો તે બાબતસર છે એમ જાણવું. વળી બ્રહ્મપુરાણમાં કહ્યું છે કે ''પીરસનારને ઉચ્છિષ્ટ શૂદ્રનો સ્પર્શ થાય તો હાથમાં જે ચીજ હોય તે ચીજ બીજાને આપી દેવી પોતે ભક્ષણ ન કરવી''. આ પરથી એમ નક્કી થાય છે કે શૂદ્ર સિવાય જો કોઈ બીજો માણસ સ્પર્શ કરે તો દોષ નથી એમ તે બ્રહ્મપુરાણના વચનનો આશય છે એમ અપરાર્કમાં જણાવેલું છે એમ જાણવું.

> સદાચારચન્દ્રોદયમાં મનુ તથા વશિષ્ટ નું વચન લઈ જણાવ્યું છે કે

"જો પદાર્થ એવો હોય કે જે અન ઉપર ધારણ કરી શકાય તો ધારણ કરીને જ આચમન કરવું. અથવા ઉચ્છિષ્ટનો સ્પર્શ જેને થયો હોય એવો આચમન કરવા લાયક માણસ, ભક્ષણ કરવા લાયક પદાર્થ, ન હોય તો જમીન ઉપર ન રાખતાં આચમન કરી પવિત્ર થવાય છે અને જો ખાવા લાયક પદાર્થ હોય તો જમીન ઉપર રાખી આચમન કરી તે ચીજ ઉપર પ્રોક્ષણ કરી ગ્રહણ કરવી".

પ્રથમ કહેલાં બે વચનોમાં ઉચ્છિષ્ટ કર્મક સ્પર્શ તથા ઉચ્છિષ્ટકર્તૃક સ્પર્શ દોષ પુરુષને લાગુ પડે છે અને શુદ્ધિ પણ તેની જ કહી છે. પરન્તુ તે ઉચ્છિષ્ટના સમ્બન્ધથી પુરુષના હાથમાં રહેલું દ્રવ્ય દુષ્ટ થતું નથી, કારણ કે ફરીથી ફરવામાટે નીચે ન રાખવાને જણાવ્યું છે તેથી એમ ભાસે છે. તેમ દ્રવ્યનો ત્યાગ કરવાને પણ જણાવ્યું નથી એવો બે ગ્રન્થનો તાત્પર્ય છે. આ પરથી એમ જણાય છે કે ખાવા લાયક પદાર્થને બીજે ઠેકાણે મોકલાવવામાં પણ સાક્ષાત્ સ્પર્શ ન થાય તો દોષ નથી જ. અપવિત્ર પદાર્થનો સ્પર્શ થાય તો ત્યાગ કરવો એ શિષ્ટાચારથી ભાસે છે.

વિષ્ણુપુરાણમાં લખ્યું છે કે "શૂદ્રનું અન્ન ઘરમાં જો આવે તો પ્રોક્ષણ કરી વિદ્વાન માણસે ગ્રહણ કરવું. આ પરથી એમ સ્પષ્ટ સિદ્ધ થાય છે કે અપવિત્ર પદાર્થનો તે અન્નને સ્પર્શ થાય તો તેનો ત્યાગ જ કરવો જોઈએ, બીજો નિશ્ચય થતો નથી".

વળી સદાચારચન્દ્રોદયમાં લખે છે કે અંગિરાઋષિ કહે છે કે "વગડામાં જે ઠેકાણે જળ ન મળી શકે ત્યાં રાત્રે ચોર-વાઘવાળા રસ્તામાં કદાચિત્ પેશાબ-દસ્ત કરવામાં આવે અને હાથમાં કાંઈ પદાર્થ હોય તો દૂષિત થતો નથી". અહીં 'દ્રવ્ય' શબ્દથી અન્ન પણ લઈ શકાય છે. પ્રથમ શૌચ કરી, હાથ-પગ ધોઈ, જલનો સ્પર્શ કરી, ગ્રહણ કરેલા પદાર્થને પ્રોક્ષણ કરી પવિત્રતાને પ્રાપ્ત થવાય છે. હલાયુધમાં હારીત કહે છે કે

> "દ્રવ્ય હાથમાં હોય અને દસ્ત-પેશાબ કરવામાં આવે તો અન્ન જમીન ઉપર રાખી, યથાવિધિ દસ્તે જઈ, જલનો સ્પર્શ કરી, પક્વ અન્ન લઈ લેવું. તે પવિત્ર તરીકે થાય છે. ઘીથી પાકેલું અન્ન પક્વ અન્ન પુરુષના સંયોગથી જેમ અપવિત્ર થાય છે. તેમજ જમીન ઉપર રાખી, હાથ-પગ ધોઈ, આચમન કરી, ફરીથી તે ઉપર પ્રોક્ષણ કરી પવિત્ર થાય છે. પુષ્પ, ઘાસ વિગેરે હોય તો હવિ(ઘી) અથવા અગ્નિમાં હોમવા લાયક પદાર્થથી તે ઉપર પ્રોક્ષણ કરવું".

માર્કણ્ડેય ઋષિ કહે છે કે

> "જમીન ઉપર દ્રવ્ય ન રાખીને પણ શૌચ કરવામાં હરકત નથી. જે માણસે પકવાન્ન ગ્રહણ કરેલ છે તેવા માણસે જો પેશાબ અથવા દસ્ત કરી હોય, અને તે પકવાન્ન પોતાના

મસ્તક-ખભા વિગેરે અન ઉપર રાખવામાં આવ્યું હોય તો પણ યથાન્યાય દસ્ત કરી યથાવિધિ જલનો સ્પર્શ કરી (એટલે હાથ-પગ ધોઈ) તે અન્ન ઉપર પ્રોક્ષણ કરી તેમાંથી એક ગ્રાસ જુદો કાઢી સૂર્યદર્શન કરાવી તે ગ્રાસનો ત્યાગ કરવો. બાકીનો ભાગ શુદ્ધિપણાને પ્રાપ્ત થાય છે''

આ પ્રમાણે તે ઠેકાણે લખ્યું છે. આ ઉપરથી એમ નક્કી-નિર્ણય થાય છે કે પેશાબ કરવામાં તથા દસ્ત કરવામાં જ્યારે દોષ લાગુ પડતો નથી, ત્યારે ઉચ્છિષ્ટના સ્પર્શમાં તો ક્યાંથી જ દોષ લાગુ પડે? વળી પકવાન્ન શબ્દનો અર્થ એમ લખ્યો છે કે ઘીથી પાકેલું અન્ન તે પકવાન્ન તરીકે કહેવામાં આવે છે તે પણ યોગ્ય જ છે. કારણ કે ગ્રહણમાં રાંધેલું અન્ન કામમાં નથી આવતું. આ પ્રમાણે મનાઈ કરી છે તો પણ શાસ્ત્રમાં લખ્યું છે કે ''આરનાલ(કાંજી), દૂધ, છાસ, દહીં, તેલ, ઘીથી પાકેલું અન્ન, મોટા માટીના વાસણમાં રહેલું જળ આટલી ચીજો રાહુના સૂતકમાં અપવિત્ર થતી નથી''. અહીં ઘીથી પાકેલા અન્નને દૂષિતપણું ન હોવાને લીધે પવિત્રપણું યોગ્ય છે.

વાયુપુરાણમાં ચાતુર્માસ્ય માહાત્મ્યમાં અને અપરાર્કમાં આપસ્તમ્બ કહે છે કે સંસ્કાર વિનાનું આણેલું અન્ન 'અપ્રયત' તરીકે કહેવાય છે અને તે ભક્ષણ કરવા લાયક થતું નથી, પરન્તુ શૂદ્રના સંસર્ગવાળું અન્ન અભોજ્ય નથી. જે અન્નમાં વાળ અથવા કાંઈ અપવિત્ર પદાર્થ પડ્યો હોય, અથવા અપવિત્ર પદાર્થમાં રહેનારો કીડો પડ્યો હોય, અથવા ઉંદરની લીંડી યા ઉંદરનું પૂંછ પડ્યું હોય અથવા તે અન્ન વસ્ત્રના કાંઈક દોષવાળું થયું હોય, શ્વાનના દોષવાળું થયું હોય, અથવા અપાત્રે દીઠેલું હોય, યા દાસીએ લાવવામાં આવ્યું હોય, નક્ત અન્ન હોય, ભોજન કરનારને શૂદ્રનો સ્પર્શ થયો હોય, અથવા જે લાયક ન હોય તેવા સાથે, સમાન પઙ્ક્તિમાં, ભોજન કરનારાઓમાં અથવા ન ઉઠીને ઉચ્છિષ્ટ આપવામાં આવે, અથવા આચમન કરવામાં આવે, ખરાબ શબ્દો બોલીને અન્ન આપવામાં આવે, યા માણસોએ સુંઘેલું હોય, અથવા અપવિત્રોએ દીધેલું હોય, તો તે અન્ન અપ્રયત તરીકે સમજવું, પરન્તુ અભોજ્ય તરીકે જાણવું નહીં. માટે અપ્રયત અન્નને અગ્નિનો સ્પર્શ કરાવવો(એટલે અગ્નિ ચોતરફ ફેરવવો), પ્રોક્ષણ કરવું, સુવર્ણનો સ્પર્શ કરાવવો, ગાડરના મુખનો સ્પર્શ કરાવવો, એટલે તે અન્ન અપ્રયત મટીને પ્રયત બને છે અને પછી ભોજન કરવા લાયક થાય છે.

અપવિત્ર શૂદ્રનો જો સ્પર્શ થાય તો ભોજનના કામમાં તે અન્ન આવતું નથી. અહીં એમ સમજવું કે અપ્રયત અન્નને જો શૂદ્રનો સ્પર્શ થાય તો ભોજનમાં તે અન્ન ઉપયુક્ત થતું નથી અને પ્રયત અન્ન પકવાન્ન હોય અને શૂદ્રના સ્પર્શવાળું હોય તો ભોજન કરવાની આજ્ઞા જો કે પ્રાપ્ત થાય છે, તો પણ શિષ્ટ લોકો ભગવત્પ્રસાદને માટે તે આજ્ઞાનો આદર કરે છે, બીજા અન્નને માટે તે આજ્ઞા સ્વીકારતા નથી. કહે છે કે કલિયુગમાં ભગવત્પ્રસાદ સિવાય તેવી જાતનું પકવાન્ન પ્રયત હોય તો પણ ભોજન કરવા લાયક નથી,

સદાચારને કલિયુગમાં સ્મૃતિના વચન કરતાં પ્રબલપણું છે.

૨૨. ઘીથી પાકેલા પદાર્થોનો ભક્ષણ કરવા ન કરવાનો વિચાર

''શૂદ્રદ્વારા સંસ્કારેલું, ઘીથી પાકેલું, તેલથી પાકેલું, ગળ્યું અન્ન તથા શૂદ્રે ભુંજેલો સતવો વિગેરે બ્રાહ્મણોને ભક્ષણ કરવા લાયક નથી''. આ પ્રમાણે બ્રહ્મવૈવર્તના શ્રીકૃષ્ણજન્મ ખણ્ડમાં કહેલું છે.

સુમન્તુઋષિ અને અંગિરાઋષિ કહે છે કે ''શૂદ્રને ત્યાંથી આવેલો ગોરસ તથા સતવો, તેલ, સાનિ(સાનિ એટલે તેલવાળા ઘાણીમાં કુટાયેલા અરધા કચરાયેલા તલ), માલપૂવા, દુધની કાંઈ ચીજ ભક્ષણ કરવામાં અડચણ નથી''.

મનુ પણ કહે છે કે ''ભાડભુંજીયાની દુકાનમાં ભુંજાયેલાં કાંઈ અન્નો, તેલથી પાકેલાં અન્નો, દૂધની ચીજો, દહીં, સતવો આટલી ચીજો શૂદ્રના અન્નને ન ખાનાર બ્રાહ્મણ વિગેરેના ખાવામાં પણ અડચણ નથી''.

શંખ પણ કહે છે કે ''દૂધવાળાં યા દૂધમાં બનેલા પૂવા, સતવો, ઘાણી, છાશ, દહીં, ઘી, મધ આટલી ચીજો બજારમાંની ભક્ષણ કરવાલાયક છે, પણ જો વાસણને લેપ થવામાં ન આવ્યો હોય તો''.

એટલે બજારના વાસણો અરધા અપવિત્ર હોય છે, લેપવાળા(મશવાળા) હોય છે માટે આ વચન આપત્તિકાળનું છે. જો એમ ન હોય તો શૂદ્રના અન્નના ભોજનનું નિષેધ કરનારા વાક્યનો વિરોધ આવે. ''બજારનું અન્ન ન ખાવું'' એ પ્રમાણે શંખના વચનનો પણ વિરોધ આવે એમ અપરાર્કનું કથન છે.

સદાચારચન્દ્રોદય તો આ વચનો લખીને આમ લખે છે કે શૂદ્રના ગોરસ વિગેરે શૂદ્રના ઘરથી બીજે ઠેકાણે લઈ જઈ ભક્ષણ કરવાં. ''ઘી, તેલ, દૂધ, ગોળ તથા તેલ થી પાકેલું અન્નાદિ શૂદ્રના ઘેરથી આવેલું બ્રાહ્મણ નદીને કીનારે લઈ જઈ ભોજન કરે'' એમ પરાશરે કહ્યું છે. કોઈ એમ કહે છે કે લવણ વિનાનું સ્નેહપકવ(તેલથી પાકેલું) અન્નાદિ સચ્છૂદ્રનું ખાવું. આ કથનથી પૂર્વોક્ત વચનોનો અવિરોધ છે. નિર્ણયામૃત કહે છે કે પ્રથમ કહેલા વચનોથી પકવાનનું અભક્ષ્યપણું જાણવું. 'દિનકરોદ્યોત' ગ્રન્થમાં કહ્યું છે કે શૂદ્ર જાતિમાં દાસ, ગોપાળ, કુલમિત્ર(કોઈ તરહની શૂદ્રની જાત) અને અર્ધસીરિ(કોઈ તરહની શૂદ્રની જાતિ) આટલા શૂદ્રોનું અન્ન ગ્રહસ્થને ખાવાલાયક, તીર્થયાત્રામાં અથવા અતિ દૂર દેશમાં, કહ્યું છે. પરન્તુ તે કાર્ય કલિયુગમાં ન કરવું. આ નિષેધ કલિયુગમાં જ ગ્રહસ્થને માટે જ કરેલ છે, યતિ કે બ્રહ્મચારી ને નિષેધ નથી. અને આ મનાઈ પાક બાબતનો છે. બ્રાહ્મણ વિગેરેને શૂદ્રને ત્યાં પાક કરવાની મનાઈ છે. માટે તેમ ન કરવું જોઈએ. તેથી આ મતને અનુસરીને કલિયુગમાં શૂદ્રે રાંધેલું અન્ન, ગ્રહસ્થબ્રાહ્મણ વિગેરેએ ભોજન કરવું નહીં. બ્રાહ્મણાદિદ્વારા રાંધેલું અન્ન તો ખાવામાં હરકત નથી. અને બ્રહ્મચારી વિગેરેને તો તેણે રાંધેલું અન્ન ભોજન કરવા લાયક છે એમ જણાય છે.

અહીં મને તો (ગ્રન્થકાર શ્રીપુરુષોત્તમજી મહારાજ કહે છે) આ બાબતમાં એમ ભાસે છે કે દેવલઋષિએ એમ કહ્યું છે કે ''સ્વદાસ, જાતિનો શૂદ્ર, હજામ, ગોવાળ, કુમ્ભાર, ખેડુ આટલા શૂદ્રોને ઘેર બ્રાહ્મણોએ ભોજન કરવું''. વળી યાજ્ઞવલ્ક્ય કહે છે કે ''શૂદ્રોમાં દાસ, ગોપાલ, કુલમિત્ર, અર્ધસીરિ, નાઈ અને જે શૂદ્ર પોતાનો આત્મા પણ નિવેદન કરે તેવાઓનું અન્ન ભોજન કરવા લાયક છે''. હારીત પણ જણાવે છે કે 'કુલ' નામક શૂદ્ર, 'મિત્ર' નામક શૂદ્ર, કુલપુત્ર, એટલે જેના કુલમાં પ્રાયઃ પુત્ર જ જન્મ પામતો હોય તેવો, ભિક્ષા માંગવા આવે તેને ભિક્ષા આપનારો શૂદ્ર, શિષ્યક, સુહૃત્, ભયથી રક્ષા કરનારો, આવા શૂદ્રોનું અન્ન ભોજન કરવા લાયક છે કે જ્યાં અન્તઃકરણ પ્રસન્ન રહે''. આ પ્રમાણે અપરાર્કમાં અનેકોને ભોજન કરવા લાયક એમનું અન્ન છે એમ જણાવ્યું છે. અને કલિયુગમાં અમુક નહીં કરવું તેની ગણનામાં દાસ વિગેરે ચારનું કથન છે. માટે તે સિવાયના બીજા શૂદ્રોનું અન્ન ભક્ષણ કરવામાં હરકત નથી જણાતી, તો પણ એવાં વચનો છે કે શૂદ્રનું અન્ન સ્વર્ગને આપનારું નથી. ''લોકવિદ્વિષ્ટ(મનુષ્યો જેનો દ્વેષ કરે તેવું) અન્ન છે માટે તેવી જાતના ધર્મનું આચરણ ન કરવું'' એવું નિષેધ(મનાઈ) વચન છે, પરન્તુ તે નિષેધ વચન પકવાન્ન ભોજન સમ્બન્ધી છે, માટે શૂદ્રનું પકવાન્ન નહીં લેવું. દૂધવાળું, શેરડીના રસસમ્બન્ધી, ફલાદિક ભોજન કરવામાં હરકત નથી માટે લેવું. માટે જ મનુ પણ કહે છે કે શૂદ્રનું પકવાન્ન ભોજન કરવું નહીં. વળી ''જેમ નદીનું જળ એક સમયમાં પીવા લાયક થતું નથી અને બીજા સમયમાં પીવા લાયક થાય છે. તેમ અન્ન-પાન વિધિપૂર્વક દ્વિજ વિગેરેના પાત્રમાં જો આવે તો તે દૂષિત થતું નથી'' એમ અપરાર્કમાં સ્મૃત્યન્તર છે. સદાચારચન્દ્રોદયમાં વળી કહ્યું છે કે ''જેમ નદીજલ પવિત્ર થઈ જાય છે. એટલે અપવિત્ર હરેક જલ પણ નદી જલમાં જ્યારે ભળી જાય ત્યારે જેમ પવિત્ર થાય છે તેમજ શૂદ્રથી બ્રાહ્મણના ઘરમાં આવેલું અન્ન પવિત્ર થઈ જાય છે''. વળી બીજું વચન છે કે ''ત્યાં સુધી શૂદ્રનું અન્ન અપવિત્ર રહે છે જ્યાં સુધી બ્રાહ્મણના હસ્તનો તે અન્નને સ્પર્શ નથી થતો''. અર્થાત્ બ્રાહ્મણના હાથનો સ્પર્શ થવાથી સર્વ પવિત્ર થાય છે એમ પરાશરનું પણ વચન છે.

આ પરથી એમ જણાય છે કે સચ્છૂદ્રના ઘરનું અન્ન, શૂદ્રના ઘરમાં એટલે સચ્છૂદ્રના ઘરમાં બ્રાહ્મણે રાંધેલું હોય અને બ્રાહ્મણ પવિત્ર રીતથી લઈ આવે અને દ્વિજના પાત્રમાં આપે યા રાખે તો તે અન્ન દૂષિત થતું નથી. તેમજ સાથવો, ધાણી વિગેરે શૂદ્રના ઘરના પાકેલા લોકદ્વેષ ન થતો હોય તો તે પણ દૂષિત નથી. તથા જે શૂદ્રાદિકનુ અન્ન નહીં ખાવું જોઈએ તેવાઓના ઘેર પણ તેના ઘરમાંથી કાચું અન્ન લઈ બ્રાહ્મણ પોતે પોતાના પાત્રમાં રાંધી જો ભોજન કરે તો દોષ નથી.

સચ્છૂદ્રનું લક્ષણ સદાચારચન્દ્રોદયમાં બૃહત્પરાશરે કહ્યું છે તે આ પ્રમાણે છે : ''શુદ્ધ વંશમાં પેદા થયેલો, મદ્ય-માંસ ન ખાનારો, ત્રિવર્ણની સેવા કરનારો, વૈશ્યની વૃત્તિ કરનારો 'સચ્છૂદ્ર' કહેવાય છે''. પોતાને આપી દીધેલાં ઘરમાં બ્રાહ્મણ જ પાક કરે તો-તો બિલકુલ દોષ નથી. કારણ કે નિવેદન પછી તેટલો વખત શૂદ્રની તે ઘરમાં સત્તા રહેતી નથી,

વાસ કરનાર બ્રાહ્મણની સત્તા રહે છે.

૨૩. જલની શુદ્ધિનો વિચાર

આ બાબતમાં મનુ લખે છે કે ''જમીનમાં રહેલા જે જલથી ગાયની તરશ છીપાય, અપવિત્ર પદાર્થથી અવ્યાપ્ત હોય અને શુદ્ધ ગન્ધ-રન વાળું હોય તે જલ શુદ્ધ સમજવું''. એમજ પથ્થરમાં રહેલું જલ પણ શુદ્ધ સમજવું.

વિષ્ણુ પણ લખે છે કે ''જમીનમાં રહેલું અથવા શિલામાં રહેલું જલ, ગાયની તૃષાને પૂર્ણ કરનારું હોય અને અપવિત્ર પદાર્થના સંસર્ગવાળું ન હોય તો તે જલ શુદ્ધ જાણવું''. તેજ પ્રમાણે નદી વિગેરેમાંથી કાઢેલા, શુદ્ધ પાત્રમાં મૂકેલું જળ પણ શુદ્ધ સમજવાં.

''શુદ્ધ પાત્રોમાં યથાવિધિ રાખેલાં જલ ઉત્તમ જાણવાં. અને જો તે પાત્રમાં રાખેલા જલ એક રાત્રિના વાસી થઈ ગયા હોય તો તે જલનો ત્યાગ કરવો'' એમ દેવલ વાક્ય છે.

અહીં ગાયની તૃપ્તિ પર્યન્તનું જલ સમજવું. માટે ઘણું જેમાં જલ હોય એવા નદી વિગેરે સ્થાનોથી બાહાર કાઢેલાં જલ રાત્રિવાસી હોય તો પણ દોષ નહીં એમ 'પારિજાત' નામનો ગ્રન્થકહે છે. અહીં પણ પ્રોક્ત જલની બાબત જાણવી. અહીં વાસી જલ કાઢી નાખવું એમ જણાવ્યું છે, પરન્તુ તીર્થવિનાનું તે જલ હોય તો તેમ કરવું. તીર્થનું જલ વાસી હોય તો પણ હરકત નહીં.

મર્યાદાસિન્ધુમાં લખ્યું છે કે ''કરકાદિ(કરવા-કરંડીયા વિગેરે)માં પણ રહેલું તીર્થનું જલ દૂષિત થતું નથી''. ચરણામૃતની બાબતમાં પણ તેવુંજ જાણવું. કારણ કે તેને પણ તીર્થપણું છે માટે.

તેમજ અપરાર્કમાં દેવલ કહે છે કે ''અક્ષોભ્ય જલને એટલે નદી, તળાવ, વાવ ના જલને, પ્રસૃત જલને, મોટા વિસ્તારવાળા જલને, દૂષણ લાગતું નથી. થોડા જલને અને બાહાર કાઢેલાં જલને ખરાબ પદાર્થથી દૂષણ લાગે છે. જે કાંઠા પર અપવિત્ર યા ખરાબ સ્પર્શવાળો જલ હોય તો ત્યાંનું જલ ન લેવું''. અથવા ચાણ્ડાલ વિગેરે અપવિત્રના સ્પર્શવાળો માર્ગ હોય તો પણ તે ઠેકાણેથી જલ ગ્રહણ ન કરવું. કોઈ ઠેકાણે વધુ જલ હોય અને અપવિત્ર ગન્દાદિવાળું હોય, તો તે પણ દૂષિત જાણવું.

બહાર કાઢેલાં જલને માટે યમ કહે છે કે

> ''વનમાં પ્રપા(જલસત્ર શાળા) જલનું સદાવ્રત, ઘડામાં રહેલું જલ, અથવા જલ કાઢવા સારું રાખેલો સર્વ સાધારણ ઘડો, પથ્થરનું સર્વને માટે રાખેલું પાત્ર અથવા કાષ્ઠનું જલપાત્ર, મસકનું જલ, આટલી ચીજોમાં રહેલું જલ, શૂદ્ર સિવાય બીજાઓને પાન કરવા લાયક ન સમજવું, પરન્તુ જો આપત્તિકાલ હોય તો

જમીનમાં રહેલું જલ પીવામાં હરકત નહીં''.

કોઈ ઠેકાણે પૂર્વોક્ત જલને માટે પણ પીવાની મનાઈ કરી છે. જેમકે તેવું જલ જમીનમાં રહેલું હોય અથવા સ્વચ્છ હોય એટલે પવિત્ર હોય તો પણ જો અશુભ જગામાંથી ચાલતું આવતું હોય તો ગ્રહણ ન કરવું અને જો અરણ્યમાં રહેલું જલ સત્ર, શાલા વિગેરેનું પણ હોય અને શુદ્ધ ભૂમીમાં રહેલું હોય પણ જો અશુભમાંથી ચાલતું આવતું હોય તો ત્યાગ કરવા લાયક છે એમ જાણવું.

૨૪. જલાશય(તળાવ કુવા વાવડી હોજ વિગેરે)ની શુદ્ધિનો વિચાર

આ બાબતમાં દેવલ ઋષિ કહે છે કે ''કૂતરાં, શિયાળ, ગધેડા, ઉંટ અને માંસ ને ખાનારાં બીજા જાનવરોથી ગંદું થયેલું જો જલ હોય તો બધું જલ કાઢી નાખવું. અને તે જલાશયમાંથી પાંચ માટીના પિંડ પણ બહાર કાઢવા''.

બ્રહ્મપુરાણમાં લખે છે કે ''જે જાનવરોનું માંસ ખાવા લાયક નથી તેવાં જાનવરના શરીરોથી વાવ, કુવો તથા તળાવ નું જલ યુક્ત થાય તો સર્વ જલ અપવિત્ર થાય છે''. અહીં જાનવરોનાં શરીરવાળું એમ કહ્યું છે, આ ઉપર તે જાનવરના મરેલાં શરીર એમ સમજવું.

''જાનવરોના શબવાળું જો જલ થાય તો સર્વ જલ કાઢી નાખી મન્ત્રપૂર્વક સર્વની શુદ્ધિ કરનારું પઞ્ચગવ્ય તે જલાશયમાં પધરાવવું. ઘણાં જલમાંથી તે શબ કાઢી નાખવું. અને પછી ૧૦૦ અથવા ૬૦ યા ૩૦ જલના ઘડા બહાર કાઢી નાખવા. અને પછી મન્ત્રપૂર્વક પઞ્ચગવ્ય તેમાં નાખવું''. વાવ અથવા પગથીયા જેને હોય તે જલાશય સમજવો. આ બાબતમાં જમદગ્નિ કહે છે કે

> ''વાવ, કુવો, તળાવ અથવા નાના સ્થાવર જલાશયમાં મોટા–નાના પ્રાણીના શબ પડી જાય તો અથવા કોઈ કારણે તેમાં સડી જાય, જીર્ણ થઈ જાય તો તે જલ સર્વ કાઢી નાખી તેની અંદર પઞ્ચગવ્ય(દૂધ, દહી, ઘી, ગોમૂત્ર તથા ગોબર) પધરાવવું. પથ્થરથી અથવા ઈંટોથી તે સ્થાન બાંધી નાખવું, બાંધેલા ભાગમાં પ્રોક્ષણ કરી બ્રાહ્મણોના આશીર્વચન દેવાં. ઘણા જલમાં તેમ થયું હોય તો સાત ઘડા જલ બાહર કાઢવું. ઝીણાં–ઝીણાં હાડકાવાળા પ્રાણીથી જલ દુષ્ટ થયું હોય તો ત્રીશ ઘડા જલ બહાર કાઢવું''.

હવે કુવાની બાબતમાં વિષ્ણુ કહે છે કે

> ''જેના પાંચ નખ હોય તેવાં જાનવરોથી દૂષિત જલ થયું હોય તો તે કુવામાંથી સર્વ જલ બહાર કાઢી નાખવું. બાકીનું રહેલું જલ શસ્ત્રથી શોધવું. એટલે કોદાળી વિગેરે હથીયારથી ખોદી બહાર કાઢવું. પાકેલી ઈંટવાળા કુવામાં અગ્નિ બાળવો. નવીન

જલ નીકળવા લાગે એટલે તેમાં પઞ્ચગવ્ય પધરાવવું. તેમજ અલ્પ સ્થાવર જલાશય હોય તો તેમાં પણ યા જમીનમાં જલાશય સાધારણ હોય તો તેમાં પણ તેમજ કરવું અને જો ઘણો જ મોટો જલાશય હોય તો હરકત નહીં''.

'સ્થાવર' એટલે પ્રવાહવિનાનો જલાશય એમ સમજવું.

આપસ્તમ્બ કહે છે કે ''પગરખાં, કફ, વિષ્ઠા, મૂત્ર, સ્ત્રીનું રજ, આટલી ચીજોથી અપવિત્ર થયેલો જલાશય જો હોય તો તે જલાશયમાંથી સાઠ ઘડા જલ કાઢી નાખવું''. બૃહસ્પતિ કહે છે કે

''હાડકાં, ચાંમડાં, કૂતરાં, ગધેડાં થી દૂષિત થયેલું જલ બધું બહાર કાઢી નાખવું અને તે જલાશયને શુદ્ધ કરવો. એમ જ વાવ, કુવો તથા તળાવ દૂષિત થયાં હોય તો સો ઘડા તેમાંથી જલ બહાર કાઢી પઞ્ચગવ્ય તેમાં પધરાવવું. ખરાબ પદાર્થો તેમાંથી કાઢી નાખવા. જીર્ણ થયેલા યા સડી ગયેલા પદાર્થો કાઢી દૂર કરવા''.

અહીં આ પ્રમાણે વ્યવસ્થા કરવી. જલાશયમાં થોડું જલ હોય તો તેમ યા મોટો હોય તો તેમ યોગ્ય વ્યવસ્થા સમજીને કરવી. અત્યન્ત પ્રબલ જલાશયમાં કાંઈ અપવિત્રતાનો સંસર્ગ થયો હોય તો જ્યાં સંસર્ગ થયો હોય તે સિવાય બીજે ઠેકાણે અપવિત્રતામૂલક અડચણ જાણવી નહીં. એટલે બીજે ઠેકાણે દોષ નથી. જલના ઘડા જાજા યા થોડા ભરી જલ બહાર કાઢવું આ બાબતમાં જલના તારતમ્યથી(ન્યૂન-અધિકપણાથી) વિચારી લેવું. આ પરથી જેમાં ઘણું જલ હોય એવા કુવામાં જો ઉંદર વિગેરે સૂક્ષ્મ પ્રાણીના શબની દુર્ગન્ધ આવતી હોય તો અથવા તે બાબત સન્દેહ થાય તો પ્રોક્ત જમદગ્નિના વાક્યથી ત્રીશ વિગેરે જલના ઘડા બહાર કાઢવા. અને તે કુવાના જલથી સ્નાન સુધ્યાદિ કરવામાં આવે તો પણ જ્યાં સુધી નિશ્ચયપૂર્વક જ્ઞાન ન થયું હોય ત્યાં સુધી પાપ લાગતું નથી. અને નિશ્ચય થયા બાદ તો જે ઘડાથી તે કુવાનું જલ બહાર કાઢવામાં આવ્યું હોય તે જો માટીનો ઘડો હોય તો તેનો ત્યાગ કરવો. જો ધાતુનો હોય તો અગ્નિજ્વાલાનો સ્પર્શ કરાવવો અને ખટાશથી તેને માંજી શુદ્ધ કરવો એમ ભાસે છે.

અહીં બૃહસ્પતિ લખે છે કે ''ઉચ્છિષ્ટ મલીન કે ખરાબ હોય, વિષ્ઠાનો લેપ હોય તો પણ તે સર્વની જલથી શુદ્ધિ થાય છે. પરન્તુ જલની શુદ્ધિ શેનાથી કરવી? તો જલની શુદ્ધિ સૂર્ય ચન્દ્રના કિરણોથી, પવનના સ્પર્શથી, ગાયની મૂત્રવિષ્ઠાથી થાય છે એવો નિર્ણય છે''.

યમ કહે છે કે ''બકરી, ગાય, ભેંસ, બ્રાહ્મણની સ્ત્રીયો અને પ્રસૂતિકા દશ રાત્રિથી શુદ્ધ થાય છે. અને જમીનમાં રહેલું નવીન જલ પણ દશ દિવસે શુદ્ધ થાય છે''. અહીં જમીનનું જલ આ શબ્દથી અન્તરિક્ષ જલને અપવાદ તરીકે જાણવું.

બૃહત્પરાશર કહે છે કે ''જલનું પવિત્રપણું દિવસમાં સૂર્યના કિરણોથી, પવનથી તથા રાત્રિ માં ચન્દ્રના કિરણોથી, પવનથી થાય છે તેવું ધર્મને જાણનારાં મુનિયો કહે છે''.

મ્લેચ્છોના ખાત બાબતમાં આપસ્તમ્બ કહે છે કે

''મ્લેચ્છ વિગેરેનું જલ હોજમાંથી અથવા ધુનામાંથી પીવામાં આવે તો તે જલ જો ગોઠણ પર્યન્તનું હોય તો પવિત્ર જાણવું. અને જો ગોઠણથી નીચેનું હોય તો અપવિત્ર જાણવું. તે જલ જો કામના વિના પીવામાં આવ્યું હોય તો દિવસે ભોજન ન કરતાં સાંજે ભોજન કરવું. અને જો કામનાથી પાન કરવામાં આવે તો અહોરાત્રપર્યન્ત ભોજન ન કરવું''.

આ પ્રમાણે મર્યાદાસિન્ધુમાં જલની શુદ્ધિ કહી છે.

૨૫. જમીનની શુદ્ધિનો વિચાર

તે બાબતમાં મર્યાદાસિન્ધુમાં અપરાર્ક અને દેવલ કહે છે કે અમેધ્ય(અપવિત્ર) થયેલી જમીન પાંચ પ્રકારે અથવા ચાર પ્રકારે શુદ્ધ થાય છે. અને દુષ્ટ થયેલી જમીન બે પ્રકારે અથવા ત્રણ પ્રકારે શુદ્ધ થાય છે અને મલિન થયેલી જમીન એક પ્રકારે શુદ્ધ થાય છે.

અશુદ્ધ થયેલી જમીન ૧.અમેધ્ય ૨.દુષ્ટ અને ૩.મલિન આમ ત્રણ પ્રકારની છે. એમાં પહેલી અમેધ્ય નામની જમીનની શુદ્ધિ કહે છે.

જે જમીન ઉપર ગર્ભિણી સ્ત્રીને પ્રસવ થાય, જ્યાં મનુષ્યનું મરણ થાય, જે ઠેકાણે ચાણ્ડાલો બેઠા હોય, જ્યાં શબ રાખવામાં આવ્યું હોય, યા વિષ્ઠામૂત્રવાળી જમીન હોય અથવા જે ઠેકાણે શબ જોવામાં આવે એ પ્રમાણે અપવિત્રતાવાળી જે જમીન હોય તે જમીન 'અમેધ્ય' તરીકે જાણવી. એવી અમેધ્ય જમીનને બાળવી, ખોદી નાખવી, લીંપવી યા ખોદીને લીંપવી, વરસાદનું તેમાં જલ પડે તેમ કરવું. આમ પાંચ પ્રકારે શુદ્ધિ કરવી.

અપરાર્કમાં કહ્યું છે કે વાપન(ખોદીને વૃક્ષાદિ વાવવાં) ને ઠેકાણે ધાવન(ધોઈ નાખવારૂપ) કર્મ કરવું. બાળી નાખવાને જણાવ્યું છે તે ઠેકાણે ઘાસ કાષ્ઠ વિગેરે નાંખીને તે જમીન બાળવી. ખનન(ખોદવું) એટલે શસ્ત્રથી ખોદી નાખવું. અથવા ઉપલેપન(લીંપવું) તે ગોમુત્ર-ગોબર, ભસ્મથી લીંપવું. વાપન એટલે બીજી માટી લઈને તે જમીન પૂરવી. આ બાબતથી ચાર પ્રકારે યા પાંચ પ્રકારે અમેધ્ય થયેલી જમીન શુદ્ધ કરવી.

હવે દુષ્ટ તથા મલિન જમીનનું લક્ષણ કહેવાય છે.

''કૃમી(કરમીયાં) કીડાના પગ જે જમીન ઉપર આવતા હોય અથવા જેની ઉપર કફ પડ્યો હોય અથવા એઠું પડ્યું હોય તો તે જમીન દુષ્ટ તરીકે જાણવી. અને જે જમીન નખ, દાંત, રૂવાડાં, ચામડી, ફોતરાં, ધૂડ, રજ, મલ, રાખ, ગારો, ઘાસવાળી થઈ હોય તે જમીન 'મલિન' તરીકે સમજવી''.

અપરાર્કમાં મિતાક્ષરામાં કહ્યું છે કે કુતરું, સુવર, ગધેડું, ઉંટ વિગેરેના સ્પર્શવાળી જે જમીન થાય તે જમીન 'દુષ્ટ'તાને પ્રાપ્ત થઈ એમ જાણવું. અનારા, ફોતરાં, કેશ, હાડકાં, રાખવાળી જમીન 'મલિન' તરીકે જાણવી.

દુષ્ટ થયેલી જમીન ત્રણ પ્રકારથી શુદ્ધ કરવી. એટલે કે દહન(બાળવાથી), ખનન(ખોદવાથી) અને લીંપવાથી; અથવા દહન અને ખનન થી શુદ્ધ થાય છે. અપરાર્કમાં વિકલ્પ કહ્યો છે.

સ્મશાનની જમીનની શુદ્ધિ પાંચ પ્રકારે કરવી. અને બીજી કોઈ અમેધ્ય જમીનની શુદ્ધિ વરસાદ સિવાય ચાર પ્રકારથી એટલે દહન, ખનન, ઉપલેપન અને વાપન આ ચાર પ્રકારથી કરવી. ઘણા વખતથી દુષ્ટ થયેલી જમીન દહન, ખનન અને ઉપલેપન આ ત્રણ પ્રકારથી કરવી. અને થોડા વખતથી દુષ્ટ થયેલી જમીનની શુદ્ધિ ઉલ્લેખન(ખોદવાથી) અને દાહ(બાળવાથી) બે પ્રકારથી કરવી. ઘણો વખત મલિન થયેલી જમીનની શુદ્ધિ એક ઉલ્લેખન (ઉલ્લેખન એટલે ખોદવું) કરવાથી જ જાણવી.

વિજ્ઞાનેશ્વર કહે છે કે માર્જન(જલ છાંટવું) અને અનુલેપન(લીપવું) તો બધે ઠેકાણે કરવું અથવા બે સાથે કરવું. એમજ થોડો વખત મલિન રહેલી યા થયેલી જમીનની શુદ્ધિ ઉપલેપનથી, ધાવન(ધોવાથી) અને વર્ષણ(વરસાદ)થી જાણવી.

યમ કહે છે કે જમીન સાત પ્રકારથી શુદ્ધ થાય છે તે આ પ્રમાણે : ''૧.ખનનથી ૨.પૂરણથી એટલે જમીનમાં બીજી માટી નાખવાથી ૩.દાહથી ૪.અભિવર્ષણ (વરસાદથી) ૫.લેપનથી ૬.ગાયના ફેરવવાથી અને ૭.સમયથી''. આ પ્રમાણે સાત પ્રકારે જમીન પવિત્ર થાય છે.

યાજ્ઞવલ્ક્ય કહે છે કે ''જમીનની શુદ્ધિ માર્જન કરવાથી, દાહથી, કાલથી, ગાયના ફેરવવાથી, સેક (જલના છાંટવાથી) ઉલ્લેખનથી, લેપથી અને ઘર ફક્ત માર્જન અને લેપનથી શુદ્ધ થાય છે''.

મનુ કહે છે કે પાંચ પ્રકારે જમીન શુદ્ધ થાય છે : ''સમ્માર્જન (લીંપવાથી) અથવા કચરો કાઢવાથી, લીંપવાથી, જલ છાટવાથી, ખોદવાથી અને ગાયના વાસથી જમીન શુદ્ધ થાય છે''. અહીં ગાયનો વાસ એક દિવસ પર્યન્ત સમજવો. અહીં સેક, (જલથી જમીનના ધોવામાં) અને ગોવાસમાં, લેપ રહિતપણું જાણવું. અને અમેધ્ય જમીન બાબતમાં લેપવાળાપણું જાણવું, એમ મર્યાદાસિન્ધુનો મત છે.

મેધાતિથી કહે છે કે ''જે જમીનમાં પેશાબ યા વિષ્ઠા ઈત્યાદિનો લેપ થયો હોય તે ઠેકાણે ઉલ્લેખન અને માર્જન બે સંસ્કાર કરવા અને સેક (જલથી ધોઈ નાખવું) તે રૂપ સંસ્કાર નદીના કાંઠામાં, વન વિગેરેમાં કરવો''. આ વપનરૂપ સંસ્કાર હાડકાં વિગેરે દૂર કરી બીજી માટી નાખવી તેનું નામ સમજવું. શ્મશાનની જમીનને બધા સંસ્કારો કરવા.

બૌધાયન આ બાબતમાં વિશેષ કહે છે કે

''ઘાટી જમીનને અપવિત્રતાનો સંસર્ગ થયો હોય તો

ઉપલેખન કરવું. છિદ્રવાળી જમીન ઉપર કર્ષણ (ખેડવા) રૂપ સંસ્કાર કરવો અને ક્લિન્ન (અપવિત્ર પદાર્થથી ભીની થયેલી) જમીન હોય તો અમેધ્ય પદાર્થ દૂર કરી લીંપી નાખવી અને શબનો સંસર્ગ થયો હોય તો ઉપર ભીંતને ઝાડી નાખવી. અથવા ઉપર-ઉપરથી ખોદી નાખવી. સૂર્યના કિરણોનો પ્રવેશ કરાવવો અને અગ્નિની જ્વાલા દેખાડવી. જમીનની શુદ્ધિ ગાયના ફેરવવાથી, ખનનથી, દહનથી, વરસાદના વરસવાથી, ઉપલેપનથી અને કાલથી થાય છે''.

અહીં કાલથી શુદ્ધિ થાય છે આ કાલ શબ્દનો અર્થ એવો છે કે જે જમીન ઉપર કોઈ અપવિત્ર પદાર્થનો લેપ થયો હોય તો તે લેપનો ક્ષય જ્યાં સુધી ન થયો હોય ત્યાં સુધીનો સમય સમજવો.

યમ કહે છે કે રતાવિનાની જે જમીન હોય તે પવિત્ર જાણવી. તે ગામમાં કોઈ-કોઈ ઠેકાણે જાણવી. બધે ઠેકાણે જમીન શુદ્ધ જાણવી જે ઠેકાણે કાંઈ લેપ વિગેરે ન થયો હોય તો.

બ્રહ્મપુરાણમાં કહ્યું છે કે ''ગામડાથી સો દણ્ડ જમીનનો ત્યાગ કરવો. શહેરથી ચારસો દણ્ડ જમીનનો ત્યાગ કરવો. બધે ઠેકાણે જમીન શુદ્ધ જાણવી. જ્યાં કાંઈ લેપ વિગેરે જોવામાં ન આવે ત્યાં''. આટલો વિશેષ જણાવ્યો છે.

ભવિષ્યપુરાણમાં લખ્યું છે કે ''જે ઠેકાણે ગળી વાવવામાં આવે તેટલી જમીન બાર વર્ષ પર્યન્ત અશુદ્ધ રહે છે અને બાર વર્ષ પછી તે જમીન પવિત્ર થાય છે''.

યમ કહે છે કે ''જે જમીન ઉપર બ્રાહ્મણો રહેતા હોય તે જમીન, તે ઠેકાણે દેવમન્દિર હોય તે જમીન, જે ઠેકાણે ગાયોનો વાસ હોય તે જમીન સદા પવિત્ર હોય છે, એમ અમો સદા માનીએ છીએ''. અહીં સદા એ શબ્દથી એમ જાણવાનું છે ગોબર વિગેરે વિનાની પણ જમીન હોય તો પણ સદા ગાયના વાસની પૃથ્વી પવિત્ર છે. આ વાક્ય અપવિત્રના સંસર્ગવિનાની જમીન ઉપર લાગુ પડે છે.

બૌધાયન કહે છે કે ''અનેક પુરુષોથી ઉચકાવામાં આવે એવું કાષ્ઠ જમીન બરાબર જાણવું અને ઈંટો પણ ભેળી-ભેળી હોય જુદી-જુદી હોય તો પણ જમીન બરોબર જાણવી. જમીનની શુદ્ધિ માફક શુદ્ધિ કરવી. ઈંટો ચુનાથી ચોટેલીયો હોય તો અથવા ન હોય તો પણ અશુદ્ધ તરીકે ન જાણવી'' એ મર્યાદાસિન્ધુ કહે છે.

ઈંટો વિગેરેને ચાણ્ડાલ વિગેરેનો સ્પર્શ થાય તો જમીનની શુદ્ધિ માફક તેની શુદ્ધિ કરવી એમ અપરાર્કનો મત છે.

૨૬. ઘરની શુદ્ધિનો વિચાર

એ બાબત મર્યાદાસિન્ધુમાં મનુ કહે છે કે ''માર્જન(માટી, ઘાસ, કાષ્ઠનું

દૂરીકરણ.) તથા ઉપાંજન(લીંપવા) થી ઘરની શુદ્ધિ થાય છે''. અહીં 'ઉપાંજન'નો અર્થ લીંપવું આટલું જ નહીં પણ ચુનો-ગોબર વિગેરેથી જમીન તથા ભીંતનું લીંપવું સમજવું. આ માર્જન અને ઉપાંજન શબ ચાણ્ડાલ વિગેરેના સંસર્ગમાં કરવાનું છે એમ જાણવું. અને જો તેમ ન હોય તો ન કરવું.

યાજ્ઞવલ્ક્યે જમીનની શુદ્ધિમાં કહેલું છે કે ''ઘરની શુદ્ધિ માર્જન અને લેપનથી કરવી''. એમ કહીને ફરીથી માર્જન અને લેપન કરવું એમ જે કહેલું છે તે ઉપરથી એમ જાણવાનું છે કે હંમેશ ઘરની શુદ્ધિ માર્જન લેપનથી કરવી એમ સમજવાનું છે.

શબના દોષ વિષયમાં સંવર્ત કહે છે કે

> ''ઘરની અંદર શબનો દોષ થયો હોય તો માટીના વાસણ તથા રાંધેલું અન્ન દૂર કરી ઘર ગોબરથી લીંપી નાખવું અને પછી બકરાને ઘરમાં ફેરવવું. પછી મન્ત્રથી પવિત્ર કરેલાં દર્ભ, સુવર્ણ અને જલે કરીને આખા ઘરમાં પ્રોક્ષણ કરવું ત્યારે તે ઘર શુદ્ધ થાય છે એમાં સન્દેહ નથી''.

મ્લેચ્છ વિગેરેનું ઘરમાં મરણ થયું હોય તો બૃહદ્યમ કહે છે કે ''કૂતરું, શૂદ્ર, મહાપાતકી અને મ્લેચ્છ-ચાણ્ડાલ આટલામાંથી કોઈનું મરણ ઘરમાં થયું હોય તો ચાર માસ પર્યન્ત તે ઘરનો ત્યાગ કરવો'' એમ મર્યાદાસિન્ધુ કહે છે. વળી આગળ તેજ કહે છે કે ''ત્રિવર્ણ (બ્રાહ્મણ, ક્ષત્રિય અને વૈશ્ય)માંથી કોઈનું પણ મરણ ઘરમાં થાય તો ત્રણ દિવસે ઘરની શુદ્ધિ થાય છે. અને બહારની જમીન એક દિવસે અગ્નિ ફેરવવાથી તથા લેપન કરવાથી શુદ્ધ થાય છે''. અહીં મન્ત્રથી જલ પ્રોક્ષણ કરવાની જરૂરી જણાય છે એમ જાણવું. એમ પ્રથમ કહેલા સંવર્તનના વચનથી જાણવું.

હવે ચાણ્ડાલ વિગેરેનો ઘરમાં વાસ થયો હોય તો તે બાબતમાં લઘુપારાશર કહે છે કે ''અજાણતાં ચાણ્ડાલ જેના ઘરમાં વાસ કરે તે જ્યારે જાણવામાં આવે ત્યારે તે ઘરવાળા બ્રાહ્મણની ઉપર બીજા બ્રાહ્મણોએ દયા કરવી''. એમ કહીને આગળ જણાવ્યું છે કે ''પીતલ તથા કાંસા ના વાસણનો શુદ્ધ આકાર કરાવવો. વસ્ત્રોને જલથી પવિત્ર કરાવવાં. માટીના વાસણનો ત્યાગ કરવો. કસુમ્બો, ગોળ, કાપૂસ, લૂણ, દહીં, ઘી અને ધાન્ય આટલી ચીજો ઘરના બહાર બારણામાં મુકવી અને ઘરમાં હુતાશન(અગ્નિ) પ્રકાશીત કરી સર્વત્ર જ્વાલાદર્શન કરાવવું એટલે સમસ્ત ઘર શુદ્ધ થાય છે એમ મનુ કહે છે''.

ધોબણ, મોચણ, પારાધણ, વાંસનું કામ કરનાર, ઘાંચાની સ્ત્રી ચારે વર્ણના ઘરમાં અજાણી જો આવી રહે તો જાણ્યા પછી પ્રથમ જે શુદ્ધિ કહી ગયા તેની અડધી શુદ્ધિ કરવી, ઘરને બાળવો નહીં. બાકીનું સર્વ કરવું. જો કોઈના ઘરની અંદર ચાણ્ડાલ જાય તો તે ઘરમાંથી રસ પૂર્ણ માટીના વાસણ બહાર ન કાઢતાં ગોબર અને જલ થી તે ઘર છાંટી નાખવું. પ્રાયશ્ચિત્ત કરવા માટે બોલાવેલી સભાના સ્થાનના આકારમાં પણ તેમ કરવું. પીતળનાં વાસણને ગળાવી નાખવાં અથવા તેમાં અગ્નિ નાખી તપાવવાં. આ શુદ્ધિ ચારે

વર્ણને સમાન સમજવી.

આગળના શ્લોકમાં તેમ લખ્યું છે માટે પ્રાયશ્ચિત્તનું પ્રકરણ આ નથી માટે અહીં તેનો બદલો લખતા નથી માટે ત્યાંની સ્મૃતિ તપાસી જાણવું. રસ એ ઠેકાણે ગોળ-લૂણ સમજવાં, દહીં દૂધ છાશ વિગેરે નહીં. કારણ કે તે ત્યાગ કરવા લાયક છે. માટે તે બાબતમાં ચવનઋષિ કહે છે કે

> ''ઘરમાં ચાણ્ડાલનો સંસર્ગ થયો હોય તો ઘરને પાવનરૂપ અહીં દાહ જાણવો. માટીના વાસણો બહાર ભાંગવાં, કાષ્ઠનાં વાસણો છોલાવી નાખવાં. શંખ-છીપ-રૂપાનાંની અને વસ્ત્ર વિગેરેને જલથી ધોઈ નાંખવા. કાંસા-ત્રાંબાના વાસણોની આકારથી શુદ્ધિ કરવી. કાંજી દૂધ દહીં છાસનો ત્યાગ કરવો. બાકીના રસ અને પદાર્થ રાખવા''.

મરીચિ કહે છે કે ઘરમાં ચાણ્ડાલ વિગેરેની સ્થિતિ યા બેસવું થાય તો ઉપલેપન-દાહ-તાપથી શુદ્ધિ કરવી. ધાન્ય, ગોળ વિગેરે રસ, કસુમ્બો, કાપુસ આટલી ચીજો જળ-અગ્નિથી શુદ્ધિ થાય છે. એટલે જલ છાંટી અગ્નિ ચોતરફ ફેરવવો. એમજ ઘરમાં દેવાલય વિગેરેમાં જો કદાચિત્ કોઈ દુષ્ટોથી પશુ વિગેરે મારવામાં આવે અથવા મૃત રાખવામાં આવે ત્યારે અપવિત્ર થયેલી જમીન પાંચ પ્રકારે યા ચાર પ્રકારે શુદ્ધિ કરીને 'પાવમાની' વિગેરે મન્ત્રોએ કરીને સુવર્ણ, દર્ભ અને જલ થી ગોમૂત્રાદિકથી પણ પ્રોક્ષણ કરી યથાશક્તિ બ્રાહ્મણ ભોજન કરાવવું. ચાણ્ડાલે જો લાંબા સમય સુધી નિવાસ કર્યો હોય તો ત્રીશ ગાય, એક બળદ બ્રાહ્મણોને આપી તે પછી પુનઃ વાસ અને દેવાયતન કરવું.

૨૭. શેરી વિગેરેની શુદ્ધિનો વિચાર

પરાશર કહે છે કે ''શેરીનો ગારો-પાણી, નવીન રસ્તો અને ઘાસ આટલી ચીજો દિવસમાં પવન-સૂર્યથી શુદ્ધ થાય છે અને રાત્રિમાં ચન્દ્ર, નક્ષત્ર અને પવન થી પવિત્ર થાય છે''.

યાજ્ઞવલ્ક્ય કહે છે કે ''શેરીના ગારા-પાણીને ચાણ્ડાલ, કૂતરું અને કાગડાએ સ્પર્શ કર્યો હોય તો પણ તે પવનથી જ પવિત્ર થાય છે. તેમજ ઈંટના ધોળા ઘર પણ પવનથી પવિત્ર થાય છે''. અહીં શેરીના ગારા-પાણી આ પ્રમાણે બહુ વચન જણાવ્યું છે તે ઉપરથી ગોબર અને કાંકરા નું પણ ગ્રહણ થાય છે. અર્થાત્ તે પણ પવનથી પવિત્ર થાય છે એમ જાણવું.

વિજ્ઞાનેશ્વર કહે છે કે ''ઘાસ, કાષ્ઠ, પાંદડાંઓ ઉપર પ્રોક્ષણ કરવું''. એટલે રસ્તા સિવાયની જમીન મેધ્ય(પવિત્ર) છે એમ જાણવું. પૂર્વોક્ત વચનથી યમ વાક્યનો ભોજનાદિકમાં શેરીમાટે અપવિત્રપણાના બોધકપણાથી વિરોધ જાણવો નહીં.

૨૮. જુદી-જુદી શુદ્ધિનો વિચાર

આ બાબતમાં મર્યાદાસિન્ધુમાં શંખ કહે છે કે ''સ્ત્રીઓનું, વાછડાઓનું, શકુની પક્ષિઓનું અને કૂતરાઓનું મુખ સદા પવિત્ર છે''. એટલે સ્ત્રીયોનું મુખ રતિમાં(સનમાં) પવિત્ર છે. વાછડાઓનું મુખ સ્રાવમાં. શકુનિ પક્ષિઓનું મુખ ઝાડમાં. અને કૂતરાંઓનું મુખ શિકાર કરવામાં પવિત્ર છે એમ સમજવું. અહીં સર્વ મુખસમ્બન્ધી બાબતમાં મોઢાની લાળના સંસર્ગથી થયેલા દોષને અપવાદ જાણવો. તેમાં પણ વાછડાની બાબત એવું વચન છે કે ''મોઢા સિવાય ગાયો પવિત્ર છે''. આ અપવાદ વચન તરીકે જાણવું. મૂળ ગ્રન્થમાં 'વત્સ' શબ્દ છે તે ઉપરથી બાલક પણ સમજવું. વિજ્ઞાનેશ્વર કહે છે કે ''બાલકોએ કરેલું કેટલુંક કાર્ય હંમેશ પવિત્ર તરીકે જાણવું''. અહીં 'શકુની' શબ્દ લખ્યો છે તેથી વિષ્ઠા ખાનારા કાગડા સિવાયના પક્ષી સમજવા.

મનુ અને વિષ્ણુ કહે છે કે ''કારીગરનો હાથસદા શુદ્ધ છે. બજારમાં વેંચવામાટે રાખવામાં આવેલી ચીજ પણ પવિત્ર સમજવી. બ્રહ્મચારીને મળેલી ભિક્ષા તથા સર્વ આકરો(ખાંણો) યા ભઠ્ઠીયો પણ પવિત્ર જાણવી''. અહીં કારીગરનો હાથપવિત્ર એમ લખ્યું છે તે ઉપરથી કારીગરનો હાથઅપવિત્રતાના સંસર્ગવિનાનો હોવો જોઈએ એમ સમજવો. મૂલમાં પ્રસારિત એટલે બજારમાં ફેલાયેલી વસ્તુ સમુદાય આમ લખ્યું છે. આ ઉપરથી એમ સમજવાનું કે દુકાનમાંની વસ્તુને અનેક લોકોનો સ્પર્શ થતો હોય છે તેનો સ્પર્શદોષ લાગતો નથી. આ પરથી એ પણ જાણવું કે દુકામાંની વસ્તુ નિર્દોષ છે પણ દુકાનદારના ઘરની વસ્તુ ઊપર એ વાત લાગૂ પડતી નથી. બકી બધું તો પૂર્વે વ્યાખ્યાત છે જ.

બૌધાયન કહે છે કે ''નિરન્તર ચાલતી ધારા અદુષ્ટ સમજવી. પવનથી ઉડાવેલા રજકણ પણ પવિત્ર સમજવાં''. યમ કહે છે કે ''ગાય, ઘોડો, જલના છાંટા, છાયા, માંખી, શલભ(ટીડ), પોપટ, બોકડો, હાથી, રણમાં છત્ર, ચન્દ્ર-સૂર્યના કિરણો, જમીન, અગ્નિ, રજ, વાયુ, જલ, દહીં, ઘી, દૂધ આટલી ચીજો સ્પર્શમાં પવિત્ર જાણવી''.

ઉપરની કહેલી બધી ચીજો પવિત્ર છે. એટલે તેઓને અપવિત્રનો સ્પર્શ થાય તો પણ તેઓ પવિત્ર છે એમ જાણવું. અહીં ગાય વિગેરેના સ્પર્શમાં પવિત્રપણું જાણાવ્યું છે તે પવિત્રપણામાં પણ યાજ્ઞવલ્ક્યે કહ્યું છે કે ''બકરીનું અને ઘોડાનું મોઢું પવિત્ર છે પરન્તુ ગાય અને નર મળો નહીં'' આ વિશેષ કથનથી તેઓનું મુખ વિશેષ પવિત્ર છે. તેથી જ પાત્રાદિકની શુદ્ધિ તેમના મુખના સ્પર્શેથી મનાય છે.

અહીં જલબિન્દુઓને પવિત્રપણું જણાવ્યું છે તેમાં નખના અગ્રભાગથી પડેલા જલના બિન્દુ સિવાયના જલબિન્દુ સમજવા. લિનપુરાણમાં લખ્યું છે કે ''નખના અગ્રભાગના, કેશના ધોવણના, સ્નાનને માટે ધારણ કરેલા વસ્ત્રના છેડાના જલબિન્દુઓ લક્ષ્મીનો નાશ કરનારું અપુણ્યકર તથા અશુદ્ધ જાણવું તેના સ્પર્શમાં પણ દોષ લાગે છે'' એમ મર્યાદાસિન્ધુનું કથન છે.

પવિત્ર જળના છાંટા ચાણ્ડાલને અડીને પવનથી કોઈના ઊપર પડે તો તેને પવિત્ર સમજવા એમ અપરાર્કનો મત છે.

યાજ્ઞવલ્ક્ય કહે છે કે ''મુખથી પેદા થયેલા તેમજ આચમનના પણ બિન્દુઓ પવિત્ર છે''. આ બાબતમાં આટલો વિશેષ છે કે ''મુખસમ્બન્ધી જલબિન્દુઓ ઉચ્છિષ્ટપણું નથી કરતા જો અન ઉપર ન પડે તો'' એમ વશિષ્ઠનું વચન છે. ''આચમન કરવાથી જલના બિન્દુઓ પગનો સ્પર્શ કરે તો તે જલબિન્દુઓ જમીનથી પેદા થયેલા સમાન સમજવા. અને તે જલબિન્દુઓથી મનુષ્ય અપ્રયત(અપવિત્ર) થતો નથી'' એમ મનુનું વચન છે. અન ઊપર મોઢામાંથી નીકળેલા છાંટા પડતાં તે અંગ અપવિત્ર થાય છે તે પર થી એ પણ જાણવું કે જો પ્રભુની ભોગ સામગ્રી વિગેરે પર મોઢાના છાંટા પડે તો તે અપવિત્ર બને છે. તેથી જ બધેજ ઠેકાણે અને જગન્નાથજી વિગેરે મોટા સ્થળોમાં પાક વિગેરે સેવા કરનારાઓને મોઢા ઉપર વસ્ત્રબન્ધન કરવાનો સદાચાર પણ છે.

છાયાનું પવિત્રપણું ચાણ્ડાલ સિવાયનાની છાયાની બાબતમાં જાણવું. ''ચાણ્ડાલ અને મહાપાતકી ની છાયાનો સ્પર્શ કરી સ્નાન કરવું'' એવું વચન છે. ''જો શ્વાપાક(કૂતરાને રાંધી ખાનારો) તથા ચાણ્ડાલ ની છાયા ઉપર બ્રાહ્મણ ચડે તો તે બ્રાહ્મણે સ્નાન કરવું. અને ઘીનું ભક્ષણ કરી તે બ્રાહ્મણ શુદ્ધ થાય છે'' એમ અનિરાનું વચન છે. ''રાત્રિમાં દીવાની, ખાટલો યા પલંગ ની તથા રાત્રિમાં પીપળાની છાયા તેમજ નીચ જનની છાયા, પ્રાચીન સમયના પુણ્યનો નાશ કરે છે. કારણ કે પ્રોક્ત છાયાઓને દુષ્ટપણું કહ્યું છે''. ચન્દરવા-તંબૂ વિગેરેની છાયામાં દોષ નથી. માટે તેની નીચે ભોજન વિગેરે કરવામાં દોષ નથી. ''ચાણ્ડાલ મહાપાતકીની છાયા સ્પર્શમાં દુષ્ટ નથી'' એમ જે બ્રહ્મપુરાણનું વચન છે તો તે અજાણતાં સ્પર્શ થઈ જાય તે બાબતમાં છે. અથવા જો ચાર યુગ વિગેરેના પરિમાણથી અધિક છાયા હોય તો વિરોધ નથી.

'અગ્નિ' શબ્દથી એવો તે અગ્નિ સમજવો કે જે ચાણ્ડાલ શબ સિવાયનો અગ્નિ હોય. તેજ પ્રમાણે જમીન, જલ, દહીં વિગેરેનું પણ જાણવું. રજ પણ બકરી વિગેરે સિવાયની જાણવી. ''ગધેડાની, બોકડાની, બકરીની, કૂતરાની, સાવરણીની, વસ્ત્રોની આટલાની રજ પવિત્ર નથી એમ જાણવું''. ''કૂતરા, કાગડા, ઉંટ, ખર(ગધેડા), ઘૂવડ, સુવર, ગામના પક્ષીઓ, બકરા, ગાડર ની રજનો સ્પર્શ આયુષ્ય અને લક્ષ્મી ને હણે છે''. એમ મિતાક્ષરામાં શાસ્ત્રનું વચન છે. અથવા તેના સ્પર્શમાં સારી રીતે માર્જન કરવું એમ વિજ્ઞાનેશ્વર કહે છે. પવિત્ર રજો મર્યાદાસિન્ધુમાં તથા ગરુડપુરાણમાં કહેલીઓ છે તે આ પ્રમાણે છે ''હાથી-ઘોડાની રજ, પુત્રના અનની રજ આટલા પ્રકારની રજો મહાપાતકને નાશ કરનારી તથા પવિત્ર છે''.

ધુમાડો પણ પવિત્ર ગણ્યો છે. જેમ કે અપરાર્કમાં શંખનું વચન છે કે ''પવનથી આવેલ ધુમાડો, અગ્નિ તથા રજ પવિત્ર જાણવાં''. પૂર્વમાં માખીનો સ્વીકાર કર્યો છે તે ઠેકાણે એમ સમજવું કે ડાંસ, મશક(મસલાં), કીડીઓ વિગેરેના ઉપલક્ષણમાટે માખીનું

નામ લીધું છે. એમ અપરાર્કનું કથન છે.

અને પવન તો ચાલતો શુદ્ધ જાણવો, પણ કપડાના છેડાથી પેદા થયેલો શુદ્ધ નથી એમ સમજવું. ''વસ્ત્રના છેડાનો પવન, સૂંપડાનો પવન, બે હાથનો પવન, મોઢાનો પવન આટલી જાતના પવનોનો સ્પર્શ થાય તો પુરુષના સુકૃતનો નાશ થાય છે'' એમ મર્યાદાસિન્ધુમાં તથા લિનપુરાણમાંથી જાણવું.

''ધ્રાખ, શેરડીના યન્ત્ર, ખાણ અથવા ભઠ્ઠી, કારીગરોનો હાથ, ગાયની દોણી, બાલકોનું બહાર નિકળવું, સ્ત્રીઓનું અનુષ્ઠિત આટલી ચીજો પ્રત્યક્ષ જોએલીઓ પવિત્ર જાણવી''.

સારાંશ કે ''અલ્પ અપવિત્રપણાના સંસર્ગવાલા બાળકો-સ્ત્રીઓએ કરેલ તે અપવિત્રતાથી કરેલ છે એમ પ્રત્યક્ષતાથી જોવામાં જો આવે તો તે આચરણ શુદ્ધ છે'' એમ જાણવું એમ વ્યાખ્યા કરનારે કરેલી છે. મર્યાદાસિન્ધુમાં દેવલ કહે છે કે ''સ્મશાન સિવાયનું શુદ્ધ દેશમાં એટલે શુદ્ધ સ્થાનમાં રહેલું ગોબર પવિત્ર જાણવું. અને ગામ સિવાયની માટી, વીર્ય-વિષ્ઠા-મૂત્ર સિવાયની જો હોય તો તે પવિત્ર જાણવી''. મર્યાદાસિન્ધુ વિગેરે ગ્રન્થોમાં સ્ત્રી વિગેરેની શુદ્ધિને જણાવનારાં અનેક વચનો છે. પરન્તુ ઉપયોગ સિવાય અહીં લખવામાં આવ્યાં નથી.

૨૯. આત્માની શુદ્ધિ કરવાનો વિચાર

આત્માની શુદ્ધિ જીવાત્માને પરમેશ્વરના જ્ઞાનથી થાય છે એમ યાજ્ઞવલ્ક્ય ઋષિનું કહેવું છે. ''જ્ઞાન, તપ, અગ્નિ, આહાર, મૃત્તિકા, મન, જલ, પવન, કર્મ, સૂર્ય અને સમય આટલા પદાર્થો મનુષ્યોને પવિત્ર કરનારા કહ્યા છે''. મનુ પણ કહે છે કે ''શ્રવણ(સાંભળવું), મનન(સાંભળેલાનો વિચાર કરવો) વિગેરે રૂપ જ્ઞાન થવાથી થાય છે''.

પણ ભગવાને શ્રીભાગવતના અગીયારમાં સ્કન્ધના એકવિશમા અધ્યાયમાં જણાવ્યું છે કે ''મારું સ્મરણ કરવાથી આત્માની શુદ્ધિ થાય છે અને શુદ્ધ થઈ પણ્ડિત માણસે કર્માચરણ કરવું''.

તૃતીય સ્કન્ધમાં પણ લખ્યું છે કે ''ઈશ્વરના નામનું શ્રવણ કરવાથી, કીર્તન કરવાથી, દણ્ડવત કરવાથી, સ્મરણ કરવાથી કોઈ વખતે નીચ પણ કલ્યાણને (યજ્ઞકરણરૂપ.) પ્રાપ્ત થાય છે તો પછી બીજાને માટે દર્શનાદિક આપ આપો અને કલ્યાણાદિ થાય એમાં નવાઈ શું?'' સારાંશ કે નીચ પણ ભગવન્નામગ્રહણથી પવિત્ર થાય તો દર્શન કરવાથી પવિત્ર થાય એમાં સન્દેહ જ શું કરવો? કાંઈ પણ નહીં.

દ્વાદશ સ્કન્ધમાં પણ લખ્યું છે કે ''વિદ્યા, તપ, પ્રાણનો નિરોધ, મૈત્રી, પરમેશ્વર સાથે મિત્રભાવ, તીર્થનો અભિષેક, વ્રત(એકાદશી વિગેરે) દાન, જપ ઈત્યાદિ કરવાથી અન્તરાત્મા એવો શુદ્ધ થતો નથી કે જેવો ભગવાન્ અનન્તના હૃદયમાં રહેવાથી થાય છે''.

સારાંશ કે હૃદયમાં ભગવાનના નામના બિરાજવાથી જેવી શુદ્ધિ અન્તરાત્માની થાય છે તેવી ઉપર બતાવેલા રીતે થતી નથી. ષષ્ઠ સ્કન્ધમાં પણ શ્રીશુકદેવજીએ સર્વ પાપોના નિઃશેષ નિવારણમાટે ભક્તિ જ કહી છે અને લખ્યું છે કે ''વાસુદેવને પરાયણ થયેલા કોઈ માણસો કેવલ ભક્તિથી જ પાપને ધોઈ નાખે છે, જેમ સૂર્ય ઝાકળનો નાશ નિઃશેષપણે કરે છે''. વળી પરીક્ષિત રાજાને શુકદેવજી કહે છે કે ''હે રાજા! તપશ્ચર્યા વિગેરે કરવાથી પાપી મનુષ્ય તેવો પવિત્ર થતો નથી જેવો પરમાત્માના સેવકોની સેવા કરવાથી અથવા પરમાત્મામાં પ્રાણનું અર્પણ કરવાથી થાય છે''.

માટે આત્માની શુદ્ધિમાટે ભક્તિ જ દૃઢ ઉપાય છે. જ્ઞાનથી આનો વિકલ્પ નહીં સમજવો, કારણ કે તત્ત્વ વિચારમાં પ્રાયશ્ચિત્તપણાનું કથન છે. માટે વાંસની ગાંઠોને અગ્નિ જેમ બાળે એ દૃષ્ટાન્તથી એમ જણાય છે કે થોડા વખત પછી પાછા વાંસના અંકુરો પેદા થઈ જાય છે. અને ભક્તિની બાબતમાં ઝાકળનો સૂર્ય જેમ નાશ કરે છે તે દૃષ્ટાન્ત ઉપરથી સમસ્ત પાપનો નાશ થઈ જાય છે એમ સૂચિત કર્યું છે. અને જ્ઞાન પછી ભક્તિ કહી છે તેથી ભક્તિની અધિકતા બતાવી છે. અને ઉરોક્ત બાબતનું પોષણ કરનારું અજામિલનું આખ્યાનનો ઉપન્યાસ કરીને ત્યાં શિવભક્ત અગત્સ્યની તેમાં સમ્મતિ દર્શાવીને જ્ઞાન કરતાં ભક્તિનું આધિક્ય ભગવદ્ભક્તોની સામે સાધેલું છે.

વળી લિંગ શરીરની પણ શુદ્ધિ આહારની શુદ્ધિથી કહી છે. તે શુદ્ધિ જ્ઞાનમાં ઉપયોગવાળી છે. ''આહારની શુદ્ધિથી સત્ત્વની શુદ્ધિ થાય છે અને સત્ત્વ(અન્તઃકરણ)ની શુદ્ધિથી નિશ્ચિત્ત સ્મૃતિ થાય છે'' એમ છાંદોગ્ય ઉપનિષદમાં જણાવેલું છે. વળી લખે છે કે ''હે સૌમ્ય! અન્નમય મન છે, જલમય પ્રાણ છે અને તેજોમય વાણી છે''. અહીં મન, પ્રાણ, વાણી આહારનું પરિણામ છે તેવું તથા તેનાથી પોષિત છે તેવું માનેલું છે. આહારની શુદ્ધિ પોત-પોતાની વર્ણાશ્રમ વૃત્તિથી સમ્પાદન કરેલા અન્નને ભગવત્સમર્પણ કરીને તેનો પ્રસાદરૂપે ભોજન કરવાથી થાય છે. હરિવલ્લભસુધોદય નિબન્ધમાં બ્રહ્માણ્ડમાં જણાવેલું છે ''શ્રીહરિનું ચરણોદક રોજ પીવું અને હરિને નિવેદન કરેલું અન્નાદિનું ભોજન કરવું. તેનાથી સર્વ કામની પ્રાપ્તિ તથા આત્માની શુદ્ધિ થાય છે''. પદ્મપુરાણમાં લખ્યું છે કે ''શ્રીમુકુન્દાશનનો શેષ ભાગ જે માણસ રોજે-રોજ ભોજનમાં ગ્રહણ કરે છે તે માણસને પગલે-પગલે સોથી વધારે ચાન્દ્રાયણ વ્રત કરવાનું પુણ્ય થાય છે. બીજા દેવનું નૈવેદ્ય જો દ્વિજ(ત્રિવર્ણ) ભોજન કરે તો દ્વિજને 'ચાન્દ્રાયણ' નામક પ્રાયશ્ચિત્ત કરવું જોઈએ. પણ કેશવનું નૈવેદ્ય ભોજન કરે તો સર્વ પાપથી મુક્ત થવાય''. માટે જ્ઞાનપક્ષમાં પણ તેના સ્વરૂપના ઉપકારમાટે સ્મરણાદિરૂપ ભક્તિ જરૂર અપેક્ષિત છે અને તે સુકર પણ છે માટે સેવોપયોગી આત્માની શુદ્ધિ કરવામાટે પ્રભુના સ્મરણાદિ કરવા એ જ ઉપયુક્ત છે. આ બાબતમાં જોઈએ તેટલા પ્રમાણ છે પરન્તુ અમો એક દિક્માત્ર બતાવીએ છીએ.

શ્રીવલ્લભાચાર્યના ચરણકમલનો પ્રસાદથી અનેક નિબન્ધો જોઈ તપાસી

બાહ્યાભ્યન્તર એમ બે પ્રકારની શુદ્ધિ સ્પષ્ટ કરી છે.

આ પ્રમાણે શ્રીવલ્લભાચાર્યના ચરણકમલના દાસના દાસ
શ્રીપિતામ્બરજી માહારાજના પુત્ર શ્રીપુરુષોત્તમ માહારાજે
સ્પષ્ટ કરેલી દ્રવ્યશુદ્ધિ સમ્પૂર્ણ.

ઇતિ શ્રીદ્રવ્યશુદ્ધિની વૈદ્યશાસ્ત્રી માધવજી ગોપાલજી વિરચિત
'દ્રવ્યશુદ્ધિપ્રકાશિકા' નામની ટીકા સમ્પૂર્ણ.

શ્રીઆચાર્યરત્ન પણ્ડિત શ્રીપુરુષોત્તમજી મહારાજની વાણી અનેક પ્રામાણિક પણ્ડિત પુરુષોને પ્રાયશઃ કાઠિન્યપણારૂપે અજાણી નથી. માટે વિદ્વાનોએ હંસપ્રકૃતિથી સમાધાન કરી લેવું.

આચાર્યરત્નની પવિત્ર વાણીને યથાયોગ્ય અસાધારણ જાણી ભાષાન્તર કરવા સત્વર તત્પર થાય તો શ્રીઆચાર્યચરણ આપજ સ્વકીય સમજીને પૂર્ણ કરુણા વરુણાલય કરે તો જ સેવક જનનો સ્વાર્થ કૃતાર્થ સાર્થવાહ થાય. આ બાબતમાં સ્વલ્પ પણ સન્દેહ નથી. એજ પણ્ડિત વૈષ્ણવ જનોને પરમ પ્રેમપૂર્વક પ્રાર્થના નિરન્તર છે.

गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमचरण विरचित

उत्सवप्रतान

(हिन्दी अनुवाद)

श्रीमद्वल्लभाचार्यचरण तथा श्रीविट्ठलेशप्रभुचरणों को प्रणाम कर उत्सवोंके समयका युक्तियुक्त प्रतिपादन किया जाता है.

उत्सवोंमें प्रथम जन्माष्टमीके समयका निर्णय करना योग्य है, क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णका प्रादुर्भावोत्सव (श्रीकृष्णजन्माष्टमीका उत्सव) सब उत्सवोंका मूल है. इस श्रीकृष्णजन्माष्टमीके उत्सवका निर्णय श्रीविट्ठलेशप्रभुचरणोंने किया है. इसलिये प्रथम उस निर्णयका आशय ही स्पष्ट किया जाता है जो इस प्रकार है :

कलियुगने पैदा किये हुवे पण्डितोंके विवाद–कलहके प्रभावसे श्रीगोकुलाधीश नन्दनन्दनके प्रादुर्भावके दिनके विषयमें भी हृदयमें मालिन्य प्रवेश कर गया था जो श्रीप्रभुचरणोंको सह्य नहीं हुवा. अतएव उसे दूर करनेकेलिये श्रीप्रभुचरण श्रीगोकुलाधीशके प्रादुर्भावकी तिथिके निर्णयकी इस प्रकार प्रतिज्ञा करतें हैं :

पितृचरण श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणके गलित मधुरसभरित चरणकमलयुग्मको प्रणाम कर जन्माष्टमीमें कौनसी अष्टमी व्रतमें ग्रहण करनी ? इस संशयको मैं निवृत्त करता हूं.

इस श्लोकके उत्तरार्धमें ''जन्माष्टमी का अष्टमी इति संशयान्'' इतने अंशका अर्थ कौनसी जन्माष्टमी श्रीगोकुलाधीश जन्माष्टमी है ? इस प्रश्नके हेतुभूत संशय है. उन संशयोंका स्वरूप इस प्रकार है :

प्रादुर्भावोत्सव तिथि विद्धा (सप्तमीके वेधसे युक्त) लेनी या अविद्धा (सप्तमीके वेधसे रहित लेनी) ?

यदि अविद्धा लेनी है तो उसके क्षय होने पर कैसी तिथिमें उपवास करना योग्य है इत्यादि.

ये संशय प्रस्तुत ग्रन्थमें आगे स्पष्ट होंगे.

श्रीकृष्णजन्माष्टमीका व्रत नित्य है या काम्य ? एवं जन्माष्टमी जयन्ती भिन्न है या

अभिन्न– इत्यादि विचार क्यों नहीं किया जाता है? इस प्रश्नके उत्तरकेलिए 'तत्र' से 'प्रपञ्च्यते' पर्यन्त मूल ग्रन्थ है. इसका आशय यह है कि यदि जन्माष्टमी और जयन्तीके व्रत स्वरूपसे दोनों सर्वथा भिन्न माने जायें अथवा जन्माष्टमी व्रतमें और जयन्ती व्रतमें रोहिणी नक्षत्र साथ हो अथवा नक्षत्र साथ न हो ऐसी अष्टमी भिन्न–भिन्न प्रकारकी ली जाती है ऐसा माना जाए, दोनोमेंसे कोई भी पक्ष माना जाय, परन्तु जिस वर्ष जयन्तीका योग न बने, उस वर्ष जन्माष्टमीसे हि निर्वाह करना होगा. तात्पर्य यह है कि जयन्ती व्रत प्रतिवर्ष उपयोगमें आनेवाला अपरिहार्य नहीं है. अतएव इसका विशेष विस्तृत विवेचन यहां नहीं किया जाता है. यह जन्माष्टमीका नित्यत्व और जन्माष्टमी जयन्तीका भेद माधवाचार्य आदि धर्मशास्त्रके आचार्योंने सविस्तर किया है.

प्रश्न – उपर्युक्त आचार्योंके जयन्तीव्रतके विवेचनसे जन्माष्टमीके निर्णयमें होनेवाले अन्यान्य सन्देह भी निवृत्त हो जाएंगे, क्योंकि दोनोंही व्रत एक तिथिमें होनेवाले हैं, परस्पर सम्बन्ध रखते हैं. अतएव जन्माष्टमीव्रतके निर्णयका आरम्भ करना व्यर्थ है.

उत्तर – इसका तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण जन्माष्टमी सप्तमीसे विद्धा लेनी या अविद्धा ? अष्टमीका क्षय हो तो कैसी तिथिमें उपवास करना ? इस सन्देहका निवारण जयन्तीव्रतके विवेचनसे नहीं हो सकता, क्योंकि जयन्तीव्रतमें सप्तमीवेध त्याज्य नहीं है, जैसा कि आगे जयन्ती निर्णायक वचनोंसे मालूम होगा. अतएव जयन्तीविवेचनसे वेधत्यागका विचार मालूम नहीं हो सकता, इसके लिए अग्रिम जन्माष्टमीका निर्णय आवश्यक है.

अन्य मत – संशयमें प्रथम विद्धा प्रकारका नाम लिया है. विद्धाके निर्णयमें वेधका स्वरूप जानना आवश्यक है. एवं जन्माष्टमी–जयन्तीके भेदमें यह वेध भी एक कारण है. अतएव इसके द्वारा जन्माष्टमी और जयन्ती के भेदका निर्णय करनेकेलिये अष्टमीमें सप्तमीके वेधको ग्राह्य माननेवाले अन्य विद्धानोंके मतका अनुवाद श्रीप्रभुचरण करते हैं. इसका अर्थ यह है कि भगवान् श्रीकृष्णका आर्विभाव अष्टमीको अर्धरात्रिके समय हुआ था. इसलिये श्रीकृष्ण जन्माष्टमी और श्रीकृष्णजयन्तीके व्रतमें रात्रि प्राकट्र्यकाल कर्मकाल होनेसे रात्रिप्रधान है. और इस समय ही सप्तमीके दिन अष्टमीका रहना प्रशस्त है. इसमें वसिष्ठसंहिताका वचन प्रमाण है :

''यदि रोहिणी नक्षत्रसहित अष्टमी अर्धरात्रिके समय दीखे तो वह

मुख्य समय है. इस समय भगवान् स्वयं प्रकट हुए हैं''.

विष्णुरहस्यका वचन है कि :

''अर्धरात्रिके समय अष्टमी और रोहिणी नक्षत्र यदि वर्तमान हों तो उस समय किया हुवा भगवान् श्रीकृष्णका पूजन तीन जन्मोंके पापोंको नष्ट करता है''.

आदित्यपुराणका वचन है की

''अर्ध रात्रिके पहिले या पीछे कलामात्र समयमें भी यदि अष्टमी और रोहिणीका योग हो तो वह संपूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाली जयन्ती कही गई है''.

वराहसंहिताका वचन है की :

''यदि सिंह संक्रान्तिमें रोहिणीसहित कृष्णाष्टमी अर्धरात्रिके समय या उससे पहिले या पीछे कलामात्र समयमें भी हो तो वह जयन्ती है''.

आगे और भी ऐसे वचन कहे हैं.

इसमें दिखाये गये वचनोंका सिद्धान्तसम्मत तात्पर्य 'तत्र'से प्रारम्भ कर 'अभ्युपेयम्' पर्यन्त ग्रन्थसे दिखाया जाता है. आशय यह है कि रात्रिके समय अष्टमी और रोहिणी का योग ग्राह्य बतानेवाले कई वचन हैं. इनमेंसे आदित्यपुराण, वराहसंहिता, योगीश्वर आदिके कुछ वचनोंमें 'जयन्ती' पद है, जिससे सिद्ध होता है कि यह योग जयन्तीव्रतमें आवश्यक है. अतएव रात्रिके सयम अष्टमी और रोहिणी का योग बतलानेवाले जिन वचनोंमें 'जयन्ती' पद नहीं है उनको भी जयन्तीव्रतके ही बोधक मानने चाहिये, क्योंकि दोनोंकी एकवाक्यता हो जाती है.

जयन्तीके बोधक सभी पूर्वोक्त वचनोंमें रात्रिके समय अष्टमी और रोहिणी का रहना आवश्यक बताया है. इससे सिद्ध होता है कि जयन्तीयोग रात्रिके समय अष्टमी और रोहिणी दोनोंके मिलनेसे बनता है, केवल अष्टमीके ही रहनेसे नहीं. अतएव ''दिवा वा यदि वा रात्रौ'' जैसे कुछ वचन जो रात्रिके समय केवल अष्टमीका रहना आवश्यक बताते हैं वे 'जयन्ती'बोधक कैसे हो सकते हैं ? ये तो श्रीकृष्ण जन्माष्टमीके बोधक है. 'यत्तु'से प्रारम्भकर ''जयन्तीपरमिति ज्ञेयम्'' पर्यन्त ग्रन्थका आशय यह है : ''दिवा वा'' वचनमें कहा है कि ''यदि अहोरात्रमें कलामात्र समय भी रोहिणी नक्षत्र न

हो तो जब रात्रिके समय और विशेष कर चन्द्रोदयके समय केवल अष्टमी भी हो तो जयन्ती व्रत करना चाहिये'' इस वचनको भी जयन्ती परक मानना चाहिये, आशय यह है की जयन्तीव्रतकेलिये अर्धरात्रिके समय रोहिणी नक्षत्र और अष्टमी का योग मुख्य है, परन्तु जिस वर्ष यह योग न बने उस वर्ष अहोरात्रमें किसी भी समय कलामात्र भी रोहिणी नक्षत्र हो तो उस दिन जयन्तीका व्रत करना चाहिये. यदि अहोरात्रमें सर्वथा रोहिणी न हो तो अर्ध रात्रिके समय केवल अष्टमी हो, उस दिन भी जयन्ती व्रत कर लेना चाहिये. पूर्ण जयन्तीयोग न बनने पर जयन्तीके व्रतका त्याग करना योग्य नहीं. यही ''दिवा वा यदि वा रात्रौ'' इस वचनका रहस्य है. तात्पर्य यह है कि यह वचन गौण जयन्तीयोगका बोधक है. यदि यह जयन्तीयोगका बोधक न हो तो इसमें 'इन्दुसंयुताम्' पदसे चन्द्रोदयके समय अष्टमी होनी चाहिये यह क्यों कहते! क्योंकि इससे जयन्तीव्रतमें चन्द्रकेलिये दिये जानेवाले अर्घ्यकी सूचना मिलती है. इसके अतिरिक्त ''नास्ति चेद् रोहिणीकला'' यह जो रोहिणी नक्षत्रका स्मरण किया है, इससे भी प्रमाणित होता है कि यह वचन जयन्तीबोधक है, क्योंकि रोहिणीका सम्बन्ध जयन्ती व्रतमें आवश्यक है, अतएव इसके अभावमें गौण जयन्ती स्वीकार की है. जन्माष्टमीके व्रतमें तो रोहिणीकी आवश्यकता नहीं है, जो कि ''सऋक्षापि न कर्तव्या सप्तमीसंयुताष्टमी'' इस वचनसे प्रमाणित होती है. अतएव ''जन्माष्टमीके व्रतकेलिये अहोरात्रमें कलामात्र भी रोहिणी न हो तो'' यह कहना अनुपयोगी है. एक बडा कारण यह है कि निम्नलिखित वचन प्रतिवर्ष जयन्तीव्रत करना चाहिये, ऐसा नित्यत्व कहते हैं, और रोहिणी–अष्टमीके योगसे बननेवाली जयन्ती प्रतिवर्ष मिल नहीं सकती, अतएव गौण जयन्तीयोगमें अर्थात् अर्धरात्रिके समय केवल अष्टमीकी सत्ता तक निमित्त मान ली गई है. अतः केवल अष्टमी उपवासमें स्वीकार करनी आवश्यक है, जयन्ती व्रतका विच्छेद नहीं करना. प्रतिवर्ष जयन्तीव्रतकी कर्तव्यता बतलानेवाले वचन ये हैं :

> ''हे धर्मपुत्र ! मेरा भक्त पुरुष हो या स्त्री यदि विधिपूर्वक व्रत करे तो जयन्ती व्रतके शास्त्रोक्त पूर्णफलको प्राप्त करता है''. (भविष्योत्तरपुराणजयन्तीकल्प वचन)
>
> ''अमान्त मासके अनुसार श्रावण कृष्ण अष्टमी अर्थात् भाद्रपद कृष्ण अष्टमी जो कि रोहिणी नक्षत्रसे युक्त है उसमें भगवान् श्रीकृष्णकी प्रसन्नताकेलिये प्रतिवर्ष जयन्ती व्रत करना चाहिये''.(स्मृत्यन्तरमें जयन्तीप्रकरणीय वचन)

विष्णुरहस्यका यह वचन भी गौण जयन्ती योगका बोधक है.

''जिस अहोरात्रमें मुर्हूतमात्र भी अष्टमी और रोहिणीका सम्बन्ध हो जावे तो उस पवित्र अष्टमीका उपवास करना चाहिये''.

कुछ विद्वानोंने जो यह कहा है कि जयन्तीके व्रतमें जो निर्णय है वही जन्माष्टमीके व्रतमें भी है. परन्तु यह कथन पण्डितोंकी समालोचनाके आगे टिकनेवाला नहीं है. क्योंकि पद्मपुराणके निम्नलिखित वचनोंसे यह सिद्ध होता है कि जन्माष्टमीके व्रतमें सूर्योदयके समयका वेध देखना चाहिये और जयन्तीके व्रतमें अर्ध रात्रिके समयका वेध देखना चाहिये :

''पहिले दिन अष्टमी सप्तमीविद्धा हो और दूसरे दिन नवमी तिथिको सूर्योदयके समय यदि वह मुहूर्त पर्यन्त भी रहती हो तो वह श्रीकृष्ण जन्माष्टमी संपूर्ण है'' (पद्मपुराण)

''यदि श्रीकृष्णजन्माष्टमी नवमीके दिन कलाकाष्ठा या मुहूर्त मात्र भी हो तो वही व्रतमें ग्रहण करने योग्य है. सप्तमीसहित अष्टमी ग्रहण करने योग्य नहीं'' (स्कन्दपुराण)

'यत्तु' से लेकर 'ग्राह्यः' पर्यन्त ग्रन्थसे परमतका अनुवाद कर जो समाधान किया है इसका स्पष्टीकरण यह है कि जन्माष्टमी प्रकरणके वचनोंमें उपवासके अतिरिक्त ओर कोई भी अहोरात्र व्यापि व्रत नहीं है. और ''पूर्वविद्धाऽष्टमी या तु'' इस पूर्वोक्त वचनमें नवमीके दिन मुहूर्त मात्र भी अष्टमी हो तो सम्पूर्ण यानी अहोरात्रव्यापिनी माननी चाहिये, यह पूर्ण माननेका अतिदेश है. इससे साबित होता है कि जिस दिन सूर्योदयसे लेकर अहोरात्र व्यापिनी अष्टमी हो वह जन्माष्टमी व्रतोपवासकेलिये मुख्य काल है, जैसा कि **''कर्मणो यस्य यः कालः तत्कालव्यापिनी तिथिः, तया कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम्, उदयात् उदयात् प्रोक्ता हरिवासारवर्जिता''** इस वृद्धयाज्ञवल्क्योक्त कर्मकाल शास्त्रमें बताया है. यदि जन्माष्टमीकी व्याप्ति (वर्तमान रहना) अहोरात्रमें न होकर शास्त्रके द्वारा बताये गये अहोरात्रके एकदेशमें हो तो वह पारिभाषिक व्याप्ति है. ऐसी व्याप्ति जन्माष्टमीव्रतकेलिये गौणकाल है. सर्वतिथि साधारण ऐसे गौण कालके निर्णयमें दो पक्ष हैं : एक पक्ष सूर्योदयव्यापिनी तिथिको ग्राह्य मानता है. दूसरा पक्ष सूर्यास्त व्यापिनी तिथिको ग्राह्य मानता है. ये दोनों पक्ष अग्रिम वचनोंसे साबित होते हैं.

पहिले पक्षका समर्थक बौधायनका वचन है :

''उपवासकेलिये सूर्योदयके समय रहनेवाली रात्रिव्रतकेलिये सूर्यास्तके समय रहनेवाली और एकवार भोजनमें (एकाशनव्रतमें) मध्याह्नके समय रहनेवाली तिथि लेनी चाहिये. सूर्योदयके समय यदि तिथि अल्प भी हो तो पूरी ही माननी चाहिये. सूर्योदय–समयके स्पर्शके बिना तिथि पूर्ण नहीं होती है''.

दूसरे पक्षका समर्थक ''प्रायः प्रान्त उपोष्या'' यह शिवरहस्यका वचन है :

''दैवीफल चाहनेवाले सूर्यास्तव्यापिनी तिथिमें उपवास करें''.

सर्व साधारण तिथिनिर्णयमें लिये जानेवाले इन दो पक्षोमेंसे किस पक्षका आदर जन्माष्टमीके निर्णयमें करना चाहिये ? इस प्रश्नका उत्तर ''पूर्वविद्धाष्टमी या तु'' इस प्रातिस्विक् (तिथिविशेषनिर्णायक) वचनसे दिया गया है. तात्पर्य यह है कि पहिले दिनकी सूर्यास्तव्यापिनी जन्माष्टमी बहुत अधिक समय रहनेवाली होने पर भी व्रतमें ग्राह्य नहीं है. दूसरे दिनकी सूर्योदयव्यापिनी बहुत अल्प समय रहनेवाली होने पर भी व्रतमें ग्राह्य है.

इस प्रकार जन्माष्टमी निर्णयमें सूर्यास्तव्यापिनी माननेवाले पक्षका निषेध किया गया है. यदि जन्माष्टमी व्रत रात्रिप्रधान होता तो सूर्यास्तव्यापिनी पक्षका निषेध न होता. क्योंकि रात्रिप्रधान व्रतोंमें तो पहले दिनको सूर्यास्तव्यापिनी तिथि ही, कर्मकालशास्त्र बौधायनवचन एवं शिवरहस्यवचनके, ग्रहण करने योग्य सिद्ध होती है. सिद्ध यह हुआ कि जयन्तीके समान जन्माष्टमीका निर्णय अर्धरात्रिके समयकी व्याप्तिसे नहीं हो सकता.

कलाकाष्ठाका अर्थ :

''कलाकाष्ठामुहूर्ताऽपि'' इस पद्मपुराणके वचनसे अपरार्कको भी प्रत्युत्तर मिल गया, जो कि रोहिणी नक्षत्रसे हीन अष्टमी नवमीके दिन सूर्योदयके अनन्तर एक मुहूर्त तक रहती हो तो व्रतमें ग्राह्य है, अर्थात् मुहूर्तसे न्यून हो तो ग्राह्य नहीं, ऐसा अपरार्कने कहा था, सो ठिक नहीं है. कलाकाष्ठा रहने पर भी अष्टमी ग्राह्य है.

कुछ विद्वानोंने जो यह कहा था कि ‘‘कलाकाष्ठामुहूर्ताऽपि’’ इस वचनमें छोटे–छोटे कला–काष्ठा आदि समयोंका उल्लेख ‘मुहूर्त’शब्दवाच्य त्रिमुहूर्तात्मक समयकी स्तुतिके लिये है. कला–काष्ठा सदृश अल्पतम समयोंकी व्याप्ति भी ग्राह्य है, इस आशयसे नहीं है. यह मत विचार करने पर ठीक नहीं मालूम होता. क्योंकि प्रत्येक तिथिके वेधका प्रमाण भिन्न–भिन्न है. जैसा कि ‘‘नागो द्वादशनाडीभिः’’ इत्यादि, पञ्चमी बारह घडियोंके, दशमी पन्द्रह घडियोंके और चतुर्दशी अठारह घडियोंके वेधसे उत्तरतिथिको दूषित करती है. इस वचनके समान ‘कलाकाष्ठा’ यह वचन भी जन्माष्टमी व्रतमें वेधका बोध करानेवाला विशेष वचन है. यह त्रिमुहूर्त व्याप्तिकी प्रशंसा करनेवाला नहीं हो सकता. यदि नवमीके दिन अष्टमी तीन मुहूर्तोंसे न्यून हो तो पहले दिनकी सप्तमीविद्धा अष्टमी लेनी, यह आशय होता तो स्कन्दपुराणके इस अग्रिम वचनमें सप्तमीके पलमात्र वेधका निषेध न होता. अतएव नृसिंहपरिचर्या और हरिवल्लभसुधोदयमें यह वचन उद्धृत है :

> ‘‘हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ? शराबकी बूंदका भी स्पर्श होने पर गंगाजलके कलशका जैसे त्याग किया जाता है, वैसे ही सप्तमीका पलमात्रवेध होने पर भी अष्टमीका त्याग करे’’.

अपरार्कने भी कहा है कि ‘

> ‘रोहिणी सहित अष्टमीमें त्रुटिमात्र भी सप्तमीका वेध हो तो वह अष्टमी ग्रहण करने योग्य नहीं है’’.

अष्टमीमें सप्तमीवेधकी प्राप्ति और अन्य मतोंकी समीक्षा :

१. पूर्वपक्ष – जन्माष्टमीमें सप्तमी वेधका निषेध मानना युक्तियुक्त नहीं है. क्योंकि निषेध प्राप्ति पूर्वक होता है. अर्थात् जिसमें प्रवृत्तिकेलिये पहले किसीके द्वारा प्रेरणा मिली हो, और प्रवृत्ति अनुचित हो, उसका निषेध किया जाता है. जैसे, लशुन पलाण्डु स्वादिष्ट है, इनके भोजनकेलिये राग (अभिलाष) प्रेरणा करता है, परन्तु यह प्रवृत्ति अनुचित है, इसलिये धर्मशास्त्र निषेध करता है. इस प्रकार सप्तमीवेधमें जन्माष्टमीव्रत करनेकेलिये किसीके द्वारा प्रेरणा नहीं मिलती है, अतएव निषेध नहीं हो सकता. यद्यपि अर्धरात्रिके समय अष्टमीको आवश्यक बतानेवाले वचनोंसे सप्तमीवेधमें व्रत करनेकेलिये प्रेरणा (प्राप्ति) मिलती है, परन्तु वे वचन जयन्तीके बोधक हैं, जन्माष्टमी व्रतके नहीं. अतएव जन्माष्टमी व्रतमें सप्तमीवेधकेलिये उनसे प्रेरणा नहीं मिल सकती, अर्थात् प्राप्ति नहीं है, फिर निषेध कैसा ?

उत्तर यह है कि शास्त्रमें निषेधक ‘नञ्’ या ‘न’ अव्ययका क्रियाके साथ अन्वय (सम्बन्ध) होता है, वहां निषेध माना जाता है, और वहीं निषेध किया जाता है, उसकी किसी दूसरेके द्वारा प्राप्ति (विधान) होना आवश्यक है, परन्तु जहां ‘नञ्’ या ‘न’ का अन्वय (सम्बन्ध) शब्दके साथ होता है वहां निषेध न मानकर पर्युदास माना जाता है, अर्थात् वहां नञर्थका विधान नहीं, अनुवाद है. ऐसे स्थलमें जिसका पर्युदास किया जाता है उसकी पहले किसी दूसरेसे प्राप्ति यानी विधानकी आवश्यकता नहीं है, जैसी कि ‘‘भूमौ अग्निः चेतव्यो न अन्तरिक्षे न दिवि’’ इस श्रुतिमें आकाशका मध्य और स्वर्ग ऐसी वस्तु नहीं है कि जिसमें अग्निचयन का विधान कोई कर सके. अतएव इसमें अग्निचयनके साथ न मानकर ‘अन्तरिक्षे’ और ‘दिवि’ पदोंके साथ माना गया है, जिसमें उक्तश्रुतिका अर्थ यह निश्चित हुआ है कि अन्तरिक्ष और स्वर्गसे भिन्न पृथिवी पर अग्निका चयन करना चाहिये यह नञर्थका अनुवाद है, इसी प्रकार सप्तमीवेधको अग्राह्य बतानेवाले वचनोंमें भी पर्युदास है, नञर्थका अनुवाद है, निषेध नहीं है, अतएव यहां प्राप्तिकी (विधानकी) आवश्यकता बताना उचित नहीं है. अथवा कभी–कभी मनुष्य भ्रमवश परधर्मके आचरणमें प्रवृत्त हो जाता है, इसी प्रकार सम्भव है कि भ्रमवश कोई सप्तमीविद्धामें भी व्रत करनेकेलिये उद्यत हो जाय. इस प्रकार भ्रममूलक प्राप्ति है. अतएव यदि सप्तमीवेधका निषेध भी माना जाय तो युक्तियुक्त ही है.

अब दूसरी शंका यह है कि जयन्ती और जन्माष्टमीव्रत भिन्न–भिन्न हैं. इनसे सम्बन्ध रखनेवाले विधिनिषेध भी इनके भिन्न–भिन्न प्रकरणोंमें पढे हुए हैं. इसलिये सप्तमीवेधको स्वीकार करनेवाले जयन्ती प्रकरणके वचनोंसे जन्माष्टमीमें भी सप्तमीवेध लेनेका भ्रम नहीं हो सकता, क्योंकि प्रकरणोंके भिन्न–भिन्न होनेसे इस भ्रमका वारण हो जाता है, अतएव उपर्युक्त भ्रममूलक प्राप्तिकी उपपत्ति नहीं हो सकती.

इसका उत्तर यह है : पूर्व मीमांसामें शास्त्रके तात्पर्यका निर्णय करनेकेलिये श्रुति, लिंग, वाक्य, प्रकरण, स्थान और समाख्या नामक छः विभाग बताये हैं. युक्तियां उत्तरोत्तर निर्बल हैं. इनमें ‘श्रुति’का अर्थ निरपेक्ष शब्द है. ‘लिंग’का अर्थ अभिप्रायप्रकाशन करनेवाला शब्द और अर्थकी शक्ति है. एवं ‘प्रकरण’का अर्थ पारस्परिक अपेक्षा है. श्रुति और लिंग दोनों बलिष्ठ होनेसे प्रकरणका बाधकर प्रकरणविरुद्ध अर्थका भी निश्चय करा देते हैं. अतएव सम्भव है कि जयन्तीप्रकरणके

किसी वचनसे जन्माष्टमीव्रतमें भी सप्तमीका वेध उपादेय साबित हो जाय. अतएव स्पष्ट शब्दोमें सप्तमीवेधका निषेध होना आवश्यक है.

२. किसी विद्वानने जन्माष्टमी व्रतको रात्रिप्रधान स्वीकार कर यह कहा कि सप्तमीवेधको हेय बतानेवाले वचन जन्माष्टमी व्रतके प्रकरणमें और उपादेय बतानेवाले जयन्तीके प्रकरणमें माने जायें ऐसी व्यवस्था करना अयोग्य है, अर्थात् दोनों प्रकरण भिन्न–भिन्न मानना अनुचित है. क्योंकि इसमें सब वादियोंकी सम्मति नहीं है. परन्तु यह प्रतिवादीका कथन अत्यन्त तुच्छ है. कारण यह कि जन्माष्टमी और जयन्ती के वचनोंमें एक नियमित विरोध देखा गया है. प्रकरणभेदकी कल्पना न कर इनकी एकवाक्यता करना अशक्य है.

जयन्ती–जन्माष्टमीकी अर्धरात्रिमें व्याप्ति :

३. फिर पूर्वपक्ष है कि जयन्ती और जन्माष्टमी के वचनोंमें कोई पारस्परिक निश्चित विरोध नहीं है. ये दोनों व्रत रात्रिप्रधान हैं. जिस दिन अर्धरात्रिके समय अष्टमी रहती हो उसी दिन ये दोनों व्रत हो सकते हैं, दूसरे दिन नहीं. अतएव जब पहले दिन सप्तमीके बाद प्रविष्ट हुई अष्टमी अर्धरात्रिके समय रहती हो और दूसरे दिन अर्धरात्रिके समय न रहती हो, ऐसे अवसर पर सप्तमीवेधको ग्राह्य माननेवाले वचन सार्थक हैं. जबकि पहले दिन अर्धरात्रिके नियत समय बाद अष्टमी आती हो और दूसरे दिन अर्धरात्रिके नियत समयमें रहती हो, तब सप्तमीके वेधको हेय माननेवाले वचन सार्थक हैं. जब दोनों दिन अर्धरात्रिके समय अष्टमी रहती हो, अथवा न रहती हो, तब सप्तमीके वेधको ग्राह्य–अग्राह्य माननेवाले भिन्न–भिन्न वचनोंका परस्पर विरोध रहेगा. अथवा दोनों दिन अर्धरात्रिके समय अष्टमी रहती हो या दूसरे दिन ही रहती हो, तब सप्तमीवेधका निषेध करनेवाले वचन सार्थक हैं. जब कि पहले दिन ही अर्धरात्रिके समय अष्टमी रहती हो तब सप्तमीवेधको ग्राह्य माननेवाले वचन सार्थक हैं, जब दोनों दिन अर्धरात्रिके समय न रहती हो तब विरोध है. ऐसी व्यवस्था करने पर जन्माष्टमी और जयन्ती के वचनोंका पारस्परिक विरोध अनियत सिद्ध हो जाता है, अर्थात् सार्वदिक और सार्वत्रिक नहीं रहता है.

इसका खण्डन यह है कि जन्माष्टमी और जयन्ती के व्रतमें अष्टमी अर्धरात्रिके समय रहनेवाली ग्राह्य है यह तो ''कर्मणो यस्यः यः कालः तत्कालव्यापिनी

तिथिः'' इस कर्मकाल-शास्त्रसे ही सिद्ध हो जाता है, फिर यह कर्मकाल-शास्त्र एवं अर्धरात्रिके समय अष्टमीकी सत्ता आवश्यक बतानेवाले विशेषवचन इन दोनोंकी क्या आवश्यकता? यदि यह कहा जाय कि कर्मकाल-शास्त्र सर्वसाधारण होनेसे सामान्यशास्त्र हैं, और खास अष्टमी तथा जयन्तीके सम्बन्ध रखनेवाले वचन विशेषशास्त्र हैं, इस प्रकार सामान्य-विशेषभावसे दोनोंका उपयोग है, तो यह भी कहना ठीक नहीं. क्योंकि सामान्य शास्त्रका क्षेत्र विस्तृत होता है और विशेष शास्त्रका क्षेत्र संकुचित होता है. यदि दोनोंकी एकवाक्यता की जायगी तो सामान्य शास्त्र संकुचित होकर विशेषके रूपमें परिणीत हो जायगा. जैसा कि ''पुरोडाशं चतुर्धा करोति'' इस श्रुतिके अनुसार पुरोडाश नामक आटेके गोलेके चार भाग करना, सर्वसाधारण पुरोडाशोंके साथ सम्बन्ध करने योग्य है, इस लिये उक्त श्रुति सामान्य-शास्त्र है, परन्तु ''आग्नेयं चतुर्धा करोति'' इस विशेषशास्त्रके साथ एकवाक्यता होने पर संकुचित होकर विशेषशास्त्र बन जाता है. जिससे केवल आग्नेय पुरोडाशका ही चतुर्धाकरण होता है, इस प्रकार विशेषशास्त्र बन जाने पर कर्मकालशास्त्रका सर्वसाधारण कर्मोंके साथ सम्बन्ध छूट जायगा. ''यस्य यः तत्काल'' इत्यादि यत् तत् शब्दोंके प्रयोगसे सामान्यशास्त्रका बोध कराया है, इसका बाध हो जायगा. यदि सर्वसामान्य कर्मकाल-शास्त्रका संकोच न किया जायगा तो उपर्युक्त विशेषशास्त्रोंके साथ इसकी एकवाक्यता न होगी, विरोध बना ही रहेगा.

४. व्रतादिकर्मोंके प्रारम्भ समयमें व्रततिथि रहनी चाहिये इस आशयसे कोई वचन पढे गये हैं. कोई वचन संकल्पके समय व्रततिथि रहनी चाहिये इस विषय पर जोर देते हैं. कोई वचन जिस दिन अधिक समय तक व्रततिथि रहै उस दिन व्रत करना चाहिये इस तात्पर्यको समझाते हैं. इन उपर्युक्त निमित्तोंमेंसे अधिकसे अधिक निमित्त मिलना जिस दिन सम्भव हो उस दिन व्रत करना चाहिये. इस प्रकार व्यवस्था कर निर्णयग्रन्थलेखक व्यवस्थित विकल्पसे विरोधका परिहार करते हैं, परन्तु यह ठीक नहीं है. क्योंकि जो अर्धरात्रिके समय होनेवाली पूजाको प्रधान मानते हैं, उनके मतमें कर्मके प्रारम्भका समय अर्धरात्रि है, इस लिये सूर्योदय व्यापिनी अष्टमीको ग्राह्य बतानेवाले वचन कर्मके उपक्रम समयकी प्रधानता कहनेवाले वचन विषयकी व्यवस्था नहीं कर सकते. अतएव दोनोंका परस्पर विरोध अवश्य रहेगा. कर्मकाल शास्त्रसे भी अर्धरात्रिमें रहनेवाली अष्टमी ग्राह्य सिद्ध होगी और अर्धरात्रव्यापिनी अष्टमी लेनेवाले खास विशेषवचनोंसे भी यही सिद्ध होगी. यदि एकवाक्यता की जाय तो दोनोंका उपयोग

तुल्य होनेसे कोई भी एक अनुवादक होनेसे अप्रमाण सिद्ध होता है, इस लिये कर्मकालशास्त्र इसमें विशेष उपयुक्त न होनेसे ही उदासीन ही रहता है. जो पूजाको प्रधान न मानकर उपवासको प्रधान मानते हैं, उनके मतमें भी जब अर्धरात्रिके समय पहले दिन अष्टमी अधिक होगी और दूसरे दिन अर्धरात्रिके समय संकल्प करने योग्य अल्प समयमें होगी तो अधिक व्याप्ति और संकल्पकाल इन दोनों भिन्न–भिन्न निमित्तोंको लेकर प्रवृत्त हुए वचनोमें परस्पर विरोध अवश्य रहेगा. इस प्रकार पूर्वाक्त दोनों पक्षोमें कभी ऐसा किया जाय और कभी वैसा किया जाय इस आकृतिका विकल्पदोष स्वीकार करना पडेगा.

५. यदि यह कहा जाता है कि परस्पर विरुद्ध वचनोंसे व्रतके भिन्न–भिन्न दिन निश्चित होने पर भी जिस दिन रोहिणी नक्षत्रका योग हो उस दिन व्रत किया जाय तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि जन्माष्टमी व्रतके निर्णयमें रोहिणीका सम्बन्ध अनुपयोगी है, जो कि इस निम्नलिखित वचनसे प्रमाणित होता है. ''याः काश्चित् तिथयः प्रोक्ताः'' इत्यादि. ''जो कोई तिथि या नक्षत्रोंके सम्बन्धसे पुण्यजनक मानी गई है, वहां उन नक्षत्रोंसे युक्त तिथियोमें ही व्रत करना चाहिये''. यह नियम श्रवण और रोहिणी से भिन्न नक्षत्रोंके लिये है, जिस दिन अर्धरात्रिमें अधिक समय अष्टमी रहे वह दिन लिया जाय ऐसा भी निर्णय नहीं कर सकते. क्योंकि ऐसा माननेमें मानसिक कल्पनाके अतिरिक्त और कोई प्रमाण नहीं है. एवं दोनों दिन अर्धरात्रिमें समान समय तक जब अष्टमी रहेगी तो दोष वैसा ही रहेगा.

६. सप्तमीविद्धामें व्रतका निषेध करनेवाले वचनोंने ''कर्मणो यस्य यः कालः'' इस सामान्य कर्मकालशास्त्रका जन्माष्टमीके विषयमें बाध कर दिया, उसका प्रतिप्रसव यानी पुनःप्रवृत्ति अष्टमीकी मध्यरात्रिमें व्याप्ति स्वीकार करनेवाले विधिवचन करते हैं. यह व्यवस्था भी स्वीकार करने योग्य नहीं है. क्योंकि सप्तमीवेधके निषेधक वचन कहीं भी स्थान न मिलनेसे व्यर्थ हो जायेंगे. जब कि इनका तात्पर्य कर्मकालशास्त्रके निषेधमें है तो इनका उपयोग विद्धाष्टमीके स्थलमें ही होगा जो उपयोग आभासमात्र है. कारण यह कि ऐसे निषेध करनेकी अपेक्षा तो निषेध न करना अच्छा, जो पुनःप्रवृत्तिके (प्रतिप्रसवके) लिये वचन न पढने पडे. पहले कीच लपेटना और बादमें धोना इसकी अपेक्षा तो पहले कीच न लपेटना अच्छा. एवं ऐसा करनेसें तो निषेधक और पुनःप्रस्तावक दोनों प्रकारके वचन व्यर्थ हो जाते हैं. केवल

सामान्यकर्मकाल शास्त्रका ही यथार्थ उपयोग साबित होता है. इसीसे पहले विधिविधान और बादमें निषेध यह व्यवस्था भी अग्राह्य सिद्ध हो जाती है. इसी प्रकार वारसे निर्णय करना भी अयोग्य है, क्योंकि वार केवल उपलक्षण है, और प्रतिवर्ष नियत समयपर मिल नहीं सकता. चन्द्रोदय भी व्रतका निश्चायक नहीं, केवल उपलक्षक है. सिद्धान्तसम्मत पक्षमें अन्य अनेक वादियोंकी सम्मति न होना तो हानिकारक नहीं है. अन्धे सौ भी इकट्ठे हों, वस्तु नहीं देख सकते. भगवानकी महामाया बडे-बडे ज्ञानियोंके चित्तको भी मोहमें डाल देती है. भगवानके शरणमें जानेवाले भगवद्दास ही इससे मुक्त रहते हैं. (मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते) इस विरोधके परिहारकेलिये जन्माष्टमी और जयन्तीका भेद मानकर पूर्वोक्त व्यवस्था स्वीकार करने योग्य है. जन्माष्टमीव्रत रात्रिप्रधान मानना प्रमाणशून्य है.

७. सूर्योदयके समय जन्माष्टमीका रहना पुराणान्तर सम्मत है, जैसाकि स्कन्दपुराणके इस अग्रिम वचनसे मालूम होता है ''उदये चाष्टमी किञ्चित् नवमी सकला यदि'' द्वैतनिर्णयमें भगवद्भास्करने कहा है. इस वचनमें जो 'उदय' पद है इसका अर्थ चन्द्रोदय है, क्योंकि ऐसा अर्थ माननेसे ''तारापत्युदये सति'' इत्यादि चन्द्रोदयव्यापिनी अष्टमी बतानेवाले वचनोंके साथ इसकी एकवाक्यता हो जाती है. सब वचनोंका एक मूल जयन्तीपरत्व निश्चित हो जाता है यह लाधव है. ऐसा एक पक्ष द्वैतनिर्णय और भगवद्भास्करमें कहा है. परन्तु यह असंगत है. 'उदय'का अर्थ चन्द्रोदय हो तो उदयके समय कुछ अष्टमी हो और नवमी पूरी हो यह कैसे कह सकते हैं! सूर्योदयसे चन्द्रोदय तक छः प्रहर होता है. इतने लंबे समय तक रहनेवाली अष्टमीके सामने केवल रात्रिकी शेष दो प्रहरोमें रहनेवाली नवमी पूरी कैसे कही गई है! और ऐसा कहना भी निरर्थक है, क्योंकि चन्द्रोदयके समय जब कुछ ही अष्टमी रही तो शेष समयमें नवमी रहेगी यह स्वयंसिद्ध है. कालतत्त्वविवेकमें उपर्युक्त स्कान्दवचनके 'उदय' पदकी व्याख्या करते हुए कहा है कि यहां 'उदय' पदका अर्थ सूर्योदय मालूम होता है. अतएव द्वैतनिर्णय और भगवद्भास्करके मतमें इन ''उदये दशमी किञ्चित्'' वचनोंका विरोध अवश्य रहेगा.

अब प्रकृत विचार करते हैं.

शंका : सप्तमीवेधका विचार व्रत करनेमें उपयोगी है, और व्रतका स्वरूप

पूर्वोक्त दोनों प्रकारके विधिवाक्योमेंसे कोई एक विधिसे होता है. जन्माष्टमी और जयन्ती दोनोंके विधिवाक्योमें भगवानका प्रादुर्भाव ही एक निमित्त है. निमित्त एक होनेसे कई वादियोंने जन्माष्टमी और जयन्ती के व्रत भिन्न–भिन्न नहीं माने हैं. केवल नाम और तिथि के प्रकारमें भेद होने पर भी जयन्तीविधायक वाक्योमें रोहिणी नक्षत्ररूप गुणके सम्बन्धसे फलश्रुति होनेसे जयन्तीके साथ 'व्रत'पद कहीं नहीं है. अतएव व्रतोपयोगी वेधका विचार करना निरर्थक है.

उत्तर : इस शंकाका निराकरण करनेकेलिये विष्णुधर्मोत्तरका अग्रिम वचन प्रदर्शित किया जाता है जो वचन व्रतके प्रयोजकभेद और स्वरूपभेद आदिको प्रमाणित करता है. वचन–''रोहिणीसहिता'' इत्यादि. इसका विवेचन 'यत्तु'से लेकर 'व्रतपरमेव' तक है, जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–तीन चरण 'अर्धरात्राधः' तकका आशय यह है कि भाद्रपद कृष्णमें सप्तमीके दिन अर्धरात्रिसे पूर्व रोहिणीसहित अष्टमी होती है, वह जयन्ती है. इसके बाद 'कलया'से 'हरिरीश्वरः' तक तीन चरण हैं. इनमें नैयायिक संमत तर्कके दिखलानेवाले अंशका यानी व्याप्यारोपका वर्णन है. इनका आशय यह है कि ''यदि उस समय विश्वके स्वामी भगवान् श्रीकृष्णका जन्म हुआ हो तो उस समय उपवास करें और जागरण करें''. 'तमेव'से लेकर 'जागरम्' पर्यन्तके भागसे तर्कके आपाद्य अंशका (व्यापकारोपका) वर्णन है. पूरे पदोंका तात्पर्य यह है कि भाद्रपद कृष्ण सप्तमीके दिन अर्धरात्रिसे पूर्व प्रारम्भ होने वाले अष्टमी और रोहिणी के योगमें यदि भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए हो तो उपवास और जागरण करे. तादृश योगमें प्रकट हुए ही नहीं इसलिये उपवास और जागरण की आवश्यकता तादृश योगमें नहीं. तब आगे क्या करना ? तो ''अर्धरात्रे तु''से लेकर 'प्रवर्तयेत्' पर्यन्त चार चरणोमें 'तु' शब्दसे भगवानके जन्मकाल होनेकी शंकाका निराकरण करते हुए जयन्तीका स्वरूप बताकर उस समयके कर्तव्यका निर्देश करते हैं. इसका आशय यह है कि अर्धरात्रिके समय चन्द्रका उदय होने पर यह तो योग है. सप्तमी, अष्टमी, अर्धरात्रि, चन्द्रोदय, रोहिणीनक्षत्र—इन सबके मिलनेसे जयन्तीयोग बनता है, जैसा कि गंगादशहराका योग दशके मिलनसे बनता है. इस जयन्तीयोगमें स्नानकर पवित्र होकर चित्तस्थिरतापूर्वक भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करनी चाहिये. जिसका विधान 'पूजां प्रवर्तयेत्' इस विधिके द्वारा पृथक् किया गया है. जन्माष्टमीके व्रतमें तो भगवान् श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव ही प्रयोजक है, और इसमें उपवास करना चाहिये, जिसका विधान 'उपवसेत्' इस विधिके द्वारा पृथक् किया गया है. इस प्रकार जयन्ती और जन्माष्टमी व्रतके प्रयोजक और मुख्य कर्तव्य भिन्न–भिन्न होते हैं. अतएव जयन्ती–

जन्माष्टमीका भेद स्पष्ट है. यद्यपि ''तमेव उपवसेत् कालम्'' यह विधि तर्ककी अंगभूत आपाद्य कोटिके भीतर है, इसलिये अनुवाद है, विधि नहीं है, परन्तु यह अनुवाद विधिका है, जब कि अन्यत्र कहीं विधि है तब उसका यह अनुवाद किया गया है, अतएव इससे विधिका अनुमान हो सकता है. यद्यपि ब्रह्माण्डपुराणके ''अभिजिन्नामनक्षत्रम्'' वचनसे जन्माष्टमी और जयन्ती अभिन्न (एक) मालूम होती है क्योंकि, भगवान् श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव जिस रात्रिको हुआ उसका नाम जयन्ती बताया है. तथापि ''अर्धरात्रे तु योगोऽयम्'' इत्यादि दूसरे वचनोंसे मालूम होता है कि अष्टमी रोहिणी आदिका योग 'जयन्ती' शब्दका प्रवृत्तिनिमित्त है, न कि भगवानका प्रादुर्भाव. इसलिये जन्माष्टमी और जयन्ती भिन्न-भिन्न मानना योग्य है. जिस विद्वानने यह शंकाकी कि

''यदि जन्माष्टमी और जयन्ती भिन्न-भिन्न मानी जावेगी तो
जिस वर्ष जयन्तीयोग न बने उस वर्ष जयन्तीव्रत न होनेसे दोष लगेगा''

इसका भी समाधान उपर्युक्त कथनसे हो गया. क्योंकि योग जब प्रतिवर्ष न बने तो योग निमित्तक जयन्तीव्रत नित्य कैसे हो सकता है! और जो नित्य नहीं तो इसके न करने पर दोषकी कल्पना भी कैसे हो सकती है! यदि आग्रहवश पूर्वोक्त योगमूलक भी जयन्तीव्रत नित्य मान लिया जाय तथापि सप्तमीविद्धा अष्टमीमें भगवानका जन्म नहीं हुआ यह ''अविद्धायां तु सर्क्षायां जातो देवकीनन्दनः'' इस ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके वचनसे प्रमाणित होता है. इसलिये जब सप्तमीविद्धा हो तब योगभंग हो जानेसे उपवास नित्य नहीं कहा जा सकता. सप्तमीके वेधके रहित अष्टमीमें जिस वर्ष जयन्तीयोग आये, उस वर्ष फलका अतिशय समझना चाहिये. परन्तु जयन्तीव्रत नित्य नहीं है.

माधवाचार्यने अपने कालमाधव ग्रन्थमें ''अर्धरात्राद् अधश्चोर्द्ध्वम्'' यह आदित्यपुराणका वचन एवं ''रात्र्यर्धपूर्वा परगा'' यह वराहसंहिताका बचन दिखाकर अठारह निमेषोंकी एक काष्ठाओंकी एक कला होती है, जो पलका तृतीय भाग है, इस प्रकार कलाकी व्याख्याकी. बादमें अहोरात्रके एकदेशमें रहनेवाली खण्डतिथिरूपा श्रीकृष्णजन्माष्टमी दो प्रकारकी बताई, सप्तमीसे युक्त पहेले दिन, और नवमीसे युक्त दूसरे दिन. सप्तमीयुक्त अष्टमीके दिन रात्रिके पूर्वार्ध अन्तिमभागमें कमसे कम कलामात्र समय भी अष्टमी रहना आवश्यक है. इस प्रकार अष्टमीकी कलाका विधान ''सप्तम्यामर्धरात्राधः'' यह विष्णुधर्मोत्तरका वचनतात्पर्य दिखाया, परन्तु उक्तवचनका

ऐसा तात्पर्य तब सम्भव है जब कि ''सप्तम्यामर्धरात्राधः'' इस अर्ध श्लोकके बाद ''तत्र जातो जगन्नाथः'' यह अर्धभाग न होकर ''तमेवोपवसेत् कालम्'' यह अर्धभाग हो. वर्तमान परिस्थितिमें तो इसका हमने जो अभी बताया वही अर्थ सरल मालूम होता है. ''अविद्धायां तु सर्क्षायाम्'' इस ब्रह्मवैवर्त वचनके अनुसार सप्तमीविद्धामें भगवान् श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव नहीं हुआ यह निश्चित है, इसलिये इसे तर्करूप माननेके सिवाय ओर कोई गति नहीं है. यदि यह कहा जाय कि 'रोहिणीसहिता'से लेकर 'यदा भवेत्' तकके भागसे कदाचित् ऐसा समय हुआ हो इस प्रकार सम्भवित कालका अनुवाद किया गया है और ''तत्र जातो जगन्नाथः'' इस अर्धसे उपवासमें हेतुरूपसे भगवानके तत्कालीन प्रादुर्भावका वर्णन है, तो यह भी ठीक नहीं. क्योंकि सम्भावित कालमें भूतार्थ काल्पनिक होता है, उसमें यथार्थ घटनाका कथन अनुरूप नहीं हो सकता. यदि ''सप्तम्यामर्धरात्राधः कलयापि यदा भवेत्'' इस अर्ध भागमें 'यदा' पदके और 'भवेत्' पदके बीचमें 'स्थिता' पदका अध्याहार किया जाय और इस भागका अन्वय 'तत्र जातः' इस श्लोकके साथ किया जाय, 'भवेत्' इस शेष रहे एक क्रियावाचक शब्दका 'तमेवोपवसेत्' इस पार्श्ववर्ती भागसे अन्वय हो तब यह अक्षरार्थ बन सकता है कि सप्तमीके दिन रात्रिपूर्वार्धके अन्तिम भागमें जब कलामात्र समय रोहिणीयुक्त अष्टमी थी, तब भगवान् श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव हुआ. इसलिये ऐसा योग जब हो तब उपवास और जागरण करे. परन्तु इस प्रकार ग्रन्थलापनमें 'स्थिता' पदके अध्याहारका दोष है, तथा कभी भगवानका प्रादुर्भाव सप्तमीविद्धा अष्टमीमें हुआ और कभी सप्तमीवेधरहित अष्टमीमें हुआ —इस प्रकार व्रतके मूलभूत दो समयदर्शक श्रुति कल्पना करनी पडती है, अतएव ऐसा आग्रहियोंके सामने तो सत्पुरुषोंको मौन रखना योग्य है. और भी द्वैतनिर्णय और भगवद्भास्करने भविष्यत्पुराण और विष्णुधर्मोत्तरके वचनोंका प्रथम उपन्यास कर बादमें इस अदृष्टपूर्वक्रमसे नवीन पाठ लिखा : ''रोहिण्यामर्धरात्रे तु'' ''प्राजापत्यर्क्षसंयुता'' ''अर्धरात्रे तु योगोऽयम्'' ''रोहिणीसहिता कृष्ण'' ''अर्धरात्रादधश्चोद्ध्वं कलयापि यदा भवेत्'' तत्र जातो जगन्नाथः. इसके बाद ''तमेवोपवसेत् कालम्'' यह अर्धभाग नहीं लिखा. परन्तु ऐसा पाठ कालमाधव आदि प्राचीन ग्रन्थोमें एवं अर्वाचीन कालतत्त्व विवेकमें देखा नहीं. पुराणोंके वाक्योंका परस्पर मिश्रणकर लिखा है. ऐसे पाठमें भी सम्भावित कालमें भूतपूर्व ऐतिहासिक घटनाका उपन्यास नहीं हो सकता यह उपर्युक्त दोष अखण्ड ही है. एवं ऐसे पाठभेद पर भी उनके भक्त ही विश्वास कर सकते हैं. सार यह है कि ''अविद्धायां तु सर्क्षायाम्'' इस ब्रह्मवैवर्तपुराणके वचनका विरोध होनेसे 'रोहिणीसहिता' इस विष्णुर्धोत्तर वचनका

तात्पर्य अष्टमी और रोहिणी के सम्बन्धसे जयन्तीयोग बनता है इस कथनमें है, विद्धामें भगवानका प्रादुर्भाव बतानेमें नहीं है.

यह भी उचित नहीं कि किसी कल्पमें भगवानका अवतार विद्धामें हुआ और किसी कल्पमें शुद्धामें हुआ —ऐसी व्यवस्था स्वीकार करली जाय. क्योंकि भगवानके प्रादुर्भावके द्विघटिकात्मक निशीथ मुहूर्त समाप्त होने पर नन्दरायजीके घर योगमायाका जन्म हुआ था ऐसा ''यदा बहिर्गन्तुमियेष'' इस दशमस्कन्धीय वचनकी व्याख्यामें आचार्यचरणोंने स्वीकार किया है. और योगमायाका जन्म नवमीमें हुआ है यह भविष्यपुराणके ''नवम्यां योगविप्रायाः'' इस वचनसे प्रमाणित होता है. वचनका आशय यह है : भगवान् श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव अष्टमीमें और योगमायाका नवमीमें हुआ है. इसलिये बुधवार रोहिणीनक्षत्र और नवमी से युक्त अष्टमीमें उपवास करना चाहिये.

विष्णुपुराण पञ्चम अंश प्रथमाध्यायमें और ब्रह्मपुराणका 'प्रावृट्काले' वचन (भगवानने योगमायासे इस प्रकार कहा :) ''वर्षाकालमें अमान्त श्रावण कृष्णाष्टमीकी अर्धरात्रिके समयमें जन्म ग्रहण करूंगा, नवमीमें तेरा जन्म होगा''. एक ही दिन सूर्योदयके अनन्तर कुछ समय सप्तमी रहे, फिर अष्टमी प्रारम्भ होकर रात्रिपूर्वार्धके बाद कुछ मिनटोमें ही समाप्त हो जावे और नवमी प्रारम्भ हो जाय यह सर्वथा सम्भव नहीं है. अवम तिथिकी घडियां इतनी कभी नहीं होती है. अतएव श्रीमद्भागवत, भविष्यपुराण, विष्णुपुराण और ब्रह्मपुराण इन चारों पुराणोंके उपर्युक्त वचनोंकी एकवाक्यतासे भगवानका प्रादुर्भाव सप्तमीविद्धा अष्टमीमें नहीं माना जा सकता. 'रोहिणीसहिता' यह विष्णुधर्मोत्तरका वचन केवल जयन्तीयोगका बोधक है यही स्वीकार करना, कालतत्वविवेक जो कल्पभेदसे प्रादुर्भाव समयको भिन्न – भिन्न मानता है उसका निराकरण भी इसीसे हो गया. ''अष्टमी रोहिणीयुक्ता निश्यर्धेदृश्यते यदि'' इस वसिष्ठ संहिताके वचनमें ''अर्धरात्रिके समय रोहिणीयुक्त अष्टमीमें भगवानका प्रादुर्भाव हुआ था'' इस प्रकार केवल प्रादुर्भावके समयका बोध कराता है. वह अष्टमी विद्धा थी या अविद्धा यह विवेचन इसमें नहीं है. अतएव इसके आधार पर सप्तमीविद्धा अष्टमीमें भगवानका प्रादुर्भाव हुआ यह आग्रह करना योग्य नहीं.

पूर्वोक्त ग्रन्थसे यह सिद्ध हुआ :

१. विद्धा अष्टमी (विद्धन्यूना) – सूर्योदयके समय सप्तमी हो और बादमें अर्धरात्रिसे

पूर्व किसी समय अष्टमीका प्रारम्भ हो जाय तो वह विद्धा अष्टमी है.

२. शुद्धा अष्टमी(शुद्धन्यूना) – सूर्योदयके समयसे प्रवृत्त रहती हो वह शुद्धा अष्टमी है.

३. विद्धाधिका अष्टमी – जो अष्टमी सप्तमीके दिन अर्धरात्रिसे पूर्व प्रारम्भ होकर दूसरे दिन भी सूर्योदयके बाद रहती हो वह विद्धाधिका अष्टमी है.

४. शुद्धाधिका अष्टमी – जो अष्टमी दोनों दिन सूर्योदयके समय रहती हो वह शुद्धाधिका अष्टमी है.

५. निशीथव्यापिनी विद्धाधिका – जो सप्तमीके दिन अर्धरात्रिसे पूर्व प्रारम्भ होकर दूसरे दिन भी अर्धरात्रिपर्यन्त रहती हो वह निशीथव्यापिनी विद्धाधिका अष्टमी है.

६. निशीथाव्यापिनीविद्धाधिका – जो पहले दिन अर्धरात्रिसे पूर्व प्रारम्भ होकर दूसरे दिन अर्धरात्रिसे पूर्व ही समाप्त हो जाती हो वह निशीथाव्यापिनी विद्धाधिका अष्टमी है.

'तत्रापि' इस मूल स्थित 'तत्र' पदसे इससे अव्यवहित पूर्व पढे गये 'विद्धाधिका' 'शुद्धाधिका' इन दोनों भेदोंका यदि परामर्श हो तो भी शुद्धाधिकाके दो भेद और बढ जानेसे स'लित संख्या ८ आती है, परन्तु मूल प्रतानमें संख्या ६ बताई है. इसका कारण यह है कि शुद्धाधिका सर्वदा निशीथव्यापिनी ही होती है, अतएव इसके भेद नहीं कहे जा सकते. परन्तु विद्धासमा शुद्धासमा भेद एकादशी आदि व्रतोंके प्रकरणोंमें पुराणप्रसिद्ध होने पर भी आधुनिक ज्योतिषियोंको इतना सूक्ष्मकालका पत्ता नहीं लगता है इसलिये इनको स्वीकार्य नहीं है. श्रीप्रभुचरणोक्त 'विद्धा'पदका अर्थ विद्धन्यूना और 'शुद्धा'पदका अर्थ शुद्धन्यूना करते हैं. इन उपर्युक्त भेदोंसे अब शुद्धाधिका अष्टमी हो तो दो दिन सूर्योदयमें होनेसे पूर्व दिन ही उपवास करना चाहिये, क्योंकि सप्तमीवेधकी बाधा नहीं है. विद्धाधिकामें दूसरे दिन उपवास करना चाहिये, क्योंकि पहले दिन सप्तमीवेध बाधक है. जैसा कि इन ब्रह्मवैवर्तके वचनोंसे मालूम होता है ''वर्जनीया प्रयत्नेन'' इत्यादि – ''यदि सप्तमीविद्धा अष्टमी रोहिणीनक्षत्रसे युक्त भी हो, तथापि त्याग करना चाहिये, क्योंकि भगवानका जन्म रोहिणीनक्षत्रसे युक्त शुद्धाष्टमीमें हुआ है, विद्धामें नहीं''. तात्पर्य यह है कि त्यागका कारण वेध है. अतः जिन उपर्युक्त भेदोमें वेध हो उनका त्याग कर शेष ग्रहण करे.

शंका – (सप्तमीवेधको बाधक न मानकर जो विद्धा शुद्धा अभिन्न (एक) मानते हैं उनके मतका अनुवाद इस प्रकार है) पद्मपुराणका ''कार्या विद्धाऽपि'' वचन ''रोहिणी सहित अष्टमी यदि सप्तमीविद्धा भी हो तो उसमें उपवास करना चाहिये.

अष्टमी और रोहिणी की समाप्ति होने पर पारणा करनी चाहिये''.

उत्तर – इसका निराकरण यह है कि यह वचन जयन्तीव्रतसे सम्बन्ध रखता है, जन्माष्टमीव्रतसे नहीं, क्योंकि गरुडपुराणके जयन्तीबोधक इस अग्रिम वचनसे इसका आशय मिलता जुलता है. ''जयक्त्यां पूर्वविद्धायाम्'' वचन है कि ''पूर्वविद्धा जयन्तीमें उपवास करना चाहिये. तिथि या उत्सवकी समाप्ति होने पर व्रतवाला पारणा करे''. और निषेध भी है ''सऋक्षापि न कर्तव्या'' इस ब्रह्मवैवर्तके वचनसे यह प्रमाणित हो चुका है. जन्माष्टमी व्रतमें रोहिणीनक्षत्रका कोई प्रयोजन नहीं है, व्रतस्वरूपसम्पादक नहीं है, किन्तु जयन्तीव्रतमें है. सभी जयन्तीबोधक वचनोमें रोहिणीका सम्बन्ध सुना जाता है. अतएव पद्मपुराणका उपर्युक्त वचन जयन्तीबोधक ही होना चाहिये, क्योंकि इसमें भी रोहिणीके योगका प्रतिपादन है. श्रावणकृष्णमें अथवा भाद्रपद कृष्णमें अष्टमी और रोहिणीका योग बनना ही जयन्तीका स्वरूप है. इसके लिये कुछ प्रमाणवचन और दिखाये जाते हैं ''श्रावणे नभस्ये वा'' वसिष्ठ संहिता वचन

> ''श्रावण या भाद्रपद कृष्णपक्षमें रोहिणीसहित अष्टमी यदि मनुष्योंको मिले तो वह जयन्ती कही गई है''.
>
> 'रोहिणी च यदा' विष्णुधर्मोत्तरवचन ''हे द्विजोत्तम ? कृष्णपक्षकी अष्टमीके दिन रोहिणी हो तो वह तिथि सब पापोंकी हरणकरनेवाली जयन्ती कही गई है''.

शंका – सप्तमीवेधके विषयमें यह व्यवस्था भी सम्भव नहीं कि जब दोनों दिन अर्धरात्रिके समय अष्टमी रहती हो तब पहले दिन व्रतका निषेध करनेमें सप्तमीवेधनिषेधक वचनोंकी सार्थकता है.

उत्तर – ''पूर्वविद्धाष्टमी या तु उदये नवमीदिने'' यह पद्मपुराणका पूर्वोक्त वचन अष्टमी पहले दिन अर्धरात्रिके समय वर्तमान हो और दूसरे दिन सूर्योदयके बाद मुहूर्तमात्र भी हो तो दूसरे दिन व्रत करनेके लिये सम्पूर्ण कहता है. कृष्णाष्टमी मुहूर्तमात्र भी नवमीमें हो तो व्रतकेलिये योग्य है. सप्तमीविद्धा कदापि न लेनी. इसीसे ''नक्तादिव्रतयोगेषु रात्रियोगो विशिष्यते'' इस वचनके आधारपर निशीथव्यापिनी अष्टमी ग्रहण करनेवाले मतका भी निराकरण हो गया, क्योंकि खास जन्माष्टमीसे सम्बन्ध रखनेवाले उपर्युक्त विशेष वचनोंसे सर्वसाधारण रात्रिव्रतोमें प्रवृत्त होनेवाले इस सामान्य वचनका बाध हो जाता है, इसलिये यह जन्माष्टमीके विषयमें प्रवृत्त नहीं हो सकता, जन्माष्टमीसे भिन्न अन्य रात्रिव्रतमें प्रवृत्त होगा.

द्वैतनिर्णयकारका मत – दोनों दिन अर्धरात्रिसे भिन्न पूर्व – पश्चात् समयमें रोहिणी होनेपर द्वैतनिर्णयकारने ये तीन पक्ष बताये. १. दोनों दिन अर्धरात्रिके समय अष्टमी रहना, २. पिछले दिनों ही अर्धरात्रिके समय अष्टमी रहना और ३. केवल पहले दिन ही अर्धरात्रिके समय अष्टमी रहना.

इन तीनों पक्षोंको बताकर उपवासयोग्य दिनका निर्णय यह किया कि पहले और दूसरे पक्षमें दूसरे दिन ही उपवास करना चाहिये, जो कि स्कन्दपुराणके इस वचनसे निश्चित होता है. ''सप्तमीसंयुताष्टम्याम्'' इत्यादि

> ''हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! सप्तमीसे युक्त अष्टमीमें रोहिणी वर्तमान हो और दूसरे दिन आधे मुहूर्त तक भी रहे तो दूसरे दिन आठ प्रहरका व्रत समझना चाहिये, ऐसा वेदव्यास आदि महर्षियोंने पहले कहा है''.
>
> ''मुहूर्तमपि संयुक्ता संपूर्णा साष्टमी भवेत्'' यह पद्मपुराणका साकल्य वचन भी ऐसे ही स्थलमें चरितार्थ है.

'यत्तु पाद्मम्' इत्यादि ग्रन्थसे दूसरेके मतका उल्लेख करते हुए ''पूर्वविद्धाष्टमी या तु उदये नवमीदिने'' ''कलाकाला – मुहूर्ताऽपि यदा कृष्णाष्टमी तिथिः'' इस पद्मपुराणके दोनों वचनोंका उपन्यास कर कहा कि ऐसे वचनोंका उपयोग भी पूर्वोक्त दोनों पक्षोमें करना चाहिये. यह सम्भव है कि सप्तमीविद्धा अष्टमी बढकर दूसरे दिन सूर्योदयके बाद मुहूर्त कलाकाष्ठासमय पर्यन्त रहे. यदि उस दिन रोहिणी भी हो तो इतने अल्प समय तक रहनेवाली अष्टमीको भी पूर्ण मानना चाहिये ऐसा आतिदेशिक जयन्तीयोग बताना ''पूर्वविद्धाष्टमी'' आदि वचनोंका तात्पर्य है. ऐसा अपना आशय द्वैतनिर्णयकारने समझाया.

द्वैतनिर्णयकारमतकी समीक्षा – परन्तु विचार करने पर यह मत ठीक नहीं मालूम होता. ''पूर्वविद्धाष्टमी या तु'' पाद्मवचन जन्माष्टमीव्रतका निर्णय बताता है, न कि जयन्तीव्रतका. यहां यह कहना भी अशक्य है कि जैसी इस वचनकी सङ्गति जन्माष्टमीके पक्षमें लगती है वैसी ही जयन्तीके पक्षमें भी लग सकती है. क्योंकि इसमें रोहिणीनक्षत्रका नाम ही नहीं है तब इसको जयन्तीविषयक कैसे कह सकते हैं. (द्वैतनिर्णयकारने दोनों दिन निशीथव्यापिनी अष्टमी हो या दूसरे दिन ही हो ऐसी परिस्थितिमें उपवास – दिनका निर्णय करनेकेलिये इस वचनको लिखा है, परन्तु यह

वचन कहता है कि नवमीके दिन सूर्योदयके समय मुहूर्तमात्र भी अष्टमी हो तो उसे पूर्ण मानना चाहिये. तात्पर्य यह है कि यहां तो केवल सूर्योदयके समय अष्टमी और सम्पूर्ण दिन नवमी रहनेका उल्लेख है. अष्टमीकी निशीथव्याप्तिकी तो गन्ध ही नहीं है. यह द्वैतनिर्णयकारके उपन्यस्त विषयका नहीं कर सकता) अतएव एतन्मत अग्राह्य है.

भगवद्भास्कर मत – भगवद्भास्करमें कहा है कि उपवास पूजाका अंग है यह स्वतन्त्ररूपसे व्रतके समयनिर्णयमें कारण नहीं है. ''सोपवासो हरेः पूजां तत्र कृत्वा न सीदति'' इस विष्णुधर्मोत्तरके वचनमें और ''तस्मात् मां पूजयेत् तत्र शुचिः सम्यगुपोषितः'' इस भविष्योत्तरके वचनमें भी उपवास गौण मालूम होता है. जैसा कि ''सदतो धावति'' यह दन्तधावन फल प्राप्त करनेवालेका संस्कारस्वरूप गौणकर्म है. वस्तुतः पूजा ही प्रधान है. इस अंगभूत उपवासकी फलश्रुति जहां कही वचनोमें उपलब्ध हो वह प्रशंसार्थवाद है; वास्तविक नहीं है. जैसी कि ''यस्य पर्णमयी जुहूः भवति न स पापं श्लोकं शृणोति'' इस श्रुतिमें है. दर्शपौर्णमासयागमें सुचिके समान आकृतिवाला एक काष्ठमय होमका साधन पात्र है, जिसका नाम 'जुहू' है. यह जिस यजमानके पर्णकाष्ठसे बना हुआ होता है वह यजमान कभी अपना अपयश नहीं सुनता है. इस प्रकार श्रुति फल बताती है. परन्तु यह होमका अंगभूत गौणपदार्थ है, इसका कोई स्वतन्त्र फल नहीं हो सकता. अतएव यह फलश्रुति प्रशंसामें परिणत हो जाती है. इसे पूर्वमीमांसामें प्रशंसार्थवाद कहते हैं. इसका बोधक पूर्वमीमांसाका सूत्र इस प्रकार है ''अंगे फलश्रुतिः अर्थवादः''. इस व्रतके प्रकरणोंमें वर्तमान सभी फलश्रुतियोंका सम्बन्ध इसके साथ है. ''श्रवणे बहुले'' इस निम्नलिखित भविष्यत्पुराणके वचनमें भी 'जन्माष्टमीव्रत'शब्दका अर्थ पूजा है. अतएव व्रत न करनेपर पढा गया निन्दार्थवाद और इसके आधारपर की जानेवाली व्रतनित्यत्वकी घोषणा, दोनों युक्तियुक्त साबित होते हैं. भविष्यत्पुराणवचन, ''श्रावणे बहुले पक्षे कृष्णजन्माष्टमी व्रतम्, न करोति नरो यस्तु भवति क्रूरराक्षसः''. जो मनुष्य अमान्त श्रावण कृष्णमें कृष्णाष्टमीका व्रत नहीं करता है वह क्रूर राक्षसका जन्म ग्रहण करता है.

भगवद्भास्कर मतकी समीक्षा – भगवद्भास्करका यह कथन भी वस्तुतः ठीक नहीं है. सम्भव है कि ''श्रावणे बहुले'' उस भविष्यद्वचनमें 'श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रत' शब्दका अर्थ पूजा हो, परन्तु ''तां सुपुण्यामुपवसेत्'' ''उपोष्या सा प्रयत्नतः'' इत्यादि वचनोंमें कृष्णजन्माष्टमीके उपवासका ही प्रधानरूपसे विधान किया है. इसके

अतिरिक्त कालमाधवप्रदर्शित इन स्कन्दपुराणीय वचनोंमें स्पष्ट ही उपवास न करने पर निन्दार्थवाद सुना गया है ''जयन्तीवासरे प्राप्ते'' वचन ''जयन्तीके दिन जो मूर्ख भोजन करता है उसका शरीर यमदूतोंके द्वारा पीडित किया जाता है'' इस निन्दार्थवादसे प्रस्तुत व्रतमें उपवासकी नित्यता साबित होती है. अतएव इसके साथ एकवाक्यता सिद्ध करनेकेलिये दोनों वचनोंमें मूलभूत कर्म एक ही मानना चाहिये.

''श्रावणे बहुले'' इस वचनमें भी 'जन्माष्टमीव्रत' शब्दका उपवास अर्थ ही ग्रहण करने योग्य है, पूजा अर्थ नहीं. यह भी योग्य नहीं कि उपर्युक्त स्कान्दवचनमें जयन्तीव्रतका नाम है इसलिये केवल जयन्तीव्रतमें ही उपवासप्रधान माना जाय, जन्माष्टमी व्रतमें न माना जाय. क्योंकि जन्माष्टमी और जयन्ती को भिन्न–भिन्न हम मानते हैं. पूजाको प्रधान मानते हुए भगवद्भास्कर आदि तो दोनोंका अभेद सूचित करते हैं. यदि ऐसा न हो तो भगवद्भास्करके दिखाये हुए जन्माष्टमी सम्बन्धी तीन वचनोंमें पूजाका उपवासके अंगिरूपसे उल्लेख है, जिससे पूजा प्रधान स्वीकारकी जाती है. अब रहे ये पूर्वोक्त दो वचन ''सोपवासो हरेः पूजाम्'' ''शुचिः सम्यगुपोषितः''. इन दोनोंमें तो वचनान्तरोंसे प्राप्त उपवासका अनुवाद मात्र है, उपवासको पूजाका अंग नहीं कहा. एक ही वचनमें दोनोंके उल्लेख मात्रसे अंगांगिभाव प्रमाणित नहीं होता है. जैसाकि आदित्यपुराण दीपावलिप्रकरणके ''कृत्वा तु पार्वणश्राद्धम्'' इस एक ही वचनमें पठित पार्वणश्राद्ध और लक्ष्मीपूजन का अंगांगिभाव नहीं है. यदि उपवास अंग होता तो ''केवलेन उपवासेन'' यह वचन केवल उपवासका पापमुक्ति फल बताकर उसमें निःसन्देहताके लिये ''नात्र संशयः'' इतना जोर कैसे देता? क्योंकि अंगका फल तो अर्थवाद मात्र है ऐसा भगवद्भास्करने पहले सिद्ध किया है. 'केवलेन' वचन ''मेरे (श्रीकृष्णके) जन्म दिवसमें केवल उपवास करनेसे सौ जन्मोंके पापोंका नाश होता है इसमें कोई सन्देह नहीं''. इससे सिद्ध हुआ कि उपवास अंग नहीं है, प्रत्युत पूजा अंग है. उपवास अंगी है, प्रधान है. व्रतकालका निर्णय इसी उपवासको लक्ष्यमें रखकर ही करना चाहिये. द्वैतनिर्णयमें भी इस उपवासका उल्लेख कर जन्माष्टमी और जयन्ती के भेदसे उपवास दो प्रकारका है यह निर्णय किया. कालमाधव, कालतत्त्वविवेक आदि ग्रन्थोंने भी उपवासको ही प्रधान कहा है.

ऐसे दोनों प्रकारके वचनोंकी उपपत्ति दिखाकर जन्माष्टमीको रात्रिप्रधान माननेवालोंको उत्तर देते हुए एकवचनकी व्यवस्था 'एतेनैव'से 'विरोधात्' पर्यन्त और

दिखाई है. आशय यह है कि भगवानका जन्म अविद्धा अष्टमीमें हुआ था यह निश्चित है, इसलिये 'नक्तादिव्रतयोगेषु' इसका उपयोग जन्माष्टमी व्रतसे भिन्न व्रतोमें होता है यह मानना चाहिये. ऐसा न मानने पर पूर्वोक्त वेधनिषेधक वचनोंका विरोध आता है.

भृगुवचनकी संगति – अब भृगुवचनसे यह भ्रम न हो कि जयन्तीके समान जन्माष्टमी भी सप्तमी विद्धा ही व्रतमें ग्रहण करने योग्य है, एतदर्थ उक्त वचनका तात्पर्य समझाया जाता है.

भ्रमका स्वरूप – ''जन्माष्टमीजयन्ती च'' भृगुवचन ''जन्माष्टमीके दिन आनेवाली जयन्ती और शिवरात्रि पूर्वविद्धा ही करनी चाहिये. तिथि और नक्षत्र के अन्यमें पारणा करनी चाहिये''. आशय यह है कि ''श्रावणे वा नभस्ये वा रोहिणीसहिताष्टमी'' इस वसिष्ठसंहिताके वचनके अनुसार जयन्तीव्रत श्रावण और भाद्रपद इन दोनों मासोंमें सम्भवित है. श्रीकृष्ण जन्माष्टमीव्रत केवल भाद्रपदमें ही आता है. जिस वर्ष जयन्तीयोग श्रावणमें न मिलकर केवल भाद्रपदमें ही मीले उस वर्ष जन्माष्टमी और जयन्ती दोनों सम्मिलित हो जाती है. ऐसे अवसर पर यदि पहले दिन सप्तमीविद्धा अष्टमीमें रोहिणी हो और दूसरे दिन अर्धरात्रिके समय रोहिणी और अष्टमी दोनों न हो, अर्थात् अर्धरात्रिसे पूर्व रहे तो ''सप्तमीसंयुताष्टम्यां भूत्वा ऋक्षं द्विजोत्तमः'' इस स्कन्दपुराणके वचनके अनुसार रोहिणी नक्षत्रकी साकल्यव्याप्ति और ''पूर्वविद्धाष्टमी या तु उदये नवमीदिने'' इस पद्मपुराणके वचनके अनुसार अष्टमी तिथिकी साकल्यव्याप्तिका उल्लेख कर आतिदेशिक जयन्तीयोगको मान्य करके जन्माष्टमीव्रतके समान जयन्तीव्रत भी दूसरे दिन करना चाहिये यह भ्रम हो सकता है.

ऐसे भ्रमकी निवृत्तिकेलिये यह भृगुवचन पढा गया है. भ्रम – इसमें 'जन्माष्टमीजयन्ती च' इतना एक समसित पद है. 'जन्माष्टम्यां जयन्ती' इस प्रकार सप्तमीतत्पुरुष समास है. आगेका 'च' अपि का समानार्थक है. तात्पर्य यह निकला कि जैसे श्रावणकी जयन्ती पूर्वविद्धाकी जाती है इस प्रकार भाद्रपदमें श्रीकृष्ण जन्माष्टमीके दिन जो जयन्ती हो वह भी पूर्वविद्धा करनी चाहिये, जन्माष्टमीके समान आतिदेशिक जयन्तीयोगवाले दूसरे दिनमें करना उचित नहीं. किसी – किसी निर्णयग्रन्थमें ''जन्माष्टमीजयन्ती च''के स्थानमें ''जन्माष्टमीरोहिणी च'' ऐसा पाठ है. यहां भी ''जन्माष्टम्यां रोहिणी'' इस प्रकार सप्तमीतत्पुरुष मानना चाहिये. यहां 'रोहिणी'

शब्दका अर्थ रोहिणी नक्षत्रका सम्बन्धवाली जयन्ती है. तात्पर्यपूर्ववत् है.

श्रावणाष्टमी भाद्रपदाष्टमी भ्रमनिवारण – जयन्तीका व्रत श्रावण या भाद्रपद किसीमें भी हो सकता है, परन्तु जन्माष्टमीका व्रत केवल भाद्रपदमें ही हो सकता है, यह उपर्युक्त ग्रन्थमें निर्णय किया. इससे एक लाभ यह हुआ कि ''श्रावणे बहुले पक्षे कृष्णजन्माष्टमीव्रतम्'' यह वचन श्रावणकृष्णमें जन्माष्टमी व्रत करनेके लिये कहता है. यह श्रावण कृष्णादि मास है या शुक्लादि ? इस प्रश्नका उत्तर हमें ''तिथिकृत्ये च कृष्णादिः व्रते शुक्लादिरेव च'' इस वचनसे मिलता है. वह यह है कि तिथिकृत्योमें कृष्णादि और व्रतोमें शुक्लादि मास लेना चाहिये. जन्माष्टमी सम्बन्धी पूजा–उपवास आदि तिथिकृत्य हैं. अतः जयन्तीव्रतके समान जन्माष्टमीव्रत भी कृष्णादि श्रावणमें करना चाहिये, ऐसा उपर्युक्त वचनके आधार पर किसिको भ्रम हो सकता है. इस भ्रमका निवारण उपर्युक्त ग्रन्थसे हो गया. उक्त वचनमें जन्माष्टमीके साथ जो 'व्रत' शब्दका प्रयोग किया है, इसमें शुक्लादि श्रावण लेना चाहिये यह निश्चय होता है. अन्य वचनोंमें भी जन्माष्टमीव्रत श्रावणमें करना चाहिये ऐसा उल्लेख नहीं है. अतएव उपर्युक्त वचनमें शुक्लादि श्रावण मानना योग्य है. जयन्ती तो दोनों मासोंमें हो सकती है, इसलिये जयन्तीबोधक वचनोंमें दोनों भी मास कृष्णादि मानना योग्य है.

''सप्तमीसंयुताष्टम्याम्'' यह स्कन्दपुराणका वचन और ''पूर्वविद्धाष्टमी या तु'' यह पद्मपुराणका वचन दोनों जन्माष्टमी प्रकरणके हैं. इसलिये ये दोनों जयन्तीके बोधक नहीं. जयन्तीमें रोहिणीका योग मुख्य बतलाया है, वह जन्माष्टमीमें किस प्रकारका हो तो ग्रहण करने योग्य है यह उपर्युक्त स्कान्दवचन बताता है. एतदर्थं ही इसमें रोहिणीका नामनिर्देश किया है, न कि जयन्तीयोग बतानेकेलिये. 'पूर्वविद्धाष्टमी' इस पाद्मवचनमें तो 'रोहिणी'का नाम ही नहीं है. यह तो केवल वेधके निषेधकेलिये है. ''यदि पहले दिन सप्तमीका वेध हो तो नवमीके सूर्योदयके समय मुहूर्तमात्र अष्टमी रहती हो तो उसे पूर्ण मानना चाहिये और व्रत करना चाहिये''. यदि पहले दिन वेध न हो तो नवमीके दिन सूर्योदयके बाद भी अष्टमी रहे तो वह रोहिणीयुक्त होने पर भी ग्राह्य नहीं, पूर्व दिनकी ही अविद्धा ग्राह्य है.

''विहीनशल्यापि विवर्जनीया यद्यग्रतो वृद्धिमुपैति पक्षः,
यथा मलिम्लुचः पूर्वोदैवो मासस्तथोत्तरः,
त्याज्या तिथिस्तथा पूर्वा वृद्धौ ग्राह्या तथोत्तरा''

इन दोनों वचनोंके अनुसार वेधरहित तिथिकी यदि वृद्धि हो तो दूसरे दिन व्रत करना चाहिये, यह मालूम होता है. परन्तु ये वचन सर्वसाधारण तिथियोंकेलिये है, सामान्य वचन है इनका 'पूर्वविद्धाष्टमी यातु' आदि जन्माष्टमीमात्र विषयक विशेष वचनोंसे बाध हो जाता है. 'पूर्वविद्धाष्टमी' वचनसे ही यह प्रमाणित होता है कि पहली अष्टमीके त्याग करनेमें वेध कारण है, यदि वेध न हो तो पहली अष्टमीका त्याग आवश्यक नहीं. अतएव शुद्धाधिका अष्टमी हो तब पहले दिन ही व्रत करना चाहिये. वेध ही त्यागका कारण है. यह इन स्कन्द और पद्मपुराण के वचनोंसे सिद्ध होता है

> ''प्राचीन समयमें देवोंने अपने – अपने पदोंसे गिर जानेकी शंकासे जन्माष्टमीके व्रतको समाप्तीवेधके प्रपञ्चसे भ्रष्टकर छिपा दिया. अतएव सप्तमीवेधयुक्त जन्माष्टमीका त्याग करे''. (स्कान्दवचन)
>
> ''जैसे शुद्ध भी पञ्चगव्य मद्यसे युक्त हो तो ग्राह्य नहीं होता है, वैसे ही रोहिणीयुक्ता अष्टमी सप्तमीविद्धा हो तो त्याज्य है''.(पाद्मवचन)

सारांश यह कि सप्तमीका सूर्योदय वेध जिस अष्टमीमें न हो वह अष्टमी अर्धरात्रिके समय रहे या ना रहे, उसमें रोहिणी हो या न हो, अवश्य श्रीकृष्णजन्माष्टमी व्रतमें ग्रहण करने योग्य है. यदि ऐसी वेधरहित अष्टमीमें अर्धरात्रिके समय रोहिणीनक्षत्र हो और चन्द्रवार बुधवार – इन दोनोंमें से कोई एक वार भी उस दिन मिले तो अधिक फल होता है. यह इन स्कन्दपुराण और पद्मपुराणके वचनोंसे प्रमाणित होता है.

> ''सूर्योदयके समय कुछ अष्टमी हो, बादमें संपूर्ण नवमी हो, बुधवार और रोहिणीनक्षत्र भी हो तो ऐसा योग सौ वर्षोमें भी मीलता है अथवा नहीं''. (स्कान्दवचन)
>
> ''जिन्होनें अमान्त श्रावणकृष्ण अष्टमी रोहिणी नक्षत्र बुधवार अथवा सोमवार ऐसे योगमें व्रत किया, उन्होनें प्रेतयोनिमें गये हुए अपने सम्बन्धियोंको प्रेतत्वसे मुक्त कर दिया. यदि इसके साथ फिर नवमीका सम्बन्ध हो जाय तो क्या कहना है, कोटि कुलोंको मोक्ष दे देती है''.(पद्मपुराण)

अष्टमी क्षय हो तो क्या करना ? अपरार्क, कृष्णपण्डित आदि विद्वानोंका यह मत है कि ''पूर्वविद्धाष्टमी या तु उदये नवमीदिने'' यह पाद्मवचन दूसरे दिन मुहूर्त मात्र भी यदि अष्टमी हो तो पहले दिन सप्तमीविद्धाका त्याग करना चाहिये, यदि दूसरे दिन कुछ भी अष्टमी न हो अर्थात् सप्तमीविद्धा अष्टमीका क्षय हो गया हो तो विद्धाष्टमीमें

ही व्रत करना चाहिये ऐसा कहता है. व्यासवचनसे विष्णुभक्तिचन्द्रोदयकारका मत है कि ''ऐसे विद्धाक्षयके अवसर पर शुद्ध नवमीमें ही उपवास करना चाहिये, जैसा कि दशमीविद्धा एकादशीका क्षय होने पर शुद्धद्वादशीमें एकादशीव्रत किया जाता है''. निम्नलिखित व्यासवचन यही प्रमाणित करता है ''जन्माष्टमीं पूर्व विद्धाम्'' इत्यादि ''सप्तमीविद्धा अष्टमी रोहिणीसे युक्त और पूर्ण भी हो तो उसका त्याग कर शुद्धनवमीमें उपवास – व्रत करें''.

सिद्धान्त यह है कि यदि चन्द्रोदयकारका दिखाया हुआ व्यासवचन प्रामाणिक है तो जैसा चन्द्रोदयकारने कहा वैसा ठीक है. यदि प्रामाणिक नहीं है तो इनके दिखाये हुए एकादशीव्रतके उदाहरणानुसार शुद्धनवमीमें व्रत करना चाहिये अथवा अन्य परपक्षीय विद्वानोंने विद्धाक्षय स्थलमें और कोई मार्ग न होनेसे जो अन्यतिथि ग्रहण करनेकी रीति (दशमीवेधमें द्वादशी ग्रहण करनेकी रीति) स्वीकार की है वही 'पूर्वविद्धाष्टमी' वाक्य पर हमें भी स्वीकार करनी चाहिये. वह रीति इस प्रकार है.

अपरार्कके द्वारा उद्धृत ''पूर्वविद्धा यथा नन्दा'' इस वचनमें विद्धा अष्टमीके त्यागमें विद्धा एकादशीके त्यागका अतिदेश किया है, अर्थात् विद्धा अष्टमीका त्याग विद्धा एकादशीके समान करे यह कहा है, और विद्धा एकादशीके त्यागका प्रकार

''दिनक्षये तु शुद्धैव द्वादशी मोक्षकाङ्क्षिभिः,
उपोष्या दशमीयुक्ता नो पोष्यैकादशी तिथिः''

इस सुमन्तुवचनके अनुसार यह है कि

''मोक्ष चाहनेवाले पुरुष दशमीविद्धा एकादशीका क्षय होने पर इसका व्रत भी गौणकाल नवमीमें करे'' यह सिद्ध होता है.

पद्म और सुमन्तु के वचन क्रमशः ये हैं :

''जैसे श्रवण नक्षत्रसे युक्त भी भाद्रपदशुक्ला एकादशी दशमीविद्धा हो तो त्याग किया जाता है, इसी प्रकार रोहिणीसहित अष्टमी भी यदि पूर्वविद्धा हो तो त्याग करना चाहिये''

''मोक्ष चाहनेवाले पुरुषोंको विद्धा एकादशीका क्षय हो तो शुद्धद्वादशीमें उपवास करना चाहिये. दशमीयुक्त एकादशीमें उपवास करना योग्य नहीं''

हरिवल्लभसुधोदयमें उद्धृत ''दिनक्षये तु सम्प्राप्ते उपोष्या द्वादशी भवेत्'' इस

कूर्मपुराणके वचनका भी यही आशय है.

यद्यपि कूर्मपुराणके ''अर्धरात्रम् अतिक्रम्य दशमी दृश्यते यदि'' इस वचनमें एकादशीव्रतके अर्धरात्रिवेधका उल्लेख है, परन्तु जन्माष्टमीव्रतमें इस अर्धरात्रिवेधका अतिदेश नहीं हो सकता. क्योंकि एकादशी भिन्न तिथियोमें सूर्योदयके समयसे वेध मानना धर्मशास्त्र सम्मत है यह इस वचनसे मालूम होता है : ''उदयात् उदयात् प्रोक्ता हरिवासरवर्जिता:'' (एकादशीभिन्न तिथियां सूर्योदयसे विद्धा कही गई है) अतएव अतिदेश वचनसे प्राप्त हुआ भी अर्धरात्रवेध यहां अविरुद्ध होनेसे अग्राह्य है.

विद्धाष्टमी क्षय हो तो नवमीमें व्रत करनेका वचन और तर्क : परमतकी शंका है कि सभी वचन विद्धाष्टमीका त्याग करनेकेलिये कहते हैं, परन्तु विद्धा एकादशीका क्षय होने पर जैसे द्वादशीमें व्रत करनेकेलिये सुमन्तुवचन कहता है, इस प्रकार विद्धाष्टमीका क्षय होने पर शुद्धनवमीमें व्रत करनेकेलिये कोई भी वचन नहीं करता है, अतएव विद्धाष्टमीका त्याग किया जाये. शुद्धनवमीमें व्रत तो नहीं हो सकता. इसका निराकरण यह है कि पहले दिखाये हुए अनेक विद्धानिषेधोंसे विद्धाष्टमीका त्याग सिद्ध है. इसी त्यागकेलिये ही यदि ''पूर्वविद्धा यथा नन्दा'' यह पाद्मवचन विद्धा एकादशीके त्यागका इसमें अतिदेश करता है, तो यह अर्धरात्रिका वेधदर्शक कूर्मपुराणका वचन चालु प्रकरणमें उपयोगि नहीं है. अतएव इस पूर्वविद्धा अतिदेशके द्वारा शुद्ध नवमीमें व्रत करनेकेलिये संकेत किया गया है. यदि नवमीमें उपवास करनेकेलिये साक्षात् विधिवचन होना चाहिये, यही आग्रह है तो विधिवचन भी सयुक्तिक दिखाया जाता है. सुनिये, हरिवल्लभसुधोदयमें उद्धृत स्कन्दपुराणका ''विना ऋक्षेण'' वचन. इस वचनमें 'नवमी' 'संयुताष्टमी' इस प्रकार पदच्छेद है. अभिश्रवणार्थक 'यु' धातुसे बने हुए 'संयुत' शब्दका अर्थ अमिश्रित है. संयुताष्टमी यह बहुव्रीहि समास है. तात्पर्य यह है कि जिसमें अष्टमी मिश्रित न हो ऐसी शुद्ध नवमीमें रोहिणी न हो तब भी व्रत करना चाहिये. इसका समर्थक कारण उत्तरार्धमें यह दिखाया है कि सप्तमीविद्धा अष्टमीमें यदि रोहिणी भी हो तो भी व्रत नहीं करना चाहिये. अर्थात् सप्तमीविद्धाका क्षय होने पर नवमीमें व्रत करना चाहिये. यह शङ्का भी नहीं कर सकते कि उपर्युक्त वचनका नवमीयुक्त अष्टमी ऐसा प्राञ्जल अर्थ क्यों न लिया जाय ? ऐसा अर्थ लेनेमें कोई (विनिगमना) सबल कारण नहीं है. क्योंकि तर्कोंसे इस वचनका वो ही अर्थ निश्चित होता है जो हमने दिखाया है. तर्क इस प्रकार है :

अष्टमीक्षयमें नवमीमें व्रतकरनेका तर्क :

''यदि यह नवमी जन्माष्टमीके गौण समयके रूपमें उपवास करने योग्य न होती तो वेध जन्माष्टमीका उदूषक (दूषित न करनेवाला) न होता. जो तिथि जिस तिथिमें दूषक वेधको निरूपण करनेमें अयोग्य रहती हुई अदूषक वेधको भी निरूपण करनेमें योग्य न रहे तो वह उस तिथिमें ग्राह्य वेधको निरूपण करनेमें योग्य नहीं होती है''.

और भी इस व्याप्तिमूलक तर्कसे नवमी व्रतके योग्य सिद्ध होती है. जैसा कि :

यह नवमी, अपने अनुगुण जन्माष्टमी तिथिके गौणकालके रूपसें उपवास करने योग्य है,

जन्माष्टमीतिथिमें अदूषक वेधको उत्पन्न करने योग्य होनेसे.

जो तिथि जिस तिथिमें अदूषक वेधको उत्पन्न करने योग्य होती है, वह तिथि उस तिथिके गौणकालके रूपसे उपवास करने योग्य होती है,

जैसे द्वादशी,

जो तिथि जिस तिथिके गौणकालके रूपसे उपवास करने योग्य नहीं होती है. जैसे दशमी.

उपर्युक्त अनुमानमें जो स्वानुगण शब्द दिया है उसका अर्थ यह है कि उसके वेधसे युक्त होते हुए भी उसके द्वारा घटित होनेवाले दोषोंसे रहित हो, अथवा उसके द्वारा घटित होनेवाले गुणोसे युक्त हो. दोष या गुण मेंसे किसी एकको उपस्थित करनेवाले सम्बन्धविशेषका (तिथिसम्बन्धविशेषका) नाम 'वेध' है. सन्दिग्ध विषयोंको साफ करनेवाले तर्क हैं. और भी प्रशस्तवेधघटक तर्क भी कीया जाता है. जैसा कि

यदि यह नवमी जन्माष्टमीके गौणकालके रूपसे उपवास करने योग्य न हो तो जन्माष्टमी सम्बन्धी विशेषवचनोंमें नवमीविद्धा अष्टमीकी प्रशंसा न होती.

यदि इस प्रकार प्रसंशाका प्रयोजन केवल योग विशेषसे उत्पन्न होनेवाले फलकी सूचना देना ही होता तो इसका निरूपण बुधवार या सोमवार के योगके समान उपलक्षणरूपमें होता. और भी उत्सवाधिकरणसे तर्क होता है कि नवमी उपर्युक्तानुसार जो उपवास करने योग्य न होती तो भगवानकी जन्मतिथि अष्टमी नवमीसहित न होती.

इसी प्रकारके और तर्कोंका भी अनुसन्धान कर लेना चाहिये. नवमीका वेध

अष्टमीको दूषित नहीं करता है, प्रत्युत इसके गुणोंमें वृद्धि करता है. भगवानके प्रादुर्भावका उत्सव भी नवमीमें ही हुआ, इन तर्कोंको लक्ष्यमें रखनेसे यह निश्चित होता है कि ''बिना ऋक्षेण कर्तव्या नवमीसंयुताष्टमी'' इस उपर्युक्त वचन क्षयादि वशात् शुद्ध अष्टमी न मिले तो केवल नवमीमें व्रतका विधान करता है. ''यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतर:'' इस प्रकार तर्कोंसे निर्णय करना ही उचित है. भगवानके प्रादुर्भावका उत्सवादिक शुद्ध नवमीमें हुआ था, यह आचार्यचरणोंके सुबोधिनीस्थित वचनोंसे मालूम करना चाहिये. किसीका मत है कि यदि विद्धाष्टमीका क्षय हो तो और कोई मार्ग न होनेसे विद्धाष्टमीमें ही व्रत करना चाहिये. परन्तु ऐसा माननेमें कोई कारण नहीं. शास्त्रोमें विद्धाष्टमीके निन्दार्थवाद हैं, अर्थात् इसका त्याग करना सिद्ध है. ग्रन्थोंमें इस विषयके वचनोंको व्यवस्था परस्पर विरुद्ध देखी जाती है, ऐसी दशामें यह कथन असावधानीसें कहा गया है.

प्रस्तुत विषयका विचार करते हैं : 'रीति' शब्दका अर्थ सदाचार है. ''नो चेत् पूर्वोक्तरीतिरेव अनुसर्त्तव्या'' इस श्रीप्रभुचरणोक्त मूलके 'पूर्वोक्त' शब्दके 'पूर्वमुक्ता' 'पूर्वैरुक्ता' इस प्रकार दों भिन्न–भिन्न समासोंके आधार पर समान तात्पर्यवाली दो व्याख्याएं पहले दिखाई. अब 'रीति' शब्दका अर्थान्तर ग्रहण कर तीसरी व्याख्या दिखाई जाती है. इस पक्षमें भी 'पूर्वैरुक्ता' तृतीया तत्पुरुष समास ही है. यहां 'रीति' शब्दका अर्थ सम्प्रदाय है. प्राचीन शिष्ट वैष्णवोंने कहे हुए सम्प्रदायका अनुसरण करना चाहिये. अत्र ऐसा करने पर अन्धपरम्परा साबित होगी यह भी नहीं कह सकते. क्योंकि सदाचारको भी धर्ममें प्रमाण माना है ''श्रुति: स्मृति: सदाचार:'' इस मनुवचनमें यह उल्लेख है. यदि यह कहा जाये कि ''श्रुति: स्मृति: सदाचार: स्वस्य च प्रियमात्मन:'' इन चार धर्मबोधक प्रमाणोंमें पूर्व–पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर निर्बल है. अतएव प्रबल स्मृतिके सामने निर्बल सदाचार आदरणीय नहीं हो सकता, तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि कलिवर्ज्य प्रकरणमें पढा हुआ ''साधूनां समयश्चापि प्रमाणं वेदवद्भवेत्'' यह वचन सदाचारको वेदतुल्य बताता हुआ कलियुगमें स्मृतिकी अपेक्षा इसे प्रबल प्रमाणित करता है. ''साधूनां समयश्चापि'' यह वचन कलिवर्ज्य प्रकरणमें पढा है. कलिवर्ज्य प्रकरणकी समाप्तिके ''यत्र सायम्'' इत्यादि वचन ''तत्त्वविचारमें तत्पर और जिस संन्यासीओंकी सायंकालिक भिक्षा है ऐसे महात्मा विद्वान् मुनियोंने विश्वकी रक्षाकेलिये अथवा तत्तत्कर्मोका व्यवहार रोकनेकेलिये धर्मशास्त्रके वचनोंकी सुयोग्य व्यवस्था कर कलिके प्रारम्भमें ही इनको बन्द कर दिया'' यह वचन कलिवर्ज्य प्रकरणको उपक्रम

करके पढा है. इसलिये प्रकरणको लक्ष्यमें रखते हुए कोई यह कहे कि कलिवर्ज्य विषयोंमें ही स्मृतिकी अपेक्षा सदाचार बलवान् है. इसका निराकरण यह है कि सभी समयोंमें आचरणकेलिये स्मृतिवचनोंके द्वारा विहित कुछ धर्मोंका केवल कलि समयमें इन कलिवर्ज्य प्रकरणके स्मृति वचनोंके द्वारा निषेध किया गया है. इन विधायक निषेधक वचनोंकी उत्सर्गापवाद रूपसे व्यवस्था करने पर कलिवर्ज्यवचन विधायकोंका निषेध कर सावकाश और सार्थक हो जाते हैं. ऐसी दशामें ''यत्र सायम्'' इस डेढ श्लोकसे कलिवर्ज्य विधियोंको सदाचारका रूप देकर उस सदाचारको वेदवत् कहकर और बल पहुचाना आवश्यक नहीं है, जब ऐसा माना जाय कि कलिमें स्मृतिकी अपेक्षा सभी सदाचार बलवान् हैं और इनके एक साधारण उदाहरण कलिवर्ज्य है, तभी इस ग्रन्थकी सङ्गति हो सकती है.

शिष्टाचारका कलिवर्ज्य प्रकरण अतिरिक्त अन्यत्र भी आदर होता है. इसी कारण कालमाधवने गौरीतृतीया निर्णयके प्रकरणमें इस प्रकार शिष्टाचारकी शरण ली है. द्वितीयाविद्धा तृतीयामें व्रत करनेका निषेध है इसलिये चतुर्थीविद्धा तृतीया लेनी चाहिये. चतुर्थीके दिन तृतीया तीन मुहूर्त यानी छः घडी तक रहे तो श्रेष्ठ है. चार घडी कच्ची तक रहे तो मध्यम है. जब इससे भी कम हो तो शास्त्रके द्वारा कुछ निर्णय नहीं मिलता है. क्योंकि विद्धाका निषेध होनेसे पहले दिन व्रत कर नहीं सकते और दूसरे दिन व्रत करनेका कोई विधान नहीं. परन्तु गौरीतृतीया यदि दो घडी कच्ची भी दूसरे दिन हो तो दूसरे दिन ही शिष्ट लोग व्रत करते हैं. अतएव ऐसी दशामें केवल शिष्टाचारसे ही परविद्धा लेनेका निश्चय होता है.

शिष्टशब्दार्थ प्रश्न : जन्माष्टमीके विषयमें शिष्टोंके कई भिन्न – भिन्न मत हैं, किसी एक शिष्ट मतके अनुसार निर्णय कैसे होगा ?

उत्तर – क्योंकि इस विषयमें भगवानके अवतारके समय जो शिष्ट थे वे ही 'शिष्ट' शब्दसे ग्रहण करने योग्य हैं और उन्होंने तो शुद्ध नवमीमें ही भगवानका जन्मोत्सव आदि किया. उनको भगवत्प्रादुर्भावका ज्ञान नवमीमें ही हुआ. किसी समय विद्धाष्टमीका क्षय होने पर उन्होंने विद्धाष्टमीमें जन्मोत्सव आदि किये होते तो वैसा कहीं इतिहास भी उपलब्ध होता. नहीं उपलब्ध हुआ. इससे निश्चय होता है कि विद्धाष्टमीमें उत्सव आदि नहीं हुए, नवमीमें ही हुए.

अब एक शंका यह है कि यदि शुद्ध अष्टमी न मिले तो शुद्ध नवमीमें व्रत करना चाहिये ऐसा निश्चित सिद्धान्त है तो श्रीप्रभुचरणोंको ऐसा स्पष्ट ही कहना था, ''नोचेत् पूर्वोक्तरीतिरेव अनुसर्तव्या'' इस प्रकार छिपे ढंगसे क्यों कहा?

इसका तो उत्तर यह है कि जन्माष्टमी व्रतमें निमित्त भगवानका जन्म जैसे विद्धाष्टमीमें नहीं हुआ वैसे ही शुद्धनवमीमें भी नहीं हुआ है ऐसा शास्त्रसे सिद्ध है. अगतिकगति रूप लोकन्यायसे तो विद्धाका क्षय होने पर विद्धामें ही व्रत करना प्राप्त होता है, परन्तु ''वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसंयुताष्टमी'' यह पाद्मवचन त्यागके कारण वेधका निर्देश करते हुए विद्धाका त्याग करनेकेलिये कहता है. ऐसी दशामें व्रतलुप्त होनेकी आपत्ति आई. इसके परिहारकेलिये भगवानके जन्मोत्सवके आधारभूत कालमें भगवज्जन्मनिमित्तिक व्रत करना चाहिये. शास्त्र उत्सवके अन्तमें पारणा करनेकेलिये कहते हैं. व्रत उत्सवका अङ्ग है. यह उत्सव श्रीनन्दराय आदिने नवमीमें किया था यह भी स्पष्ट है. इन ही श्रीनन्दराय आदि शिष्टोंका 'पूर्वोक्तरीति:' इस पङ्क्तिमें प्रभुचरणोंने 'पूर्व' शब्दसे बोध कराया है. भक्तिमार्ग गोप्यमार्ग है. यहां इस प्रकार अस्पष्ट ढंगसे ही कहना उचित था. श्रीआचार्यचरणोंने भागवतके ''यदा बहिर्गन्तुमियेष'' इस श्लोककी व्याख्यामें कहा है कि ''मध्यरात्रिमें दो घडियोंका जो 'निशीथ' नामक मुहूर्त होता है, जिसमें कि भगवानका प्रादुर्भाव हुआ था, उसके एक मुहूर्त बाद ही मायाका जन्म हुआ, ऐसा मालूम होता है. वह योगमायाका जन्म नवमीमें हुआ, रोहिणी नक्षत्र भगवत्प्रादुर्भावके समय और योगमायाके जन्मके समय दोंनों समयोंमें समान था. रोहिणीके साथ यदि कृत्तिकाका वेध हो तो कोई दोष नहीं. सप्तमीका वेध अवश्य दूषित है. इस प्रकार विद्धाके त्यागका कारण दिखाया. पुत्रोत्सव आदि शुद्ध नवमीमें ही हुए थे, इसलिये शुद्ध अष्टमी न मिले तो केवल नवमीमें ही उपवास करना चाहिये, इस प्रकार केवल नवमीमें उपवास करनेका हेतु भी कहा.

यहां एक प्रश्न शेष रहा कि व्रत की पूर्णतामें पारणा आवश्यक अङ्ग है. इसका विचार क्यों नहीं किया?

इसका उत्तर यह है कि तिथि या उत्सवके अन्तमें पारणा करनेका उल्लेख है. इसमें तिथ्यन्त पारणा तो विद्धा त्यागके कथनसे ही सिद्ध हो गई. जब कि अविद्धामें व्रत हो तो दूसरे दिन अष्टमी मिल नहीं सकती और कदाचित् मिली भी तो अल्प

समय, जिससे पारणामें बाधा नहीं आसकती है. रोहिणी नक्षत्र अधिक समय रहे भी तो यह व्रत समयका स्वरूपघटक नहीं है. इसलिये इससे पारणामें रुकावट नहीं हो सकती है. इस प्रकार पारणाका समय पूर्वोक्त अन्यान्य विचारोंसे स्वयं ही मालूम हो जाता है. इसलिये पृथक् विचार नहीं कीया गया है. श्रीप्रभुचरणोंने जन्माष्टमी निर्णयका इस प्रकार उपसंहार किया.

श्रीगोकुलाधीशके चरणकमलोंके अनुग्रहसे हमने ।
इस प्रकार जन्माष्टमी व्रतका निर्णय किया ।।

अथवा इस श्लोककी इस प्रकार योजना भी हो सकती है की ''श्रीगोकुलाधीशके प्रादुर्भाव दिनका व्रत(जन्माष्टमीव्रत) इस प्रकार है''. ''सर्वं वाक्यं सावधारणम्'' है. इस नियमके अनुसार ''ऐसा ही है, अन्यथा नहीं है. हमने यह निर्णय कर लिया है''. ऐसा निर्णय सुबन्त-तिङ्न्तरूप जो धर्मशास्त्रीय वचनोंके पद हैं, जिनका दूसरा पर्याय शब्द है और जो भक्तोंको कमलके समान आनन्द देते हैं. इनके आशयोंको स्पष्ट कर दिया है. श्रीआचार्यचरणोंने तत्त्वदीपनिबन्धमें सुबन्त-तिङन्तात्मक शब्दोंको ''पदद्वयं सुप-्तिङन्तम्, ताभ्यां चलति वाक्पतिः'' इस वचनसे नामात्मक भगवानके चरणरूप कहा है. अतएव ऐसे चरणोंकी प्रसाद तात्पर्यस्पष्टीकरणरूप ही होना योग्य है.

जैसे मनके प्रसादका स्वरूप हर्ष, दिशाओंके प्रसादका स्वरूप दूरसे स्पष्ट दीखना, जलके प्रसादका स्वरूप स्वच्छत्व, आकाशके प्रसादका स्वरूप बादलोंसे आच्छन्न न होना, इसी प्रकार तात्पर्यका स्पष्टीकरण ही पूर्वोक्त पदोंके प्रसादका स्वरूप है.

इस प्रकार हजारों उत्तम तर्कोंसे एवं इन सहायक धर्मशास्त्रीय वचनोंसे बाध होने पर भी तुम वादियोंकी बुद्धि इस विषयमें लज्जित क्यों नहीं होती है ।।१ ।।

सप्तमीविद्धा अष्टमीका क्षय होने पर विचार चतुर उत्तम पुरुष शास्त्रीय वचनोंके आधारसे इस प्रकार नवमीमें उपवास करें ।।२ ।।

श्रीविट्ठलेश प्रभुचरणोंके चरण कमलोमें भ्रमर बननेसे जो कृपाबल मिला, उसके सहारेसे मुझने (पुरुषोत्तमने) जन्माष्टमी निर्णयका आशय स्पष्ट किया ।।३ ।।

यहां मेंनें जीवबुद्धिसे सत् या असत् जो कुछ कहा है, इस

बाल्यचापल्यकेलिये श्रीप्रभुचरण एवं आपके भक्त क्षमा प्रदान करें.

श्रीविट्ठलेश प्रभुके चरणोंमें एकाग्रचित्त श्रीपीताम्बरके पुत्र पुरुषोत्तमका बनाया जन्माष्टमी निर्णय प्रकाश पूर्ण हुआ.

इसके अनन्तर स्वतन्त्र रूपसे निर्णय किये जाते हैं.

श्रीराधिकाजीका जन्मोत्सव

भाद्रपद शुद्ध अष्टमीके दिन स्वामिनी श्रीराधिकाजीका जन्मोत्सव है, जिसका उल्लेख पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें ''वृषभानुरितिख्यात:'' इत्यादि वचनोंमें है. वचनका आशय इस प्रकार है : '' 'वृषभानु' नामसे प्रसिद्ध एक गोप था, जो बडा कुटुम्बी था. इसकी पत्नी सौभाग्य सुन्दरी बडी भाग्यवती थी. ये दोनों ब्रह्मा और सावित्री के अंशसे पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए. इनके घर भाद्रपद शुक्ल अष्टमी भौमवार मूल नक्षत्रमें श्रीकृष्णको आनन्द देनेवाली विशाललोचना महालक्ष्मी दिव्य रीतिसे प्रकट हुई''.

यह राधाष्टमीका उत्सव विद्धा अष्टमीका क्षय हो शुद्धा अष्टमी न मिले तो विद्धा अष्टमीमें ही करना चाहिये. यह अगतिकगतिरूप लोकन्यायसे निश्चित होता है. जब विद्धाका क्षय न हो तो सूर्योदयव्यापिनी अष्टमीमें उत्सव करना चाहिये. निर्णयसिन्धुमें उद्‌धृत कृत्यतत्त्वार्णवके ''युगाद्यावर्षवद्धिश्च'' इस वचनसे यह प्रमाणित होता है जिसका अर्थ इस प्रकार है :

> ''कार्तिक शुक्ल नवमी, वैशाख शुक्ल तृतीया, माघ कृष्ण अमावस्या, भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी —मये युगादि तिथि, जन्मोत्सव और गौरीव्रतोपयोगिनी सप्तमी ये सूर्योदयकी अपेक्षा रखती है. इनमें अन्य तिथियोंके ग्राह्य वेधोंकी आवश्यकता नहीं है''.

यदि दोनों दिन सूर्योदयके समय अष्टमी हो तो पहली लेनी चाहिये यह ज्योतिर्निबन्धके ''षष्ठीदंडात्मिकाया:'' इस वचनसे मालूम होता है. वचनका आशय ऐसा है :

> ''पहले दिन तिथि पूर्ण अहोरात्र साठ घडियों तक रह कर दूसरे दिन कुछ रहा भाग तिथिमल है, धर्म-कर्मके योग्य नहीं है. यह नियम

एकादशीमें नहीं है''.

यह राधाष्टमीका उत्सव भक्तिमार्गीय सम्प्रदायके अनुसार करना आवश्यक है. इसका मर्यादामार्गके अनुसार विशेष विवेचन करना उचित नहीं है इसलिये विराम किया जाता है.

भाद्रपद शुक्ल एकादशी – द्वादशी

भाद्रपद शुक्ल एकादशी या द्वादशीको परिवर्तनी होता है परन्तु इसके करनेकी परम्परा नहीं है इसलिये इसके विषयमें विशेष विचार अनावश्यक है. यदि कोई श्रद्धा वश करे तो आगे दिखाये जाने वाले प्रबोधिनी एकादशीके निर्णयके अनुसार तिथि ग्रहण करे.

श्रीवामनद्वादशी

भाद्रपद शुक्ल द्वादशी श्रवण नक्षत्र युक्तमें भगवान् वामनजीके प्रादुर्भावका उत्सव है. इसका उल्लेख निर्णयसिन्धुमें उद्धृत श्रीमद्भागवत अष्टम स्कन्धके ''श्रोणायाम्'' इत्यादि वचनोंमें है. जैसाकि श्रवण नक्षत्रसे युक्त द्वादशीमें अभिजित् मुहूर्तमें जब सभी नक्षत्र तारा ग्रह अनुकूल थे तब भगवान् वामनका जन्म हुआ. द्वादशीके मध्याह्नमें भगवानका जन्म हुआ है. इस तिथिका नाम 'विजया' है.

हैमाद्रि और दिनकरोद्योत में उद्धृत भविष्यपुराणके ''एकादशी'' इत्यादि वचनोंसे भगवान् वामनका प्रादुर्भाव एकादशीमें हुआ यह प्रमाणित होता है. जैसा कि ''जब एकादशी श्रवण नत्रक्षसे युक्त हो तो उसे 'विजया' कहा है. यह भक्तोंको विजय देने–वाली है'' यहांसे प्रारम्भ कर आगे कहा कि ''बहुत समय व्यतीत होने पर अदिति गर्भिणी हुई. उसने नवम मासमें भगवान् वामनको जन्म दिया'' इस प्रकार सभी प्रस्तुतोपयोगी वर्णन कर उपसंहारमें कहा कि ''हे युधिष्ठिर ! यह सब एकादशीके दिन हुआ. अत एव भगवानको यह विजया तिथि सब प्रकारसे प्रिय है''. इस प्रकार भगवान् वामनजीका प्रादुर्भाव भिन्न–भिन्न कल्पोंमें इन दो भिन्न–भिन्न तिथियोंमें हुआ, परन्तु दोनों ही दिन मध्याह्नमें ही हुआ. ''अह्नो मध्ये वामनो रामरामौ'' यह पुराणसमुच्चयका वचन कहता है कि वामन, दाशरथि राम और परशुराम तीनोंका प्रादुर्भाव मध्याह्नमें ही हुआ. भागवतके उपर्युक्त वचनमें ''श्रोणायां श्रवणद्वादश्याम्''

इस प्रकार श्रवण नक्षत्रका दो बार उल्लेख करनेसे वामन जयन्तीमें श्रवणकी आवश्यक्ता साबित होती है.

विष्णुशृंखलयोग : तिथियां तो एकादशी और द्वादशी दोनों अनुकूल हैं. विष्णुधर्मोत्तर और मत्स्य पुराण के वचनोंमें कहा है कि ''श्रवण नक्षत्र एकादशी द्वादशी दोनोंसे सम्बन्ध करता हो तो विष्णुशृंखल योग होता है''.

''एकादशी द्वादशी च'' एकादशी और द्वादशी इन दोनोंमें श्रवण भी हो तो विष्णुशृंखल योग होता है, जो विष्णुसायुज्य मुक्तिको देता है''.(विष्णुधर्मोत्तर)

''श्रवण एकादशी और द्वादशी दोनोंको स्पर्श करे तो वह विष्णुशृंखल योग है, जिसका देव विष्णु है. उसमें यथाविधि उपवास करनेसे मनुष्यके सब पाप नष्ट हो जाते हैं, एवं जिससे संसारमें वारंवार आना दुर्लभ हो जाता है ऐसी सर्वोत्तम सिद्धिको मनुष्य प्राप्त करता है. जैसे शृंखलाकी बेडियां परस्पर जुडी हुई रहती है, इसी प्रकार श्रवण एकादशीमें प्रविष्ट हो कर द्वादशीमें समाप्त होता है और दोनों तिथियोंको परस्पर जोड देता है, इसलिये दूसरे योगको विष्णुशृंखल कहते हैं. यह योग बहुत बडे पुण्यका कारण है. जब यह बन जावे तो इसी में उत्सव और उत्सवाङ्ग-उपवास दोनों करने चाहिये''.(मत्स्यपुराण)

हेमाद्रि नामक धर्मशास्त्र ग्रन्थमें ''द्वादशी श्रवणस्पृष्टा स्पृशेदेकादशीं यदि'' इस वचनके अनुसार ''श्रवण नक्षत्रवाली द्वादशीके स्पर्श मात्रसे विष्णुशृंखल योग कहा है''. परन्तु वह शीघ्रतावश विना विचारे कहा मालूम होता है. क्योंकि जिस समय एकादशी है उस समय श्रवण नहीं है. श्रवणका स्पर्श आगे द्वादशीमें होने वाला है. अत: ऐसे श्रवणसे पूर्वोक्त शृंखला स्वरूप नहीं बना. कल्याणरायजीने उक्त हेमाद्रि मतका अनुवाद किया है. उनकी गलती नहीं है. ''द्वादशी श्रवणं स्पृष्टा'' इस वचनका तो यह आशय है कि द्वादशी और श्रवण दोनों एक ही समयमें एकादशीका स्पर्श करें.

शुद्धा* या शुद्धाधिका द्वादशीमें श्रवण नक्षत्रका सम्बन्ध हो तो नक्षत्रसे सम्बन्ध करती हुई द्वादशीमें ही उत्सव करना चाहिये. श्रीभागवतके पूर्वोक्त वाक्योंसे भगवान् श्रीवामनजीका जन्म श्रवण युक्ता द्वादशीमें निश्चित है. ''तिथि नक्षत्रयोर्योग:''

यह भविष्य पुराणका वचन कहता है कि ''अहोरात्रमें दो कला पर्यन्त भी द्वादशी और श्रवण का योग हो तो उसे पूरा आठ प्रहरका समझे''. यही आशय ''उदयव्यापिनी ग्राह्या श्रवणद्वादशी व्रते'' इस नारदीय वचनका भी है. इस श्रवण द्वादशीका व्रत करनेसे पहले दिन किये हुए एकादशीके व्रतकी कोई हानि नहीं है, क्योंकि दोनोंकी अधिष्ठाता देवता एक विष्णु ही है, जिसका उल्लेख ''एकादशीमुपोष्यैव'' इस भविष्य पुराणके वचनमें है. वचनका आशय यह है : ''एकादशीका उपवास करके ही द्वादशीका उपवास करना चाहिये. इसमें किसी भी शास्त्रविधिका लोप नहीं है, क्योंकि दोनोंकी देवता विष्णु ही है''.(*केवला शब्दका अर्थ विशिष्ट धर्म रहिता ही मानना उचित है, वह विशिष्ट धर्म विद्ध – अधिकात्व हटा दिया तो शेष शुद्धा ही रही, जो के केवला शब्दका अर्थ है.)

श्रवणयोगविचार : यदि एकादशीमें ही श्रवण नत्रक्षका सम्बन्ध हो द्वादशीमें श्रवण या विष्णुशृंखल कुछ भी न हो तो एकादशीमें ही उत्सव आदि करना उचित है. क्योंकि पूर्वोक्त श्रीभागवतवचनसे व्रतके दिन श्रवणका होना आवश्यक बताया गया है. और भविष्य पुराणके अनुसार भगवानका प्रादुर्भाव भी किसी कल्पमें एकादशीमें हुआ है. एवं ऐसी परिस्थितिमें एकादशीके दिन वामनजयन्ती माननेकेलिये नारदपुराणमें ''यदा न प्राप्यते'' यह विधायक वचन भी प्रत्यक्ष उपलब्ध होता है. वचनका आशय यह है :

> ''जब कि द्वादशीके दिन विष्णु देवताका श्रवण नत्रक्ष न मिले तो वामन जयन्तीका व्रत पाप नाश करनेवाली श्रवण नक्षत्रसे युक्त एकादशीमें करें. दोनों व्रतोंकी देवता पुराण पुरुषोत्तम विष्णु है. भेद दृष्टि नहीं करना चाहिये. भेद दृष्टिसे पतित हो जाता है''.

कल्याणरायजीने भी इसी प्रकार एकादशीमें व्रत स्वीकार किया है. श्रवणयोगका अभाव हो तो यदि केवल दशमीविद्धा एकादशीमें ही श्रवण ही शुद्ध एकादशी या द्वादशी में न हो तो द्वादशीमें ही जन्मोत्सव करें. श्रीभागवतके पूर्वोक्त वचनमें द्वादशीके दिन ही भगवानका प्रादुर्भाव कहा है. वराह पुराणके ''एकादश्यां नरो भुक्त्वा'' इस वचनसे प्रमाणित होता है कि केवल द्वादशीमें व्रत करनेसे एकादशी और द्वादशी इन दोनों व्रतोंका पुण्य प्राप्त हो जाता है. वचनका आशय मनुष्य एकादशीके दिन भोजन कर यदि द्वादशीके दिन उपवास करे तो दोनों व्रतोंसे उत्पन्न पुण्यको प्राप्त करता है, कोई संशय नहीं.

दिनकरोद्योत आदि ग्रन्थोमें वह्निपुराणके वचनके आधार पर यह लिखा है कि ''दशमी विद्धा एकादशीमें श्रवण नक्षत्र हो तो वामन जयन्तीका उपवास उसी दिन करना चाहिये'' परन्तु यह वचन सकाम व्रतका विधान करता है. इसमें 'सर्वकामदा' पद स्पष्ट है. अतएव सभीकेलिये यह निर्णय ग्राह्य नहीं हो सकता. वह्निपुराणका 'दशम्येकादशी' वचन जो एकादशी दशमीसे विद्धा हो, वह उपवास करने योग्य नहीं है परन्तु यदि वह श्रवण नक्षत्रसे युक्त हो तो सब कामनाओंको देनेवाली है.

जब कि पहले दिन *विष्णुशृंखल योग न हो किन्तु एकादशीके बाद प्रवृत्त होनेवाली द्वादशीमें श्रवण प्रविष्ट होकर दूसरे दिन तक रहता हो और दूसरे दिन मध्याह्नके किसी एकदेशमें दोनों दिन द्वादशी समान या न्यूनाधिक भी रहती हो तथापि वामन जयन्तीका व्रत पूर्व दिन ही करना चाहिये. क्योंकि युग्म वचन द्वादशीका व्रत एकादशीसे युक्त द्वादशीमें करना उचित बतलाता है.

(*पहले दिन मध्याह्नव्यापिनी एकादशीमें श्रवण हो तो उस दिन वामन जयन्ती माननी चाहिये यह ''यदा चैकादश्यामेव श्रवणयोग:'' पंक्तिसे पहले कह चुके हैं. ''दिनद्वयेऽपि न श्रवणयोग:'' ऐसा आगे कहेंगे. विष्णुशृंखल न हो तो ऐसी दशामें पहले दिन एकादशीके बाद द्वादशीमें श्रवण लग कर दूसरे दिनके द्वादशीमें रहे, यह विचारसे प्रथम दिन व्रत हो सकता है.)

युग्मवचन :

''युग्माग्नियुगभूतानां षण्मन्योर्वसुरन्ध्रयो:,
रुद्रेण द्वादशीयुक्ता चतुर्दश्यां च पूर्णिमा,
प्रतिपदोप्यमावस्या तिथ्योर्युग्मं महाफलम्''.

द्वितीयासे तृतीया, चतुर्थीसे पञ्चमी, षष्ठीसे सप्तमी, अष्टमीसे नवमी, एकादशीसे द्वादशी, चतुर्दशीसे पूर्णिमा, अमावस्यासे प्रतिपदा मिली हुई हो तो यह दो – दो तिथियोंका सम्बन्ध महाफल देनेवाला होता है.

द्वादशी मध्यह्नव्यापिनी लेनी यदि दोनों दिन श्रवण न हो, परन्तु मध्याह्न व्यापिनी द्वादशी दूसरे दिन ही हो तो दूसरे दिन द्वादशीमें ही उत्सव करना चाहिये. उपवासकेलिये तो यह निर्णय है कि समर्थ हो तो दोनों दिन उपवास करें, पहले दिन एकादशीका और दूसरे दिन वामनजयन्तीका, और असमर्थ हो तो केवल वामन जयन्तीका ही उपवास करें.

यद्यपि ‘‘द्वादश्यां शुक्लपक्षे तु’’ इस मत्स्य पुराणके वचनमें और ‘‘श्रवणेन सिते’’ इस यमस्मृतिके वचनमें शुक्लपक्षकी द्वादशीके दिन श्रवण हो तो एकादशीका उपवास कर द्वादशीमें केवल भगवानकी पूजा करें यह उल्लेख है, उपवासका नहीं है. तथापि उक्त दोनों वचनोंमें भाद्रपदमासका नाम नहीं है. इससे मालूम होता है कि वामनजयन्तीसे और कोई द्वादशीकेलिये यह विधान है. आचार्यचरणोंने तत्त्वदीपनिबन्धमें कहा है कि

> ‘‘वामनजयन्तीके उत्सवके निमित्त एकादशीमें उपवास न भी करें, तथापि द्वादशीमें अवश्य करें. विशेष कहनेसे क्या ? उत्सवप्रधान है. भोजन ‘कर’ उत्सव करना निषिद्ध है. भगवानका आवेश नहीं हो सकता’’.

अतएव द्वादशीमें उपवास करना निश्चित है. कुछ भक्त केवल एकादशीका उपवास कर द्वादशीके दिन उत्सवकी समाप्तिमें पारणा करते हैं उनके आशयका विवेचन नृसिंहजयन्तीके निर्णयमें किया जायगा.

पूर्वोक्त निर्णयके अनुसार ग्राह्य वामनजयन्तीके भेद यहां दिखाये जाते हैं :

१. विष्णुशृंखलयोगवती शुद्धा न्यूना एकादशी : श्रवण एकादशीमें प्रवृत्त होकर द्वादशीमें समाप्त हो तो विष्णुशृंखल योग होता है. योग जिस दिन बने उस दिन वामनजयन्तीका व्रत होता है.

२. श्रवण युक्ता शुद्धा न्यूना एकादशी : विष्णुशृंखल योग न बने, एकादशीके साथ ही श्रवणका सम्बन्ध हो, तथापि वामनजयन्तीका व्रत एकादशीमें होता है.

३. श्रवण युक्त शुद्धाधिका एकादशी : एकादशी पहले दिन अरुणोदय वेधसे रहित रहती हुई दूसरे दिन भी सूर्योदयके बाद रहे तो जिस दिन श्रवण हो उस दिन वामनजयन्तीका व्रत होता है. दोनों दिन श्रवण हो तो दूसरे दिन होता है.

४. श्रवण युक्त विद्धाधिका द्वादशी : यदि पहले दिन एकादशीके बादमें द्वादशी और श्रवण रहते हो और दूसरे दिन भी द्वादशी और श्रवण हो तो जिस दिन द्वादशीकी मध्याह्नमें व्याप्ति हो उस दिन वामनजयन्तीका व्रत होता है. दोनों दिन मध्याह्न या मध्याह्नके किसी एकदेशमें समान व्याप्ति हो तो पहले दिन होता है.

५. श्रवणयुक्त शुद्धाधिका द्वादशी : पहले दिन सूर्योदयसे द्वादशी पूर्ण रहकर दूसरे दिन भी सूर्योदयके बाद रहे तो जिस दिन श्रवण हो उस दिन वामनजयन्तीका व्रत होता है. दोनों दिन श्रवण हो तो पहले दिन व्रत होता है. यदि पहले दिन सर्वथा श्रवण न हो, दूसरे दिन सूर्योदयके समयकी अल्प द्वादशीमें ही श्रवण हो तो दूसरे दिन व्रत होता है.

६. श्रवणरहिता एकादशी : यदि एकादशी द्वादशी दोनों दिन श्रवण न हो और द्वादशीकी मध्याह्नव्याप्ति भी किसी दिन न हो तो अरूणोदय वेध रहिता मध्याह्नव्यापिनी एकादशी जिस दिन हो उस दिन वामनजयन्ती होती है.

७. श्रवणरहिता द्वादशी : यह द्वादशी विद्धा शुद्धा आदि प्रकारोंमें से किसी भी प्रकारकी हो जो मध्याह्नके समय रहे वह वामनजयन्तीमें ग्राह्य है.

पारणा :

अब पारणाका विचार किया जाता है. श्रवणद्वादशी और वामनजयन्ती इन दोनोंका परस्पर कोई विरोध नहीं है, एवं कभी-कभी एक ही अहोरात्रमें दोनोंके व्रतका अनुष्ठान तन्त्रसे किया जाता है, इसलिये इनकी पारणा यथासम्भव दोनों समाप्त होने पर वा दोनोंमें से किसी एकके समाप्त होने पर करनी होगी. वहां विषयविचार इस प्रकार है :

शुद्धन्यूना द्वादशी : अर्थात् जो द्वादशी सूर्योदयसे प्रवृत्त होकर दूसरे दिनके सूर्योदयसे पूर्व कहीं भी मध्यमें समाप्त हो जाय ऐसी द्वादशी

और

विद्धान्यूना द्वादशी : अर्थात् प्रातःकाल कुछ समय एकादशी हो और बादमें द्वादशी प्रारम्भ होकर दूसरे दिनके सूर्योदयसे पूर्व ही समाप्त होती हो,

—एसी द्वादशी यदि श्रवण नक्षत्रसे युक्त हो, एवं दूसरे दिन श्रवण कुछ समय ही रहता हो तो वामनजयन्ती और श्रवणद्वादशी इन दोनों व्रतोंको पूर्ण कर त्रयोदशीके दिन पारणा करना उचित है. यह उभयान्त पारणा है.

त्रयोदशीमें पारणा करनेका कहीं भी निषेध नहीं है, प्रत्युत एसे उत्तम समयमें व्रत कर त्रयोदशीमें पारणा करनेका बहुत बडा पुण्य है. इसका उल्लेख विष्णुरहस्य और तत्त्वसागर के वचनोंमें है. विष्णुरहस्यका ''एकादशी कलाम्'' वचन : ''कलामात्र भी एकादशीसे युक्त यदि द्वादशी हो तो उसमें उपवास व्रत करनेकी सौ यज्ञ करनेके समान पुण्य है. पारणा त्रयोदशीमें करना चाहिये''. तत्त्वसागरका ''द्वादश्यैकादशी'' वचन : ''जहां एकादशी द्वादशीसे मिल गई हो, उसमें उपवास कर त्रयोदशीमें पारणा करें''.

जब शुद्धाधिका द्वादशी हो, अर्थात् पहले दिन सूर्योदयसे प्रवृत्त होकर दूसरे दिन सूर्योदयके बाद तक रहती हो अथवा विद्धाधिका द्वादशी हो, अर्थात् पहले दिन

सूर्योदयके बाद कुछ समय एकादशी हो अनन्तर द्वादशी प्रवृत्त होकर दूसरे दिन सूर्योदयके बाद तक रहती हो, श्रवण भी पहले दिन अल्प हो और बढ कर दूसरे दिन अधिक रहता हो, तब एकादशी और वामन जयन्ती दोनोंका व्रत पहले ही दिन तन्त्रसे एक साथ होगा. शुद्धाधिका पक्षमें ''पूर्णा भवेत् यदा नन्दा'' इस गरुडपुराणके वचनसे यह निर्णय मिलता है कि एकादशीका त्याग कर द्वादशीमें करना चाहिये, क्योंकि बढी हुई तिथि श्रेष्ठ मानी गई है. विद्धाधिका पक्षमें ''निष्कामस्तु गृही'' इस स्कन्द पुराणके वचनसे यह निश्चय होता है कि जो निष्काम गृहस्थ है उसे दूसरी एकादशीमें व्रत करना चाहिये. उस एकादशीके दूसरे दिन प्रातःकाल द्वादशी हो या न हो ऐसी विद्धाधिका-शुद्धाधिका द्वादशीमें एकादशी वामनजयन्ती और श्रवणद्वादशी इन तीन व्रतोंका अनुष्ठान एक साथ होता है. इन तीनोंकी पारणा दूसरे दिन अल्पशेष द्वादशीमें ही करना उचित है. श्रवण नक्षत्रकी समाप्तिकी अपेक्षा नहीं करनी चाहिये. निर्णयामृतमें उद्धृत ''विशेषेण महीपाल'' इस मार्कण्डेय पुराणके वचनमें कहा है कि ''जब श्रवण बढकर दो दिन रहे तो तिथिकी द्वादशीकी समाप्तिमें पारणा करना आवश्यक नहीं, द्वादशीमें ही पारणा करनी चाहिये. द्वादशीका उल्लंघन न करें''. मत्स्य और कूर्मपुराणके ''एकादशीमुवोष्यैव'' इस वचनमें उल्लेख है कि एकादशीका उपवास कर द्वादशीमें पारणा करना चाहिये. त्रयोदशीमें पारणा न करें. क्योंकि बारह द्वादशीयोंका क्षय-पुण्यका क्षय हो जाता है. पारणाके योग्य द्वादशीमें यदि श्रवण नक्षत्रका मध्य भाग भी आता हो, तथापि वह उपेक्षा करने योग्य है. क्योंकि द्वादशीका त्याग करने पर तो बारह द्वादशीयोंके पुण्योका क्षय होता है. और नक्षत्रके मध्य भागका त्याग करने पर तो केवल श्रवणके ही पुण्यका नाश है. ''आ, भा, का, सितपक्षेषु' यह वचन यदि किसी प्रामाणिक धर्मशास्त्रीय ग्रन्थका भी हो जिसका आशय यह है कि आषाढ भाद्रपद और कार्तिक शुक्लकी द्वादशीके दिन क्रमशः अनुराधा श्रवण और रेवती हो तो भोजन न करें, बारह द्वादशीयोंके पुण्यका क्षय होता है; तथापि दोनों पक्षोमें दोष समान है.

यदि द्वादशी शुद्धोना हो, अर्थात् पहले दिन सूर्योदयसे प्रारंभ होकर दूसरे दिन सूर्योदयके बाद तक न रहती हो, अथवा विद्धोना द्वादशी हो, अर्थात् पहले दिन सूर्योदयके बाद शुरू होकर दूसरे दिन सूर्योदयसे पहले ही समाप्त हो जाती हो, क्षय तिथि हो, श्रवण भी पहले दिन कम हो, दूसरे दिन अधिक हो तो ऐसी परिस्थितिमें दूसरे दिन पारणामें श्रवणके मध्य भागका त्याग करना चाहिये. ''मैत्राद्यपादे'' इस विष्णुधर्मके वाक्यमें यह उल्लेख है कि भगवान् विष्णु अनुराधाके पहले चरणमें शयन

करते हैं, रेवतीके अन्तिम चरणोंमें जागते हैं और श्रवणके मध्य भागमें करवट बदलते हैं. इन तीनों नक्षत्र समयोंका पारणामें त्याग करना आवश्यक है. ''आ. भा. का. सितपक्षेषु'' यह वचन प्रामाणिक हि नहीं है, एसा कोई कहते हैं. यदि प्रामाणिक भी हो भी तो इसके आशयका विष्णुधर्मके वाक्यमें समावेश हो गया है. इसलिये व्रत निर्णयकी व्यवस्था पूर्वोक्त ही होगी. निर्णयका संक्षिप्त यह कि पारणाके लिये द्वादशी मिल सके तो श्रवण समाप्तिकी प्रतीक्षा आवश्यक नहीं. न मिल सके तो श्रवणका मध्य भाग छोडकर पारणा करें.

भाद्रपदके उत्सव समाप्त

आश्विनमास

आश्विनमें नवरात्रका आरम्भ सूर्योदय व्यापिनी प्रतिपदासे होता है. इस पर्वका विशेष विचार वहांसे (ग्रन्थान्तरोक्त प्रतिपन्निर्णयसे) मालूम करना चाहिये. विशेष प्रयोजन न होनेसे यहां विचार नहीं किया जाता है.

विजयादशमी

आश्विन शुक्ल दशमीके दिन विजयोत्सव होता है. इसके निर्णयकेलिये प्रतापमार्तण्ड, निर्णयामृत, भगवद्भास्कर, दिनकरोद्योत, हेमाद्रि और निर्णयसिन्धु आदि ग्रन्थोमें स्थित वचनोंका संग्रह किया जाता है.

> पुराणसमुच्चय 'दशम्यां' वचन ''मनुष्य अश्विन शुक्ल दशमीको अपराह्णके समय अपने गांवके बाहर ईशान कोणमें प्रयत्नसे अपराजिता देवीका पूजन करें. मनुष्य अपने कल्याण और विजय केलिये नवमीयुक्ता दशमीमें पूर्वोक्तविधिसे अपराजिताका पूजन करें. आश्विन शुक्ल दशमीमें अपराजिताका पूजन करें, एकादशीमें अपराजिताका पूजन करना उचित नहीं''
>
> ग्रन्थान्तरका वचन ''मूल नक्षत्रमें देवीका आवाहन, पूर्वाषाढामें पूजन और उत्तराषाढामें बलिदान करें. श्रवणमें अपराजिताका पूजन करें''.
>
> स्कन्दपुराण वचन ''जो राजा दशमीका उल्लंघन कर प्रस्थान करता है (एकादशीमें प्रस्थान करता है) उसके राज्यमें सम्पूर्ण वर्ष कहां भी विजय होना सम्भव नहीं''.

भृगुवचन ''अश्विन शुक्ल दशमीको सायंकाल अथवा विजय मुहूर्तमें सब राशिवाले मनुष्योंकेलिये यात्रा शुभ है. (संपूर्ण दिनमें पन्द्रह मुहूर्त्त होते हैं, इस दृष्टि कोणसे) ग्यारहवें मुहूर्त्तका नाम विजय है, उस मुहूर्तमें सभी विजय चाहनेवालोंको यात्रा करनी चाहिये''.

विश्वरूप वचन ''आश्विन शुक्ल दशमीके दिन विजय मुहूर्तमें सीमोल्लंघन करें. विजय चाहनेवाले आश्विन शुक्ल दशमी - नवमी - सहित ग्रहण करें. एकादशी सहित ग्रहण न करें''.

रत्नकोशमें नारदवचन ''सक्ध्या कुछ वीती हो, कुछ - कुछ तारे निकल आये हों, यह विजय समय है जो सब कर्तव्योमें सिद्धि देनेवाला है''.

नारदवचन ''आश्विन मास शुक्ल पक्षमें सूर्योदयके समय यदि दशमी तिथि हो तो उसे विद्वान् विजया नामसे जानते हैं. राजाओंके पट्टाभिषेक कार्यमें आश्विन शुक्ल दशमी नवमीविद्धा लेना उचित नहीं. उस दिन श्रवण भी क्यों न हो''.

धर्मविवृति ग्रन्थका वचन : ''आश्विन शुक्ल दशमी यदि श्रवण नक्षत्रसे युक्त हो तो विजया दशमी कही गई है. यह श्रवणसे युक्त विजया दशमी ही अत्यन्त दुर्लभ है''.

कश्यपवचन ''सूर्योदयके समय कुछ दशमी हो, एवं बादमें एकादशी और श्रवण हो तो वह विजया दशमी है. भगवान् रामचन्द्रने दशमी और श्रवण में प्रस्थान किया था. अतएव मनुष्य उस दिनके नक्षत्रमें सीमोल्लंघन करें''.

गोपथब्राह्मण भविष्यपुराण और पुराणसमुच्चय में वास्तुपूजन नीलखंजनदर्शन आदि और भी विजया - दशमी के कर्तव्य हैं, जिनका सविस्तर प्रतिपादन अपरार्क आदिमें अनेक वाक्य लिख कर किया है.

दो दिन विजयादशमी हो तो राजाओंके पट्टाभिषेकमें सभीके मतसे दूसरी विजया दशमी ग्राह्य है. दूसरे कार्य जिस दिन श्रवण, कर्म करनेके समय रहे उस दिन किये जावें, ऐसा निर्णय कुछ विद्वान् कहते हैं.

दूसरे विद्वान् कहते हैं कि किसी भी समयमें दशमीका स्पर्श करनेवाला श्रवण कर्म करनेके समय जिस दिन रहे, उस दिन विजया दशमी मानी जावे.

कुछ अन्य विद्वान् कहते हैं कि जो दशमी किसी भी समय श्रवणका स्पर्श करती हो वह जिस दिन कर्मकालके समय रहे उस दिन विजया दशमी है.

श्रवण और दशमी का सर्वथा सम्बन्ध न हो, तब तो सभी विद्वान् ''तिथिः शरीरं तिथिरेव कारणम्'' इस लल्लवचनके आधार पर तिथिको ही प्रधानता देते हैं.

बहुत विद्वान् अपराह्नको विजयादशमीका कर्मकाल कहते हैं.

दूसरे, (अर्धास्त सूर्यके अनन्तर तारा निकलनेसे पहले) कुछ संध्याका उल्लंघन किया हो एसे प्रदोष समयको कर्मकाल कहते हैं.

कोई विद्वान् तीन भागोमें विभक्त किये हुए दिनके तृतीय भागको अपराह्न और दूसरे पांच भागोमें विभाग किये हुए दिनके चतुर्थ भागको अपराह्न मानते हैं,

कोई ग्यारहको माने, कोई पन्द्रहवेंको और कोई प्रदोषको (सूर्यास्तके बाद दो घडी) विजय मुहूर्त मानते हैं.

सिद्धान्त : उपर्युक्त मतोंमेंसे कौन मत आदर करने योग्य हैं ? उत्तर यह है कि ''तत्र तिथिद्वैधे''से प्रारंभ कर ''श्रवणस्य कर्मकालव्याप्त्या केचन निर्णयमाहुः'' पर्यन्त ग्रन्थसे सर्वप्रथम मत दिखाया है वही आदर करने योग्य है. क्योंकि इससे शास्त्रने जो नक्षत्रको प्रबल बताया है यह सार्थक होता है. वचनोंमें खींचातानी नहीं करनी पडती है. वचनोंकी व्यवस्था अच्छी लगती है. और सभी कर्तव्य कार्योके अनुष्ठानकी आसानी भी रहती है. यह सब इस प्रकार है :

कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय ब्राह्मण पञ्चम प्रपाठकके दूसरे अनुवाकके आरम्भमें ''यत्पुण्यं नक्षत्रम्'' श्रुति है. यह अनारभ्याधीत है. अर्थात् किसी कर्म विशेषके सम्बन्धमें नहीं पढी गयी है, किसी भी वचनके द्वारा कर्मविशेषके साथ इसका सम्बन्ध प्रमाणित नहीं होता है. अतएव यह क्रत्वर्थ नहीं, किन्तु पुरुषार्थ है. भाष्यकार सायणने कहा कि उक्त श्रुतिका सायणानुसारी अर्थ यह है : ज्योतिःशास्त्रके अनुसारी कर्ता और कर्मके अनुकूल जो पुण्य नक्षत्र है उसका उषःकालके समय यह निश्चय करना चाहिये कि आकाशमें सूर्यके उदय प्रदेशसे इतनी दूरी पर यह नक्षत्र रहेता है. 'उषःकाल'का स्पष्टीकरण करनेकेलिये कहते हैं कि, जब सूर्य उदय होता है, तब कार्यकर्ता पुरुष नक्षत्रको नहीं पाता है, अर्थात् सूर्य तेजसे नक्षत्र लुप्त हो जाता है. नक्षत्रसे पूर्वके स्थान जहां सूर्यके पहुंचने पर नक्षत्रोंका देखना बंध हो जाता है, जघन्य कहा गया है. इस स्थान पर जितने समय सूर्य जावे उतने समयमें नक्षत्रको देखे और कार्य प्रारम्भ करें.

अर्थात् उषःकालमें कार्य प्रारम्भ करें. जो इस प्रकार नक्षत्रज्ञानको प्राप्त कर उषःकालमें कार्य प्रारम्भ करनेवाला हो वह पुण्यदिनमें नक्षत्रमें ही करता है, अर्थात् उसका किया हुआ कर्म पुण्य दिनमें किया नक्षत्रमें हुआ सफल होता है. अब इस प्रकार कर्म करनेका सम्प्रदाय बताते हैं कि मात्स्य नामक किस ऋषिने यज्ञेषुनामक शतद्युम्न (धनी) पुरुषको ऐसे समयमें कार्यमें प्रवृत्त कर श्रेष्ठ बना दिया.

''यत्पुण्यं नक्षत्रम्'' यह श्रुति पुण्य नक्षत्रके दिन कार्य करनेका विधान करती है, अल्प नक्षत्रमें बडा कार्य कैसे हो सकता है यह विचारणा हुई, सूर्यतेजसे लुप्त होनेसे पूर्व उषःकालमें उस पुण्य नक्षत्रको प्रत्यक्ष देखना चाहिये, यह विधान करते हैं. याने कर्म करनेके दिन कर्मोपयोगी नक्षत्र अल्प भी हो तथापि उषःकालमें यदि उसका दर्शन किया जाय तो पूरा फल देता है. इसलिये उसको प्रत्यक्ष देखनेका विधान करते हैं : ''एवं ह वै यज्ञेषु च'' इस अंशमें एक दृष्टान्त और शिष्टाचार श्रुति दिखाती है. यदि नक्षत्र फल देनेवाला होनेसे प्रबल है, ऐसा अभिप्राय श्रुतिका न होता तो ऐसा विधान क्यों करते! अतएव नक्षत्र, तिथि-योग-करण आदि अन्यकी अपेक्षा अवश्य प्रबल है. ज्योतिष सिद्धान्तके अनुसार सभी फल अनुकूल नक्षत्र पर चन्द्र आता है तब मिलते हैं.

अब यहां शंका है कि प्रस्तुत अनुवाकके पूर्व अनुवाकमें वैकृति नक्षत्रेष्टिकाके मन्त्र पढे गये हैं और प्रस्तुतमें नक्षत्र सम्बद्ध पुण्यकालोंका निरूपण किया जा रहा है, इसलिये प्रसङ्गगकी सङ्गतिकेलिये इसे भी वैकृतिनक्षत्रेष्टिका सम्बन्धि मानना उचित है.

इसका निराकरण यह है कि ''यत्पुण्यं नक्षत्रम्'' इस उपर्युक्त श्रुतिसे तिसरे क्रमका मन्त्र ''यां कामयेत दुहितरं प्रिया स्यादिति'' यह है. इसमें कहा है कि जो पिता यह चाहे कि मेरी कन्या अपने पतिकी प्रिया बने, वह उस कन्याका स्वाति अभिजित् रेवति नक्षत्रमें दान करे, जिससे वह अवश्य प्रिया हो जाती है.

चोथे क्रमका मन्त्र ''अभिजिन्नाक्षत्रम् उपरिष्टादाषाढानाम्'' यह है. इसमें कहा है कि देवोंने अभिजित् नक्षत्रमें युद्ध कर दैत्यों पर विजय प्राप्तकी. इसलिये जो पुरोहित यह चाहे कि मेरा राजा अजय्य शत्रुसेनाको जीते, वह अभिजित् नक्षत्रमें युद्धप्रयत्न करावे. पांचवे क्रमका मन्त्र ''प्रजापतिः पशून् असृजत''से प्रारम्भ कर

''यत्किंचार्वाचीनम् सोमात्'' तक है. इसका आशय यह है कि प्रजापतिने पशुओंको उत्पन्न किया. वे पशु अपने स्वामियोंके घर रेवती भिन्न सभी नक्षत्रोमें गये, परन्तु साधारण दशामें ही बने रहे, बढे नहीं. जब रेवतीमें स्वामियोंके घर गये तो बहुत बढे. इसलिये सोमयागसे पूर्वके पशु सम्बन्धी सभी कर्म रेवतीमें करें, जिससे पशु बढते हैं. इस प्रकार ''यां कामयेत'' ''अभिजिन्नाम नक्षत्रम्'' ''प्रजापतिः पशूनसृजत'' इन तीनों श्रुतियोंसे जो प्रस्तुत प्रकरणमें कन्यादान जयोद्योग और पशुवर्धक कर्मोंका क्रमशः स्वाती, अभिजित् और रेवती इन नक्षत्रोमें करनेका विधान किया है, इसकी संगति नहीं हो सकती. अतएव इसे केवल वैकृति नक्षत्रेष्टिकासे सम्बन्ध मानना उचित नहीं.

''यत्पुण्यं नक्षत्रम्'' इस श्रुतिमें 'पुण्य' शब्दका अर्थ कार्योपयोगी है, देवनक्षत्र अर्थ नहीं है, क्योंकि उपर्युक्त श्रुतियोंमें अभिजित् और रेवती दोनोंको पुण्य नक्षत्र माना है, परन्तु ये देव नक्षत्र नहीं, यम नक्षत्र है ऐसी आगे व्यवस्थाकी है. ''कृत्तिका प्रथमम् विशाखे उत्तमम् तानि देवनक्षत्राणि, अनुराधाः प्रथमम्, अथभरणी उत्तरम्, तानि यमनक्षत्राणि'' इस श्रुतिमें कृत्तिकासे विशाखा तक देवनक्षत्र और अनुराधा से भरणी तक यमनक्षत्र माने गये हैं.

अब यहां शंका यह है कि पुराण आदिके वचनोंकी क्या गति है ? अर्थात् इनमें श्रवणका नहीं है, केवल दशमीको ही विजयदशमी मानी है.

इसका उत्तर यह है कि जिस वर्ष विजयादशमी सर्वथा श्रवण रहित आती है, उस वर्षकी विजयादशमीसे इनका सम्बन्ध है; क्योंकि कश्यपने अपने वचनमें 'तद्दिनर्क्षे' इस अंशसे स्पष्ट किया है, विजयादशमी दिनके श्रवण नक्षत्रमें सीमोल्लङ्घन करें. इस प्रकार श्रवण नक्षत्रकी प्रधानता बताई है.

यदि उत्तरपद लोपी समास मानकर यह कहा जाय, तो ऐसा समास पर नक्षत्रकी ही प्रधानता नहीं आती है, अर्थात् तिथि नक्षत्र दोनों तुल्य ग्राह्य प्रमाणित होते हैं, तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि इससे दशमीका श्रवणके साथ सम्बन्ध रहना प्रमाणित होता है, विशेषणांशमें प्रविष्ट होनेसे प्रधानता साबित नहीं हो सकती.

राजाओंके लिये कर्मकाल तीन भागोंमें विभक्त किये गये हैं. दिनका तृतीय

भाग अपराह्ण है, जो कि 'विजय' नामक दो मुहूर्तोंसे युक्त होता है. उक्त समयमें ही गोपथ ब्राह्मणमें कहे हुए सभी कार्योंका सौकर्यके साथ करना सम्भव है. दूसरोंके लिये प्रदोष और पन्द्रहवां विजय मुहूर्त मुख्य कर्मकाल (दिनके अन्तिम पन्द्रहवें भागसे लेकर दो घडी कच्ची रात जाते तक) है. क्योंकि ''आश्विनस्य सिते पक्षे दशम्यां सर्वराशिषु'' इस भृगुवचनमें प्रथम सायंकालको कर्मकाल कहा है. बादमें ग्यारहवां मुहूर्त भी विजय है इस प्रकार स्पष्ट ही ग्यारहवें मुहूर्तकी गौणता बताई है.

राज्याभिषेक :

सबका निष्कर्ष यह निकला कि दशमी यदि शुद्धाधिका दो हो और श्रवण पहले दिन ही हो तो राजाओंका पट्टाभिषेक भी पहले दिन करना योग्य है. और दूसरे दिन श्रवण हो तो दूसरे दिन करना योग्य है. क्योंकि एक अतिदुर्लभ योग उपलब्ध होता है. यदि दोनों दिन श्रवण न हो तो पहले दिन ही पट्टाभिषेक करना योग्य है. कारण यह कि एकादशीके सिवा दूसरी तिथियां यदि वृद्धि पाकर दो हों तो ''षष्टिदण्डात्मिका यास्तु'' इत्यादि वचन धर्मकार्योमें बढी उत्तर तिथिका निषेध करते हैं. यदि पले दिन नवमीविद्धा दशमी हो और दूसरे दिन शुद्ध दशमी हो तो पट्टाभिषेक दूसरी दशमीमें करना चाहिये. पट्टाभिषेकमें नवमी विद्धा दशमी लेनेका निषेध है. यदि नवमी विद्धा दशमीका क्षय हो जावे तो पट्टाभिषेक ही नहीं करना चाहिये. क्योंकि शुद्ध दशमी न मिलने पर नवमी विद्धा दशमीमें भी पट्टाभिषेक कर लें, ऐसा कोई पुनर्विधान शास्त्रमें नहीं है.

सीमोल्लंघन :

अपराजितापूजन, सीमोल्लंघन आदि अन्य कार्य पहले दिन नवमी विद्धा दशमीमें हो, कर्म करनेके समय श्रवण हो तो पहले दिन और दूसरे दिन शुद्ध दशमीमें कर्म करनेके समय श्रवण हो तो दूसरे दिन करना उचित है, यदि दोनों दिन समान या न्यूनाधिक एक अंशमें श्रवण रहता हो तो पहले दिन करना उचित है. क्योंकि नवमी युक्त विजया दशमी श्रेष्ठ मानी गई है.

''एकादश्यां न कुर्वीत पूजनं चापराजितम्''

''दशमीं यः समुल्लङ्घ्य प्रस्थानं कुरुते नृपः''

इत्यादि वचनोंमें एकादशीका निषेध है, यह अपराजितापूजन और राजाओं के विजयप्रस्थानके विषयमें है (सर्व साधारणके द्वारा किये जानेवाले सीमोल्लंघन आदिके

विषयमें नहीं है).

भगवत् सेवामें यवांकुरार्पण उपर्युक्त प्रकारके ही दशमीमें (श्रवणकालके समय जिस दशमीमें रहे, उसमें या केवल कर्मकालव्यापिनी दशमीमें) करना चाहिये इसमें शंकाको कोई अवकाश नहीं है.

उपर्युक्त ग्रन्थके अनुसार विजयादशमीके भेद इस प्रकार हैं :

१. दिनद्वयेऽपि कर्मकालव्यापिनी श्रवणयुक्ता विद्धाधिका : पट्टाभिषेकके अतिरिक्त समीकार्य पहले दिन होते हैं.
२. श्रवणयुक्ता अन्यतर दिने कर्मकालव्यापिनी विद्धाधिका : जिस दिन कर्मकालव्यापिनी हो उस दिन सब कार्य होते हैं. पट्टाभिषेक दूसरे दिन ही होता है.
३. श्रवणयुक्ता दिनद्वयेऽपि मुख्यकर्मकालाव्यापिनी विद्धाधिका : इसकी व्याप्ति दूसरे दिन गौण कर्मकालमें अवश्य रहती है. इसलिये सब कार्य दूसरे दिन होते हैं.
४. श्रवणयुक्ता शुद्धाधिका : जिस दिन कर्मकालमें नवमी श्रवण हो उस दिन सब कार्य होते हैं.
५. श्रवणयुक्ता विद्धोना : पट्टाभिषेकके अतिरिक्त सब कार्य इसमें होते हैं.
६. श्रवणयुक्ता शुद्धोना : इसमें पट्टाभिषेक आदि सभी कार्य होते हैं.
७. श्रवणरहिता विद्धाधिका : जिस दिन कर्मकाल व्यापिनी हो उस दिन सीमोल्लंघन आदि सब कार्य होते हैं. पट्टाभिषेक दूसरे दिन ही होता है.
८. श्रवणरहिता शुद्धा : यह जब शुद्धाधिका हो तो पट्टाभिषेक आदि सब कार्य पहले दिन ही होते हैं. शुद्धोनामें कोई विवाद नहीं.

रासोत्सव :

आश्विन शुक्ल पौर्णमासीके दिन रासोत्सव होता है. वह जिस रात्रिमें चन्द्रबिम्ब परिपूर्ण हो उस 'राका' नामक रात्रिमें करना उचित है. जिसमें एक कला न्यून हो ऐसी 'अनुमति' नामक रात्रिमें करना ठीक नहीं. क्योंकि अखण्ड चन्द्रमण्डलका आनन्द राकामें ही मिल सकता है. अर्थात् जिस दिन पूर्णिमामें चन्द्रोदय हो उस दिन करना उचित है. ऐसी पूर्णिमामें प्राय: चतुर्दशीका वेध होना सम्भव है, परन्तु वह ''युग्माग्नियुगभूतानाम्'' इस युग्मवाक्यके अनुसार ग्राह्य है. इस तरह आश्विनके उत्सव समाप्त हुए.

कार्तिकोत्सव

हेमाद्रि, निर्णयामृत, निर्णयसिन्धु, निर्णयदीप, समयालोक, दिनकरोद्योत और भगवद्भास्कर इन ग्रन्थोंमें दीपोत्सवसे सम्बन्ध रखनेवाले वचनोंका संग्रह किया जाता है. ज्योतिर्निबन्धमें स्थित नारदवचन ‘‘आश्विने कृष्णपक्षे तु’’ आश्विन कृष्णमें द्वादशी आदि पांच तिथियोंमें रात्रिके पूर्वार्धमें नीराजनकी (आरतीकी) विधि कही गई है.

धनत्रयोदाशी :

धनत्रयोदशीका कर्तव्य स्कन्दपुराणके ‘‘कार्तिकस्यासिते’’ इस वचनमें बताया है. आशय यह है कि कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीको सायंकालमें घरसे बाहर यमकेलिये दीप देवें. इससे दुर्मरण नहीं होता है.

नरक चतुर्दशी :

नरक चतुर्दशीका कर्तव्य प्रकार कहते हैं :

> ‘‘भगवान् श्रीकृष्णके अवतार कालमें एक ‘नरक’ नामका दैत्य उत्पन्न हुआ था. उसको भगवान् श्रीकृष्णने वर दिया था कि कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी तेरे नामसे नरक चतुर्दशी मानी जायगी. इस दिन सभी मनुष्य तेल लगाकर अवश्य स्नान करें, जिससे नरककी प्राप्ति न हो’’.

यही पद्मपुराण उत्तरखण्ड श्रीकृष्णचरित्रमें भगवान् शंकरने पार्वतीजीसे ‘‘अन्य लोक हितार्थाय’’ इत्यादि वचनोंसे कहा. इन वचनोंमें नरकासुर कहता है कि

> ‘‘भगवान् श्रीकृष्ण! जो मनुष्य मेरी मरण तिथि कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीके दिन तेल लगाकर स्नाक करें उनको नरक सर्वथा प्राप्त न हो’’. भगवानने ‘‘एवम् अस्तु’’ (ऐसा ही हो) कहकर उसे वर दिया.

भविष्योत्तर और ब्रह्मपुराण के ‘‘कार्तिके कृष्णपक्षे’’ वचनमें यह उल्लेख है कि कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीके दिन सूर्योदयके समय नरकसे डरनेवाले अवश्य स्नान करें. इस श्लोकका पाठ ‘‘अवश्यमेव कर्तव्यम्’’ की जगह कहीं ‘‘तिल तैलेन कर्तव्यम्’’ भी है. ‘इनोदये’ की जगह पुराण और पुस्तक भेदसे ‘इनोदये’, ‘दिनोदये’, ‘इवोदये’, ‘विधूदये’ ऐसे चार प्रकारके पाठ मिलते हैं, जिनका क्रमश: अर्थ यह है कि ‘सूर्योदयके समय’ ‘दिनके उदय समय’, ‘सूर्योदयके समय’, ‘चन्द्रोदयके समय’.

उपर्युक्त पुराणमें ही ''तैले लक्ष्मीर्जले गंगा'' वचन है, जिसका आशय यह है कि ''दीपावलिकी चतुर्दशी आने पर तैलमें लक्ष्मी और जल में गङ्गाका निवास है, जो प्रातः काल स्नान करें, यह यमलोकको नहीं देखता है''. ''तैले लक्ष्मी'' श्लोकमें 'चतुर्दशीम्' यह द्वितीया अपरसे अध्याहार की जानेवाली 'प्राप्य' क्रियाके योगमें है ऐसा निर्णयसिन्धु कहता है. सप्तमीके अर्थमें द्वितीया है यह दिनकरोद्योत कहता है.

''अमावस्या, संक्रान्ति, रविवार, व्यतीपात और क्षयतिथिमें भी प्रातःकाल पाप निवारणकेलिये तैल लगाना दूषित नहीं''. (कश्यपसंहिताका वचन)

''मनुष्य स्वेच्छानुसार अपने आनन्दकेलिये जो तैलमर्दन पूर्वक स्नान करते हैं, उसका दशमी आदि तिथियोंमें निषेध है, नित्य नैमित्तिक कार्योमें ऐसे स्नानका निषेध नहीं है''. (स्मृति वचन)

''त्रयोदशीसे विद्धा आश्विन कृष्ण चतुर्दशीको प्रातः काल प्रयत्नपूर्वक स्नान करें, अनन्तर धर्मराजके नामसे तर्पण करें''. (भविष्योत्तर)

''सिर पर अपामार्गको घुमाकर यमतर्पण करें. देवपूजा करनेके बाद नरकासुरकेलिये दीपदान करें''. (ज्योतिर्निबन्धस्थित भविष्योत्तरका वचन)

किसीने 'अपामार्गम्' इस वचनका गार्ग्यवचन कहकर उल्लेख किया है.

''जो मनुष्य चतुर्दशीके दिन अरुणोदयसे भिन्न समयमें स्नान करता है उसका किया वार्षिक धर्म नष्ट हो जाता है, कोई संशय न हो''. (भविष्यपुराणका दिवोदासीय वचन)

''आश्विन कृष्ण चतुर्दशीके दिन ('कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीके दिन') सूर्योदयसे पूर्व रात्रिके पिछले प्रहरमें तैलमर्दन करना विशेषता रखता है''. (सर्वज्ञनारायणका वचन)

'त्रयोदशी यदा प्रातः' वचन जिसका स्थूल आशय यह है कि चतुर्दशीका क्षय हो तो तैल मर्दन त्रयोदशीमें करें यह निर्मूल है, ऐसा निर्णयसिन्धु कहता है. भगवद्भास्कर कहता है कि प्रामाणिक है.

''आश्विनके अतिरिक्त(कार्तिकके अतिरिक्त)अन्य मासोंमें द्वितीया दशमी त्रयोदशीको तैलमर्दन पूर्वक स्नान न करें''.(काचित्क वचन)

''प्रेत चतुर्दशीके दिन (नरक चतुर्दशीके दिन) मनुष्य उडदकी

पत्तीके शाकके साथ भोजन करें तो सब पापोंसे रहित हो जाता है''. (लिङ्गपुराण)

कहीं 'माषपत्रस्य' वचनको पद्मपुराणका बताकर आगे ''ततः प्रदोषसमये दीपान् दद्यान्मनोरमान्'' इत्यादि कई वचनोंसे चतुर्दशीको रात्रिमें दीपदान करनेकेलिये कहा है और रात्रिमें भोजन करनेको कहा है.

अमावास्या :

अमावास्याका निर्णय इस प्रकार है :

''आश्विन कृष्ण अमावास्याके दिन तैलाभ्यङ्ग आदि मङ्गल कार्य कर दारिद्र्य दूर करनेकेलिये भक्ति पूर्वक महालक्ष्मीकी पूजा करें''. (कालादर्शक वचन)

भविष्योत्तर और आदित्यपुराणमें तैलाभ्यङ्गका विधान बताकर ''एवं प्रभातसमये'' आदि वचनोंसे यह कहा कि

''अमावास्याके दिन प्रातःकाल स्नान कर देव – पितरोंकी भक्तिपूर्वक पूजा करें प्रणाम करें ! दहीं, दूध, घी आदिसे पार्पण श्राद्ध जिसमें तीनसे कम पितरोंकी पूजा न करें. बालक और आतुर (बीमार)के सिवा दूसरे, दिनमें भोजन न करें. प्रदोषकालमें लक्ष्मीपूजन कर शक्तिके अनुसार देवमन्दिर, चौराये, स्मशान, नदी, पहाडी, मकान, वृक्षोंके मूल, गौशाला, चोक और भवनोंमें रोशनीके झाड लगावें. वस्त्र और पुष्पमालाओं से बाजारोंको सजावें. चारों और दीपकोंसे धिरे हुए प्रदेशमें प्रथम भूखे ब्राह्मणोंको भोजन करावें. बादमें नये वस्त्र और अलङ्कारोसे सुशोभित हो स्वयं भोजन करें''.

''ततः प्रदोष'' आदि वचनोंमें कहा कि ''ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवोंके मन्दिरोंमें छात्रालयोंमें शहर पनाहो पर बागोमें बावडियों पर गलियोंमें गृहवाटिकाओंमें सभी पायगां और फिलखानों में प्रदोषकालमें सुन्दर दीपक लगावें''. (स्कन्दपुराण)

स्कन्दपुराणान्तर्गत पुरुषोत्तममाहात्म्यमें उत्थापन महोत्सवके प्रसङ्गमें ''पूजयित्वा जगन्नाथम्'' इत्यादि वचनोंसे दीपोत्सवका अनुवाद किया है.

''कार्तिक कृष्ण अमावस्याके प्रदोषकालमें पृथ्वी पर यथेष्ट चेष्टावाला दैत्योंका राज्य प्रारम्भ हो जाता है''. यहांसे प्रारम्भ कर

आगे ‘‘ततोऽपराह्ण’’ वचनमें कहा कि ‘‘दिनके तीसरे प्रहर राजा नगरमें घोषणा करें (डोंडी पिटवानवे) कि आज महाराज बलिका राज्य है. लोग ईच्छानुसार आहार विहार करें. शहरमें प्रत्येक भवनके चौकमें खडिया मिट्टीसे अंग वल्लियां लिपी जावें. यथेष्ट गायन वादन हो. सुन्दर दीपक लगावे जावें. मनुष्य परस्पर प्रेमपूर्वक प्रसन्न हो तालियां पीटे, पान खावें, शरीर पर केसरका लेपन करें, रेशमी मखमली कपडे और सुर्वणके भूषण पहिनें. मित्र, भाई–बन्धु, सम्बन्धी, सगौत्र जनोंका आदर किया जावे. एवं ऐसे सजे हुए शहरमें लोग भ्रमण करें. बादमें अर्धरात्रिके समय राजा बडे गाजे बाजेके साथ मशालचियोंको लिये हुए पैदल धीरे–धीरे नगरकी सुन्दरताको देखनेकेलिये भ्रमण करें. कृत्रिम घोडे और मनुष्योंसे मकानोंकी शोभाका आनन्द प्राप्त करें. बलिराज्यका उत्सव देखकर घर लोटे. इस प्रकार अर्धरात्रि व्यतीत होने पर जब मनुष्य उंघने लगे तो प्रसन्न होती हुई नगरकी स्त्रियां सूपडेसे डोंडी पीटकर अपने घरके आंगनेसे अलक्ष्मीको (कूट कर) निकालती हैं’’. (भविष्योत्तर)

‘‘आश्विन कृष्ण अमावास्याके दिन श्राद्ध कर प्रदोष कालमें दीपदान करें, एवं जलते हुए पालितोंसे या लकडियोंसे पितरोंको मार्ग दिखावें. पितृभक्त अपराह्नमें श्राद्ध करें और प्रदोष कालमें दीपदान करें’’. (ज्योतिर्निबन्ध स्थित भविष्योत्तरका वचन)

‘‘कार्तिक आमवास्याके दिन (नरकासुर मरजानेके कारण) सब देवोंने भगवान् विष्णुसे अभय प्राप्त किया और सुखपूर्वक कमलमें सोयीं, अतएव लक्ष्मीकी प्रसन्नताकेलिये यथाविधि सुखशय्याकी रचना करनी चाहिये. अर्धरात्रिके समय लक्ष्मी भानोंका आश्रय लेनेकेलिये भ्रमण करती है. इसी लिये मनुष्य अपने घरोंको खडि या मिट्टीसे पोते, लीपे, पुष्पमालाओंसे शोभित करें, दीपकोंसे शोभित करें. मनुष्य जागरण कर उत्सव करें, नारियलका पानी पीकर जुआ खेलें. वर देनेवाली लक्ष्मी अर्धरात्रिके समय ‘‘कौन जागता है’’ यह पूछती हुई कहती हैं कि ‘‘मैं उसे द्रव्य देती हू जो जुआ खेलता है’’. (आदित्यपुराण)

कहीं यह उल्लेख है कि आश्विनकी समाप्तिमें (कार्तिक कृष्ण अमावास्याके दिन)

पितरोंके लिये पिण्डदान करने पर भी रात्रिमें स्त्रीसहवास, जागरण, लक्ष्मीपूजन और जुआ खेलना दूषित नहीं है. कुबेरपूजा और अर्धरात्रि के समय लक्ष्मी पूजा करनेका भी उल्लेख है.

प्रतिपदाका कर्तव्य इस प्रकार है :

''प्रतिपदाके दिन सूर्योदयके समय तैलमर्दन कर नीराजन विधि (आरती) करें. सुन्दर वेष धारण कर कथाएं गान और दान विधियोंसे दिवस व्यतित करें''. (ज्यातिर्निबन्ध)

''वर्ष और वसन्त के प्रारम्भमें तथा बलिराज्यमें जो तैलाभ्यङ्ग नहीं करता है वह नरक प्राप्त करता है''. (वसिष्ठ)

''कार्तिक शुक्ल पक्षमें दो कार्य किये जावें, प्रातःकाल सुवासिनीयोंके द्वारा नीराजन और सायंकाल मंगलमालाएं बांधना''. (ब्रह्मपुराण)

''प्रातः गोवर्धनकी पूजा करें, जुआ खेलें और ग्वालों सहित गायोंको अलंकृतत करें और पूजा करें''.(स्कन्दपुराण)

''कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाके दिन भगवान् शंकरने सत्य व्यवहारसे परिपूर्ण बडा सुन्दर जुएका खेल खेला. उसमें शंकर हार गये और पार्वती जीतीं, जिससे शंकर सदा भिक्षुवत् हैं और पार्वती आनन्द कर रही हैं. इसलिये मनुष्योंको प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल जुआ खेलना चाहिये. उस जुएमें जो जीतता है, वर्ष भर उसीकी जीत होती है, और हारता है उसकी हानि होती है. शरीर पर चन्दन केसरका लेपन कर सुन्दर वस्त्र अलङ्कार पहिनकर गायन वादन सुनें. विशेष कर श्रेष्ठ भाई बन्धुओंके साथ भोजन करें, उस रात्रिमें सोनेका कमरा, पलंग वगैरा सुन्दर सजावे. गुलाबजल इस पुष्प वगैरासे सुगन्धित बनावें, वस्त्र और दिव्य रत्नोंसे अलंकृत करें, चारों और दीपक लगावें. धूपसे धूपित करें. ऐसे स्थानमें फिर अपनी प्रियतमा सुन्दरियोंके साथ रात्रि व्यतित करें. नवीन वस्त्रोंसे ब्राह्मण, बंदी जन और भाई बन्धुओंका सम्मान करें''. (आदित्यपुराण)

''कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल जब मनुष्य उत्सवका आनन्द लेकर जागें तो ब्राह्मणोंका अभिवादन करें, परस्पर यह पूछें कि क्या रातका आनन्द अच्छा रहा! तब राजा सब मनुष्योंको दान-मान

आदिसे संतुष्ट करें. सौभाग्यवती स्त्रीयोंकेलिये वस्त्र अलङ्कार देवें. ब्राह्मणोंको सद्भाव और दान से प्रसन्न करें. विद्वान पुरुषोंको खान–पान और सन्मानसे सन्तुष्ट करें. जनानखानेकी रानियों और भोगिनी आदि स्त्रियोंको पुरुष मालाएं, पान, कपूर, केसर, वस्त्र और सन्मान देकर प्रसन्न करें, फौजो सिपाहियोंको अपने नामसे अंकित सुन्दर कडा, कंठी आभूषण दे कर संतुष्ट करें. भाई बन्धुओंका सत्कार पृथक् करें. बैल, पाडे, हाथी, घोडे और पैदल सिपाही इनको सजावें. एवं ये जब परस्पर सजातीय वर्गमें दंगल खेलें तब इनको एवं नट–नर्तक चारणोंको राजा स्वयं मञ्च पर बैठ कर देखे. गायें जैसे पशुओंको खिलावें एवं छेड–छाड करें. यह खेल प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल करें. बादमें प्रतिपदाके दिन तीसरे प्रहर बडे उंचे स्तम्भो पर या वृक्षों पर डाव और कासे बनी हुई बडी सुन्दर रस्सी (जिसके कई फूंदे लटके हुए हों) बांधी जावें. वहीं इनका नीराजन करें, जो राष्ट्रको जय देनेवाला है. मार्गवाली नामक उपर्युक्त रस्सीके नीचेसे इस प्रकार गायें, बैल, हाथी, घोडे एवं उक्त रस्सीको उलांघकर निकलनेवाले राजा, राजकुमार, ब्राह्मण, शूद्र आदि जातियां सभी निरोग और सुखी रहते हैं. यह कार्य सभी दिनमें पूर्णकर रातको मण्डल बनाकर दैत्येन्द्र बलीकी पूजा करें''.(भविष्योत्तर)

बलिपूजाविधि :

''राजा अपने विशाल भवनके मध्यभागमें पांच प्रकारके रंगोसे विन्ध्यावली सहित दो भुजावाली बलीराजाकी मूर्तिको लिखकर पूजा करें. सर्व साधारण मनुष्य अपने घरमें सफेद चांवलोंसे बलीराजाके उद्देश्यसे जो दान दिये जाते हैं, वे अक्षय होते हैं ऐसा शास्त्र कहते हैं. यह सब विधि मैंने तुम्हे दिखाई. इस बलि प्रतिपदाके दिन भी थोडा बहुत दान दिया जाता है वह सभी अक्षय और भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाला होता है. हे युधिष्ठिर! इस दीपोत्सवका सभी राजा कौमुदी इस कारण कहते हैं कि 'कौ=पृथ्वी पर 'मु(मुत्)=खुशी बलीराजाकी, 'दी' दी जाती है. हे युधिष्ठिर! इस दीपोत्सवके अवसर पर जो मनुष्य हर्ष या विषादके भावसे रहता है उसका सारा वर्ष वैसे ही भावसे व्यतित होता है, इसलिये यह उत्सव आनन्दमें रहते हुए करें. हे राजन्

युधिष्ठिर ? जो बुद्धिमान मनुष्य सबको आनन्द देनेवाले इस दीपोत्सवके अवसर पर बलीराजाकी पूजा करते हैं उनका सारा वर्ष सैंकडो दानोपभोग और सुखसमृद्धिके साथ बडे आनन्दसे व्यतित होता है''.

रज्जुका कर्षण :

''डाब और कासडेकी एक मजबूत नई रस्सी बनाकर उसे समान संख्यावाले और समान बलवाले राजकुमार एक ओरसे और हीन जातिवाले दूसरी औरसे अपनी शक्तिके अनुसार बार – बार खींचे. जो अपनी ओर खींचकर जीत जावें उनका सम्पूर्ण वर्षमें जय होता है. यह जयकी पहिचान राजाको प्रयत्न पूर्वक करनी चाहिये''. (आदित्यपुराण)

दो दिनोंका कर्तव्य :

''तुलासंक्रान्तिमें चतुर्दशी और अमावस्याके दिन प्रदोषकालमें हाथोमें जलते हुए पलीते लिये हुए मनुष्य पितरोंको मार्ग दिखायें''. (ज्योतिषका 'तुलासंस्थे' वचन)

''कार्तिक अमावस्या और चतुर्दशी के दिन प्रदोषकालमें दीपदान करनेसे मनुष्य यममार्गके यमपुरीके मार्ग अन्धकारोंसे मुक्त हो जाता है''. (ब्रह्मपुराणका दिवोदासीय वचन)

तीनों दिनका कर्तव्य :

''आश्विनकी चतुर्दशी अमावस्या और कार्तिक की प्रतिपदा इन तीनों दिनोंमें जब स्वाती नक्षत्र हो, अरुणोदय हो तो तैल मर्दन पूर्वक स्नान करना चाहिये. शुक्ल द्वितीया पर्यन्त स्वाती नक्षत्रयुक्त प्रातःकालमें मंगलस्नान करनेवाला लक्ष्मीसे रहित नहीं होता है. इन दिनोंमें दीपकोंसे नीराजन (आरती) किया जाता है, इस लिये इसे दीपावली कहते हैं''. (ब्रह्मपुराणका पृथ्वीचन्द्रोदयस्थित वचन)

''आश्विन कृष्णा चतुर्दशी अमावास्या और कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा –इन तिथियोंमें जब स्वाती नक्षत्र हो तो दीपावली होती है. दीपोत्सवके तीनों दिन एक साथ रखे जावें. कहीं शास्त्रमें ऐसा दोष भी पढते हैं कि

दीपोत्सवके तीनों दिन एक साथ रखे जावें. तीनके दिन समयमें अतिथि वामन रूपसे याचना कर इन्द्रको ही और बली को पातालमें रहनेवाला बनाया, परन्तु दीपोत्सवके ये तीन अहोरात्र बलीको पृथ्वी पर रहनेकेलिये दिये''. (ज्योतिर्निबन्ध स्थित नारोद वचन)

कालनिर्णयमें मध्याह्नकालमें शास्त्रका निर्णय :

''अमान्त आश्विनकी चतुर्दशी आदि तीन तिथियां दीपदान आदि कार्योमें मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्य है. सूर्यबिम्ब जब आधा उदय हो वहांसे तीन मुहूर्त प्रातःकाल हैं, बादमें तीन – तीन मुहूर्तोके क्रमशः संगव मध्याह्न शारद और सायाह्न हैं. यदि संगवसे पूर्व वे तिथियां समाप्त होती हो तो दीपदान आदि कार्योमें पूर्वविद्धाकी जावें. यदि संगवके अनन्तर भी रहती हो तो परविद्धा ली जावें''. (ज्योतिर्निबन्ध)

कहीं शास्त्रमें 'अमायामाश्विने' यहांसे प्रारम्भकर 'रिक्तायुक्ते' इत्यादि वचनोंसे यह कहा है कि

''चतुर्दशीसे युक्त अमावास्यामें यदि श्राद्धका समय न मिले तो दूसरे दिन श्राद्ध दीपदान और उल्मुक किये जावें. यदि श्राद्धके समय अमावस्या हो और अपराह्णमें प्रतिपदा आ जावें तो उस दिन सायंकालमें दीपदान आदि कार्य दूषित नहीं है. अमावास्याका श्राद्ध किये बिना जिस देशमें दीपदान और उल्मुक रोशनीसे पितरोंको मार्ग दिखाया होता है वह शत्रु अग्नि और चोरों से नष्ट हो जाता है''.

''बिना निमित्त एक दिनमें दो श्राद्ध एक मनुष्य कभी न करे, यदि निमित्त हो तो करे. निमित्त होने पर भी वृद्धि और महालय दो नहीं हो सकते'' (क्वाचित्क वचन)

''चतुर्दशीके सायंकालमें अमावास्या दीखे तो उस दिन श्राद्ध और दीपदान पितरोंकेलिये अक्षय होता है. तुला संक्रान्तिमें अमान्त आश्विन कृष्ण चतुर्दशीके दिन सायंकालमें कलामात्र समय भी अमावास्या हो तो अपराह्नमें श्राद्ध और सायंकाल में दीपदान उल्मुक करना चाहिये''.(क्वाचित्क)

गोक्रीडा :

''प्रातः अमावास्या युक्त प्रतिपदा गोक्रीडामें ली जावें. जब विश्वकी जननी गाएं प्रतिपदा युक्त अमावास्यामें क्रीडा करती है तो घोडोंको व्याधिका और राजाओं को शस्त्रोंका भय नहीं होता है. जहां प्रतिपदा और अमावास्या के संयोगमें गाएं पूजी जाती है, वहां राज्य आयु, धन और पुत्र बढते हैं. कार्तिक कृष्ण पक्षमें तुलासंक्रान्ति हो तो गोक्रीडाके कार्यमें भद्रा तिथिका (द्वितीयाका) त्याग करना चाहिये''.

''जहां प्रतिपदा कुछ द्वितीयासे युक्त हो तो वहां चन्द्रदर्शनका संभव है, इसलिये उसे बलिराजाका दिन मानना ठीक नहीं. जब गोक्रीडाके दिन द्वितीयामिश्रिता प्रतिपदा हो तो प्रजाका आयुःक्षय और राजाका छत्रभंग होता है''. (ब्रह्माण्डपुराण)

''आश्विन शुक्लपक्षमें यदि तुलाका सूर्य हो तो अमावास्याके दिन स्त्रियां क्रीडा करें, और गायें कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा क्रीडा करें''.(निर्णयभास्कर स्थित ब्राह्मवचन)

''शिवरात्री ओर बलिप्रतिप्रदा पूर्वविद्धा ग्रहण करना उचित है. हे राजन् जो अमावस्या प्रतिपदासे मिश्रित हो उस दिन गायोंकी पूजन करें, जिससे प्रजा, गायें और राजा तीनोंकी वृद्धि होती है''. (पद्मपुराण)

''अमावास्या युक्त प्रतिपदामें गोक्रीडा करना अभीष्ट है, जो द्वितीयासे युक्त प्रतिपदामें गोक्रीडा करता है उसके पुत्र, स्त्री ओर धनका नाश होता है''. (देवल)

''गोक्रीडाके दिन यदि सायंकाल चन्द्र दृष्टिगोचर हो तो वह गायोंके पूजक और पशुओंका नाश करता है. नन्दाके (प्रपतिपदाके) दीखने पर रक्षाबन्धन, दशमीके दिन बलिदान और भद्रामें (द्वितीयामें) गोक्रीडा करनेसे देशका नाश होता है. प्रतिपदाके दिन अग्निकरण और द्वितीयाके दिन गोपूजा ये दोनों राजा, धन और वंशका नाश करते हैं''. (पुराणसमुच्चय)

गोक्रीडामें अमावास्या वेधका निषेध :

''कार्तिक शुक्ल पक्षमें यदि तुलाका सूर्य हो तो गोक्रीडामें

अमावास्याका त्याग करना चाहिये. अमावास्यामें क्रीडा करनेवाली गायें नष्ट हो जाती हैं, यह निःसन्देह है. इसके सिवा प्रजानाश राजाका छत्रभ' और आयुःक्षय होता है. यदि प्रतिपदा द्वितीया सहित हो और इसमें गोपूजाकी जावें तो आयुर्वृद्धि प्रजावृद्धि और राज्यवृद्धि होती है. विश्वकी माता गायें अमावास्यामें क्रीडा करें तो घोडोंकी व्याधि होती है, और राजाओंको शस्त्रभय होता है''.(ब्रह्मपुराण)

''प्रतिपदाके दिन गोवर्धनपूजा करें. गोवर्धनपूजामें अमावास्यासे युक्त प्रतिपदा ग्रहण करना उचित नहीं, जो दिन प्रतिपद उदय होनेके समय रहती हो वह ग्राह्य है. दिनके प्रथम प्रहरमें नन्दा (प्रतिपदा) हो और भद्राका (द्वितीयाका) क्षय हो तो संपूर्ण वर्ष पवित्र, राज्य और सुख देनेवाला होता है''. (शिवरहस्य)

त्रिकामिका और सार्धत्रियामिक शास्त्रकी व्यवस्था :

''अमावास्या सूर्योदयव्यापिनी होकर तिन प्रहर रहे और प्रतिपदा सूर्योदयव्यापिनी होकर साढें तीन प्रहर रहे और वर्धमाना रहे तो दीपोत्सवमें ग्राह्य है, ऐसा मुनियोंने कहा है. इससे अल्प समय रहती हो या प्रतिपदा वर्धमाना न हो तो पहले दिन पूर्वविद्धा ग्राह्य है. विद्धाधिका प्रतिपदा सूर्योदयके बाद साढे तीन प्रहर रहे तो दूसरी (सूर्योदयव्यापिनी) कर्म योग्य कही जाती है''.(स्कान्द समुच्चय)

नारीनीराजन और मंगलमालिकाका विधान करनेके बाद ''यदि प्रतिपदा अल्प हो तो नारीनीराजन प्रातःकाल प्रतिपदामें और मंगलमालिका सायंकाल द्वितीयामें करें''. (ब्रह्मपुराण)

''यदि प्रातःकाल दो घडी कच्ची प्रतिपदा हो तो उसमें नारी नीराजनविधि कर सांयकाल द्वितीयामें मंगलमालिका करें''. (भविष्यपुराण)

''प्रातःकाल घटिका मात्र प्रतिपदा हो तो सांयकाल द्वितीयामें मंगलमालिका करें. अमान्त आश्विन कृष्ण अमावस्याके दिन नारीनीराजन हो तो नारियां विधवा होती है और देशमें दुर्भिक्ष होता है. कार्तिक शुक्लपक्षके प्रारम्भमें दो घडी अमावस्या हो तो उसमें

मंगलमालिका न करें देशके नष्ट होनेका भय है''.(देवीपुराण)

ऐसे और भी अनेक वचन निर्णयामृत, प्रतापमार्तण्ड, विश्वप्रकाश, चन्द्रप्रकाश आदि ग्रन्थोमें हैं.

तिथिके अनुसार कर्त्तव्य :

इन उपर्युक्त वचनोंमें बताये हुए धर्मकार्य इस प्रकार हैं : ''चतुर्दशीके दिन सूर्योदयके समय अथवा चन्द्रोदयके समय तैलमर्दनपूर्वक स्नान करें. इसके न करने पर वार्षिक धर्म नष्ट हो जाता है'' इत्यादि दोष बताये गये हैं, इसलिये यह नित्य है.

''तैले लक्ष्मीः'' वचनमें फल दिखाया गया है, इसलिये काम्य भी हैं. ''इस अभ्यंग स्नान करनेके बाद यमतर्पण, शिवभक्त ब्राह्मणोंको भोजन कराना, स्वयं उडदकी पत्तीके शाकके साथ भोजन करना, नक्तव्रत (रात्रिभोजनव्रत) अवसर मिले तब प्रदोषकालमें दीपदान, मशालकी रोशनीसे पितरोंको मार्ग दिखाना एवं रात्रिके पूर्वार्धमें नीराजन (आरती) करना'' –इतने धर्मकार्य चतुर्दशीमें बताये.

अमावस्याके दिन प्रातःकाल मंगलस्नान, देव, गुरु आदिकी पूजा एवं प्रणाम; अपराह्नके समय पार्वणश्राद्ध, प्रदोषकालमें नीराजन (आरती) लक्ष्मी पूजन और दीपदान करें. इनका क्रम भी यही है. पितरोंकेलिये दीपदान, मशाल वगैरासे पितरोंको मार्ग दिखाना, रात्रिमें जागरण अनेक उत्सव गान - वाद्य सुनना, स्त्रीसहवास, इच्छानुसार खेलकूद, अर्धरात्रिके समय लक्ष्मीका भ्रमण, लक्ष्मीकी पूजा, कुबेरकी पूजा और पिछली रातको अलक्ष्मी निस्सारण (कूडा करकट साफ कर सूपमें लेकर फेंकना, सूप बजाना) इतने कर्तव्य बताये हैं.

प्रतिपदाके दिन सूर्योदयके पास तैलादिमर्दन पूर्वक स्नान और स्नानके बाद नीराजन, दिनके पूर्वभागमें गोवर्धनपूजा जुआ खेलना, गायोंकी पूजा, दान–मानोंसे लोगोंका संतोष, गोक्रीडा बैल, हाथी वगैरा पशुओंका युद्ध नारीनीराजन (स्त्रीकतृक आरती), अपराह्नके समय मार्गपालीका समुल्लंघन (डाब और कासडेकी रस्सी बांधकर नीचेसे निकलना), नीराजन (पशुओंकी आरती) और सांयकालमें मङ्गलमालिका, रस्सी खींचनेका कोई समय निश्चित नहीं है. जब अवकाश मिले तभी खींचे. इसके बाद और बताकर रात्रिमें बलिराजाकी पूजा, शय्यास्थानको सजाना और स्त्रीसहवास आदिका विधान किया गया है. चतुर्दशीसे प्रतिपदा तक तीन दिन यहां पृथ्वी पर बलिका राज्य कहा जाता है. इन तीनोंके कर्तव्य बीचमें दिन खाली न रखते

हुए किये जावें, ऐसा विधान है.

यह तीनों दिनोंके कर्तव्योंका संग्रह पूर्ण हुआ.

मतान्तर :

इनके निर्णयमें प्रवृत्त हुए कुछ विद्वान्, पहले श्राद्ध और बादमें दीपदान होना चाहिये, यदि विपरीत किये जावें तो दर्शश्राद्ध बिना ''यस्मिन राष्ट्रे दीपोल्मुकं भवेत्'' यह शास्त्रदोष बताता हैं. अतः इस दोष बतानेवाले शास्त्रसे डरकर श्राद्ध और दीपदान का अंगाांगिभाव स्वीकार करते हैं. जब पहले दिन सांयकालमें अमावास्या प्रवृत्त हो तो श्राद्ध और दीपदानका उपर्युक्त क्रम निभानेकेलिये चतुर्दशीमें श्राद्ध करना बताते हैं और ''सायाह्ने च चतुर्दश्याममा यत्र प्रदृश्यते'' यह चतुर्दशीमें श्राद्ध करनेकी फलस्तुति भी करते हैं, और प्रतिपदामें उल्मुक (मशाल वगैरासे पितरोंको मार्ग दिखाना) नहीं हो सकता, इस प्रकार निषेधशास्त्र 'प्रतिपद्यग्निकरणम्' वचन दिखाते हैं, एवं आगे दिखाये जानेवाले सिद्धान्तको प्रमाण मानते हैं.

कुछ दूसरे विद्वान् आगे दिखाये जानेवाले दोषोंसे डरते हुए चतुर्दशीमें श्राद्ध करनेकी व्यवस्थाको स्वीकार न कर श्राद्ध और दीपदानके क्रमको विपरीत स्वीकार करते हैं. जहां ग्राह्य तिथियां दो दिन रहती हों वहां कार्योंका पूर्वापर क्रम निभानेकेलिये चतुर्दशी अमावास्या और प्रतिपदा तीनोंकी मध्याह्नकालमें व्याप्ति स्वीकार कर उसमें प्रमाण रूपसे ''आश्विने मासि भूतादितिथयः कीर्तितास्त्रयः'' इन ज्योतिर्निबन्धके दो वचनोंको उद्धृत करते हैं. यदि ये तिथियां संगवकालसे पूर्व ही समाप्त हो तो पूर्वविद्धा ली जावें, यदि संगवकालके बाद समाप्त हो तो परविद्धा ली जावें. यदि अमावास्या दूसरे दिन अपराह्ण समय तक रहे तो दूसरे दिन अपराह्णमें श्राद्ध कर सांयकाल प्रतिपदामें दीपदान और उल्मुक करें, ऐसा स्वीकार करते हैं. इस प्रकार प्रतिपदामें दीपदानका विधान एवं 'प्रतिपद्यग्निकारणम्' वचनसे पहले प्रतिपदामें उल्मुक करनेका निषेध हो चुका है. इसलिये ''रिक्तायुक्ते यदा दर्शे'' यह उसका पुनः प्रतिप्रसवशास्त्र दिखाते हैं.

कोई विद्वान् ''दीपदानादिकृत्येषु ग्राह्या मध्याह्नकालिका'' इस वचनके 'दीपदानादि' पदमें अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि समास मानते हैं. अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि जहां होता है वहां समास-घटक शब्दोंसे बोधित विशेषणांश केवल अन्य पदार्थका ज्ञान करानेमें उपयुक्त होता है, अन्य पदार्थके स्वरूपमें प्रविष्ट नहीं होता है. जिससे सार यह निकलता है कि दीपदान जिनके आदिमें है ऐसे दीपदान भिन्न कार्योमें

मध्याह्न कालकी व्याप्ति ग्राह्य है. परन्तु योग्य यह है कि 'दीपदानादिकृत्येषु' इस पदमें 'दीपदानात् आदिकृत्येषु' इस प्रकार पञ्चमी तत्पुरुष करना चाहिये, जिससे दीपदानसे पूर्व होनेवाले देवपूजा आदि कार्योमें ही मध्याह्नकालकी व्याप्ति ग्राह्य प्रमाणित हो. रात्रिमें होनेवाले दीपदान लक्ष्मीपूजन उल्मुक आदि कार्योमें मध्याह्नकालकी व्याप्ति ग्राह्य प्रमाणित न हो.

बहुत विद्वान् तो 'दर्शश्राद्धं विना' इत्यादि पूर्वोक्त शास्त्रको निर्मूल कहकर श्राद्ध उल्मुक दीपदान आदि विपरीत क्रमसे भी यदि किये जावें तो दोष नहीं मानते. दोनों प्रकारके अंगांगिभावका निरादर करते हैं. इतने पर भी कुछ तो न विपरीत क्रमका दूषक शास्त्र लिखते हैं, न अनुकूल क्रमका साधक शास्त्र लिखते हैं. प्रतिपदाके दिन उल्मुक करनेका जो निषेध शास्त्र है, उसको किसी एक विषयमें सावकाश बताते हैं. कोई इस उल्मुक निषेध शास्त्रको लिखते ही नहीं है. श्राद्ध उल्मुक, दीपदान आदि कार्योका पौर्वापर्यक्रम जब अमावस्या तिथि पूर्ण हो तब मानते हैं. एकदेशव्यापिनी अमावस्यामें इसे स्वीकार नहीं करते. बलिराजाकी पूजा पूर्वविद्धा प्रतिपदामें और नारीनीराजन मंगलमालिका परविद्धा प्रतिपदामें करना चाहिये. गोक्रीडामें चन्द्रदर्शन और द्वितीया वेधका निषेध है, इसलिये जब प्रतिपदा क्षीयमाणा हो या समा हो तो पूर्वविद्धा प्रतिपदा लेना, अन्यथा परविद्धा लेना ऐसा कई विद्वान कहते हैं.

कुछ ऐसा भी कहते हैं कि अमान्त आश्विन कृष्णमें तुला संक्रान्ति हो तो परविद्धा गोक्रीडामें लेनी चाहिये. चतुर्दशी अमावस्या और प्रतिपदा इन तीनोंमें तिथियोंके उत्सव एक साथ करें (संलग्नम् एमेतत् कर्तव्यम्) इस संलग्न शास्त्रका तात्पर्य कोई यह बताते हैं कि जब मलमास हो तब दीपोत्सव नहीं करना चाहिये, क्योंकि यहां एक साथ होना सम्भव नहीं है. दूसरे संलग्न शास्त्रका अर्थ यह बताते हैं कि चतुर्दशीसे प्रतिपदा तक तीनों दिन केवल दीपदान निरन्तर किया जावे.

सिद्धान्त निर्णय

इन उपर्युक्त मतोमेंसे क्या–क्या आदर करने योग्य है इसका उत्तर यह है कि जिससे दोष आदि उत्पन्न न हों, सब कर्तव्योंकी व्यवस्था अच्छी हो, शास्त्रीय वचनोंका स्वारस्य उपलब्ध हो ऐसे मतका आदर करना उचित है, जो आगे दिखाया जाता है.

श्राद्ध और दीपदान आदिके पूर्वापर भाव नष्ट होनेसे डर कर इनका परस्पर

अङ्गाङ्गीभाव स्वीकार किया जाता है तो यह भी मानना चाहिये कि दीपदानका अङ्गस्वरूप पार्वणश्राद्ध दर्शश्राद्धसे (प्रतिमास अमावस्याके दिन किये जानेवाले श्राद्धसे) भिन्न है. इसके विधानमें भी ''कृत्वा तु पार्वणं श्राद्धं दधिक्षीरधृतादिभिः'' इस अंशसे श्राद्धके प्रधान साधन द्रव्य दहीं, दूध आदि बताये हैं.

अब यहां व्यवस्था इस प्रकार है : जब प्रतिपदा वर्धमाना हो और सार्धत्रियामा (साढेतीन प्रहर) दूसरे दिन न हो तो पहले दिन अमावस्याविद्धा प्रतिपदा लेनी चाहिये, क्योंकि ऐसी परिस्थितिमें गोपूजा और गोक्रीडामें अमावस्या श्रेष्ठ है. चतुर्दशी और अमावस्या का दीपदान बलिपूजा और इनके अङ्गभूत कर्म अपने-अपने समयमें क्रमसे किये जाते हैं. अभ्यङ्गस्नानमें प्रातःकालव्यापिनी तिथि ''इषे भूते च दर्शे च कार्तिके प्रथमे दिने'' इस विशेष वचनके अनुसार ली जाती है. इसलिये प्रतिपदा निमित्तक अभ्यङ्गस्नान अमावस्याविद्धा प्रतिपदामें न कर दूसरे दिन प्रातःकाल करना उचित है, प्रतिपदा भले सार्धत्रियामेंसे कम हो. इस अवस्थामें अभङ्गस्नानका बलिपूजा आदिके बाद होना एवं दीपोत्सवके तीन दिनोंसे बाहर हो जाना दूषित नहीं है जैसे कि नारीनीराजनका. नारीनीराजन देवीपूराणके ''लभ्येत यदि वा प्रातः प्रतिपद्घटिकाद्वयम्'' इत्यादि वचनोंके अनुसार सूर्योदयव्यापिनी अत्यल्प प्रतिपदामें भी किया जाता है. अमावस्याका श्राद्ध कभी-कभी दूसरे दिन होता है, कभी-कभी दोनों दिन होता है, यह पहले कह चुके हैं. तिथिवृद्धि होने पर ''वृद्धौ ग्राह्या तथोत्तरा'' आदि वचन जो पूर्वविद्धाका निषेध करते हैं, इसका भी उत्तर हो चुका. क्योंकि ''त्रियामिका'' वचन तीन प्रहर साढेतीन प्रहरसे कम तिथिका मान होने पर पूर्व तिथि ही ग्रहण करनेकेलिये कहता है. यह खास अमावस्या और प्रतिपदा केलिये विशेष वचन है, इसलिये इससे पूर्व वचनका बाध हो जाता है. परन्तु कार्तिक शुक्लमें तुला संक्रान्तिका प्रवेश हो तो गोक्रीडामें, पूर्वाह्नमें वर्तमान अमावस्याके भागमें करना चाहिये. 'कार्तिके शुक्लपक्षे' इस ब्रह्मपुराणके वचनसे गोक्रीडामें अमावस्याका निषेध किया गया है. ऐसी परिस्थितिमें सायंकाल कर्णजागरण (कानके पास खटखट बजाकर गायोंको खेलाना) नहीं करना चाहिये. गोपूजाका तो ऐसी परिस्थितिमें भी निषेध नहीं है, इसलिये होती है. इसी प्रकार गोवर्धनपूजा अन्नकूट आदि भी होते हैं. इनका समय अमावस्या है यह आगे कहेंगे. जो वचन प्रतिपदामें गोवर्धनपूजा करनेकेलिये कहते हैं, उनका तात्पर्य केवल गोवर्धनपूजा है, गोवर्धन, गायें और ब्राह्मण इन तीनके उद्‌देश्यसे अन्नकूट किया जाता है. गायें इसके उद्‌देश्यके अन्तर्गत है. इसलिये गोपूजा भी इसके साथ होती है.

जब अमावस्या प्रतिपदा पूरी रहे तब अन्नकूटमें प्रतिपदा ग्रहण करनेका तो कारण यह हैं कि ''कृत्वैतत्सर्वमेवाहन् रात्रौ दैत्यपतेर्बलेः'' इस भविष्योत्तरके वचनमें गोपूजा गोक्रीडा आदि सब कार्य दिनमें पूरे कर फिर रातको बलिकी पूजा करनी चाहिये इस प्रकार बलिपूजासे पहले समीपसमयमें गोपूजा, गोक्रीडा आदि सब कार्य दिनमें पूरे कर फिर रातको बलिकी पूजा करनी चाहिये इस प्रकार बलिपूजासे पहले समीप समयमें गोपूजा करनेकेलिये कहा है और दीपोत्सवके बाद अन्नकूट करनेका शिष्टाचार है.

जब कि तिथिसाम्य हो और प्रतिपदा दूसरे दिन साढेतीन प्रहर रहती हो. तब अन्नकूटमें प्रतिपदा ग्रहण करने योग्य है. इसमें भी सब कार्य पहलेके अनुसार होते हैं. जब कि रहते हुए भी प्रतिपदा क्षीयमाणा हो तब अमावस्या विद्धा ही प्रतिपदा लेनी चाहिये. ऐसी स्थितिमें चतुर्दशी-अमावस्या दोनों, दोनों दिन प्रदोष समयमें न रहें तो दोनोंकी गौणकालमें व्याप्ति स्वीकार कर (पूर्वविद्धामें) कर्म करना चाहिये. इस पक्षमें भी सभी कार्य पूर्ववत् होते हैं. जब कि चतुर्दशी दोनों दिन प्रदोष समयमें न रहती हो और अमावस्यासे ही तिथियोंकी घटिकाओंकी कमी हो जाय, अमावस्या उसके उत्तर दिनमें तीन प्रहरसे पूर्व ही समाप्त हो जाती हो, प्रतिपदा साढेतीन प्रहरोंसे पूर्व समाप्त होती हों तब त्रयोदशीकी रात्रिमें चतुर्दशीका दीपदान करना चाहिये. क्योंकि प्रदोषोत्तर काल गौण प्रदोषमें चतुर्दशीकी सत्ता वहां है. इसके बाद प्रातःकाल चन्द्रोदय या सूर्योदयके समय चतुर्दशीमें अभ्यङ्ग करना चाहिये, फिर चतुर्दशीमें प्रदोषमें अमावस्याका दीपदान करना चाहिये. बादमें दूसरे दिन सूर्योदय व्यापिनी अमावस्यामें अन्नकूट आदि करना उचित है, इसी दिनकी रात्रिको प्रतिपदामें बलिपूजा आदि कार्य करने चाहिये. (इस पक्षमें प्रतिपदा निमित्तिक अभ्यङ्ग और नारीनीराजन दूसरे दिन प्रातःकाल) जब कि अमावस्या दो दिन प्रदोषकालव्यापिनी हो परन्तु दूसरे दिन रात्रिमें एक घडी भर न रहती हो एवं आगे प्रतिपदा भी साढेतीन प्रहरसे कम हो तो पहली अमावस्यामें अमावस्याका दीपदान और दूसरी अमावस्यामें बलिपूजा अन्नकूट आदि करना चाहिये. यदि ऐसी प्रदोषद्वयव्यापिनी अमावस्या दूसरे दिनकी रात्रिमें भी घडीभर रहे तो अमावस्याका दीपदान दूसरी अमावस्यामें किया जावे, आगे प्रतिपदा क्षीयमाणा हो तथापि आपत्ति नहीं ''दण्डैकरजनीयोगे'' वचन यही कहता है. ऐसा न मानने पर ''दण्डैकरजनीयोगे'' वचनका बाध हो जाएगा. ''इतोऽन्यथा'' यह अमावस्या प्रदोषद्वयव्यापिनी न हो या दूसरे दिन रात्रिमें एक घडीसे कम रहती हो तब सावकाश है. यहां यह भी नहीं कह सकते कि रात्रिपूर्वभागमें केवल घडीभर रहनेवाली अमावस्याके

दूसरे दिन रातको द्वितीया आ जायगी, इसलिये बलिपूजा न हो सकेगी. क्योंकि बलिपूजामें केवल चन्द्रदर्शनका निषेध है, द्वितीयाका निषेध नहीं है. ‘‘नन्दा किंचिंद्युता’’ वचनमें चन्द्रदर्शनको ही दोषका कारण कहा है.

> ‘‘प्रतिपदा जहां कुछ द्वितीया युक्त हो जावे तो बलिपूजा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि वहां चन्द्रदर्शन होना सम्भव है’’.

इस ‘दण्डैकरजनीयोगे’ पक्षमें चतुर्दशीका दीपदान चतुर्दशीके प्रदोषमें रहनेवाली पहली अमावस्यामें होता है. ज्योतिर्निबन्धके ‘‘दीपदानादि कृत्येषु ग्राह्या मध्याह्नकालिका’’ इस वचनके अनुसार यहां मध्याह्न समयमें चतुर्दशीकी व्याप्ति ग्राह्य की जाती है. शेष सब यथास्थान होते हैं.

यदि अमावस्या पहले दिन प्रदोषकालव्यापिनी हो, दूसरे दिन रात्रिमें भी घडी भर रहती हो, उसके दूसरे दिन प्रतिपदा साढे तीन प्रहरसे कम हो या चन्द्रदर्शनकी पूरी सम्भावना हो या तुला संक्रान्तिका प्रवेश कार्तिक कृष्णमें हो तो, बलिपूजा भी पहले दिन दूसरी अमावस्याकी रात्रिमें की जाती है और गोक्रीडा भी इसी रात्रिको प्रतिपदामें होती है. अर्थात् केवल कर्णजागरण होता है. अन्नकूट, गोवर्धन पूजा, गोपूजा आदि दूसरे दिन प्रतिपदा पूर्वाह्नमें होते हैं. श्रीमद्भागवतके ‘‘वयं गोवृत्तयो अनिशम् तस्मात् गगवां ब्राह्मणानाम् अद्रेश्चारभ्यतां मखः’’ इत्यादि वचनोंमें गोवर्धनका वर्णन करते हुए गायोंका उल्लेख सबसे प्रथम किया है, जिससे गोपूजाकी प्रधानता मालूम होती है. अतएव यह बलिपूजाकी अङ्गभूत नहीं है. जब कि स्कन्दसमुच्चयके ‘‘वर्धमान तिथौ नन्दा यदि सार्धत्रियामिका’’ इस वचनके अनुसार प्रतिपदा दूसरे दिन सार्धत्रियामा हो तब भी बलिपूजा पहले दिन अमावस्या विद्धा प्रतिपदामें होती है, और गोवर्धन अन्नकूट गोपूजा दूसरे दिन शुद्ध प्रतिपदामें होते हैं.

अन्नकूटोत्सवका विधान कहां है ?

पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें अन्नकूटोत्सवका विधान इस प्रकार है :

> ‘‘बलि राजाके घरके द्वार पर गोमयका बडा गोवर्धन स्थापित किया जावे. भगवान् गोपालकी स्थापना करे और प्रार्थना करे कि ‘हे गोवर्धन सहित भगवन् गोपाल! अपनी वाणीका पालन करनेकेलिये आप बलि राजाके द्वारपाल बने हैं’. फिर भक्ति पूर्वक भगवानकी प्रतिष्ठा कर पूजन करें. अन्तमें इस प्रकार प्रार्थना करें ‘हे विश्वके स्वामी, गोवर्धनको छत्र बनानेवाले, इन्द्रोत्सवके नाशक, गायोंके रक्षक गोपालजी ! मेरी पूजा ग्रहण

कीजिये. हे पृथ्वीके धारण करनेवाले, गायोंके रक्षक, भगवानकी भुजाओके सहारे छाया करनेवाले गोवर्धन! तुमने करोडो गायें हमें दी’. इस प्रकार यथाविधि पूजन कर सुन्दर भक्ष्य भोज्य पदार्थोंसे भाई बन्धु सम्बन्धी एवं अन्य मनुष्योंको क्रमशः भोजन करावें. अन्तःपुरमें (जनानखानेमें) रहनेवाला स्त्रीवर्ग, सेवकवर्ग अपने लिये हितकारक हो वैसा भोजन करे. वस्त्र, केशर, चन्दन, पुष्प, पान, इलायची, लवंग, कपूर, कस्तूरी इन वस्तुओंसे सबका सन्मान करे. यह सब कार्य कर भगवानकी भक्तिके साथ सुन्दर अन्नकूट महोत्सव करे’’.

वराहपुराण और मथुरा माहात्म्यमें अन्नकूटका निर्वचन इस प्रकार है :

‘‘अन्नकूट नामक पर्वतके पास भगवान् श्रीकृष्णका बनाया हुआ एक तीर्थ है. वहां भगवान् श्रीकृष्णने अपने माहात्म्यके प्रचारार्थ इन्द्रकी प्रीतिकेलिये करनेवाला बडा यज्ञ रोक दिया. इन्द्रने आक्रमण किया. भगवानने मदभङ्गके बाद भक्ष्य भोज्योंसे इन्द्रका संतोष किया और इन्द्रके साथ बात की. इन्द्रके द्वारा की गई जलवृष्टिसे पीडित गायोंकी रक्षाकेलिये भगवानने हाथमें उठाकर गिरिवर धारन किया. इन्द्रके द्वारा पूजित वह पर्वत अन्नकूट कहा गया’’.

यद्यपि गोवर्धनोत्सव अन्नकूटोत्सवके अङ्गरूपसे किया जाता है, परन्तु व्रतदिनकर ग्रन्थमें अन्य मासमें भी गोवर्धनोत्सव करनेका विधान है, जो इस प्रकार है :

‘‘गोवर्धनमें नन्दरायजीने श्रावणकी अमावास्याके दिन यह उत्सव किया था. गोपोंने इसे बहुत बढाया. इसके आगे भगवान् नन्दरायजीसे कहते हैं कि दर्शेष्टिको देवताओंमें इन्द्र, महेन्द्र, विमृध ये नाम वेदने बताये हैं, इनमें हम शक्र (नामप्रयोजक)को कैसे समझें. वेदोमें गुणविभागसे देवताभेद माना जाता है. (तात्पर्य यह कि दर्शेष्टिका देव शक्र नहीं, इसके नामसे यह दर्शेष्टियाग कैसे किया जाता है). अतएव यहां गोवर्धनोत्सव करना चाहिये’’.

इन वचनोंसे मालूम होता है कि गोर्धनोत्सव दर्शेष्टिकालमें अमावस्या प्रतिपदाकी सन्धिमें ‘अपर्तावुल्बणं वर्षम्’ इत्यादि वचनविरुद्ध ऋतुमें इन्द्रको पर्जन्य वृष्टि होनेका उल्लेख करते हैं. हरिवंशमें इस घटनाका समय कण्ठत: शरद्‌ऋतु बताया है. शिष्टाचारसे भी इस समय शरद्‌ऋतु ही गोवर्धनोत्सवकेलिये मुख्य मालूम होती है. भगवद्भक्त भगवानके वचनोंके अनुसार ही कार्य करते हैं, न कि बलिपूजाके

अङ्गरूपसे, इसलिये बलिपूजाके बिना भी गोर्धनोत्सव करना योग्य है.

अमावस्याके दिन इस उत्सवके करने की सुविधा न हो तो द्वादशीपर्यन्त शिष्ट लोग करते हैं, यह भी योग्य ही है. क्योंकि इन्द्रयागकी सामग्रीका गोवर्धनोत्सवमें उपयोग किया था. जो इन्द्रयाग अमावस्यामें होता था, इस संगतिको दिखानेके लिये उपर्युक्त वचनोंमें अमावास्याका उल्लेख किया गया है. यदि अमावस्याका उल्लेख न होता तो इन्द्रयागकी संगति नहीं मिलती. अमावास्याका उल्लेख अमावस्यामें ही गोर्धनोत्सव करना चाहिये इस आशयसे नहीं है. विशिष्ट तिथिका आग्रह न होने से प्रतिपदा भी कहदी है. इस प्रकार पूर्वोक्त सभी निर्दोष है.

चतुर्दशी निर्णय :

पूर्वोक्त ग्रन्थका संक्षिप्त सार यह है : नरक चतुर्दशी अभ्यङ्ग स्नानमें पिछली रातको चन्द्रोदयके समय रहनेवाली और शेष दीपदान आदि कार्योमें प्रदोषव्यापिनी ली जाती है. दोनों दिन प्रदोषव्यापिनी हो तो अभ्यङ्गस्नान पहले दिनकी पिछली रातको और दीपदान आदि दूसरे दिन प्रदोषमें, यदि दोनों दिन प्रदोषव्यापिनी न हो तो पहले दिन सायंकाल दीपदान और पिछली रातको चन्द्रोदयके समय अभ्यङ्ग होगा. चतुर्दशी पहले दिन चन्द्रोदयसे प्रवृत्त हुई हो तो सब कार्य पहले दिन और दूसरे दिन हुई हो तो दूसरे दिन. चतुर्दशी किसी भी दिन चन्द्रोदयव्यपिनी न हो तो चन्द्रोदयव्यापिनी त्रयोदशीमें अभ्यङ्गस्नान और प्रदोषव्यापिनी चतुर्दशीमें दीपदान हो.

दीपावलि :

जिस दिन अमावस्या प्रदोषव्यापिनी हो उस दिन दीपावली की जाती है. यदि दो दिन प्रदोषव्यापिनी हो तो दूसरे दिन. पूर्ण प्रदोषव्यापिनी न होकर प्रदोषमें एक घडी भी दूसरे दिन रहती हो तो दूसरे दिन. किसी भी दिन प्रदोषव्यापिनी न हो परन्तु दूसरे दिन त्रियामा और वर्धमाना हो तो दूसरे दिन, अन्यथा पूर्वदिन. सूर्यास्तसे छः घडी तक प्रदोष है.

अन्नकूटोत्सव :

यह दीपावलिके दूसरे दिन किया जाता है. उस दिन अमावस्या हो चाहे प्रतिपदा. यदि अमावास्या हो और तुला संक्रान्ति कार्तिक शुक्लमें प्रारम्भ होती हो.

इसके साथ केवल गोपूजाकी जावें, गोक्रीडा करना उचित नहीं. प्रतिपदाके दिन चन्द्रदर्शन होना सम्भव हो या तुला संक्रान्तिका प्रवेश कार्तिक कृष्णमें हो तो गोक्रीडा दीपावलिकी रात्रिमें और गोपूजन अन्नकूट आदि शेष कार्यप्रतिपदाके दिन. यदि किसी कारणवश दीपावलीके दूसरे दिन अन्नकूटोत्सव न हो सके कार्तिक शुक्ल द्वादशी पर्यन्त किसी भी तिथिमें हो सकता है. दीपोत्सवका निर्णय पूर्ण हुआ.

भ्रातृद्वितीया :

कार्तिक शुक्ल द्वितीया भ्रातृद्वितीया (भाईदूज) है. यह भोजन कालव्यापिनी लेनी चाहिये. यद्यपि यह भोजन यमराजकी प्रीति सम्पादन करनेकेलिये है. यमकी पितरोंमें गणना होनेसे यमकी अपराह्णमें पूजाकी जाती है, इसलिये अपराह्ण व्यापिनी द्वितीया ग्रहण करना योग्य है. सब विद्वानोंकी भी इसमें सम्मति है. परन्तु ''देवत्वं च पितृत्वं च यमस्यास्ति द्विरूपता'' यह वचन यमको देवरूप और पितृरूप दोनों प्रकारका बताता है, केवल पितृरूप नहीं कहता. और ''आवर्तनात्तु पूर्वाह्णः'' इस वचनके अनुसार जब दिनके पूर्वाह्न अपराह्ण दो भाग माने जाते हैं तो भोजनके समय अपराह्णका रहना सम्भव भी है. अथवा यों भी कह सकते हैं कि यमपूजा नहीं की जाती है, इसलिये अपराह्ण आवश्यक नहीं है. पूर्वाह्ण व्यापिनी द्वितीया लें.

गोपाष्टमी :

कार्तिक शुक्ल अष्टमी गोपाष्टमी है. इसके विषयमें पद्मपुराणका वचन व्रतदिनकरमें इस प्रकार है :

> ''कार्तिक शुक्ल अष्टमीको विद्वानोंने गोपाष्टमी कहा है. इस दिन भगवान् श्रीकृष्ण गायोंके ग्वाल बने थे. इससे पहले बछडे चराया करते थे. अतएव इस दिन गायोंकी पूजा करनी चाहिये, गायोंको भोजन देना चाहिये, गायोंकी प्रदक्षिणा और अनुगमन (पीछे चलना) करना चाहिये, जिससे कि सब कामनाओं की सिद्धि हो. यह गोपाष्टमी सूर्योदय व्यापिनी ली जाती है. जब सप्तमीविद्धा होकर क्षय हो जाय तो विद्धा ही ली जाती है, क्योंकि और कोई गति नहीं''.

प्रबोधोत्सव :

कार्तिक शुक्ल एकादशीके दिन प्रबोधोत्सव होता है. भगवानके उत्थापनकी

विधि हेमाद्रिमें उद्धृत ब्रह्मपुराणके ''एकादश्यां तु शुक्लायां'' इत्यादि वचनोंमें इस प्रकार है :

''कार्तिक शुक्ल एकादशीकी रात्रिमें सोते हुए भगवानको भक्त श्रद्धा-भक्तिसे युक्त होकर नृत्य-गीत-वाद्य, ऋग्-यजुस्सासाम वेदके माङ्गलिक मन्त्रोंसे, वीणा-नगारोंके शब्द और पुराणोंके पाठसे जागृत करें''.

''हे युधिष्ठिर ! कार्तिक शुक्ल एकादशीको रात्रिमें द्विज इस मन्त्रसे भगवानका उत्थापन करें : ''ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अग्नि, कुबेर, सूर्य, सोम आदि देवोंसे वन्दित, सबके वन्दना करने योग्य, जगतके आधार हे देवाधिदेव ! आप मन्त्रके प्रभावसे सुखपूर्वक जागृत हो जाईए. आप शेषशायीने सब प्राणियोंके हितकेलिये यह द्वादशी अपने जागरणके निमित्त नियत की है. आपके सोने पर यह सब जगत् सो जाता है और आपके जागने पर यह सब जगत् चेष्टा करने लगता है. हे लक्ष्मीपते ! आप उठिये - उठिये''.(भविष्योत्तर पुराण)

''आषाढ, भाद्रपद और कार्तिक मासोंमें क्रमश: अनुराधा श्रवण रेवती नक्षत्रोंके आदि मध्य और अक्त्य भागोंमें भगवानके शयन पार्श्वपरिवर्तन और जागरण के उत्सव करें''. (भविष्योत्तरपुराण)

शयन रात्रिमें, पार्श्वपरिवर्तन सायंकालमें और जागरण दिनमें करना उचित है. नक्षत्रोंके आदि मध्य, अक्त्य भाग उक्त समयमें न मिलें तो ये कार्य केवल द्वादशीमें ही किये जावें.

''इन्द्रियोंका संयम रखता हुआ प्रबोधिनी एकादशीमें जागरण करें. गुरुकेलिये एक गोमिथुन भेट कर द्वादशीके दिन ब्राह्मणोंको भोजन करावें, सायंकाल पर्यन्त सारा दिन पुराण आदि पवित्र ग्रन्थोंके पाठसे व्यतीत करें. फिर सूर्यास्त होने पर स्नान कर यथाशास्त्र वृन्दावनमें भावनासे चोकोर मण्डप बनावें. उस मण्डपको पुष्प, मालाएं, नारियल, सुपारियां आदि सुन्दर - सुन्दर फल, पौंडे और केलके स्तम्भोंसे सुशोभित करें. वहां भगवानकी सुन्दर मन्त्रघोषके साथ प्रतिष्ठा करें. बादमें ''इदं विष्णु'' और वराहपुराणोक्त मन्त्रोंसे भगवानका जागरण करें''. (स्कन्दपुराण चातुर्मास्यव्रतकल्प)

स्कन्दपुराण पुरुषोत्तम माहात्म्यमें भगवानके जागरणके बाद पञ्चामृत स्नान

करानेका विधान है.

> ‘‘सुन्दर गन्धवाले तैलसे अभ्यङ्गकर पञ्चामृत नारियलोंका जल एवं अन्य फलोंके रससे भगवानको स्नान करावे’’.

उपर्युक्त द्विविध वाक्योंके अनुसार प्रबोधोत्सवकेलिये एकादशी और द्वादशी दोनों तिथियां है. शयन, जागरण और पार्श्वपरिवर्तन केलिये क्रमशः रात्रि दिन और सायंकाल समय है ऐसा अनेक विद्वानोंका मत है.

परन्तु मुझे ऐसा मालूम होता है कि उपर्युक्त वचानोमें ‘द्वादशी’ शब्दका अर्थ एकादशी है, क्योंकि भविष्योत्तरपुराणमें ‘‘कार्तिक शुक्ल पक्षे तु एकादश्यां पृथासुत’’ यह वचन पहेले तो एकादशीमें भगवानके जागरणका उल्लेख करता है, इसलिये इसके बाद ‘‘इयं च द्वादशी देव प्रबोधार्थं विनिर्मिता’’ यह द्वादशीका उल्लेख पूर्वविरुद्ध नहीं हो सकता. (प्रथमोपजातबुद्धिर्बलीयसी) यहां ‘द्वादशी’ शब्दका अर्थ एकादशी है. ‘द्वादशी’ शब्द एकादशीका बोध करता है, यह हमें पवित्रोत्सवके प्रसङ्गमें स्पष्ट करना है. ‘ब्रह्मेन्द्ररुद्राग्नि’ इत्यादि दो मन्त्र यदि वराहपुराणके हों और द्वादशीके प्रकरणमें पठित हों तो एकादशी द्वादशी दोनों तिथियां प्रबोधोत्सवका काल रहे, कोई हानि नहीं है. भविष्योत्तरके वचनके अनुसार रात्रि और स्कन्दवचनोंके अनुसार दोनों दिन भी प्रबोधकाल है. इसमें विशेषता यह है कि एकादशीमें उत्थापन किया जावे तो दशमी विद्धा एकादशीका त्याग करना चाहिये. क्योंकि दशमीसे विद्धा आसुरी है ‘युग्माग्नियुगभूतानि’ इस युग्म वचनके अनुसार भी द्वादशीविद्धा एकादशी ग्राह्य है, दशमीविद्धा ग्राह्य नहीं है. एकादशीके उत्तरार्थमें रहनेवाली भद्राका (भद्रा नामक करणका) भी त्याग करना आवश्यक है, क्योंकी दूसरा शुद्ध समय उपलब्ध होता है. द्वादशीमें प्रबोधोत्सव किया जाय तो रेवतीके अन्तिम चरणका सम्बन्ध कर्मकालमें विशेष आवश्यक नहीं. नक्षत्र न रहने पर केवल द्वादशीमें उत्सव करें. ऐसा ‘‘द्वादृश्यां संधिसमये’’ यह वराहवचन कहता है.

अब वहां प्रसङ्गवश वेधका विचार किया जाता है : ‘‘हरिवल्लभसुधोदय’’ आदि ग्रन्थोंमे स्थूल रूपसे वेध चार प्रकारका कहा है, जिसका निरूपण विष्णुधर्मोत्तरमें इस प्रकार है :

> ‘‘पेंतालीस घटिकाओंसे (पेंतालीस पूर्ण होने पर) स्पर्श, पचाससे सङ्ग, पचपनसे शल्य और छप्पनसे वेध प्रारम्भ होता है. ‘स्पर्शे तु’ वचन : ‘‘४६से ५० तक पांच घडियोंका स्पर्श है. ५१ से ५५ तक पांच घडियोंका

संग है. ५६ से ६० तक पांच घडियो शल्य और वेध है''. (प्रारम्भमें एक घडी शल्य और बादमें चार घडी वेध है). यह वेध स्पर्श आदि भेदोंसे चार प्रकारका है. वैष्णव स्पर्श आदि चारों भेदोंका त्याग करें''.

विष्णुधर्मोत्तरमें इन चारोंकी व्यवस्था इस प्रकार बताई है :

''स्पर्श आदि चार वेध सत्ययुगमें प्रचलित थे, सङ्ग आदि तीन वेध त्रेतामें प्रचलित थे, शल्य और वेध ये दो वेध द्वापरमें प्रचलित थे और कलियुगमें एक वेध ही प्रचलित है. अतएव इस समय वैष्णवोंको वेदका ही त्याग करना चाहिये''.

वेधका स्वरूप श्रीमदाचार्यचरणोंने तत्त्वदीपनिबन्धमें बताया है

''एकादशीका व्रत ५६ घडियोंके वेधसे रहित करना चाहिये. पहले और प्रकारसे करने पर भी भगवन्मार्गमें प्रवेश करनेके अनन्तर ५५ घडी दशमी हो तब एकादशीका व्रत त्याग करना चाहिये''.

यहां आशय है

''५६ घटिकाएं व्यतीत होने पर प्रात:काल प्रारम्भ होता है. एक घडी और अधिक व्यतीत हो तो अरुणोदय प्रारम्भ होता है. ५८ घडियां व्यतीत होने
अधिक व्यतीत हो तो अरुणोदय प्रारम्भ होता है. ५८ घडियां व्यतीत होने
उष:काल प्रारम्भ और ५९ घडियां व्यतीत होने पर सूर्योदय प्रारम्भ होता है''.

इस वचनमें उनसठ घडियोंके बाद पारिभाषिक सूर्योदय कहा है. 'उदयात्प्राक्' यह वचन उदयसे पहले चार घडी इतने समयको अरुणोदय बताता है. यह यदि इस पक्षमें ५५ घडी दशमीसे अरुणोदय वेध बनता है. इस पाक्षिक दोषका भी परिहार होना चाहिये. इस आशयसे ५५ वेध कहा है. किसीने जो यह कहा कि ''उष:कालोऽष्टपञ्चाशत्'' इस वचनमें ५८ वी घडी उष:काल कहा है, इसलिये शेष रही दो घडियां पारिभाषिक सूर्योदय काल साबित होता है, परन्तु यह कथन अज्ञानमूलक है, क्योंकि 'अष्टपञ्चाशत्' शब्द पूरण प्रत्ययान्त नहीं है, इसलिये ५८ वीं घडीका उष:काल होना प्रमाणित नहीं होता. इसका आशय तो यह है कि जब ५८ घडियां व्यतीत होती हैं तब उष:काल प्रारम्भ होता है. इसी प्रकार आगे समझना. और यही योग्य भी है. ५६ घडीयोंके बाद ४ घडियां शेष रहती है और प्रात:, अरुण, उषा और सूर्योदय ये काल भी चार हैं. यह भी नहीं कह सकतें कि 'उदयात् प्राक्' इस वचनमें परिभाषिक सूर्योदयसे अरुणोदय माननेमें कोई प्रमाण नहीं है, क्योंकि ढाई या

तीन घडी रात शेष रहते प्रत्यक्ष अरुणोदय उपलब्ध होता है, इसलिये चार घडी रात रहते जो अरुणोदय कहा है यह पारिभाषिक ही है, इसलिये चार घडी रात रहते जो अरुणोदय कहा है यह पारिभाषिक ही हो सकता है और पारिभाषिक अरुणोदयमें सूर्योदय भी पारिभाषिक ही लेना उचित है. सर्वत्र मुख्य अरुणोदय सूर्योदयसे निर्वाह होता हो तब तो परिभाषाकी (कल्पना) उल्लेख ही व्यर्थ हो जाती है.

किसीने कहा कि प्रहर या अर्ध प्रहर की गणना सर्वत्र प्रत्यक्ष सूर्योदयसे की जाती है ऐसा देखा गया है और हेमाद्रि स्थित ''निशि प्रान्ते'' इस स्मृतिवचनमें रात्रिके अन्तिम अर्धप्रहरको अरुणोदय कहा है, यह अर्धप्रहर पारिभाषिक सूर्योदय तक है, ऐसी प्रतीति होती नहीं है. अतएव अरुणोदय पारिभाषिक सूर्योदयके प्रारम्भ तक मानना अयोग्य है. यह कथन हमें तो अनुचित मालूम होता है, क्योंकि प्रहर अर्धप्रहर आदिकी गणना सर्वत्र सूर्योदयसे है यह नियम नहीं है. ''सूर्यग्रहे तु नाश्नीयात् पूर्वयामचतुष्टयम्'' इस वचनमें सूर्यग्रहण जिस प्रहरमें हो उससे पूर्व चार प्रहरोंमें भोजन करनेका निषेध है. ऐसे स्थलोमें सूर्योदयसे प्रहरकी गणना नहीं की गई. इससे मालूम होता है कि प्रहर वगैरहकी गणनामें किसी भी अवधिकी अपेक्षा है, सूर्योदयका नियम नहीं है. अतएव ''निशि प्रान्ते'' इस स्मृतिवचनमें भी पारिभाषिक सूर्योदयसे यामार्ध गिना जा सकता है इसका वारण नहीं हो सकता.

''चतस्रो घटिका: प्रातररुणोदयनिश्चय:'' इस ब्रह्मवैवर्तपुराणके वचनमें प्रात:कालके चार घडी समयको अरुणोदय कहा है, जिसका कि ''नाडिका: षट्पञ्चाशत्'' इस वचनमें प्रात:कालके रूपमें उल्लेख है. अतएव पारिभाषिक सूर्योदयसे अरुणोदयका मान लेना योग्य नहीं, क्योंकि प्रात:कालसे अभिन्न प्रमाणित हुआ अरुणोदय साक्षात् सूर्योदयसे और ''उदयात्प्राक्'' इस वचनका कहा अरुणोदय पारिभाषिक सूर्योदयसे इस प्रकार अरुणोदयकी दो अवधियां कल्पना करनेमें गौरव है. जहां तक एक मूलकी कल्पना सम्भव हो, दोकी कल्पना न्यायोचित नहीं है. इसी न्यायको लक्ष्यमें रखकर अन्य ग्रन्थकारोंने प्रात:कालका मान चार दण्ड या दो मुहूर्त बतानेवाले वचनोंको अर्धप्रहर उपलक्षक माना है.

इसका निराकरण यह है कि ''नाडिका षट् च पञ्चाशत् प्रातस्त्वेकोऽधिकोरुण:'' इस वचनमें ही 'एकोऽधिकोरुण:' इस अंशसे अरुणोदयका

मान तीन घडी बताया है. इस प्रकार अरुणोदयके भिन्न-भिन्न मानोंका उल्लेख है. यहां एक मूल की कल्पना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है. प्रात:कालिक मान बतानेवाले 'चतुर्दण्ड' और 'द्विमुहूर्त' शब्दोंको उपलक्षक मानना भी ठीक नहीं है. एक ओर 'द्विमुहूर्त' 'चतुर्दण्ड' आदि शब्द हैं, दूसरी ओर 'यामार्ध' शब्द है. इन दोनोंमेंसे एक मुख्यार्थक सिद्ध हो तब उसके अनुरोधसे दूसरेको उपलक्षक मान सकते हैं. इनमें परस्पर साध्यसाधकभाव मान लेने पर तो चक्रकदोष आ जाता है. अतएव दो मूलोंकी कल्पना यदि प्रमाणसिद्ध हो तो ऐसा गौरव दूषित नहीं है. ''स्पर्शे तु घटिका: पञ्च'' इस वचनमें जो स्पर्शादि वेधोंका उल्लेख किया है. इसका तात्पर्य अरुणोदय वेधकी निन्दा करना है यह कथन भी निराधार ही है.

माधवाचार्यने 'अर्धरात्रेऽपि' वचनका उपन्यास कर यह कहा कि ''अर्धरात्रि व्यतीत होने पर यदि दशमीका वेध हो तो वह त्याज्य है ऐसा कुछ आचार्य चाहतें हैं''. अरुणोदयके समय वेध माननेमें तो शमाको अवकाश नहीं है. हरिप्रिय आचार्योने जो कपाल वेध (अर्धरात्रिका वेध) कहा है वह मुझे अभीष्ट नहीं है. क्योंकि रात्रि तीन प्रहरोंकी मानी जाती है. तात्पर्य यह कि रात्रिके चौथे प्रहरका उत्तरार्ध दिनका अंश है. इसमें ही वर्तमान दशमी दिनको विद्ध कर सकती है. इस कपाल वेधका तात्पर्य, जब कि अर्धरात्रिके समीपका वेध ही निन्दित है तो अरुणोदय समयके वेधका क्या कहना ? इस प्रकार कैमुतिक न्यायसे अरुणोदय वेधकी निन्दा बतानेमें है. इस माधवोक्त रीतिके अनुसार विचार करने पर भी अरुणोदय वेध सर्वथा त्याग करने योग्य साबित होता है. अतएव इसका समय निश्चित करना आवश्यक है. इसके लिये सूक्ष्मदृष्टिपण्डितोंको हमारे बताये हुए मार्गका आदर करना ही चाहिये. उपर्युक्त शौनकवाक्यमें त्रिप्रहरात्मक रात्रिस्वरूपका कारणरूपसे उल्लेख कर सूक्ष्मदृष्टिसे यह सूचित किया है कि रात्रिके पूर्वभागका प्रारम्भिक अर्धप्रहर पूर्व दिनकी पश्चिम सक्ध्याके अन्तर्गत है और रात्रिके उत्तर भागका अन्तिम अर्धप्रहर दूसरे दिनकी पूर्व सक्ध्याके अन्तर्गत है.

इससे कोई यह शंका न करे कि हरिप्रिय आचार्य स्थूलदृष्टि थे. क्योंकि जब उत्तरायण होता है तब देवोंकी रात्रिका उत्तरार्ध प्रारम्भ होता है. इसमें सूर्यके आने पर (मकर संक्रान्ति लगने पर) सभी देवसम्बन्धी शुभकार्य होते देखे गये हैं. अतएव प्रतिदिन रात्रिके उत्तरार्धमें सूर्यके उदय कपालमें आने पर सभी देव सम्बन्धी शुभ कार्य करना उचित है. इस उत्तरार्धमें वेध होने पर दैत्योंका बल बढ जाना सम्भव है. इसलिये

हरिप्रिय आचार्योनें सूक्ष्म दृष्टिसे इसका विचार कर त्याग स्वीकार किया है. परन्तु इस समय युग असुरोंका है और विष्णुधर्मोत्तर ग्रन्थका ''स्पर्शादिचतुरो वेधा:'' यह वचन कलियुगमें केवल पारिभाषिक अरुणोदय वेधको ही त्याज्य कहता है, इस आशयसे कपाल वेधमें अपनी असम्मति प्रदर्शित की है. इसलिये युगभेदसे दोनोंका स्वीकार करना निर्दोष है.

कुछ विद्वानोंने ''अर्धरात्रे तु केषांचित् दशम्या वेध इष्यते'' इस वचनके द्वारा बोधित कपाल वेधका तात्पर्य यह दिखाया कि 'दशम्या: सङ्गदोषेण' इस नारदीय वचनमें अर्धरात्रिके बाद दशमीका वेध रहने पर पूर्वके चार प्रहर विष्णुपूजन और संकल्पमें वर्जित किये हैं, जिसका विशेष स्पष्टीकरण 'विद्धोपवासे' वचनमें यह है कि ''विद्धाका उपवास यदि भूलसे कर लेवे तो उपवासके साथ सम्पूर्ण दिन व्यतीत कर रात्रिमें एकाग्रचित होकर विष्णुपूजन और व्रतसंकल्प करे''. यानि कपाल वेध होने पर दिनके चार प्रहर विष्णुपूजन और व्रतसंकल्पमें वर्जित करे. परन्तु यह मत भी अच्छा नहीं है, क्योंकि उपर्युक्त वाक्यमें 'दशम्या: सङ्गदोषेण' यह 'सङ्ग' वेधका उल्लेख नहीं है. और इस प्रकार संकल्पका निषेध करने पर व्रतका आरम्भ नहीं होगा, क्योंकि ''संकल्पो व्रतसत्रयो:'' इस शास्त्रके अनुसार व्रतका प्रारम्भ संकल्पसे ही माना जाता है, व्रतका आरम्भ न होने पर तो व्रत विरुद्ध चेष्टाएं भी उस समयमें हो सकेंगी.

कुछ पंडितोंने जो यह कहा कि ''उदयात् प्राक् चतस्रस्तु नाडिका अरुणोदय:'' इस वचनमें 'उदय' शब्दसे पारिभाषिक सूर्योदय लिया जायगा तो ''निशि प्रान्ते तु यामार्धे'' इस दूसरे अरुणोदय लक्षणमें उल्लिखित यामार्धकी समाप्त भी इसे पारिभाषिक सूर्योदय पर माननी होगी. इसलिये प्रत्यक्ष सूर्योदय तकके एक घडीका सन्निवेश रात्रि और दिन किसीमें भी नहीं हुआ यह कैसे ?

उत्तर : जैसे 'प्रदोष' शब्दवाच्य सन्ध्याकाल रात्रिका मुख है, इसी प्रकार यह प्रात:काल दिनका मुख है. इसलिये इसका अन्तर्भाव दिनमें हो सकता है. अथवा तीन प्रहरोंकी रात्रि माननेके पक्षमें अन्तिम अर्ध प्रहरका अन्तर्भाव जैसे रात्रिमें किया जाता है इस प्रकार इस प्रत्यक्ष सूर्योदय तककी एक घडीका अन्तर्भाव रात्रिमें हो सकता है. और उदय शब्दसे प्रत्यक्ष सूर्योदय ग्रहण करने पर भी मदनरत्नके ''आदित्योदयवेलाया: प्राङ् मुहूर्तद्वयान्विता'' इस वचनमें अरुणोदयका मान दो मुहूर्त बताया है, दूसरा मुहूर्त कच्ची

दो घडियोंका होता है, यह ''लघूनि वै समाम्नाता दशपञ्च च नाडिका: ते द्वे मुहूर्त'' इस भागवत तृतीय स्कन्धीय वचनमें कहा है. इसलिये अरुणोदय चार घडियोंका मानना योग्य है, अर्ध प्रहरका मानना योग्य नहीं. रात्रिमानके अनुसार प्रहर घटता–बढता रहता है, सर्वदा समानरूपमें नियमित नहीं है. अतएव अर्धप्रहरका मानना चतुर्घटिकात्मक बतानेवाले वाक्यसे विरुद्ध है. ''निशि प्रान्ते तु यामार्धे'' इत्यादि वचन जो कि अरुणोदयका मान अर्धप्रहर बताते हैं, इनका तात्पर्य इनसे प्रतिपादित कर्मोमें उपयुक्त हानेवाले अरुणोदयका मान बतानेमें है. एवं दो मुहूर्तोंका अरुणोदयमान बतानेवाले 'आदित्योदयवेलाया:' इत्यादि वचन एकादशीके प्रकरणमें हैं. इसलिये एकादशीव्रतमें तो प्रकरणवश इनका ही आदर करना योग्य है.

पन्द्रह मुहूर्तोंका दिन और पन्द्रह मुहूर्तोंकी ही रात्रि इस पक्षमें भी पारिभाषिक सूर्योदय तक अरुणोदयकालकि अवधि है या प्रत्यक्ष सूर्योदय तक? इस प्रकार अवधिमें विवाद है, अरुणोदयके मानमें विवाद नहीं, पारिभाषिक सूर्योदय तक की अवधि तो शास्त्रवचनोंसे सिद्ध है, इसलिये निषेध करना योग्य नहीं है.

और ''अरुणोदय वेलायां दशागन्धो भवेत् यदि'' इस वचनमें अरुणोदयके साथ अवसरपर्याय 'वेला' शब्दका प्रयोग किया है, एवं 'अवसर' शब्द प्रधान समयसे कुछ पूर्व समयमें व्यवहृत होता देखा गया है. 'दशागन्ध' शब्दसे दशमीके गन्धका त्याग बताया है और गन्ध स्वसम्बद्ध वस्तुके पास कुछ दूर तक रहता है. अतएव चतुर्घटितात्मक अरुणोदय प्रत्यक्ष सूर्यसे लिया जाय, तथापि वेला गन्ध शब्दोंके प्रयोगवश एक घटिका अधिक त्याग करना योग्य है.

''शल्ये पञ्च तथा वेधे'' यह विष्णुधर्मोत्तर वचन, शल्यवेधके पञ्च घटिकात्मक मानका अरुणोदयवेधमें भी अतिदेश करता है. और ''षट्पञ्चाशता वेधः'' इस वचनसे अरुणोदय वेधका मान चार घडियोंका प्रमाणित होता है. इस प्रकार अरुणोदय वेधका मान दो प्रकारका सिद्ध हुआ. अधिकार और शिष्टाचारके अनुसार दोनोंकी व्यवस्था करना उचित है.

इसके अतिरिक्त ''कामविध्वंसिनी शल्या, विद्धा मोक्षविघातिनी'' यह विष्णुधर्मवाक्य शल्य वेधवाली एकादशी इच्छित फलका नाश करती है, ऐसा कहता

है. इसलिये एकादशी व्रतको काम्य माननेके पक्षमें शल्य वेधका भी त्याग करना योग्य ही है. यह गूढ आशय भी ५५ घडी वेध माननेका है. साथ ही ''विष्णुधर्मेषु सर्वेषु ग्राह्या आर्योद्भवा तिथिः'' यह वचन ज्योतिषोक्त आर्यमतसे सिद्ध हुई तिथि ग्रहण करनेकेलिये कहता है, जिस आर्यमतसे सिद्ध हुई तिथियां प्रचलित सौरमतसे सिद्ध हुई तिथियोंकी अपेक्षा एक घडीके करीब अधिक अन्तरवाली होती है. ५५ वेध माननेसे इस आर्यमतका भी संग्रह हो जाता है. ''विवादेषु च सर्वेषु'' ''संदिग्धैकादशी यत्र'' इत्यादि वचन विवाद या सन्देह उपस्थित होने पर द्वादशीमें व्रत करनेका विधान करते हैं. ये विवाद और सन्देह एक घडी अधिक त्याग करनेसे कुछ अंशमें दूर हो सकते हैं, इसलिये इन वचनोंका भी संग्रह हो गया. बीस दोषोंका संशोधन भी अन्य युगोंसे सम्बन्ध रखता है, इसका यहां विशेष वर्णन नहीं किया जाता है.

वेध न होने पर भी द्वादशीकी वृद्धि हो तो एकादशीका त्याग कहा है. वैसा होने पर जब उपवास हो तभी देवोत्थापन करना चाहिये. द्वादशीमें देवोत्थापनका विधान है. एकादशी त्यागके निमित्त शास्त्रोमें इस प्रकार कहे हैं : एकादशीकी वृद्धि होने पर

> ''पहले दिन एकादशी पूर्ण हो (अरुणोदयवेध–रहित हो) और दूसरे दिन द्वादशीमें कुछ घडी रहती हो तो द्वादशीमें उपवास और त्रयोदशीमें पारणा करें''.(नारद)
>
> ''एकादशी पहले दिन अरुणोदय वेध रहित हो और दूसरे दिन प्रातःकाल भी फिर रहे तो कामनावाला पहलीमें और निष्काम दूसरी एकादशीमें व्रत करें''.(मार्कण्डेय)

द्वादशीकी वृद्धि होने पर

> ''एकादशी अरुणोदय वेधरहित हो और द्वादशी दो हो जावें तो द्वादशीमें उपवास करना चाहिये, क्योंकि तिथिवृद्धि श्रेष्ठ मानी जाती है''.(गरुडपुराण)
>
> ''जब एकादशी अरुणोदय वेधरहित हो और द्वादशी दो हो जावें तो एकादशीका त्याग कर द्वादशीमें उपवास करें''.(स्कन्दपुराण)

एकादशी और द्वादशी दोनोंके अधिक होने पर :

''एकादशी पहले दिन पूर्ण (अरुणोदय वेध रहित) होकर दूसरे दिन प्रातःकाल फिर हो और इसके अनन्तर दिनमें द्वादशी भी हो तो दूसरी एकादशीका व्रत करें''.(भृगुवचन)

एकादशीके भेदोंका प्रसंगवश यहां विचार किया जाता है.

''पातिव्रत्य व्रत करनेवालोंको विष्णुपञ्चक व्रत करना आवश्यक है. गोविन्द, परमानन्द, माधव, मधुसूदनके सिवा और किसीका चिन्तन नहीं करता है वह पातिव्रत्य व्रत वाला है. श्रीकृष्णजन्माष्टमी, श्रीरामनवमी एकादशी, श्रीवामनद्वादशी और श्रीनृसिंहचतुर्दशी –इन पांच व्रतोंका नाम 'विष्णुपञ्चक' है. यह विष्णुपञ्चक सब पापोंका नाश करनेवाला है. यह नित्य, नैमित्तिक और काम्य तीन प्रकारका है''.

इस प्रकार पातिव्रत्य व्रतके प्रसंगमें विष्णुपञ्चक व्रतका त्याग न करना कहा है. यद्यपि यहां नित्य, नैमित्तिक और काम्य तीनों विशेषण विष्णुपञ्चक व्रतके हैं, अर्थात् यह व्रत तीन प्रकारका है ऐसा मालूम होता है, परन्तु त्रिविधैकादशी व्रत कथाकी समाप्तिमें प्रकरणका उपसंहार करते हुए नित्य नैमित्तिक काम्य इन तिनों विशेषणोंका उपयोग केवल एकादशी व्रतके साथ किया है, न कि विष्णुपञ्चकान्तर्गत अन्य व्रतोंके साथ, जो कि इसमें स्पष्ट है :

''अरुणोदयके समय दशमीके वेधसे रहित एकादशीके व्रतको प्रावाहिक कहा है. यह नित्य है. अभया एकादशीका व्रत नैमित्तिक है. जया – विजया आदि आठ प्रकारकी एकादशीयोंका व्रत काम्य है''.

उपर्युक्त वचनमें 'प्रावाहिक' पदका अर्थ अरुणोदयवेधरहित एकादशी है, ऐसा पूर्व ग्रन्थके देखनेसे मालूम होता है. क्योंकि पूर्व ग्रन्थमें अरुणोदय वेधको एकादशी व्रतमें दूषित बताकर ''शुक्रेण मोहिताः सर्वे'' इस वचनसे यह कहा कि

''शुक्राचार्यके द्वारा मोहित किये जीव विष्णुदेवताके एकादशीव्रतको दशमीके वेधसे युक्त करते हैं. मोक्ष चाहनेवाले जीवोंको यमदैवत्य दशमीसे विद्धा एकादशीका सर्वथा त्याग करना चाहिये''.

यह प्रावाहिक एकादशीके उपवासका व्रत एक दिनमें किया जाता है. अभया एकादशीका व्रत तीन दिनोंमें पूर्ण होता है. कहीं – कहीं उपर्युक्त वचनमें

‘अभयाव्रतम्’की जगह ‘उभयाव्रतम्’ पाठ मिलता है. यह अभया एकादशीका व्रत पूजा प्रधान है. उपर्युक्त ग्रन्थमें दशमी, एकादशी और द्वादशी इन तीनों दिनोंके नियम बताकर मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशीसे प्रारम्भ कर एक वर्ष पर्यन्त पूजा करनेका विधान किया है. उपसंहारमें ‘‘एवमेकादशीपूजाव्रतं कुर्वन्ति ये नगः’’ इस वचनसे यह कहा कि

> ‘‘जो मनुष्य इस प्रकार एकादशी पूजा व्रत करते हैं उनको भगवान् विष्णु स्वयं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थ देते हैं’’.

उपवास तो नित्य होनेसे अभया एकादशीके व्रतमें भी स्वयं सिद्ध है, फिर भी उल्लेख न होनेसे यह अभया एकादशीका अंग है ऐसा साबित नहीं होता है. जया-विजया आदि आठ प्रकारकी एकादशीयोंके व्रतमें उपवास और पूजा दोनों प्रधान है, क्योंकि प्रकरणमें दोनोंका स्वरूप भी वही बताया है.

त्रिस्पृशा :

त्रिस्पृशा वचनका तात्पर्य केवल ५५ घडीके वेधका त्याग है. साथ ही प्रतिज्ञावाक्यका (षट्पञ्चाशद्वेवरहितं कर्तव्यम्) तात्पर्य व्यवहार प्रसिद्ध अरुणोदय वेधका त्याग कराना है. द्वादशीकी वृद्धि होने पर शुद्ध एकादशीके त्यागका समर्थन ‘‘अविद्धाऽपि विद्धा स्यात् परतो द्वादशी यदि’’ इस हेमाद्रि स्थित पद्मपुराणके वचनसे होता है. एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी तीनों एक अहोरात्रमें सम्मिलित हो वह त्रिस्पृशा है, ऐसा पहले कहा है, यही व्रतके योग्य है. यद्यपि प्रस्तुत वचनके ‘‘विद्धाप्यविद्धा विज्ञेया परतो द्वादशी न चेत्’’ इस पूर्वार्धमें यह कहा कि विद्धा एकादशीको भी अविद्धा समझाना यदि आगे द्वादशी न मिले, परन्तु इससे त्रिस्पृशा एकादशीमें विद्धा ग्राह्य है यह अर्थ करना उचित नहीं, क्योंकि पद्मपुराणमें गङ्गाके प्रश्नरूपमें ‘दशम्येएकादशी’ वचनसे यह कहा कि ‘‘दशमी, एकादशी एवं द्वादशी तीनों एक अहोरात्रमें हो तो वह त्रिस्पृशा होती है या नहीं’’, इसके उत्तरमें प्राचीमाधवने ‘‘आसुरी त्रिस्पृशा देवि’’ वचनसे यह कहा कि

> ‘‘हे देवि ! तूने जो त्रिस्पृशा कही है वह आसुरी है, इसका यत्नसे त्याग करना चाहिये. जैसे कि धर्महीन स्वामीका त्याग किया जाता है’’.

कालमाधवने यह दशमीविद्धा त्रिस्पृशा स्मार्त पर है (स्मार्तोंकेलिये है) ऐसा स्वीकार किया है.

हेमाद्रि लिखित ‘एकादशी द्वादशी च’ वचनमें

''एकादशी, द्वादशी और रात्रिके पश्चिम भागमें त्रयोदशी तीनों मिश्रित होने पर तिथि सब पापोंका हरण करनेवाली शुभ कही गई है. इसमें उपवास करें जिससे विष्णु सायुज्यमुक्ति प्राप्त हो. इसमें किया गया उपवास मोक्षको देता है''.

इस वचनमें पापक्षय और मोक्ष चाहनेवाले विष्णु भक्तोंकेलिये एकादशी, द्वादशी और त्रयोदशी के मिश्रणसे बननेवाली ही त्रिस्पृशा ग्राह्य है एसी व्यवस्थाकी गई है.

यद्यपि कूर्मपुराणके ''एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी'' इस वचनमें कहा कि

''एकादशी, द्वादशी और रात्रिके पश्चिम भागमें त्रयोदशी हो तो पुत्र-पौत्रोंसे युक्त गृहस्थ उस दिन उपवास न करें. परन्तु यह निषेध फल चाहते हो उनके लिये है''.

उक्त वाक्यके पूर्वाधका तात्पर्य भी इसी प्रकार समझना पक्षवर्द्धिनीका सामान्य स्वरूप तो पहले बता दिया है, परन्तु इसका सविस्तर उल्लेख कथाके उपसंहारमें किया है.

हरिवल्लभसुधोदयमें पद्मपुराण पक्षवर्द्धिनी कथा प्रसंगके ''पौर्णमासी यदा'' इत्यादि वचन

''जब कि शुक्ल पक्षमें पौर्णमासी और कृष्ण पक्षमें अमावास्याकी वृद्धि हो अर्थात् पहले दिन पूर्ण ६० घडी रहकर प्रतिपदाके दिन भी कुछ रहे वहां विद्वान् छः दिनोंका संशोधन कर द्वादशीका उपवास करें, जिससे कोटिकुलोंका उद्धार कर नरकसे स्वर्गमें जाता है. संशोध्य छः दिनोंमें अमावास्या या पौर्णमासीके पूर्णवृद्धि हो, एकादशी द्वादशी पूर्वापेक्षया वर्धमाना हो, और अष्टमी नवमी दशमी क्षीयमाणा हो, ऐसी दशामें एकादशीका त्याग कर द्वादशीका उपवास करें''.

पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें श्रीकृष्णार्जुन संवादमें भगवानने पक्षवर्द्धिनीके ओर स्वरूप भी बताये हैं. ''पुरा चैवावसाने च'' इत्यादि वचन

''प्रतिपदासे नवमी पर्यन्त तिथियोंका मान समान हो, दशमीसे त्रयोदशी पर्यन्त चार तिथियां बढे, दशमी आध घडी एकादशी देढ

घडी द्वादशी साढे तीन घडी और त्रयोदशी इससे भी अधिक बढे''.

इस प्रकार पक्षवर्द्धिनीके छः भेद हैं.

१. जहां अमावास्या या पौर्णमासी बढकर प्रतिपदाको स्पर्श करे और प्रतिपदासे द्वादशी तक तिथियां बढती रहें वह पहली पक्षवर्द्धिनी है.

२. अमावास्या या पौर्णमासी बढकर प्रतिपदाको स्पर्श करे और आगे अष्टमी नवमी दशमी क्षीयमाणा हो, एकादशी द्वादशी वर्धमाना हो, वह दूसरी पक्षवर्द्धिनी है.

३. प्रतिपदासे नवमी तक तिथियां समान रहे. दशमी आधी घडी, एकादशी डेढ घडी, द्वादशी साढे तीन घडी और त्रयोदशी इससे भी अधिक बढे वह तीसरी पक्षवर्द्धिनी है.

४. प्रतिपदासे दशमीपर्यन्त तिथियां समान रहे और आगे एकादशीसे पक्षकी समाप्ति तक तिथियां बढती रहे वह चौथी पक्षवर्द्धिनी है.

५. प्रतिपदासे पक्ष समाप्ति तक तिथियां वर्धमाना होती हुई १६ होवें. इनमें जो दशमीवेधरहित एकादशी हो वह पांचवी पक्षवर्द्धिनी है.

६. जिस पक्षमें तिथिवृद्धि द्वितीयासे प्रारम्भ हुई हो उस पक्षमें जो वर्धमाना रही हो वही छठवीं पक्षवर्द्धिनी है. ये पक्ष इस कल्पमें संभव नहीं है, ऐसा ज्योतिषी कहते हैं. वहां उपपत्ति यह है कि अमावास्याके दिन सूर्य चन्द्र दोनों एक राशि पर समान अंशोमें आ जाते हैं. बादमें चन्द्र सूर्यसे आगे बढता जाता है. जितने समयमें १२ अंशोंका अन्तर होता है उतने समयसे एक तिथि बनती है यह सामान्य नियम है.

हमारा कहना तो यह है कि पद्मपुराणके पूर्वोक्त वाक्योमें नित्य, नैमित्तिक और काम्य तीन प्रकारकी एकादशी एवं रामनवमी, कृष्णजन्माष्टमी, वामनद्वादशी और नृसिंहचतुर्दशी ये नित्य चार इन 'विष्णुपञ्चक' नामक पांच व्रतोंको अवश्य करना चाहिये, त्याग नहीं करना चाहिये यह कहा.

ज्ञानसे या अज्ञानसे कोई पाप कर्म हो जावें या दशमीविद्धा एकादशीका उपवास (भूलसे) हो जावें तो प्रायश्चित्त करना आवश्यक है. जैसे कि पञ्चसूना दोषको मिटानेकेलिये बलिवैश्वदेव किया जाता है. विद्धाव्रतके प्रत्यवायका परिहार व्यजुली एकादशीके व्रत करनेसे होता है जिसका उल्लेख इन वचनोंमें है :

''प्राणिहिंसाका पाप काशीमें नष्ट होता है, पूर्व पुरुषोंके ऋणका पाप गया में नष्ट होता है, इसको व्यजुली

> एकादशी नष्ट करती है, यदि फिर व्यञ्जुलीमें भी दशमीवेधका सम्बन्ध न हो तो इस पापको नष्ट करती है''

यह सब विशेष प्रसंगवश कहा है.

प्रबोधिनी एकादशीमें जागरण करना आवश्यक है. हेमाद्रिका ''प्रबोधिनीं नरः कृत्वा'' इत्यादि नारदीय वचन : ''जो मनुष्य प्रबोधिनीका व्रत और जागरण करता है वह पापी हो तथापि माताके पेटमें नहीं जाता है''.

प्रबोधिनीव्रत मलमासमें भी करना चाहिये ऐसा दिनकरोद्योत ग्रन्थमें कहा है. यहां मलमासका अर्थ क्षयमास समझना चाहिये. ''जागरणके दिन भगवानकी सेवामें जैसा शृंगार आदि साहित्य हो उसको दूसरे दिन रखना चाहिये'' यह हरिवल्लभसुधोदय नृसिंहपरिचर्यामें कहा है.

> ''जो मनुष्य जागरणके दिन की हुई भगवानके शृंगारादि सेवाको द्वादशीके दिन बदल देता है वह अवश्य नरकगामी बनता है. जो काममूढ मनुष्य एकादशीके दिन की हुई शृंगारादि सेवाको द्वादशीके दिन व्यर्थ कर देता है, वह पापी अवश्य नरकको जाता है''.

पारणा :

अब पारणाका विचार किया जाता है :

> ''आषाढ, भाद्रपद और कार्तिक के शुक्ल पक्षमें द्वादशीके दिन क्रमशः अनुराधा, श्रवण और रेवती हो तो उसमें भोजन नहीं करना चाहिये. भोजन बारह द्वादशीयोंके पुण्यको नष्ट करता है''.(हेमाद्रिस्थित भविष्यपुराणका वचन)

> ''भगवान् विष्णु अनुराधाके प्रथम चरणमें शयन करते हैं, श्रवणके मध्य भागमें पार्श्वपरिर्वतन (करवट बदलना) करते हैं और रेवतीके अन्तिम चरणमें जागते हैं''.(हेमाद्रिस्थित विष्णुधर्मका वचन)

शयन, परिवर्तन और जागरण के नक्षत्रोंके केवल नियत चरणोंका ही त्याग करना चाहिये. भविष्यके वाक्यका विष्णुधर्मके वाक्यसे उपसंहार हो जानेसे उक्त नक्षत्रोंका सर्वांशमें निषेध न होकर उपर्युक्त नियत भागोंका ही निषेध सिद्ध हुआ. श्रवणके मध्य भागका अर्थ द्वितीय तृतीय चरण अथवा बीचकी २० घडियां (सर्वर्क्षका मध्यतृतीयांश) है, जिसका कि निषेध किया गया है, ऐसा दिनकरोद्योतमें लिखा है. वहां भी इतनी विशेषता ध्यानमें रखने योग्य है :

> पहले दिन एकादशीविद्धा द्वादशी हो और दूसरे दिन द्वादशी बहुत अल्प हो, रेवती नक्षत्रका चतुर्थ चरण द्वादशीके बाद भी रहता हो, तब अल्प समयकी द्वादशीमें ही जलसे पारणा कर लेनी चाहिये. क्योंकि द्वादशीसे मिली हुई त्रयोदशीमें पारणा करनेका निषेध है और जलपारणासे व्रतभंग भी नहीं होता है.

''आपो वा अशितमनशितं च'' यह श्रुति भी ऐसा कहती है. द्वादशी और रेवती नक्षत्र दोनों दूसरे दिन अल्प समयमें ही समाप्त होते हों तब भी द्वादशीमें ही जलसे पारणा करनी चाहिये.

त्रयोदशीमें पारणा करनेका निषेध कूर्म और मत्स्य पुराण में इस प्रकार है :

> ''एकादशीमें उपवास कर द्वादशीमें ही पारणा करें, त्रयोदशीमें पारणा न करें, यदि त्रयोदशीमें पारणा करे तो बारह द्वादशीयोंका पुण्य नष्ट होता है''.

इस वचनमें 'त्रयोदशी' शब्दका अर्थ द्वादशीविद्धा त्रयोदशी है, शुद्ध त्रयोदशी नहीं है, क्योंकि शुद्ध त्रयोदशी अर्थ माननेमें अग्रिम नारदीय वचनका विरोध आता है.

> ''शुद्ध त्रयोदशीमें पारणा करने पर पृथिवी दान और सौ यज्ञ करनेका फल निःसन्देह प्राप्त होता है''.(नारदीय)
>
> ''जिसने कलामात्र एकादशीसे युक्त द्वादशीमें उपवास किया और त्रयोदशीमें पारणाकी उसकेलिये सौ यज्ञोंका पुण्य कहा गया है''.(विष्णुरहस्य)
>
> ''जहां एकादशी द्वादशीसे मिश्रित हो वहां भगवान् विष्णुका सन्निधान रहता है. वहां द्वादशीमें पारणा करने पर सौ यज्ञोंका पुण्य होता है. जहां एकादशी व्रतमें पीछेसे द्वादशी आती हो तो दूसरे दिन प्रारम्भिक त्रयोदशीमें पारणा करने पर सौ यज्ञोंका पुण्य होता है. यदि

एकादशी दशमीसे मिश्रित हो तो वह नरक देनेवाली है उसमें उपवास नहीं करना चाहिये''. (अग्निपुराण)

इस तरह कार्तिकोत्सव पूर्ण हुए.

मार्गशीर्षोत्सव :

अब मार्गशीर्षोत्सवोंका विचार किया जाता है. स्कन्दपुराणके ''मार्गशीर्षेशुभे पक्षे षष्ठ्यां प्रावरणोत्सवम्'' इस वचनमें

''मार्गशीर्ष शुक्ल षष्ठीके दिन जो मनुष्य भक्तिपूर्वक भगवानका प्रावरणोत्सव (रजाई ओढानी) कर दशर्न करता है वह विष्णुलोकको प्राप्त होता है''

इस प्रकार प्रावरणोत्सवका विधान किया है. परन्तु अन्य देशोमें शीत अधिक होनेसे वह प्रबोधिनी एकादशीके दिन किया जाता है इसलिये यहां विचार अनावश्यक है.

पौषोत्सव :

पौष कृष्ण नवमीके दिन श्रीविट्ठलेश प्रभु चरणोंके प्रादुर्भाव उत्सव होता है. यह सूर्योदयव्यापिनी नवमीमें करना चाहिये. यदि नवमी अष्टमीविद्धा होकर क्षीण हो जावे तो अष्टमीविद्धा नवमीमें यह उत्सव करना चाहिये. इस उत्सवके करनेकी आवश्यकताका विचार आचार्यचरणोंके उत्सव प्रसङ्गमें किया जायगा.

माघोत्सव :

सूर्यके मकर राशिमें प्रवेश करने पर पर्वात्मक उत्सव करना चाहिये. यह स्कन्दपुराण पुरुषोत्तममाहात्म्यमें कहा है.

''हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों ! जब सूर्य मकर राशिमें प्रवेश करता है, उत्तर दिशामें जाना चाहता है तब उत्तरायण होता है. मकर संक्रान्तिके बाद कच्ची २० घडियां श्रेष्ठ पुण्य काल होता है जो पितर, देव और ब्राह्मणों को प्रिय है. उस समय मनुष्य विधिपूर्वक तिर्थराजके जलमें (प्रयागके त्रिवेणीसंगममें) स्नान कर भगवान् नारायणकी पूजन कर

कल्पवृक्षको प्रणाम करे''.

ऐसे और भी कर्मोंका उल्लेख कर आगे कहा है कि

''उत्तरायणमें (उत्तरायणके आरम्भ समयमें) भगवान् नारायणके दर्शन करनेसे मनुष्य सदाकेलिये शरीरबन्धनसे रहित हो जाता है''.

मकरसंक्रान्तिमें जो पुण्य काल है वही पूजा काल है, इसलिये पुण्यकालके निर्णयसे ही पूजा कालका निर्णय भी हो गया. इससे मेष संक्रान्तिका भी निर्णय हो गया, क्योंकि वहां भी जो पुण्यकाल है वही पूजा काल है. मेष संक्रान्तिमें पहले और पीछे दस – दस घडियां पुण्य काल रहता है.

वसन्तपञ्चमी :

माघ शुक्ल ५ के दिन वसन्तोत्सव होता है जो कि निर्णयामृत और पुराणसमुच्चयमें बताया है.

''हे राजन्! माघ शुक्ल ५मीके दिन रति और कामदेव की पूजा कर बडा उत्सव करें, दान देवें. इससे भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न होते हैं''.

यहां उत्सव पूजा आदि करनेसे भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न होना बताया है, इसलिये भगवानके भक्तोंको तो लक्ष्मी सहित कामदेवस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णकी ही पूजा करनी चाहिये. यद्यपि यहां पूजाकी सामग्री नहीं बताई है, तथापि शिष्ट जन दोलोत्सवकी सामग्रीको यहां ग्रहण करते हैं, जिसका विवेचन आगे किया जायगा. पूजाका समय भी वसन्तोत्सवके वचनोंमें नहीं बताया है, इसलिये सर्वसाधारण देवपूजाका समय यहां भी लिया जावे. वह सर्वसाधारण पूजाका समय पूर्वार्द्ध है, जिसमें पांच मुहूर्त होते हैं. यह दिनकरोद्योत और हेमाद्रिमें स्थित महापञ्चरात्रिके इस वचनसे मालूम होता है.

''तीन भागोमें विभक्त दिनके प्रथम भाग प्रातःकालमें देवपूजन, द्वितीय भाग मध्याह्नमें तीर्थकार्य और तृतीय भाग सांयकालमें रक्षाकार्य करना चाहिये''.

बौधायनके ''पूजा व्रतेषु सर्वेषु मध्याह्नव्यापिनी तिथिः'' इस वचनसे पूजाव्रतोमें मध्याह्नव्यापिनी तिथिको ग्राह्य बताकर जो मध्याह्नको पूजाकाल प्रमाणित किया है यह यहां ग्राह्य नहीं है. क्योंकि इस वचनमें किसकी पूजा करनी चाहिये यह स्पष्ट नहीं है, इसलिये सन्देह होता है. इसके अतिरिक्त मध्याह्न अतिथि पूजामें

सावकाश है. अतएव पूर्वोक्तानुसार पूर्वाह्नव्यापिनी तिथि ही ग्रहण करना योग्य है. पहले दिन सूर्योदयके बाद प्रवृत्त होकर पूर्वाह्णमें रहे तो ऐसे देवकार्यमें दूसरा दिन लेना चाहिये. वृद्ध याज्ञवल्क्यके ''देवकार्येतिथिर्ग्राह्या यस्यामभ्युदितो रविः'' इस वचनमें सूर्योदयव्यापिनी तिथि ही ग्राह्य कही है. और मार्कण्डेयके ''शुक्लपक्षे तिथिर्गाह्या'' इस वचनसे भी शुक्ल पक्षमें सूर्योदयव्यापिनी तिथि ग्राह्य कही है. यद्यपि ''युग्माग्नियुगभूतानाम्'' इस वचनमें पञ्चमी पूर्वविद्धा ग्राह्य बताई है परन्तु ब्रह्मवैवर्तपुराणके ''प्रतिपत्पञ्चमीभूता'' इस वचनमें प्रतिपदा, पञ्चमी, चतुर्दशी, वटसावित्री की पूर्णिमा, नवमी और दशमी ये परसंयुता हो तो इनमें उपवास न करे, यह कहा है. इसके साथ एकवाक्यता करनेसे ''युग्माग्नियुगभूतानाम्'' इस वचनका भी तात्पर्य उपवासमें पूर्वविद्धा ग्राह्य है यह निश्चित होता है. ''चतुर्थीसंयुता कार्या पञ्चमी परया न तु'' यह वचन भी शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षोमें दैव पित्र्य सभी कार्योमें चतुर्थीविद्धा पञ्चमी ग्राह्य कहता है, किन्तु इसे भी निर्णयसिन्धुमें उपवास विषक ही माना है, इसलिये वसन्तोत्सवमें तो पूर्वोक्तानुसार सूर्योदयव्यापिनी परविद्धा ही लेना ठीक है. पञ्चमीका क्षय होने पर तो पूर्वविद्धा पञ्चमी ही लेनी चाहिये, क्योंकि ओर गति नहीं है. यदि पहले दिन पूर्ण रहकर दूसरे दिन और बढ जावे तो पहली ही लेनी चाहिये. ज्योर्तिनिबन्धके 'षष्टिदण्कात्मिकाः' इस वचनमें कहा है कि एकादशीके अतिरिक्त और तिथियां पहले दिन साठ घडी रहकर दूसरे दिन भी कुछ अनुवृत्त हों तो दूसरे दिनका अंश तिथिका मल है, धर्मकार्यके योग्य नहीं है. ''दैवे कर्मणि पित्र्ये च'' इस वचनमें संपूर्ण धर्मकार्योके बोधक 'कर्म' शब्दका प्रयोग होनेसे निर्णयसिन्धुका इसे केवल उपवास विषयक मानना अनुचित मालूम होता हो तो जहां तक संभव हो सदा पूर्वविद्धा ही पञ्चमी ग्रहण कीजीये.

वसन्तपञ्चमीसे प्रारम्भकर प्रतिदिन शिष्ट लोग फाल्गुनोत्सव करते हैं. परन्तु ''फाल्गुत्सवं प्रकुर्वन्ति पञ्चाहानि त्र्यहानि वा'' इस स्कन्दपुराण पुरुषोत्तममाहात्म्यके वचनके अनुसार तो फाल्गुनी पूर्णिमाके समीप आनेवाले उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रसे पांच या तीन दिन पूर्व फाल्गुनोत्सव प्रारम्भ करना शास्त्रसंमत मालूम होता है. अतएव शिष्टाचारके अनुसार अधिक दिन फाल्गुनोत्सव करनेकी शक्ति न हो तो उपर्युक्त दिनोंमें तो करना ही चाहिये.

फाल्गुनोत्सव :

फाल्गुन कृष्ण ७मी के दिन श्रीगोवर्धन धरणके पधारनेका उत्सव है. यह

भक्तिमार्गीय है. इसे सूर्योदयव्यापिनी सप्तमीमें करना चाहिये. शिष्टाचार ऐसा ही है. सप्तमीका क्षय हो तो पूर्वविद्धा सप्तमीमें करना चाहिये. क्योंकि और कोई गति नहीं. यदि सप्तमी दो हों तो पूर्व सप्तमीमें करना चाहिये. ''षष्टिदण्डात्मिकायाः'' इस वचनके अनुसार दूसरी सप्तमी अग्राह्य होनेसे उचित यही है.

होलिकोत्सव :

फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमाके दिन पर्वात्मक होलिकोत्सव होता है. इसमें होलीकादीपन रात्रिमें पौर्णमासीके रहते हुए भद्रारहित कालमें करना चाहिये.

''फाल्गुनी पूर्णिमाको रात्रिमें होलिकोत्सव करें''.(भविष्य पुराण)

''यदि दिनके उत्तरार्धमें फाल्गुनी पूर्णिमा प्रारम्भ हो तो रात्रिमें भद्रा समाप्त होने पर होलिकादीपन करें''.(भविष्योत्तर पुराण)

''चतुर्दशीके दिन मध्याह्नके बाद पूर्णिमा प्रारम्भ हो तो भद्रा समाप्त होने पर अर्ध रात्रिके बाद भी होलिकादीपन करें''.(पुराणसमुच्चय)

इस समयसे भिन्न समयमें होलिकादीपन करने पर दोष सुना जाता है जो इस प्रकार है :

''प्रतिपदा चतुर्दशी और भद्रा में तथा दिनमें होलिका पूजन एवं पूजनोपलक्षित प्रज्वालन किया जाय तो वह होलिका संपूर्ण वर्षका राष्ट्र और नगरको जलाती है''.(नारद)

''रक्षाबन्धन और होलिका दीपन दो भद्रामें नहीं करने चाहिये, भद्रामें किया रक्षाबन्धन राजाका नाश करता है और होलिकादीपन ग्रामको जला देता है''.

''भद्रामें प्रज्वालितकी गई होली देशका नाश करती है और नगरकेलिये अभीष्ट नहीं है, इसलिये इसका त्याग करना चाहिये''.(पुराणसमुच्चय)

''नन्दायां नरकम्'' वचन : ''प्रतिपदामें प्रज्वालितकी गई होली नरक देती है, भद्रामें देशका नाश करती है, चतुर्दशीमें दुर्भिक्ष करती है''.(ज्योतिर्निबन्ध)

''न कर्तव्यः'' वचन : ''दिनमें, भद्रामें, चतुर्दशीमें और प्रतिपदामें

होलिकाका दीपन नहीं करना चाहिये''.(भविष्यपुराण)

''दिनमें ढूंढाकी पूजा करे तो दुःख देती है''.(दिवोदासीय वचन)

यद्यपि ''प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या फाल्गुनी पूर्णिमा सदा'' इस नारद वचनमें प्रदोषव्यापिनी पूर्णिमाको होलिका दीपनमें ग्राह्य बताई है. ''सायाह्ने होलिकां कुर्यात्'' इत्यादि अन्य ग्रन्थोके वचनोमें भी सायंकालमें होलिकादीपनका उल्लेख है. भविष्यपुराणके 'सार्धयामत्रयम्' वचनमें दूसरे दिन पूर्णिमा साढे तीन प्रहर रहती हो और प्रतिपदा वर्धमाना हो तो वह होली कही गई है ऐसा उल्लेख है, इससे भी होलिकादीपनका समय प्रदोष है यह ध्वनित होता है. अतएव पहले दिन प्रदोषसमय भद्रारहित न मिले तो दूसरे दिन प्रदोष समयमें होलिकादीपन किया जाय यह सिद्ध होता है, किन्तु यह मत ठीक नहीं है. क्योंकि उक्त वचनोंका तात्पर्य ओर है. ''प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या'' इस नारदवचनका तात्पर्य तो यह है कि फाल्गुनी पूर्णिमा सूर्योदयव्यापिनी लेना श्रेष्ठ नहीं, क्योंकि 'श्रावणी दुर्गनवमी' इस वचनमें होलिकादीपनकी पूर्णिमा पूर्वविद्धा ग्राह्य बताई है. ''चतुर्दश्या च पूर्णिमा'' इस युग्मवाक्यमें भी चतुर्दशीसे युक्त पूर्णिमाको बडा फल देनेवाली कहता है और पूर्णिमा प्रतिपदासे युक्त हो तो महादोष कहा है. अन्तिम तात्पर्य तो संपूर्ण रात्रिमें भद्रारहित पूर्णिमा न मिलने पर प्रदोषको एक मुख्य काल बताता है, जिसमें भद्रा रहते हुए भी होलिकाकी केवल पूजन (प्रज्वालन नहीं) की जा सके, जिसका उल्लेख ''भद्रायां विहितं कार्यं होलिकायाः सुपूजनम्'' इस वचनमें है.

कुछ विद्वानोंने ''मध्यरात्रम् अतिक्रम्य'' उपन्यास कर यह कहा कि भद्राका पुच्छ (जिसमें कि होलिका प्रज्वालित होता है) मध्य रात्रिके बाद आवे तो प्रदोष समयमें ही होलिकादीपन करें. यह प्रदोषसे मध्य रात्रि तक होलिका पूजन शुभ होता है. किन्तु मयूखकारने कहा कि यह सिद्धान्त आकर ग्रन्थोमें देखा नहीं.

कुछ विद्वानोंने पूर्वोक्त वचनोंकी व्याख्यामें 'प्रदोष' शब्दका अर्थ रात्रि कहा है. ''सार्धयामत्रयं वा स्यात्'' इस भविष्यपुराणके वचनका आशय तो यह है कि प्रायः फाल्गुन शुक्ल षष्ठीको मीनसंक्रान्ति लगने पर रात्रि और दिन दोनोंका मान समान त्रिंशद्घटिकात्मक हो जाता है. ऐसे समयमें चतुर्दशीका सर्वभोगकाल ५९ घडियोंका, पूर्णिमाका ५ पल कम ६० घडियोंका और प्रतिपदाका ६१ घडियोंका हो, एवं चतुर्दशी सूर्योदयके बाद ३० घडी रहे, दूसरे दिन पूर्णिमा सूर्योदयके बाद ५ पल कम ३० घडी

रहे, तीसरे दिन प्रतिपदा सूर्यास्तके ५५ पल पूर्व तक रहे. ऐसी परिस्थितिमें पूर्णिमाके बाद प्रदोषवर्तिनी प्रतिपदामें होलिकादीपन होगा. ऐसा होलिकादीपन ''सार्धयामत्रयम्'' वचनका विषय है.

पहले दिन रात्रिमें भद्रारहित पूर्णिमाके मिलने पर भी उसका त्याग कर वर्धमाना प्रतिपदामें होलिकादीपन कराना अभीष्ट नहीं, क्योंकि ''वह्नौ वह्निं परित्यजेत्'' (वह्नौ=प्रतिपदामें वह्निं परित्यजेत्=अग्निप्रज्वालनका त्याग करें) यह भविष्यद्वचन विरुद्ध हो जाता है. यदि चतुर्दशी पहले दिन सम्पूर्ण प्रदोषमें रहती हो और दूसरे दिन पूर्णिमा कम होनेसे प्रदोषसे पहले ही समाप्त हो जाती हो, ऐसी दशामें पहले दिन सम्पूर्ण रात्रिमें भद्रा रहेगी.

भद्रामें होलिकादीपनका निषेध है तथापि मुख्य अंशका त्याग कर पहले दिनकी ही रात्रिमें भद्राके शेष अंशमें होलिकादीपन करना चाहिये. इसमें प्रमाण नारदपुराणका वचन

> ''पहले दिन पूर्णिमा प्रदोषव्यापिनी न हो अर्थात् प्रदोषके बाद प्रवृत्त होती हो तो भद्राके केवल मुखांशका त्याग कर होलिकादीपन करें''.
>
> ''यदि प्रतिपदा तिथि साढे तीन प्रहरोंसे भी अधिक पूर्णिमासे युक्त हो तो (पहले दिनकी रात्रिमें) भद्राके मुखांशका त्याग कर होलिकादीपन किया जाय ऐसा विद्वानोंने कहा है''. (ज्योतिर्निबन्ध स्थित विद्याविनोदका वचन)

सार यह कि चतुर्दशी, भद्रा, प्रतिपदा और दिन –इन चारोंसे व्यतिरिक्त होलिकादीपन करना चाहिये, यदि ऐसा समय न मिले तो 'सार्धयामत्रयम्' वचनके अनुसार पूर्णिमाके बाद आनेवाली वर्धमाना प्रतिपदामें होलिकादीपन करें. यदि 'सार्धयामत्रयम्'के अनुसार प्रतिपदा न मिले तो पहले दिनकी रात्रिमें भद्राके मुखांशका त्याग कर होलिकादीपन करें ऐसा सिद्धान्त है.

दोलोत्सव :

दोलोत्सव फाल्गुन शुक्ल पौर्णमासीमें या पौर्णमासीके समीपकी उत्तराफाल्गुनीमें दोलोत्सव करना चाहिये यह इन वचनोंमें कहा है :

''मनुष्य फाल्गुनी पूर्णिमामें दोलामें झुलते हुए गोविन्दके दर्शन कर वैकुण्ठको जाता है''.(ब्रह्मपुराण)

''फाल्गुनी पूर्णिमाके मास उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रमें पुरुषोत्तमका दोलोत्सव करें''. (स्कन्दपुराण पुरुषोत्तममाहात्म्य)

''हे राजन्! जो भक्त उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें मेरा दोलोत्सव करते हैं और दर्शन करते हैं वे ब्रह्महत्या आदि पापोंसे रहित हो जाते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है''.

''फाल्गुन मासमें उत्तम दोलोत्सव करें, जहां भगवान् गोविन्द भक्तों पर अनुग्रह करनेकी इच्छासे क्रीडा करते हैं''.

यहीं आगे ''चतुर्दश्यां निशामुखे'' इस वचनसे चतुर्दशीके दिन सायंकाल होलिकादीपनका विधान बताकर 'प्रातर्यामे' वचनसे पिछली रातको भगवानकी पूजा आदि एवं दोलाके समीप लेजानेका उल्लेख किया है.

''फल और पुष्पोंसे नमे हुए वृक्षोंसे बनाये हुए सुन्दर वृन्दावनमें जिसमें कि मत्त भ्रमर घूम रहे हैं, कोयलें मधुर शब्द कर रही है, भिन्न-भिन्न जातिके अनेक पक्षी खेल रहे हैं, कई उपशोभाएं बनाई हुई है, काले अगरका धूप लग रहा है, भगवानको विराजमान करे और सभी उपचारोंसे पूजन करें. भगवानकी भावना इस प्रकार करे कि वृन्दावनमें कदम्ब वृक्षके नीचे, गोपियोंके मण्डलके मध्यमें ग्वाल और गोपियां भगवानको झुला रहे हैं. हास्य नृत्य विलासोंसे भगवान् क्रीडा कर रहे हैं. इस प्रकार ध्यान कर कपूरसे सुरभित गुलाल, अबीर वगैरा लाल, सफेद, पीले सुगन्धित चूर्ण चारों ओर डारें और धीरे-धीरे सात बार भगवानको झुलावें. इसी प्रकार सात-सात बार झुलावें तो सब पापोंको दूर करता है, भक्तिकी वृद्धि करता है, मनुष्योंके भोग और मोक्षका एक ही कारण है. भगवानका जो प्रथम सात बार झुलना है, यह सहज क्रीडा है. (यह स्वामिनीजीके भावसे हैं.) यह पापोंके समूहको नष्ट करती है, मूल अविद्याको निवृत्त करती है. भगवानका जो दूसरी बार झूलना है इसका दर्शन गोहत्या आदि उपपातकों को हरण करता है. (यह श्रुतिरूपा गोपियोंके भावसे है) तीसरी वारका झूलना भी सब पापोंको नष्ट करता है. इसमें कोई सन्देह नहीं, (यह

व्रजकुमारियोंके भावसे हैं)''.

–इत्यादि वचनोंसे दोलोत्सवका प्रकार और फल दोनों कहे हैं. अतएव यही प्रकार एवं रात्रिका अन्तिम प्रहर समय है ऐसा निश्चय होता है. दोलोत्सवकी तिथि ब्रह्मपुराणमें पौर्णमासी और स्कन्दपुराणमें चतुर्दशी कही है. इस प्रकार भिन्न–भिन्न दो तिथियोंके कहनेसे एवं ''तपस्ये मासि राकायाम्'' इस स्कन्दवचनके 'राकायाम्' पदमें सामीप्यार्थक सप्तमी ग्रहण करनेसे यह आशय प्रकट होता है कि फाल्गुनके पौर्णमासीके समीप जब उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र हो उस समयमें दोलोत्सव करना चाहिये. वह भी पिछली रातको जिस दिन मिले उस दिन करना चाहिये. किसी भी तिथिमें दोलोत्सवका आग्रह करना उचित नहीं. तिथिकी अपेक्षा नक्षत्र प्रबल है, यह विजया दशमीके निर्णयमें दिखा दिया गया है. यहां यह भी नहीं कह सकते कि 'राकायाम्'का सामीप्य अर्थ माननेमें कोई नियामक नहीं, क्योंकि फाल्गुन चैत्र आदि मासनाम (चित्रायुक्ता पौर्णमासी यस्मिन् मासे स चैवः.) प्रबलित हुए हैं. परन्तु यह सम्बन्ध सार्वदिक नहीं है, इसलिये जब पूर्णिमाके साथ नक्षत्र नहीं होता है तब नक्षत्रोंको तिथियोंके साथ सामीप्य सम्बन्ध मानकर ही उक्त मासनामोंका व्यवहार किया जाता है, इसलिये यहां भी इस सम्बन्धको ग्रहण करनेमें कोई दोष नहीं. अतएव प्रस्तुतमें 'तपस्ये' 'मासि' इत्यादि मासवाचक शब्दोंके सप्तमीका अर्थ सामीप्य लिया गया है, क्योंकि नियामक नहीं है.

अब यहां फाल्गुनोत्सवोंका प्रसंग होनेसे यह विचार किया जाता है कि फाल्गुन कृष्ण १४को किया जानेवाला शिवरात्रि व्रत वैष्णवोंको करना चाहिये या नहीं ?

उत्तर : शिवरात्रि व्रत वैष्णवोंको नहीं करना चाहिये. कालमाधव निर्णयसिन्धु आदिमें कहा है कि यह व्रत सबके लिये नित्य है. इसमें प्रमाण ये वचन है : स्कन्दपुराण 'परात्परतरम्' वचन

> ''शिवरात्रिका व्रत उत्तमोत्तम है, इससे उत्तम दूसरा नहीं है. जो जीव भक्तिपूर्वक त्रिलोकीके स्वामी भगवान् शंकरकी पूजा नहीं करता है, वह सहस्र जन्मतक संसारमें भ्रमण करता रहता है. इसमें कोई सन्देह नहीं''.

दिनकरोद्योतमें कहा है कि जैसे

“वैष्णवो वाऽथ शैवो वा कुर्यादेकादशीव्रतम्”

इस ‘शिवधर्म’के वचनमें और

“वैष्णवो वाऽथ शैवो वा सौरोऽप्येतत्समाचरेत्”

इस सूर्यपुराणके वचनमें

शैव, वैष्णव आदि सभी साम्प्रदायिकोंकेलिये एकादशीका व्रत नित्य कहा है, ऐसा विशेष वचन जन्माष्टमी और शिवरात्रिके विषयमें कोई नहीं है, इसलिये ये सबकेलिये नित्य नहीं किन्तु जो केवल वैष्णवोंसे भिन्न हैं उनके लिये शिवरात्रिव्रत नित्य है और जो शैवोंसे भिन्न हैं उनकेलिये जन्माष्टमीव्रत नित्य है.

नृसिंहपरिचर्यामें तो यह उल्लेख है कि “सौरो वा वैष्णवो अन्यदेवता-न्तरपूजकः” इस वचनमें सूर्य विष्णु आदि अन्य देवोंकी पूजा करनेवाला भी यदि शिवरासि बहिर्मुख हो तो उसे उन देवोंकी पूजाका फल नहीं मिलता है.

माध्व सांप्रदायिक वैष्णव तो शिवको जीव कोटिमें गिनते हैं और व्रत सर्वथा नहीं करते हैं. जो भी करते हैं वे भी शिवके अन्तर्गत विष्णुकी पूजा करते हैं. क्योंकि “यास्त्वन्यदेवतिथयः तासु विष्णुं प्रपूजयेत्” इस वाराह्न वचनमें अन्य देवोंकी तिथियोंमें विष्णुपूजन करनेका विधान है, परन्तु यह सब अयोग्य है. अहंकारके अधिष्ठाता रुद्रकी जीव कोटिमें गणना होने पर भी तमोगुणोपाधि भगवान् शंकरकी गणना ईश्वर कोटिमें है. श्रीमद् भागवत चतुर्थ स्कन्धके अत्रि उपाख्यानसे यह निश्चय होता है.

“जगतके उत्पादक जो प्रकृति-पुरुष हैं उनका स्वामि, शिव और शक्ति से पर जो भेदशून्य ब्रह्मतत्त्व है वह आप हैं, ऐसा मैं जानता हूं”.

इसमें भगवान् शंकरको शिव और शक्ति से पर कहकर परमशिव प्रमाणित किया है. इस परमशिवसे परे एक परमपुरुष और है जिससे परमशिव अनुगृहीत हैं. यह रहस्य अग्रिम वचनसे स्पष्ट है.

“आप परम पुरुषकी अपार मायासे अस्पृष्ट बुद्धि हैं, सबके द्रष्टा हैं. हे स्वामि ! उस मायाके द्वारा जिनकी आत्मा नष्ट हो गई है, जिनके चित्त कर्मोंके पिछे घूमते हैं ऐसे जीवों पर अनुग्रह करने योग्य हैं”.

यहां जिस मायाशाली परम पुरुषका वर्णन है वह श्रीकृष्ण हैं यह

''कृषिर्भूवाचकः शब्दः'' इस 'कृष्ण'पदका निर्वचन करनेवाली श्रुतिसे एवं ''त्वमेक आद्यः'' आदि श्रीभागवतके वचनोंसे निश्चय करना चाहिये. यह यहां संक्षेपसे वर्णन किया है. विस्तृत विवेचन बालबोधकी टीकामें एवं प्रहस्त और पिन्दिपालमें किया है.

सार यह है कि भगवान् शंकरको जीव मानना तो अनुचित है, परन्तु शिवरात्रि आदि व्रत तो नहीं ही करने चाहिये. श्रीभागवत चतुर्थस्कन्धके वचनोंमें शिवव्रतोंकी मना की गई है. चतुर्थ स्कन्धके ''भवव्रतधरा ये च'' इत्यादि वचनमें

> ''भृगु शाप देता है : जो शिवके व्रत करनेवाले हैं ओर जो भी उनका अनुसरण करते हैं वे सब उत्तम शास्त्रोंसे वैर रखनेवाले पाखण्डि अपवित्र मूर्ख और जटा भस्म अस्थि धारण करनेवाले होवें''.

ऐसा वचन होने पर भी शिवव्रतोंके विधान करनेवाले शास्त्रवचन निरवकाश (अनुपयोगी) सिद्ध नहीं होते हैं, क्योंकि उपर्युक्त भृगुशाप होनेसे पहले इनको अवकाश मिल चुका है. जैसे कि अक्षतयोनि कन्याओंके पुनर्विवाह और गवालम्भीको (यज्ञमें गोवधका) विधान करनेवाले वचनोंको कलिवर्ज्यशास्त्रसे पहले अवकाश मिला है. 'भवव्रत' शब्दसे पाशुपतसम्प्रदायोक्त व्रत ही लिये गये हैं यह कथन भी ठीक नहीं. क्योंकि 'भवव्रत' शब्दके अर्थको इस प्रकार संकुचित करनेमें कोई प्रमाण नहीं है.

यदि कहा जाय कि ''सच्छास्त्रपरिपन्थिनः' (उत्तम शास्त्रोंसे वैर रखनेवाले) यह विशेषण पाशुपतोमें चरितार्थ होनेसे 'भवव्रत' शब्दसे पाशुपतव्रत लिये जाते हैं तो यह भी उचित नहीं, क्योंकि उत्तम शास्त्रोंसे बहिर्मुख होकर जिस हद तक विरुद्धाचरण करना शापके अन्तर्गत है उसका विवरण ''नष्टशौचा मूढधियः'' इत्यादि अग्रिम विशेषणोंसे किया गया है, इतना ही सच्छास्त्र परिपन्थित्व यहां ग्राह्य है, अन्यथा ''नष्टशौचा मूढधियः'' इत्यादि तीन श्लोकोंसे दो शापोंका उल्लेख करना व्यर्थ हो जाता है, क्योंकि सच्छास्त्रपरिपन्थित्वके (उत्तम शास्त्रोंसे वैरके) अन्तर्गत सभी है. सार यह है कि पूरे सच्छास्त्रपरिपन्थी पाशुपतोंका इस प्रकरणमें उल्लेख न होनेसे यहां विद्यमान 'भवव्रत' शब्दका केवल पाशुपतव्रत अर्थ नहीं हो सकता.

इस प्रकार शिवव्रतका निषेध करनेसे शिवद्वेष साबित होगा यह भी नहीं कह सकते, क्योंकि शिवव्रतोंके सत्य अनुवाद रूपसे शिवका नाम है, इसीसे 'परात्परतरम्' वचनमें वर्णित दोषका भी परिहार हो गया जिसमें यह उल्लेख है कि नारायणके अनन्य

भक्त परात्पर स्थानको प्राप्त करते हैं, परन्तु जो शंकरसे द्वेष करते हैं वे उस स्थानको प्राप्त नहीं करेंगे. शिवके व्रत शास्त्रनिषिद्ध होनेसे ही नहीं किए जाते हैं, न कि शिवके साथ द्वेष होनेसे. जैसे

''हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेत् जैनमन्दिरम्''

यह शास्त्रीय निषेध होनेसे 'जैनमन्दिर' शब्दवाच्य बौद्ध मन्दिरमें प्रवेश नहीं किया जाता है. शंकर परब्रह्मके गुणावतार हैं, वैष्णवधर्मोके उपदेशक हैं, वेदस्वरूप हैं, सब विद्याओंके अधिष्ठाता हैं, सब शरीरधारियोंके नियामक हैं अतएव अवश्य पूजा करने योग्य और आदरणीय हैं. शिवरात्रि प्रदोष आदि शिवव्रत तो भृगुशाप होनेसे निन्दित हैं, अतः नहीं करने चाहिये.

ग्रहणमें भोगसमर्पणादि :

अब प्रसङ्गवश यह बताया जाता है कि यदि (सूर्य-चन्द्र) ग्रहण हों तो भगवानके भोग-समर्पण आदि सेवा किस प्रकार करनी चाहिये.

उत्तर यह है कि पुष्टिमार्गीय सेवामें वात्सल्य स्नेहकी प्रधानता होनेसे, जो न्याय बच्चोमें लागू होता है उसीका आदर करना चाहिये.

ग्रहणके विषयमें एक मत यह है कि बाल-वृद्ध-रोगियोंके लिये जिस प्रहरमें ग्रहण हो वह और उससे पूर्वका एक प्रहर निषिद्ध है. ''सायाह्ने ग्रहणं चेत्'' इस मार्कण्डेय वचनमें उल्लेख है कि सायंकालमें (दिनके पश्चीम भागमें) ग्रहण हो तो अपराह्णमें और अपराह्णमें ग्रहण हो तो मध्याह्नमें और मध्याह्नमें ग्रहण हो तो सङ्गवकालमें भोजन नहीं करना चाहिये.

संगवमें ग्रहण हो तो ग्रहणसे पूर्व प्रातः भोजन न करें. परन्तु यह मत विचारणीय है. उक्त वचनमें 'अपराह्ण' 'सायाह्न' आदि पदोंसे पांच भागोमें विभक्त किये गये दिनके दो पञ्चमांशोंमें भोजनका निषेध किया गया है. इससे दिन रात्रिके सभी ग्रहणोमें दो प्रहरोंका त्याग स्वीकार करना तो इन व्याख्येय वचनोंसे विरुद्ध है. (प्रहर दिनका चतुर्थांश है, पञ्चमांश नहीं) किन्तु सूर्यग्रहणमें उक्त वचनने दो पञ्चमांशोंका त्याग कहा है इसलिये उसमें ऐसा करना उचित है. चन्द्रग्रहणमें कोई खास वचन मिलता नहीं है, इसलिये सूर्यग्रहणका न्याय चन्द्रग्रहणमें भी मानना चाहिये.

यद्यपि रात्रिको पांच भागोमें विभक्त करना प्रसिद्ध नहीं है, तथापि तीन और चार प्रहर तकका वेध बतानेवाला शास्त्र शक्त अधिकारियोंसे सम्बन्ध रखता है, इसलिये अशक्त अधिकारियोंमें संचारित करनेकेलिये वेधका छोटा रूप स्वीकार करना अर्थात् सिद्ध है और उचित भी है. ''ग्रहणं तु भवेत् इन्दोः'' इस वृद्धवसिष्ठके वचनमें लिखा है कि

> ''रात्रिके पहले प्रहरके बाद ग्रहण हो तो मध्याह्नसे पूर्व भोजन करे और रात्रिके अन्तिम प्रहरमें ग्रहण हो तो रात्रिके पहले प्रहरसे पूर्व भोजन करें''.

यहां रात्रिमें प्रहरोंके त्यागका विधान है. अतः बाल, वृद्ध आतुरों को रात्रिमें ग्रहण जिस प्रहरमें हो उससे पूर्वका एक प्रहर और दिनमें जिस पञ्चमांशमें ग्रहण हो उससे पूर्वका एक पञ्चमांश त्याग करना चाहिये ऐसा एक मत है.

वस्तुतः ''ग्रहणं तु भवेत् इन्दोः'' इस वचनका ''चन्द्रग्रहे तु यामांस्त्रीन्'' इस शक्त विषय शास्त्रसे उपसंहार करने पर ''चन्द्रग्रहे तु'' इस वचनके ''बालवृद्धा तुरैर्विना'' इस अंशसे जो बालवृद्ध आतुरोंकी अनुमति मिली है उससे यह प्रमाणित होता है कि जिस प्रहरमें ग्रहण हो उसीका बालवृद्ध आतुर भोजनमें त्याग करें. शेष प्रहर अनिषिद्ध है. ऐसा बालादि अशक्तोंकेलिये पृथक् निर्णय करना योग्य है इस बालादिन्यायके अनुसार.

जब कि सूर्य ग्रहण हो तो दिनके दो पञ्चमांशोंसे पूर्व और चन्द्रग्रहण हो तो रात्रिके प्रथम प्रहरमें होने पर सूर्यास्तसे पूर्व भगवानकेलिये घृतपक्व अन्नादि सामग्री समर्पण करनी चाहिये. रात्रिके द्वितीयादि अन्य प्रहरोमें चन्द्रग्रहण हो तो सूर्यास्तके अनन्तर भी सामग्री समर्पित करना दूषित नहीं है. तथापि शयनके समयमें संकोच होता है इसलिये दिनमें ही सामग्री समर्पित कर शयन आरती करना उचित है.

ग्रहणमें उत्सव :

ग्रहण होने पर उत्सव कैसे करना चाहिये यह शंका शेष रहती है.

इसका उत्तर यह है कि

''तिल और दर्भों के रखनेसे ग्रहणमें कांजी, दूध, छाछ, दहीं, तैल

और घृतसे तले हुए पदार्थ और मणिकपात्रमें रक्खा हुआ जल ये दूषित नहीं होते हैं''

ऐसा कहते हैं. अतः तिल-दर्भोके स्थापनसे आवश्यक सामग्री दूषित नहीं होती है जिससे उत्सव सर्वदा किया जा सकता है.

इतनी विशेषता है कि चन्द्रका ग्रस्तास्त ग्रहण हो तो शास्त्रसे मोक्षकाल जानकर स्नान करें. शुद्ध होकर शीघ्रतासे अल्प शृंगार आदि कर गौण कालमें भी उत्सव करें. इस विषयमें प्रमाण नहीं है यह भी नहीं कह सकते, क्योंकि ''ग्रस्ते चास्तंगते त्विन्दौ'' इस भृगु वचनमें लिखा है कि ग्रस्त हुआ चन्द्र अस्त हो जावे तो शास्त्रसे मुक्तिका निश्चयकर स्नान होम आदि कार्य करें. किन्तु भोजन तो पुनः शुद्ध चन्द्रका उदय होने पर ही करें. यह वचन निर्णयसिन्धु भगवद्भास्कर और दिनकरोद्योतने लिखा है. इसमें वर्तमान ''स्नानहोमादिकम्'' इस आदि पदसे आवश्यक भगवत्सेवाका भी संग्रह करना उचित है. ग्रहणमें देवपूजा करनेका विधान अन्य वचनोंमें भी है. इसी न्यायसे दीपमालिकाके दिन सूर्य ग्रस्त होकर अस्त हो जावे तब भी उत्सव करना चाहिये. भगवानकेलिये घृतपक्वके अतिरिक्त दूसरी अन्नसामग्री ग्रस्तास्त ग्रहणके अहोरात्रमें नहीं करनी चाहिये! क्योंकि घृतपक्वातिरिक्त पक्व अन्न ग्रहणसे स्पर्श होनेपर त्याग करना चाहिये ऐसा अन्य वचनोंमें उल्लेख है, और सब यथास्थित है.

ग्रस्तास्त चन्द्रगहण :

चन्द्रका जब ग्रस्तास्त ग्रहण हो तो शास्त्रसे मोक्षका निश्चय कर शुद्ध होनेके अनन्तर भगवानके नैवेद्यकेलिये सामग्री बनावे, अपने लिये बनाना तो उचित नहीं है. जैसे ''व्रीहीन् अवहन्ति'' इस श्रुतिसे बोधित व्रीहिसे सम्बन्ध रखनेवाला अवघात (कूटना) व्रीहि निवृत्त होनेपर और कृष्णलोंके ग्रहण करने पर निवृत्त हो जाता है, इसी प्रकार ग्रस्तास्तमें भोजनका निषेध होनेसे भोजनसे सम्बन्ध रखनेवाला पाकनिर्माण भी निवृत्त हो जाता है. द्वारका लोप होनेपर उससे सम्बन्ध रखनेवालेका लोप होना न्याययुक्त है.

वास्तविक बात तो यह है कि शुद्ध चन्द्रके उदय होने पर भोजनका विधान है. इसलिये जब तक शुद्ध चन्द्रका उदय न हो, भोजनसे साक्षात् सम्बन्ध रखनेवाले परिवेषण(परोसना) आदि कार्य नहीं करने चाहिये. भोजनमें परोक्षतया उपयुक्त होनेवाले पाकनिर्माण आदि कार्य, सामान जमा करनेके समान है, इनकेलिये शास्त्रकी

अनुमति है.

ग्रस्तास्त सूर्यग्रहण :

सूर्यके ग्रस्तास्त ग्रहणमें ''सूर्यग्रहे तु नाश्नीयात् पूर्वं यामचतुष्टयम्'' इस वचनके अनुसार ग्रहण जिस प्रहरमें हो उससे चार प्रहर पूर्व भोजन त्याग करनेका विधान है. और ग्रहण होनेके अनन्तर ''ग्रस्तावेवास्तमानं तु'' इस माधव वचनके अनुसार दूसरे दिन शुद्ध सूर्य और चन्द्र के दर्शन कर स्नान कर भोजन करनेका विधान है. इसलिये ऐसे अवसर पर समर्थको आठ प्रहरतक उपवास रखना आवश्यक है. बालवृद्ध और रोगियों के लिये ''सायाह्ने ग्रहणं चेत् स्यात्'' इस पूर्वलिखित मार्कण्डेय वचनके अनुसार पांच भागोमें विभक्त किये गये दिनके दो अंशका (जिस अंशमें ग्रहण हो वह और उससे पूर्वका) त्याग करना चाहिये.

सार यह है कि सूर्यके ग्रस्तास्त ग्रहणमें मध्याह्न या संगवकालमें भोजन करना चाहिये.

इसी न्यायको लेकर भगवानकेलिये राजभोग समर्पण भी मध्याह्नमें या मध्याह्नसे पूर्व करना चाहिये. जो भगवत्प्रसाद घृतपक्वसे भिन्न हो (सखडी वगैरह अन्नसामग्री) उनको गायोंको देनी चाहिये, शिष्टाचार ऐसा ही है. जब ग्रस्त हुआ सूर्य अस्त हो जाय तो शास्त्रसे मोक्षकाल जानकर स्नान करें. शुद्ध जल लाकर भगवानको भी स्नान करावें. बादमें शुद्ध जलसे घृतपक्व सामग्री तैयार कर वह सामग्री और दुग्ध आदि भगवानकेलिये समर्पण करें. फिर शयन करावें. सन्ध्यावन्दन आदि कार्य करें.

यद्यपि चन्द्रके ग्रस्तास्त ग्रहणकी समाप्तिमें ''ग्रस्तेचास्तंगते त्विन्दौ'' इत्यादि विशेष वचन जिस प्रकार स्नान, होम, सन्ध्या आदि कार्योंका विधान करनेवाले हैं, इस प्रकार सूर्यके ग्रस्तास्त ग्रहणकी समाप्तिमें स्नान, होम, सन्ध्या आदिका विधान करनेवाले विशेष वचन नहीं है. तथापि दोनों प्रकारके ग्रहणोमें समान न्याय रखना आवश्यक है, इसलिये उपर्युक्त वचनमें 'इन्दु' पदको सूर्यका भी उपलक्षक मानना चाहिये. ऐसा न माननेपर तो सायं सन्ध्याका लोप हो जायगा. सार यह है कि चन्द्र और सूर्य दोनोंके ग्रस्तास्त ग्रहणोमें दूसरे दिन शुद्ध सूर्य और चन्द्र के दर्शनके अनन्तर होनेवाले शुद्ध स्नानके विना भी उससे पूर्व दिन या रात्रिमें नित्य नैमित्तिक धर्मकार्य, सन्ध्यावन्दन, होम, पूजा आदि करना उचित है. ''ग्रस्तेचास्तंगते त्विन्दौ'' इस भृगुवचनका यही तात्पर्य है.

कोई विद्वान् सूर्यके ग्रस्तास्त ग्रहणमें दूसरे दिन शुद्ध सूर्योदय होनेपर

सक्ध्यावन्दन आदि कार्य करते हैं. भगवद्‌भास्करने चन्द्रके ग्रस्तास्त ग्रहणका न्याय सूर्यके ग्रस्तास्तमें स्वीकार भी नहीं किया है इसलिये रातको सक्ध्यावन्दन आदि कार्य न किये जाय तो कोई दोष नहीं ऐसा कहते हैं.

मुझे तो कुछ और भी आवश्यक मालूम होता है. वह यह कि बाल, वृद्ध और रोगियों केलिये ग्रहणसे पूर्व जो समय संकोचसे भोजन व्यवस्था बताई है ऐसी ग्रस्तास्तके अनन्तर नहीं बताई है. अतएव इसकेलिये भी न्याय साम्यका आदर करना आवश्यक है. ऐसा न करने पर बाल–वृद्ध–आतुरोंका निर्वाह नहीं हो सकता. न्याय साम्यसे सिद्ध हुई शुद्धि केवल अशक्तोंकेलिये है, शक्त और अशक्त सभीकेलिये नहीं है. इसलिये रात्रिमें जो भगवानके नैवेद्य तैयार किया गया हो वह भी गायोंकेलिये देना चाहिये, या उसका बाल–वृद्ध–आतुरोंको उपयोग करना चाहिये. दूसरे दिन सूर्यउदय होनेपर स्नानसे शुद्ध होकर शुद्ध जलसे रसोई आदि सब कार्य करें. रात्रिमें लाये हुए जलसे रसोई आदि न करें. क्योंकि उस जलको शुद्ध प्रमाणित करनेवाला कोई वचन नहीं है.

चैत्रोत्सव :

श्रीरामजन्मोत्सव

चैत्र शुक्ल नवमीके दिन श्रीरामजन्मोत्सव करना चाहिये. यह हेमाद्रि स्थित अगस्त्यसंहिताके ''चैत्रे नवम्या'' इत्यादि वचनोंमें इस प्रकार कहा है

> ''चैत्र शुक्ल नवमीका मध्याह्न था, पवित्र पुनर्वसु नक्षत्र था, चन्द्र और गुरु उदय हो रहे थे, अर्थात् लग्नमें थे, सूर्य मेष राशि पर था, सब मिलकर पांच ग्रह उच्च राशि पर थे, लग्न कर्क था ऐसे समयमें परमपुरुष परब्रह्म अपनी कलासे कौशल्यामें प्रकट हुए. प्रतिवर्ष उस दिन उपवास करें''.

अन्य योग न हो तथापि केवल नवमीमें उपवास करें. क्योंकि सर्वत्र वचनोंमें 'नवमी' शब्दका प्रयोग है.

> ''यदि चैत्र शुक्ल नवमी पुनर्वसु नक्षत्रसे युक्त हो और वही मध्याह्न समयमें रहे तो उत्कृष्ट पुण्य देनेवाली होती है''.(अगस्त्यसंहिता)

यहां 'सैव' वही शब्दसे पूर्ववर्णित पुनर्वसु नक्षत्रसे युक्त नवमीका मध्याह्नके समय स्थिति होने पर 'महापुण्यतमा' मध्याह्न भिन्न समयमें स्थिति होने पर पुण्यतमा और किसी भी अंशमें नवमीके साथ पुनर्वसुका सम्बन्ध न हो तो पुण्या है. ऐसा

दिनकरोद्योतने कहा है. यहां ''अह्नो मध्ये वामनो रामरामौ'' इस पुराण समुच्चयके वचनके अनुसार भगवान् श्रीरघुनाथका प्रादुर्भाव मध्याह्न समयमें हुआ है, ऐसा प्रमाणित होता है. अगस्त्यसंहितामें कर्क लग्नमें कहा है इससे भी प्रादुर्भाव समय मध्याह्न निश्चित होता है. यही पूजाका समय भी है. अतएव मध्याह्नव्यापिनी रामनवमी ग्रहण करनी चाहिये, ऐसा बहुत विद्वान् कहते हैं. यथार्थ तो यह है कि वैष्णव भिन्न धार्मिक जन ऐसा करें, वैष्णव तो पारणाके दिन दशमी मिलने पर विद्धाका त्याग अवश्य करें. कालमाधवमें उद्धृत ''नवमी चाष्टमीविद्धा'' वचन

> ''विष्णुपरायण अष्टमीविद्धा नवमीका त्याग करें नवमीमें उपवास अवश्य करे और दशमीमें ही पारणा करें''.

उक्त वचनका तात्पर्य यह भी नहीं कह सकते कि जब दोनों दिन मध्याह्नमें रामनवमी रहती हो, न रहती हो, या किसी एक अंशमें समान रहती हो तब पहली अष्टमीविद्धा नवमीका त्याग कहा है. क्योंकि ऐसे स्थल पर दूसरे दिन दशमी स्वयं उपलब्ध होती है इसलिये दशमीमें ही पारणा करे, यह नियम विधान व्यर्थ हो जाता है. प्रतापमार्तण्डने जो उक्त वचनका आशय यह बताया कि दोनों दिन मध्याह्नमें नवमीके साथ पुनर्वसु नक्षत्रका सम्बन्ध हो वा दोनों दिन न हो तब पहली अष्टमीविद्धाका त्यागकर दूसरी ली जावे. किन्तु यह भी ठीक नहीं, क्योंकि दूसरे दिन मध्याह्नमें नवमीके रहने पर तो उत्तर दिनमें पारणाकेलिये दशमी सर्वदा मिलेगी, इसलिये पूर्वोक्तानुसार पारणाका नियमविधान व्यर्थ होता है. इस नियमविधानसे ही पारणाके दिन दशमीका क्षय होनेसे एकादशी हो तो जलसे पारणा करें, इसका भी उत्तर मिल गया. (व्रतकी एकादशीमें पारणा प्राप्त ही नहीं है). दशमीके क्षयमें दूसरे दिन विद्धा एकादशी रहेगी. इसमें भोजन होय. जलसे पारणा क्यों करें.

रामार्चनचन्द्रिकामें अगस्त्यसंहिताका

> ''दशमी आदि तिथियां वर्धमाना हो तो वैष्णव अष्टमीविद्धा नवमीका त्याग अवश्य करें. सभी वैष्णव भिन्नोका भी शुद्ध नवमीमें व्रत करना निश्चित है''

यह वचन है. हेमाद्रि और माधव ने इसका उल्लेख नहीं किया है इसलिये यह वचन निर्मूल है ऐसा दिनकरोद्योत कहता है. तात्पर्य यह है कि ''नवमी चाष्टमीविद्धा'' इस पूर्वोक्त वचनमें विद्धानिषेधनके विधानके बाद ही नवमीमें उपवास करनेका विधान किया है. इसलिये विद्धानिषेधके समान नवमीमें उपवास करनेकी विधि भी

''उपक्रमोपसंहारौ'' इस वचनमें कहे हुए तात्पर्यनिर्णायक उपक्रम लिङ्गके अनुसार केवल वैष्णवविषयक है, यह निश्चय होता है. अतएव जब दशमी समान रहे और केवल नवमीकी वृद्धि हो या दशमीका क्षय भी हो और नवमीकी वृद्धि हो तब नवमीमें उपवास करना उक्त वचनसे प्राप्त है, इसलिये विद्धाके त्याग करानेमें ही उक्त वचनका तात्पर्य है. यह 'नवमी चाष्टमीविद्धा' वचन हेमाद्रिमाधव आदि सभी धर्मशास्त्रकारोंको संमत है और इसीसे प्रयोजन सिद्ध हो जाता है. अतएव ''दशम्यादिषु वृद्धिश्चेद्'' यह वचन ''नवमी चाष्टमीविद्धा'' वचनसे सिद्ध हुए अर्थका केवल अनुवादक है. यह सब विचार श्रीप्रभुचरणोंने ''तथा च विद्धानिषेधे सति'' इत्यादि ग्रन्थ श्रीरामनवमी निर्णयमें कहा है !

श्रीप्रभुचरणोंका रामनवमीनिर्णय इस प्रकार है :

अगस्त्यसंहिताका ''चैत्रशुद्धा तु नवमी'' वचन ''चैत्रशुक्ल ९मी यदि पुनर्वसु नक्षत्रसे युक्त हो और न हो, मध्याह्नके समय रहती हो तो बडा पुण्य देनेवाली होती है''. रामार्चनचन्द्रिकामें ''विद्धा चेत् ऋक्षसंयुक्ता'' वचन ''अष्टमीविद्धा नवमी यदि पुनर्वसु नक्षत्रसे युक्त हो तो व्रत कैसे हो, क्योंकि विद्धाका निषेध सुना जाता है और उपवास योग्य नवमी है ऐसा वचनोंमें उल्लेख है ? ऐसा प्रश्न करने पर निर्णय कहते हैं ''नवमी चाष्टमीविद्धा''. विष्णुभक्त अष्टमीविद्धा नवमीका त्याग करें, नवमीमें अवश्य उपवास करें और दशमीमें ही पारणा करें. तात्पर्य यह कि पुनर्वसु नक्षत्र हो तो विशेष फल है, पुनर्वसु नक्षत्र व्रतका स्वरूपघटक नहीं है.

अब यहां पूर्वपक्षी शंका करते हैं : व्रतकी पूर्णता पारणा करने पर होती है यह शास्त्रप्रमाणोंसे सिद्ध है, विना पारणा और किसी प्रकार व्रतकी विधि पूर्ण नहीं हो सकती. इसी कारण यह पारणा एकादशीमें पूर्व दिनमें स्वतः प्राप्त है, इसलिये दशमीमें ही पारणा करे यह विधिवचन व्यर्थ होता है. अतएव इसे नियमविधि मानना चाहिये, जिससे सिद्ध यह हुआ कि सूर्योदयव्यापिनी शुद्ध नवमी मिलने पर भी यदि दशमीका क्षय हो, दशमी किसी भी दिन सूर्योदयके समय न हो तो अष्टमीविद्धा नवमीमें ही व्रत करना चाहिये. क्योंकि शुद्ध नवमीके दिन नवमीके बाद अधिक समय तक रहनेवाले दशमीमें पारणा हो सके. यहां यह भी नहीं कह सकते कि अष्टमीविद्धा नवमीमें व्रत करनेका निषेध होनेसे अष्टमीविद्धा नहीं लि जा सकती ! क्योंकि निषेध वचनका तात्पर्य जब दशमीकी वृद्धि हो – सूर्योदयसे प्रवृत्त हुई पारणोचित्त दशमी शुद्ध नवमीके दूसरे दिन हो तब अष्टमीविद्धा नवमीका त्याग करना है. (यहां तक शंकाग्रन्थ है)

अब समाधान ग्रन्थ कहते हैं : 'मैवम्'. ऐसा मत कहो. यह बताओ कि ''नवमी चाष्टमीविद्धा त्याज्या'' इस निषेधविधिके समान ''दशम्यामेव पारणम्'' वह नियमविधि भी केवल वैष्णव अधिकारियोंके लिये है या सर्व साधारण अधिकारियोंके लिये ? यदि कहा जाय कि प्रारम्भमें विद्धानिषेध वैष्णवोंकेलिये किया गया है. अतएव इसके अनुरोधसे ''दशम्यामेव पारणम्'' यह नियमविधि भी वैष्णवोंकेलिये ही मानना उचित है तो ''उपोषणं नवम्यां वै'' (उपवास नवमीमें ही करें) यह अंश व्यर्थ होता है, क्योंकि इसके द्वारा किसी अपूर्व कर्मस्वरूपका बोध नहीं हुआ. (कर्मस्वरूपमात्रबोधको विधिः उत्पत्तिविधिः) प्रारम्भमें विद्धानिषेधका विधान पढकर फिर यह पढा गया है. (अर्थात् विद्धानिषेधसे ही शुद्ध नवमीका बोध हो चुका है) जहां किसीका सामान्य रूपसे बोध हुआ हो वहां विशिष्ट रूपसे बोध करानेके लिये विशिष्ट विधि-निषेधोंका उल्लेख करना सम्भव है. (यहां विशिष्ट शुद्ध नवमीका बोध हो चुका. अब फिर ''उपोषणं नवम्यां वै'' यह विधि सामान्य रूप मानी जाय तो निरर्थक सिद्ध होती है). सार यह है कि अष्टमीविद्धा नवमीका निषेध करनेसे इसके उत्तर दिनमें 'शुद्ध नवमीके' दिन) व्रत करना चाहिये यह सिद्ध हो जाता है, फिर भी जो ''उपोषणं नवम्यां वै'' ''नवमीमें ही उपवास करें'' यह नियम किया है इससे निश्चय होता है कि दशमीकी वृद्धि न हो अर्थात् क्षय हो, केवल नवमीकी ही वृद्धि हो अर्थात् क्षय न हो तो नवमीमें ही उपवास करना चाहिये. यदि नवमीकी वृद्धि न हो अर्थात् क्षय हो तो अष्टमीविद्धामें ही उपवास करना चाहिये. अब ''दशम्यवृद्धावपि नवमीवृद्धौ'' इस व्यवहित ग्रन्थमें 'अन्यथा दशमी' इस पंक्तिसे हेतु दिखाते हैं-दशमीमें ही पारणा करें इस नियमसे ही नवमीमें उपवास करना सिद्ध हो जाता है फिर भी ''उपोषणं नवम्याम्'' इस अंशसे जो नवमीमें उपवास करनेका उल्लेख किया है यह व्यर्थ हो जाता है.

शंका: यद्यपि दशमीका क्षय हो तब भी शुद्ध नवमीमें व्रत करना मानने पर पारणा एकादशीमें करनी आवश्यक होता है, जिससे दशमीमें ही पारणा करनी चाहिये यह नियमविधान व्यर्थ हो जाता है.

उत्तर: उपवासका विधान मुख्य है और पारणा इसकी अंगभूत होनेसे गौण है, इसलिये पारणा दिवसवाचक 'दशमी' शब्दका एकादशी पूर्वदिनके रूपसे दशमी एकादशी उभय साधारण गौण अर्थ लिया जाता है. (अर्थात् नवमीकी पारणा जिस तिथिमें हो उसका नाम दशमीविद्धा एकादशी भी दशमी है.

श्रीविट्ठलेशप्रभुचरण कृत रामनवमी निर्णय पूर्ण हुआ.

(‘‘दशम्यवद्धावपि नवमीवद्धौ’’ यह ग्रन्थ जब दशमीका क्षय हो और नवमी दो हों तब पूर्व नवमीको उपोषणमें ग्राह्य सिद्ध करता है ऐसा कई साम्प्रदायिक पण्डितोंका मत है, परन्तु पूर्वपक्षग्रन्थमें ‘‘नवमीसत्वेऽपि दशमीक्षये विद्धैव कार्या’’ इस पंक्तिसे नवमी हो और दशमीका क्षय हो जाय तो अष्टमीविद्धामें व्रत किया जाय ऐसा पूर्वपक्षी उल्लेख है, अतएव इसके निषेधका उत्तरपक्ष ग्रन्थका आशय यही उचित है कि नवमी हो और दशमीका क्षय भी हो तथापि अष्टमीविद्धामें व्रत न कर शुद्ध नवमीमें ही व्रत किया जाय, विद्धैकादशीमें पारणा करें. दूसरे दिन दशमीवत् - विद्धैकादशी मानी है, इसमें पारणा करें. यदि दशमीक्षयमें शुद्धनवमी मिलने पर भी विद्धानवमीमें उपवास स्वीकार किया जाय तो प्रभुचरणोंने जो नवम्युपवास विधिको मुख्यता प्रतिपादितकी है वह व्यर्थ हो जाती है.)

उपर्युक्त निर्णयकी ‘‘एकादशी पूर्वदिनपरत्वं कल्प्यते’’ इस पंक्तिमें ‘एकादशी’ शब्दका अर्थ एकादशी तिथि है, एकादशीव्रत नहीं है, क्योंकि ‘‘दशम्यामेव पारणम्’’ इस व्याख्येय वाक्यमें दशमीमें पारणा करनेका विधान किया है. (तात्पर्य यह है कि जिस दशमीमें पारणाका विधान किया है, तद्वाचक ‘दशमी’ शब्दका गौण अर्थ लेने पर लक्षणासे दशमी सन्निहित विद्धा एकादशी तिथि इसमें प्रविष्ट हो सकती है, न कि दशमीकी व्यवहित व्रतकी एकादशी. ‘‘एकादशी च पूर्वदिनं च एकादशी पूर्वदिने’’ ऐसा द्वन्द्व समास ‘एकादशीपूर्वदिनपरत्वम्’ पंक्तिमें है.

शंका : ‘‘नवमी चाष्टमीविद्धा’’ इस वाक्यमें वेधके स्वरूपका विचार पृथक् नहीं करते हैं, इसलिये ‘‘त्रिभिर्मुहूर्तैर्विध्यन्ति’’ इस सर्वसामान्य वेधशास्त्रके अनुसार तीन मुहूर्तोंका वेध या गौण पक्ष लिया जाय तो दो मुहूर्तोंका वेध ग्राह्य सिद्ध होता है. अतएव अष्टमी तीन मुहूर्त या दो मुहूर्त भी न हो अर्थात् इससे कम हो तब नवमीविद्धा नहीं होती है. ऐसी दशामें पहली अष्टमीयुक्ता नवमी ही उपवास करने योग्य है यह साबित होता है.

उत्तर : साम्प्रदायिक विद्वान् ऐसी दशामें द्वितीय शुद्ध नवमीका ही आदर करते हैं. उनका आशय यह है : अष्टमीयुक्ता नवमीके त्याग करनेका कारण यह है कि भगवान् श्रीरघुनाथके प्रादुर्भावके दिन अष्टमी नहीं थी. यदि होती तो जैसे वामनद्वादशीमें एकादशीका वेध (वर्तमान रहता) दूषित नहीं है इस प्रकार यहां नवमीमें भी अष्टमीका वेध दूषित न होता. तात्पर्य यह कि निषिद्धका अल्प सम्बन्ध भी दूषक होता है, यह निर्विवाद है. अतएव जन्माष्टमीमें जिस प्रकार कला - काष्ठा सदृश अल्प वेधोंके त्यागके वचन हैं ऐसे अल्प वेधोंके वचन यहां रामनवमीमें नहीं हैं, तथापि समान न्यायसे दूषकका अल्प भी सम्बन्ध हो तो उसका त्याग करना योग्य है. इसके

अतिरिक्त ''युगाद्या वर्षवृद्धिश्च सप्तमी पार्वतीप्रिया'' यह वचन वर्षवृद्धिमें (जन्मोत्सवमें) सूर्योदयव्यापिनी तिथिको ग्राह्य कहता है. अतएव अवतारके समयमें भगवान् श्रीरघुनाथजीके जन्मोत्सव मनानेका व्यवहार सूर्योदयव्यापिनी नवमीमें रहना निश्चित है. इसी न्यायके अनुसार भी अनवातरदशामें भी सूर्योदयव्यापिनी नवमी ही ग्रहण करना योग्य है. यद्यपि ''षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः'' यह युग्मवाक्य अष्टमी और नवमी के योगका विशेष फल कहता है, परन्तु यह सर्व कार्य साधारण अष्टमी नवमीयोगका निर्णय करनेवाला सामान्य वचन है. वर्षवृद्धिके निर्णय करनेवाले उपर्युक्त विशेष वचनसे और ''नवमी चाष्टमीविद्धा'' वचनसे इस सामान्य वचनका बाध हो जाता है.

यह शंका भी नहीं कर सकते कि दूसरे दिनके सूर्योदय केवलके समय रहनेवाले नवमी भगवान् श्रीरघुनाथजीके जन्म समय मध्याह्नमें और पूजा समयमें नहीं रहे तो दूषित है ?

उत्तर – क्योंकि अष्टमीविद्धा नवमीके त्यागके विधानसे ही इस शंकाका निवारण हो गया है. और इस पक्षमें ''यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः'' इत्यादि सूर्योदयव्यापिनी तिथिको ग्राह्य बतानेवाले वचनोंको भी अनुकूलता है.

एक शंका यह है कि श्रीरामनवमीमें कला–काष्ठा जैसे अल्प वेधोंके त्यागका विधान करनेवाले वचन न होने पर भी जन्माष्टमीन्यायसे इनका त्याग किया जाता है, इस प्रकार रामनवमीन्यायसे जन्माष्टमीका क्षय होने पर विद्धाजन्माष्टमीमें व्रत करना प्रमाणित हो जायगा, शुद्ध जन्माष्टमीके अभावमें जो नवमी ग्रहण करते हैं यह अयोग्य साबित होगा!

इसका उत्तर यह है कि रामनवमी न्यायकी तो अब कल्पनाकी जा रही है और ''पूर्वविद्धा यथा नन्दा'' यह एकादशीके अतिदेशका वाक्य तो पहलेसे सिद्ध है, अतएव कल्प्यमान न्यायकी अपेक्षा यह बलिष्ठ है. इसके अनुसार विद्धा एकादशीका क्षय होनेपर जैसे द्वादशीमें व्रत होता है, इसी प्रकार विद्धा जन्माष्टमीका क्षय होने पर नवमीमें व्रत करना चाहिये, ऐसा अतिदेश किया गया है. यहां रामनवमीके विषयमें भी ''दशम्यामेव पारणम्'' यह पारणावाक्य बलिष्ठ है, इसलिये जैसे विद्धाधिका रामनवमीमें आगे पारणा करनेकेलिये दिन न मिले (न कि दशमी न मिले, क्योंकि दशमी शब्दका दशमी एकादशी दोनों अर्थ है ऐसा प्रभुचरणोंने कहा है) वैसी विद्धाधिका रामनवमीमें है वर्षवृद्धिन्यायका बाध होता है, अन्यत्र नहीं. अतएव ऐसे

स्थलमें (जहां अष्टमीका नवमीमें दो मुहूर्तोंसे कम सम्बन्ध है ऐसी विद्धाधिका रामनवमीमें) दूसरे दिन (सूर्योदयव्यापिनी शुद्ध नवमीमें) व्रत करना वर्षवृद्धि न्यायसे प्राप्त है, इसलिये पहले दिन नवमीमें अष्टमीसे विद्धा न बनने पर भी विद्धात्यागका जो कारण (अल्प निषिद्धसम्बन्ध भी दूषक है) यह पहले दिखाया है, उसके विचारसे पूर्व नवमीका त्याग कर दूसरे दिन शुद्ध नवमीमें ही व्रत करना योग्य है. माधवने ऐसे स्थलमें जहां कि शास्त्रोंसे पूरा निर्णय न होता हो, जैसे विद्धाधिका गौरीतृतीया दूसरे दिन दो मुहूर्तोंसे कम हो, शास्त्रीय वचनोंसे व्रत सिद्ध न होने पर शिष्टाचारका अवलम्बन किया है. (शिष्टाचारके अनुसार दूसरे दिन गौरी तृतीयाका व्रत माना है.) विशेषता इतनी है कि पहले दिन गौरीतृतीया विद्धा होनेसे दूसरे दिन कर्मकालसे पूर्व समाप्त होने पर भी दूसरे दिनकी ली जाती है और यहां अल्प अष्टमीसे वेध न बनने पर भी वेधके त्यागका पूर्वोक्त कारण विचारनेसे और वर्षवृद्धि न्यायसे कर्मकालमें न रहती हुई भी दूसरे दिनकी नवमी ली जाती है.

सबका सार यह कि जब अष्टमीविद्धा नवमीका क्षय हो जावे तो ओर कोई उपाय न होनेसे उपवासकेलिये अष्टमीविद्धा नवमी ही ली जावे. पारणाकेलिये दशमी न मिलने पर भी विद्धा अर्थात् पूर्वोक्त विद्धान्यूना ग्राह्य प्रमाणित होती है, क्योंकि दशमीमें पारणा करनेका विधान है, जिसका वास्तविक सार्थकता – उपयोग – केवल यही है. यदि कहीं भी दशमीका अनुरोध न रहे तब तो दशमीमें पारणा करनेका विधान ही व्यर्थ हो जाता है, क्योंकि एकादशीके दिन भी जलसे पारणा कर व्रतकी समाप्तिकी जा सकती है. विद्धान्यूनाके अतिरिक्त और सब अवस्थाओंमें दूसरी ही शुद्ध नवमी ली जाती है. विद्धाका क्षय हो तो विद्धामें ही व्रत करें इस सिद्धान्तके गत्यन्तराभावरूप न्यायका अनुसन्धान नृसिंह चतुदर्शीके प्रसंगमें भी किया जावे. दशमीका क्षय हो तो शुद्ध नवमीमें व्रत करें, विद्धैकादशीमें पारणा करें.

माध्ववैष्णव तो केवल श्रीकृष्णजन्माष्टमीका उपवास आवश्यक मानते हैं, अन्य जयन्तीयोंमें केवल पूजा करनी चाहिये, उपवास करना आवश्यक नहीं यह कहते हैं. प्रमाणके रूपमें इन वचनोंका उल्लेख करते हैं : स्मृत्यर्थसारस्थित भारद्वाज संहिताका वचन ''सर्वासां तु जयन्तीनाम्'' इत्यादि गरुडपुराणके ''चैत्रे मासि'' इत्यादि वचन

''नृसिंह मत्स्य कूर्म आदि अवतारोंकी जयन्तीयोंमें भी ब्राह्मणोंके साथ भोजन करें. सत्ययुगमें नृसिंह चतुर्दशी, त्रेतायुगमें श्रीरामनवमी,

द्वापरमें श्रीवामन द्वादशी और कलियुगमें केवल श्रीकृष्ण जन्माष्टमी कही गई है''.

''श्रीकृष्णजन्माष्टमीके अतिरिक्त दूसरी जयन्तीयोंके उपवास वैष्णवोंको नहीं करने चाहिये. यदि कोई करे तो वे उपवास तामसिक है''. (स्कन्दपुराण)

इस माध्व मतमें हमारी सम्मति नहीं है, क्योंकि भगवान् श्रीरामचन्द्र पुरुषोत्तम स्वरूप हैं यह निर्णीत है. और जयन्तीयोंका उपवास करने पर शिष्टाचारका विरोध होता है. कलियुगमें शिष्टाचार प्रबल है और स्मृति इसकी अपेक्षा निर्बल है. यह व्यवस्था पहले दिखाई है.

प्रश्न : चैत्रमें दोलोत्सव और दमनकोत्सव क्यों नहीं किये जाते हैं ?

उत्तर यह है कि ये दोनों उत्सव सर्वदेवसाधारण है. सर्व देवपूजकोंके लिये इनका करना आवश्यक है. (श्रीकृष्णके अनन्य भक्तोंके लिये नहीं) व्रत दिनकरोद्योत ग्रन्थमें स्थित वायुपुराणका ''संवत्सरकृतार्चायाः'' इत्यादि वचन, हेमाद्रि दिनकरोद्योत भविष्योत्तर और ब्रह्मपुराणमें उमाके प्रार्थना करने पर शंकरने प्रतिवर्ष दोला (झूला) बनाना और उमा महेश्वर युगलको उसमें झुलाना आवश्यक है, यह आज्ञा इन्द्रको दी. इसीसे ''ऊर्जेव्रतं मधौ दोलाम्'' इस वचनमें जो प्रत्यवाय दिखाया कि कार्तिकमें व्रत, चैत्रमें दोलोत्सव, श्रावणमें तन्तुपूजन (पवित्रार्पण) और चैत्रमें दमनकारोपण (दोना मरवा चढाना) जो नहीं करता है वह नरकमें जाता है. यह भी सर्व देवपूजकोंके लिये है ऐसा समझना चाहिये. अनन्य वैष्णव इसे न करें तो दोष नहीं है.

प्रश्न: तन्तुपूजनमें वैष्णवोंका अत्यन्त आग्रह क्यों है ?

उत्तर यह है : यह तन्तुपूजन भगवद्भक्तिरूप रत्नको देनेवाला है. अथवा ''ऊर्जेमधौ दोलाम्'' इस वचनमें 'मधु' शब्दका अर्थ वसन्त है जिसमें किये जानेवाले दोलोत्सवका निरूपण पहले हो चुका है. मीनसंक्रान्तिमें भी वसन्त मानना ज्योतिर्निबन्ध और सिद्धान्तशिरोमणिको सम्मत है. 'मधु' शब्दका अर्थ वसन्त होनेसे पुनरुक्ति दोषका परिहार हो गया. जिससे फिर चैत्रका उल्लेख योग्य साबित होता है. दमनकारोपण (दोनामरवा चढाना) तो दोनामरवा न मिलनेसे नहीं किया जाता है. असली दोनामरवा उडीसामें ही मिलता है. सब देशोमें तो उग्र गन्धवाला केवल मरवा मिलत है. अतएव दमनकारोपण न करनेमें लेशमात्र भी दोष नहीं है. चैत्रोत्सव पूर्ण हुए.

वैशाखोत्सव :

श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणजयन्ती

वैशाख कृष्ण एकादशीके दिन श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणोंकी जयन्तीका उत्सव है. वह राधाजयन्तीके समान सूर्योदयव्यापिनी एकादशीमें करना चाहिये. यदि एकादशी दशमीविद्धा होकर क्षीण हो जावे तो उसीमें उत्सव करना योग्य है. यदि सूर्योदयव्यापिनी एकादशी दो हों तो पहली एकादशीमें उत्सव करना चाहिये. क्योंकि शिष्टाचार ऐसा ही है. ऐसे अन्य भी पुष्टिमार्गीय आचार्योंके जयन्तीयोंके उत्सव पुष्टिमार्गीय वैष्णवोंको अवश्य करने चाहिये. श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध ''आचार्य माम्'' इत्यादि वचन

> ''आचार्यको मेरा स्वरूप समझे. कभी अवज्ञा न करे, सेवा मनुष्य बुद्धिसे न करे, गुरु सर्वदेवमय है''.
>
> ''जहां गुरुकेलिये आक्षेप किये जाते हों या निन्दा होती हो वहां कान बन्द कर ले, या अन्यत्र चले जावे''.

शंकराचार्यकृत विष्णुसहस्रनामकी व्याख्यामें 'ब्रह्मैव' इत्यादि व्यासस्मृति वचन ''साक्षात् ब्रह्म ही आचार्यके रूपसे स्थित है''.

श्वेताश्वतर उपनिषदकी ''यस्य देवे'' श्रुति ''जिसकी देवमें परम भक्ति हो और जैसी देवमें हो वैसी ही गुरुमें भी हो, उस महात्माके हृदयमें ये कहे हुए अर्थ प्रकाशित होते हैं''.

जो मनुष्य किसी सम्प्रदाय विशेषणका अनुसरण करते हुए भी उस सम्प्रदायके आचार्योंके महोत्सव नहीं करते हैं वे श्रद्धाहीन हैं या इन वचनोंका विचार नहीं करते हैं ऐसा समझना चाहिये.

चन्दनयात्रा :

वैशाख शुक्ल ३ याके दिन चन्दनयात्राका उत्सव करना चाहिये. जैसा कि इन वचनोंमें कहा है :

> ''वैशाख शुक्लपक्षकी तृतीया है. इस दिन मेरे अंग पर सुन्दर चन्दनका लेपन करें''.(स्कन्दपुराण, पुरुषोत्तममाहात्म्य)
>
> ''यः पश्यति'' वचन ''जो मनुष्य वैशाख शुक्ल तृतीयाके दिन चन्दनके लेपसे सुशोभित श्रीकृष्णके दर्शन करता है वह वैकुण्ठको प्राप्त करता है''.(ब्रह्मपुराण पञ्चतिथिमाहात्म्य)

अक्षयतृतीयासे प्रारम्भ कर जब तक उष्णकाल रहे भगवानको व्यजन आदि शीतलोपचार अर्पण करें. इसमें प्रमाण ब्रह्मपुराणका ''व्यजनैश्चामरैः'' वचन

> ''अक्षयतृतीयासे प्रारम्भ कर आगे उष्णकालमें व्यजन, चामर, छत्र एवं फल-पुष्प आदि नाना समर्पणीय वन्य वस्तुओंसे भगवानकी प्रीतिका सम्पादन करता हुआ चन्दनका लेप भगवानके श्रीअंग पर करें''.

इस कार्यकेलिये प्रकरणमें विशिष्ट समय नहीं बताया है. इस लिये पांच मुहूर्तोंका प्रातःकाल ही पूजाका समय है, जिसका विवेचन वसन्तपञ्चमीके प्रकरणमें पहले किया है. इसे वहींसे समझना चाहिये. जब दोनों दिन अक्षयतृतीया कर्मकालव्यापिनी हो या कर्मकालके एक अंशमें रहती हो तो दूसरे दिन अक्षयतृतीया माननी चाहिये. यद्यपि परविद्धा तृतीया ग्रहण करनेमें दोनों युग्मवाक्योंका विरोध है. तथापि ब्रह्मवैवर्तपुराणके ''रम्भाख्यां वर्जयित्वैकाम्'' इस वचनमें रम्भातृतीयाके अतिरिक्त सभी तृतीयाएं परविद्धा श्रेष्ठ है यह कहा है. और स्कन्दपुराणके ''कला काष्ठाऽपि'' वचनमें द्वितीयाका कला-काष्ठा जैसा अल्प वेध होने पर भी तृतीया त्याज्य है. चतुर्थीयुक्ता तृतीया ही ग्राह्य है यह कहा है इसलिये परविद्धा ही तृतीया व्रतमें लेनी चाहिये. यदि तृतीया विद्धा होकर क्षीण हो जावे तो विद्धा ही व्रतमें ग्राह्य है क्योंकि ओर कोई उपाय नहीं है.

नृसिंहजयन्ती :

वैशाख शुक्ल चतुर्दशीके दिन श्रीनृसिंह जयन्तीका उत्सव करना चाहिये. इसका उल्लेख श्रीनृसिंहपुराण और स्कन्दपुराणके वचनोंमें इस प्रकार है. ''वैशाखे शुक्लपक्षे तु'' इत्यादि वचन

> ''वैशाख शुक्ल चतुर्दशीके दिन सायंकाल मेरा जन्म हुआ है. इस चतुर्दशीका व्रत पापोंका नाश करनेवाला और पवित्र है. मेरा सन्तोष करनेवाला यह व्रत प्रतिवर्ष करना चाहिये. ''वैशाखस्य चतुर्दश्याम्'' वचन ''हे ब्राह्मणो ! वैशाख शुक्ल चतुर्दशी सोमवारके दिन प्रदोषके समय स्वाती नक्षत्रमें श्रीनृसिंहका अवतार हुआ है''.

प्रदोष :

अब यहां 'प्रदोष' शब्दके अर्थका विचार किया जाता है. यद्यपि 'प्रदोष'

‘निशामुख’ आदि शब्द परिभाषिक समयका भी बोध करा सकते हैं. परन्तु हिरण्यकशिपुको यह वर मिला था कि वह न दिनमें मरेगा, न रात्रिमें. तदनुसार उपर्युक्त वचनोंमें ‘प्रदोष’ ‘निशामुख’ आदि शब्दोंका अर्थ सायंसन्ध्या ही मानना चाहिये. वह भी सन्ध्या मुख्य ही ग्रहण करना उचित है. उसका स्वरूप वराहमिहिरने यह कहा है ‘‘अर्धास्तमयात्’’ इत्यादि. सूर्य आधा अस्त हो वहांसे प्रारम्भ कर जब तक तारे प्रकट न हो तब तक सन्ध्या है. ऐसी सक्ध्या अथवा प्राचीनोंने ‘‘प्रदोषोऽस्तमयात्’’ वचनसे जो सूर्यास्तसे प्रारम्भ होनेवाला द्विघटिकात्मक(दो घडियोंका) प्रदोष समय कहा है वह श्रीनृसिंहजीके प्रादुर्भावका समय है ऐसा व्रतदिनकरोद्योतमें लिखा है. अन्य विद्वान् प्रदोषको भगवान् श्रीनृसिंहजीके प्रादुर्भावका समय बताकर आगे बढ जाते हैं परन्तु प्रदोषका निर्णय नहीं करते हैं.

द्वैतनिर्णयकारने तो पहले नृसिंहपुराणके ‘‘वैशाखशुक्लपक्षस्य’’ इस वचनका निर्देश किया, जिसका आशय यह है कि सूर्यके अस्त होने पर श्रीनृसिंह स्तंभसे प्रकट हुए. इसके अनन्तर भविष्यपुराणके वचनका उल्लेख किया, जो सायंकालमें श्रीनृसिंहका प्रादुर्भाव कहता है. फिर स्कन्दपुराणका वचन उद्धृत किया जो प्रदोष समयमें श्रीनृसिंहका प्रादुर्भाव बताता है. नृसिंहपुराणमें सूर्यके अस्त होनेपर प्रादुर्भाव बताया परन्तु कितनी घडियोंके भीतर हुआ यह नहीं कहा. अतएव इसका निर्णय प्रदोष समयमें प्रादुर्भाव बतानेवाले स्कन्दपुराणके वचनसे किया. और ‘प्रदोष’ पदके अर्थका स्पष्टीकरण भविष्यपुराण वचनके ‘सायं’ पदसे किया. ‘‘नक्षत्रस्पर्शनात् सन्ध्या सायं तत्परतः स्थितम्’’ इस वचनसे तारे प्रकट होनेसे पूर्व सन्ध्या और बादमें सायंकाल, इस प्रकार सायंकालका स्वरूप समझाया. अन्ततः सूर्यास्तके अनन्तर तीन घडियोंके भीतर श्रीनृसिंहका प्रादुर्भाव स्वीकार किया. परन्तु योग्य यह है कि सूर्यास्तके समीप समयसे प्रारम्भ कर तारे दीखनेसे पूर्व तक जो सन्ध्या समय रहता है, वही श्रीनृसिंहके प्रादुर्भावका समय है, क्योंकि हिरण्यकशिपुको मारनेसे पूर्व श्रीनृसिंहका प्रादुर्भाव समय रहना उचित है.

इस उत्सवमें ग्राह्य तिथिका सन्देह होनेपर सभी प्रदोष व्यापिनी चतुर्दशीको लेकर निर्णय करते हैं, परन्तु योग्य यह है कि त्रयोदशीके वेधसे रहित सूर्योदयिकी चतुर्दशी वैष्णवोंकेलिये है और केवल प्रदोष व्यापिनी दूसरोंकेलिये. यह निम्नलिखित वचनोंसे प्रमाणित होता है. गोविन्दार्वण और समयमयूखमें स्थित ब्रह्मपुराणके वचन

''श्रीनृसिंहके प्रसन्नताकेलिये त्रयोदशीसे युक्त चतुर्दशीका उपवास न करें, पूर्णिमायुक्त चतुर्दशीका उपवास करे. जो मनुष्य मोहवश त्रयोदशीसे युक्त चतुर्दशीका उपवास करता है वह धन और संतानों से रहित हो जाता है''.

इसलिये त्रयोदशीसे युक्त विद्धाचतुर्दशीका त्याग करना चाहिये. नृसिंहपुराणका वचन

''फल चाहनेवाले त्रयोदशीके वेधसे रहित केवल चतुर्दशीका व्रत करे. वैष्णव त्रयोदशीके वेधसे युक्त चतुर्दशीका व्रत न करें''.

इस नृसिंहपुराणके वचनका उत्तरार्द्ध कई विद्वान् नहीं लिखते हैं. इसलिये त्रयोदशीके वेधसे रहित चतुर्दशी सबके लिये ग्राह्य है यह निर्णय योग्य मालूम होता है. क्योंकि उपर्युक्त वचन नृसिंह चतुर्दशीसे सम्बन्ध रखनेवाला विशेष वचन है. अन्य व्रतोमें कर्मकालव्यापिसे निर्णय होने पर भी यहां वेधसाहित्यसे निर्णय करना स्मार्तोंकेलिये भी उचित है.

प्रश्न : यहां यह भी नहीं कह सकते कि त्रयोदशीवेधका निषेधक वचन उस अवस्थामें सार्थक है जब कि चतुर्दशी दोनों दिन प्रदोष समयमें हो या दोनों दिन प्रदोष समयमें न हो या दोनों दिन प्रदोषके किसी एक देशमें समान रूपसे रहती हो.

उत्तर : क्योंकि श्रीनृसिंहके प्रादुर्भावका समय बहुत अल्प है जो कि पहले बताया है. इतने अल्प समयमें त्रयोदशीका सर्व तिथि साधारण वेध जो कि तीन या दो मुहूर्तोंका है, बन नहीं सकता. अतएव (यह विशेष वचन न माना जाय तो) इसका उल्लेख ही व्यर्थ हो जाता है. श्रीनृसिंहके प्रादुर्भावका समय तीन या दो मुहूर्तोंका है यह कह नहीं सकते. क्योंकि पहले प्रादुर्भाव समयके विवेचनमें दोष दिखा दिये गये हैं. सर्व तिथि साधारण वेध कला-काष्ठा जैसा अल्प सामयिक माना जाय यह भी ठीक नहीं क्योंकि वैसा कोई वचन नहीं है. अतएव जहां तक चतुर्दशीका क्षय न हो, प्रातःकाल सूर्योदयके समय जो चतुर्दशी त्रयोदशीके वेधसे रहित हो वह ग्राह्य है. ''षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः'' इस युग्मवाक्यमें पूर्णिमासे युक्ता चतुर्दशी श्रेष्ठ मानी गई है और ''शुक्ला चतुर्दशी ग्राह्या परविद्धा सदा व्रते'' इस व्यास वचनमें भी परविद्धा चतुर्दशी व्रतमें ग्राह्य बताई है. चतुर्दशीका क्षय होनेपर तो त्रयोदशी विद्धा ही चतुर्दशी लेनी चाहिये. क्योंकि और कोई गति नहीं है. जन्माष्टमीकी रीति तो यहां नहीं ली जा सकती. आचार्यचरणोंने श्रीकृष्णजन्मोत्सवका समय नवमी है ऐसा वहां दिखाया है.

श्रीनृसिंहचतुर्दशीका उत्सव पूर्णिमामें किया जावे ऐसा कहनेवाला यहां कोई वचन नहीं है.

श्रीप्रभुचरणोंने इस व्रतको प्रायिक माना है, जो कि ''श्रीनृसिंहजयन्ती व्रत, उत्सव हो तो करें'' इस कथनसे मालूम होता है. इस प्रकार प्रायिक(अनित्य) माननेमें कारण माध्वोंके वचन हैं, जिनको श्रीरामनवमीके प्रकरणमें पहले उद्धृत किया है. उनके आशयका विवेचन तत्त्वदीपनिबन्धके सर्वनिर्णय प्रकरणकी व्याख्यामें किया जायगा. वैशाखोत्सव पूर्ण हुए.

ज्येष्ठोत्सव :

ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमाके दिन या इसके समीप ज्येष्ठा नक्षत्रमें ज्येष्ठाभिषेकका उत्सव करना चाहिये. जो कि इन अग्रिम वचनोंमें कहा है.

''हे ब्राह्मणों ! प्रतिवर्ष ज्येष्ठ मासकी पूर्णिमाके दिन इन्द्रदेवताको ज्येष्ठा नक्षत्रमें भगवानको स्नान कराया जावे. स्वर्णधर्मानुवाकसे भगवान् पुरुषोत्तमको स्नान करावे. पौर्णमासीके दिन सूक्त मन्त्रोंसे भगवानको यथाविधि स्नान करावे''.(ब्रह्मपुराण)

उपर्युक्त वचनोंके 'पौर्णमास्याम्' शब्दमें सामीप्य अर्थका बोध करनेवाली सप्तमी है, इसलिये दोलोत्सवके समान व्यवस्था यहां भी समझनी चाहिये. तिथि और नक्षत्र दोनोंका योग यदि यहां बने तो अति श्रेष्ठ है. ब्रह्मपुराणके ''ज्यैष्ठ्यां ज्येष्ठर्क्षयुक्तायाम्'' वचनमें लिखा है कि

''ज्येष्ठा नक्षत्रसे युक्त ज्येष्ठकी पूर्णिमामें जो भगवान् पुरुषोत्तमके दर्शन करता है वह इक्कीस सम्बन्धी कुलोंका उद्धार कर विष्णुलोकको जाता है''.

स्कन्दपुराणमें एक उपाख्यान है जिसमें भगवान् जगदीशने इन्द्रद्युम्नराजासे कहा कि

''ज्येष्ठकी पूर्णिमाके दिन मेरा अवतार हुआ है, इसलिये यह मेरा पवित्र जन्मदिन है, इस दिन मेरी प्रतिमाका अधिवासन कर महाभिषेककी विधिके अनुसार बडे वैभवके साथ मुझे स्नान करावे''.

इस वचनमें केवल ज्यैष्ठी पूर्णिमाका ही उल्लेख है, ज्येष्ठा नक्षत्रका उल्लेख नहीं है, परन्तु प्रकरण देखनेसे मालूम होता है कि पुरुषोत्तमक्षेत्रमें जो भगवान् जगन्नाथ

स्थित हैं केवल उन्हींसे इस महाभिषेक विधिका सम्बन्ध है, क्योंकि इसी प्रकरणमें ‘‘न्यग्रोधादुत्तरे कूप:’’ इस वचनसे भगवानने कहा है कि

‘‘वट वृक्षसे उत्तरमें एक कुआ है जिसमें सब तीर्थोंका निवास है. मैने पहले स्नानकेलिये इस कूपको बनाया था’’.

उपर्युक्त निर्णयसे इन ब्रह्मपुराण और स्कन्द पुराण के वचनोंका भी स्पष्टीकरण हो जाता है. ब्रह्मपुराणका ‘‘ऋक्षाभावे पौर्णमास्याम्’’ वचन

‘‘वह पुरुषोत्तम क्षेत्रमें स्थित भगवान् जगन्नाथकी प्रसन्नताकेलिए उसी प्रकार करना चाहिये’’.

स्कन्दपुराणका ‘‘पौर्णमास्यां प्रकुर्वीत’’ वचन

‘‘यदि नक्षत्र न मिले तो केवल पौर्णमासी ली जावे’’.

उपर्युक्त वचन पुरुषोत्तम क्षेत्र परक है यह स्वीकार न हो तो पूर्णिमा और ज्येष्ठा नक्षत्र दोनों न मीले तो केवल नक्षत्रमें उत्सव कीया जाय, क्योंकि कलियुगमें शिष्टाचार बलवान् है, जिसका उपपादन पहले हो चुका है.

स्नानसे अवशिष्ट रहे जलका भक्तोंको अपने अंगों पर सेचन करना चाहिये. इसका उल्लेख ब्रह्मपुराणके वचनोंमें इस प्रकार है.

‘‘भगवान् श्रीकृष्णके स्नानावशिष्ट जलसे शरीरका सेचन करना चाहिये. इससे जो स्त्रियां बांझ, मृतवत्सा, सौभाग्यहीना, सूर्यादि ग्रहोंसे पीडिता, राक्षसी, डाकिनी आदिके आवेशवालीं या व्याधिग्रस्ता हों वे इन दुःखोंसे रहित हो जाती हैं और अभीष्ट फलको पाती हैं. जिसे पुत्रोंकी इच्छा हो उसे पुत्र मिलते हैं, सांसारिक सुख चाहनेवालीको सौभाग्य मिलता है, रोगसे पीडित रोगसे मुक्त होती हैं, धन चाहनेवालीको धन मिलता है. पृथ्वी पर जितने भी पवित्र जल हैं, स्नानाविशिष्ट जलकी सोलहकीं कलाको भी नहीं पा सकते है. अतएव हे ब्राह्मणों ! श्रीकृष्णके स्नानाविशिष्ट जलसे सब अंगों पर सेचन करना चाहिये. वह सब मनोरथोंको देनेवाला है’’.

ज्येष्ठोत्सव पूर्ण हुए.

आषाढोत्सव :

आषाढमें रथोत्सव होता है. जिसका उल्लेख स्कन्दपुराणमें है. ''गुण्डिचाख्याम्'' इत्यादि वचन

> ''हे राजन्! मेरी 'गुण्डिचा' महायात्राका उत्सव करना चाहिये जिसके कीर्तनसे मनुष्य पापोंसे मुक्त होता है. माघकी पञ्चमी और चैत्र शुक्ला अष्टमी इस 'गुण्डिचा' महोत्सवकेलिये श्रेष्ठ समय है. पुष्यनक्षत्रसे युक्ता आषाढ शुक्ला द्वितीया विशेषतः मोक्ष देनेवाली है. यदि पुष्यनक्षत्र न मिले तो यह उत्सव मेरी प्रसन्नताकेलिये केवल द्वितीयामें भी किया जाय. आषाढ शुक्ल पक्षकी पुष्य नक्षत्रसे युक्त द्वितीयाके दिन सुभद्रा (महालक्ष्मी) और बलरामके साथ मुझे रथमें बैठा कर महोत्सव करें और बहुत ब्राह्मणोंका संतोष करें''.

इसके अनन्तर ''गुण्डिचामण्डपे नाम यत्राहमजनं पुरा'' इत्यादि वचनोंसे गुण्डिचामण्डपकी प्रशंसाकी है. और ''दिनानि नव यास्याभि'' इत्यादि वचनोंसे नव दिनों तक गुण्डिचामण्डप जानेके लिये है और यात्राका अंग है. शिष्ट लोग गुण्डिचामण्डप न ले जाते हुए भगवानको केवल रथारोहण कराते हैं. इस गुण्डिचा महोत्सवकेलिये पञ्चमी आदि अनेक काल वहां बताये हैं, और नक्षत्रकी प्रधानताका समर्थन पहले हो चुका है, इसलिये इसका भी निर्णय होता है कि ज्येष्ठाभिषेकके समान पुष्प नक्षत्रमें उत्सव करना उचित है. विशेष विस्तार करना योग्य नहीं.

शयनोत्सव :

आषाढ शुक्ल एकादशीके दिन शयनोत्सव शास्त्रोमें बताया है. परन्तु साम्प्रदायिक व्यवहार न होनेसे नहीं किया जाता है. अतएव विवेचन भी नहीं किया जाता है. यदि कोई श्रद्धावश करे तो मलमासका त्याग कर शुद्ध मासमें करे और प्रबोधिनीके निर्णयके अनुसार एकादशी ग्रहण करें.

आषाढोत्सव पूर्ण हुए.

श्रावणोत्सव :

श्रावण शुक्ल एकादशीके दिन पवित्रारोपणका उत्सव करना चाहिये. इसका उल्लेख हेमाद्रि-स्थित विष्णुरहस्यमें है. ''श्रावणस्य सिते पक्षे'' इत्यादि वचन

> ''श्रावण शुक्ल एकादशीके दिन कर्कसंक्रान्तिमें या द्वादशी पञ्चमी

पूर्णिमा इनमेंसे किसी एक दिन, जिस दिन अनुकूल हो उस दिन भगवान् वासुदेवकी पवित्र धारण करावे''.

मुख्य समय न मिलने पर देवोत्थापनसे पूर्व सभी मासोमें हो सकता है. यहां कर्कसंक्रान्तिका उल्लेख मलमासके संग्रहके लिये है, परन्तु शिष्ट लोग मलमासका आदर नहीं करते हैं क्योंकि शुद्ध श्रावणमें हो सकता है. न इसमें कोई शंका ही है. अधिक मास होने पर सम्भव है शुद्ध श्रावण शुक्लमें कर्कसंक्रान्ति न मिल कर सिंहसंक्रान्ति मिले तो एक अंशमें कर्क होगा, मास, तिथि आदि ओर सब अंश तो पूर्ववचनोक्त ही रहेगा. ''श्रावणस्य सिते पक्षे'' इस उपर्युक्त वचनमें प्रथम 'द्वादशी' शब्दका अर्थ एकादशी है. यदि ऐसा न हो तो ''द्वादश्यां श्रवणे वाऽपि'' यह दुबारा 'द्वादशी' शब्दका प्रयोग व्यर्थ हो जाता है. प्रथम 'द्वादशी' शब्दका एकादशी अर्थ माननेमें लक्षणा करनी पडेगी यह आपत्ति भी नहीं है, क्योंकि इन अग्रिम कई वचनोंमें 'द्वादशी' शब्दका उपयोग एकादशीकेलिये किया है. हरिवल्लभसुधोदय स्थित पद्मपुराणके ''पक्षे पक्षे नृपश्रेष्ठ'' इत्यादि वचन ''हे राजश्रेष्ठ! प्रत्येक पक्षमें तू दशमीके वेधसे रहित द्वादशीका (एकादशीका) यथाविधि व्रत करता है. जैसे नेत्रहीन शरीर, पतिहीना नारी और वैष्णवोंसे हीन देश मालूम होता है वैसे ही दशमीविद्धा द्वादशी है (एकादशी है)''. निर्णयसिन्धुस्थित कूर्मपुराणका वचन ''दशम्यनुगता'' इत्यादि. ''दशमीविद्धा द्वादशी (एकादशी) फलको नष्ट करती है''. ऐसे ही वचन वराहपुराणमें भी है जिनमें एकादशीकेलिये 'द्वादशी' शब्दका प्रयोग किया है. इसमें निश्चय होता है कि 'द्वादशी' शब्द एकादशीका पर्याय है. लक्षणा किसी प्रयोजनसे होती है और यहां कोई प्रयोजन नहीं है. इसलिये लक्षणा नहीं मान सकते. यदि लक्षणा मानी भी जाय तो हमारी कोई हानि नहीं, क्योंकि लक्षणासे भी बोध तो एकादशीका ही होगा.

शंका : पद्मपुराणके उपर्युक्त वचन उन्मीलिनी द्वादशीके प्रकरणमें हैं. इसलिये प्रकरणविरोध होनेसे इनमें वर्तमान 'द्वादशी' शब्दका एकादशी अर्थ नहीं हो सकता.

उत्तर : यह भी नहीं कह सकते, क्योंकि इनमें दशमीवेध रहित द्वादशी व्रत जागरणके साथ करनेका उल्लेख है. यह दशमीवेध और जागरण 'द्वादशी' शब्दका एकादशी अर्थ लिया जाय तभी घटित होता है. इस अर्थ प्रकाशन सामर्थ्यरूप लिङ्गसे प्रकरणका बाध हो जाता है. (''प्रकरणके अपेक्षा लिङ्ग बलवान् है'' यह पूर्वमीमांसाके 'श्रुतिलिङ्ग' सूत्रसे सिद्ध है) इसके अतिरिक्त ''सम्पूर्णैकादशी यत्र'' इस उन्मीलिनीके

लक्षणमें दूसरे दिनमें तो दशमीवेध सर्वथा असम्भव है, और पहले दिन सम्भवित अरुणोदयादि वेधोंके निषेधमें उपर्युक्त वेधनिषेधका तात्पर्य माना जाय तो 'द्वादशी' शब्दका अर्थ अन्ततः एकादशी ही सिद्ध हुआ. क्योंकि पहले दिन तो द्वादशीका लेश भी नहीं है. यह भी नहीं कह सकते कि द्वादशी शब्दका शक्य अर्थसे भिन्न अर्थ स्वीकार करने पर कोई सीमा न रहेगी. क्योंकि जहां कोई सन्निहित पदोंका अर्थ या पुनरुक्ति आदि तात्पर्यग्राहक होता है वहां तदनुकूल शक्य भिन्न अर्थ स्वीकार किया जाता है. उपर्युक्त वचनमें द्वितीय द्वादशी शब्द अनुवादक है, यह कहना भी अयोग्य है, क्योंकि इसमें कोई प्रमाण नहीं है. किसीने यह कहा कि द्वितीय 'द्वादशी' शब्दके साथ 'श्रवण' शब्द है. इसलिये इसका अर्थ श्रवणद्वादशी है और यह पवित्रारोपणके लिये मुख्यतर समय है और इसमें पूर्व कही गई श्रावण शुक्ला द्वादशी मुख्यतम समय है –यह भी आपातरमणीय है. क्योंकि ''सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत्'' इस वचनमें जैसे तारतम्यबोधक 'पुण्यतम' शब्द है इस प्रकार यहां मुख्यतम, मुख्यतर आदि तारतम्य बतानेवाले शब्द नहीं हैं. अतएव ऐसे कल्पना करनेमें कोई प्रमाण नहीं. यदि 'द्वादशी' पदके साथ 'श्रवण' पदका सम्बन्ध होनेसे अन्य मासमें आनेवाली श्रवणद्वादशी ली जाती है तो पञ्चमी पूर्णिमा आदि तिथियां भी श्रवणातिरिक्त मासोंकी ली जा सकेगी. श्रावणका त्याग हो जायेगा. एवं द्वितीय द्वादशी शब्दके अनुवादक होने पर शास्त्रमें अनुवादक अप्रामाण्य प्रविष्ट हो जायेगा. अन्य विधेय अंशके अभावमें केवल विधिका अनुवाद कहीं भी देखा नहीं. मन्त्रस्तुत्या देवताओंको मन्त्रमयी न मान कर विग्रहवती (शरीरधारिणी) माननेवाले व्यास आदि आचार्योंने निषेध स्थलमें भी अनुवाद स्वीकार नहीं किया है. जैमिनिकी अपेक्षा व्यास दोनों प्रकारसे गुरु हैं (१.जैमिनिके गुरु होनेसे और २.प्रधान सिद्धान्त वेदान्तके प्रवर्तक होनेसे). आचार्यचरणोंने भी ऐसा ही व्यासमताविरुद्ध जैमिनिमतका प्रामाण्य स्वीकार किया है. सार यह कि एकादशी मुख्य समय है. इसमें न हो सके तो द्वादशी आदि तिथियां ग्रहण करनी चाहिये यही योग्य है. जो इस प्रकार नहीं मानते हैं वे लोक अवश्य ज्ञानशून्य हैं.

उपर्युक्त वचनमें जो ''आनुकूल्येषु कर्तव्यम्'' लिखा है इसका तात्पर्य पवित्रारोपणके एकादशीमें दशमीवेधका निषेध करना है. यद्यपि दशमीवेधका निषेध उपवासमें आवश्यक है (न कि पवित्रारोपणमें) तथापि विष्णुधर्मोत्तरमें नारदने जब वेधदोषका कारण पूछा तो भगवानने ''दशम्यामसुरा जाताः'' इस वचनसे यह दिखाया कि दशमीमें असुरोंका जन्म हुआ है और एकादशीमें देवोंका, इसलिये जो जिनका

जन्मदिन है वह उनको बढानेवाला है. यह कारण उपवासके समान अन्य पुण्य कार्योंमें भी समान है. इसलिये पवित्रारोपणमें भी दशमीवेधका त्याग करना अवश्य अभीष्ट है. अन्यथा 'आनुकूल्येषु' इस बहुवचनसे सब प्रकारके आनुकूल्योंका विधान न करते. हरिवासर होनेसे हरिका आनुकूल्य तो इस एकादशीमें ही सिद्ध होता है. अपेक्षित फलके लाभके अनुकूलता भी इसमें है. इस फलानुकूल्यके विचारसे ही पवित्रा एकादशीमें भद्रारहित समयका भी संग्रह हो गया. ''भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा'' इस वचनकी व्याख्या करते हुए दिनकरोद्योत आदि निबन्धोमें यह कहा है कि 'श्रावणी' पदसे श्रावण मासमें होनेवाले अन्य कार्य भी किये जाते है, केवल रक्षाबन्धन ही नहीं. अतएव पवित्रारोपणमें भी भद्रा त्याज्य है, व्यतिपात, वैधृति आदि योग पुण्यजनक हैं, इनका ऐसे पुण्य कार्योंमें निषेध नहीं है.

यह पवित्रारोपण नित्य भी है और काम्य भी है यह दिनकरोद्योत हेमाद्रि और ब्रह्मपुराणमें स्पष्ट है.

''ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य स्त्रियां और शूद्र अपने धर्ममें तत्पर रहते हुए सभी भक्तिपूर्वक पवित्र समर्पण करें. हे मुनिश्रेष्ठ! जो मनुष्ये पवित्राका समर्पण नहीं करता है उसकी सम्पूर्ण वार्षिकी पूजा निष्फल हो जाती है. अतएव विष्णुभक्त मनुष्य प्रतिवर्ष विष्णुको पवित्रसमर्पण करें. यह पवित्रसमर्पण विष्णुके भक्तिरत्नको देता है, स्त्रीयोंको और पुरुषोंको कीर्ति देता है, पुण्यजनक है, सुखसंपत्ति और धनको देता है''.

इस पवित्रका विधान रामार्चनचन्द्रिकामें प्रयोगसारसे उद्धृत कर इस प्रकार कहा है

''एक 'पवित्र' नामका नाग था, जो कि वासुकिका छोटा भाई था, उसने देवोंके सौ वर्ष तक तप कर शंकरको प्रसन्न किया और वर पाकर इनके कण्ठका आभूषण बना. शंकरने 'तथास्तु' कहकर कण्ठमें धारण करते हुए यह दूसरा वर दिया कि जैसे मैंने तेरा आदर किया (कण्ठमें धारण किया) इस प्रकार जो तेरा आदर न करें उनके किये हुए जप होम आदिका फल अवश्य तुमको प्राप्त हो. नित्य नैमित्तिक कार्योमें प्रयत्न करनेवाले मनुष्य इस श्रावण मासमें ही विष्णुदेवताका श्रवण नक्षत्रमें तेरी आराधना करें''.

यह पवित्रविधान तान्त्रिकोंके लिये आवश्यक है, अनन्यभक्तोंके लिये नहीं

है. अतएव जितना आवश्यक है उतना हि लिया जाता है. आवश्यक यह है कि भक्तोंका भाव अपने मूलभूत सत्त्व, रज और तम इन त्रिगुणोमें क्षोभ होकर परस्पर मिश्रण होने पर नव प्रकारका हो जाता है. अतः इस भावके अनुसार पहले तीन तन्तु लेकर इनको तिहरे कर नव बनावें. वर्ष भरकी पूजाकी सफलता इसका फल है, इसलिये एक वर्षके दिनोंकी संख्याके अनुसार तीनसौ साठ वलयाकार आवृत्तियां इसकी करें. नागका आकार बननेकेलिये ग्रन्थियां लगावें. देवके सन्निधानकेलिये अधिवासन करें.

> ''पवित्रा सोना, चांदी, ताम्बा, अलसी, रेशम, कमल, कुश, कासडा और कपास इनके तन्तुओंसे बनाये, जो कि तन्तु ब्राह्मणजातिकी स्त्रीके द्वारा या कन्याके द्वारा कातें गये हों, न कि व्यभिचारिणी आदि दूषित स्त्रियोंके द्वारा. सत्य युगमें पवित्र मणिमय, त्रेतायुगमें सुवर्णमय, द्वापर युगमें रेशमी और कलियुगमें कपासका कहा है. स्नान कर त्रिगुणित सूत्रको फिर त्रिगुणित कर शुद्ध करे. पञ्चगव्यसे पवित्र कर जलसे प्रक्षालन करे. ऐसे (३६०) तीनसौ साठ तारोंका जो पवित्रा बनाया जावे वह उत्तम है, (२७०) दोसौ सत्तर तारोंका मध्यम है और (१८०) एकसौ अस्सी तारोंका कनिष्ठ है. (१००) सौ गांठोंका पवित्रा उत्तम, (५०) पचास गांठोंका मध्यम और (३६) छत्तिस गांठोंका कनिष्ठ होता है''.

गाठें :

कुछ आचार्य उत्तम मध्यम और कनिष्ठ पवित्रोमें छत्तीस, चौबीस और बारह गांठें क्रमशः आवश्यक मानते हैं. एवं कोई मुनि चौबीस, बारह और आठ गांठें आवश्यक मानते हैं. हेमाद्रिस्थित विष्णुरहस्यवचन ''अष्टोत्तरशतं कुर्यात्'' इत्यादि ''उत्तम पवित्रमें (१०८) एकसौ आठ ग्रन्थियां, मध्यम पवित्रमें (५४) चौपन और कनिष्ठमें (२७) सत्ताईस बनाई जावें''.

> ''पूर्णिमाके दिन भगवानकेलिये कन्या पतिव्रता स्त्रीने तैयार किया पवित्र समर्पण करें. अनेक रंगोके रेशमी तारोंसे बने पवित्र अर्पण करे. दक्षिणाके साथ ऐसे पवित्रे ब्राह्मणोंको देवें. स्वयं भी भक्तिपूर्वक कण्ठ या हाथमें धारण करें. ब्राह्मणोंकेलिये जो पवित्रोंका दान किया जाता है उसका अक्षय पुण्य होता है''.(वाराहपुराणके चातुर्मास्य-माहात्म्यका ''पूर्णिमायां

ततः कुर्यात्'' इत्यादि वचन)

''उत्तम पवित्रमें अंगुष्ठ पर्वके समान लम्बा ग्रन्थि बनावे, मध्यम पवित्रमें इसकी आधी लम्बा और कनिष्ठ पवित्रमें आधीकी आधी लम्बा ग्रन्थि बनावें, ग्रन्थियां सभी गोल और सुन्दर बनावें. विषम संख्याकी ग्रन्थियां कहीं न बनावें. शोभारहित सूत्रोंके दानसे व्रत कर्ताको अशुभ फल मिलता है. अतएव भक्तिपूर्वक सुन्दर पवित्र बनावें. केसर गोरोचन और कपूर मिला कर उससे सूतको रंगे. ऐसा पवित्र देशकालका विचार कर अपने इष्ट देवको महीना पन्द्रह दिन, तीन या एक अहोरात्र धारण करावें. बादमें पवित्र गन्ध आदिके साथ अपने गुरुको समर्पण करें. स्वर्ण वस्त्र अनुलेपनोंसे गुरुकी भक्तिपूर्वक पूजा करें. यदि किसी भी प्रकार समय पर पवित्रारोपण न कर सके तो वह अपने इष्ट देवके मूलमन्त्रका दश हजार जप करें और स्तुति करें''.(रामार्चनचन्द्रिका)

प्रमादवश पवित्र समर्पण न करने पर यह प्रायश्चित बताया है. गन्ध पुष्प आदिसे पवित्रका संस्कार करना अधिवासन है. (३६०) तीनसौ साठ सूत्रोंमें एक वर्षकी दैनन्दिन पूजाओंका सामान्य रूपसे आरोप किया जाता है. इस पवित्रके अवयवस्वरूप सूत्रोमें वर्तमान पूर्वोक्त पूजाओंकी आधिदैविकता सिद्ध होनेकेलिये अधिवासन आवश्यक है. सूत्रोंकी अधिष्ठात्री देवताएं हमें सम्मत नहीं है, क्योंकि उनका अन्य सम्प्रदायोंसे सम्बन्ध है.

रक्षाबन्धन :

श्रावण शुक्ल पौर्णमासीके दिन रक्षाबन्धनका उत्सव होता है. यह भद्रारहित पौर्णमासीमें करना चाहिये. इसका उल्लेख इन अग्रिम वचनोंमें है.

''रक्षाबन्धन और होली दोनों भद्रामें करना उचित नहीं. भद्रामें किया गया रक्षाबन्धन राजाका और होलिका – दाह राष्ट्रका नाश करता है''.

''प्रतिपदाके दिन रक्षाबन्धन, दशमीके दिन बलिदान और द्वितीया के दिन गोक्रीडा (गोवर्द्धनोत्सव) हो तो वह देश नष्ट हो जाता है''.

श्रीवल्लभाचार्यचरण और विट्ठलेश प्रभुचरणों के कृपाबलको पाकर आप दोनोंकी वाणीका विचार किया. श्रीप्रभुचरणोंके पौत्रोंके द्वारा किये गये निर्णयोंसे

सम्प्रदायका निश्चित ज्ञान प्राप्त किया. जब कि सम्प्रदायको न जाननेवाले मनुष्योंकी शङ्काओंसे पुष्टिमार्गीय जीव व्याकुल हो गये, तब श्रीव्रजरायजीके द्वारा बनाई गई 'संवत्सरोत्सवकल्पलताको' विशद करनेके लिये मैने वार्षिक उत्सवोंका यह समयनिर्णय बनाया. इससे प्रभु प्रसन्न हों. जो अज्ञानवश कहा हो उसकेलिये क्षमा प्रदान करें, जिससे मुझमें अपराधोंका संचय न हो.

श्रीविट्ठलेशप्रभुचरणोंके चरणारविन्दोंके मकरन्दके लाभसे जिसने
'पुरुषोत्तम' नाम पाया है तद्रचित
यह वार्षिक उत्सवोंका समय निर्णय पूर्ण हुआ.